उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

M.COM-02
व्यावसायिक पर्यावरण
(Business Environment)

खण्ड
1

सामान्य परिचय (General Introduction)

इकाई - 1 5
व्यावसायिक पर्यावरण की अवधारणा, प्रकृति एवं महत्व (Concept, Nature and Significance of Business Environment)

इकाई - 2 29
सूक्ष्म एवं वृहद् पर्यावरण विश्लेषण (Micro and Macro Environment Analysis)

इकाई - 3 46
पर्यावरण विश्लेषण की तकनीक (Technique for Environment Analysis)

इकाई - 4 61
आर्थिक प्रणाली (Economic System)

इकाई - 5 81
संस्कृति एवं व्यवसाय (Culture and Business)

इकाई - 6 98
व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility of Business)

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 जगदीश प्रकाश	पूर्व प्रति कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, डीन एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, वाणिज्य संकाय एवं पूर्व निदेशक, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 दिनेश कुमार	एसो0 प्रोफेसर, इलाहाबाद डिग्री कालेज, सम्बद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से श्री एम0 एल0 कनौजिया, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2010
मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खण्ड-1 परिचय- व्यावसायिक पर्यावरण (Business Environmnet)

किसी व्यावसायिक उपक्रम के सफलतापूर्वक संचालन के लिये व्यवसायिक पर्यावरण को भली–भांति समझना अत्यन्त आवश्यक है। व्यावसायिक उपक्रम चाहे वह छोटा हो या बड़ा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण से प्रभावित होता है। इस खण्ड का उद्देश्य व्यावसायिक पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं से आपको परिचित कराना है। इस खण्ड में छः इकाईयां हैं।

इकाई–1, व्यावसायिक पर्यावरण की अवधारणा, प्रकृति एवं उसके महत्व का वर्णन करती है। व्यावसायिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले तत्वों एवं विभिन्न घटकों की भी जानकारी इसी इकाई में दी गई है।

इकाई–2, व्यवसाय के सूक्ष्म एवं वृहद् पर्यावरण के कारकों की व्याख्या इस इकाई में की गई है। आर्थिक एवं अनार्थिक पर्यावरण के विभिन्न घटकों को संक्षेप में समझाया गया है।

इकाई–3, व्यवसाय को भली–भांति चलाने में अनेक व्यवसायिक निर्णय लेने पड़ते हैं। यह निर्णय फर्म/कम्पनी के भविष्य को प्रभावित करते हैं। व्यावसायिक पर्यावरण का विश्लेषण व्यवसायिक निर्णयन में मदद करता है। पूर्वानुमान जितना सटीक होता है। उसका लाभ उतना ज्यादा होता है।

इकाई–4, व्यावसायिक पर्यावरण के अन्तर्गत आर्थिक प्रणाली को समझना आवश्यक है। आर्थिक प्रणाली मुख्य रूप से पूंजीवादी, समाजवादी एवं मिश्रित तीन प्रकार की होती है। पूंजीवादी एवं समाजवादी दोनों प्रणालियों की अच्छाइयों को एक साथ रखकर मिश्रित आर्थिक प्रणाली लाई गई। मिश्रित आर्थिक प्रणाली में निजी एवं सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्र कार्य करते हैं।

इकाई–5, व्यवसाय पर सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यवसाय के बिना समाज नहीं अथवा समाज के बिना व्यवसाय नहीं चल सकता। संस्कृति हर क्षेत्र/देश की अलग होती है। संस्कृति को अच्छी तरह समझे बिना व्यावसायिक सफलता असंभव है।

इकाई–6, व्यवसाय केवल लाभ कमाने के लिये ही नहीं किया जाता है वरन् इसकी कुछ सामाजिक जिम्मेदारियां होती है। समय बीतने के साथ जागरूकता बढ़ने से समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व से व्यवसाय मुंह मोड़ नहीं सकता। सरकार भी अब इसके लिये तमाम तरह के कानून बनाकर प्रयासरत रहती है।

इकाई–1 : व्यावसायिक पर्यावरण की अवधारणा, प्रकृति एवं महत्व (Concept, Nature and Significance Business Environment)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 व्यावसायिक पर्यावरण क्या है?
1.4 व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषायें
1.5 व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषतायें
1.6 व्यावसायिक पर्यावरण की प्रकृति एवं घटक
1.7 व्यावसायिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले तत्व
1.8 व्यावसायिक पर्यावरण के अध्ययन का महत्व
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 बोध के प्रश्न

1.1 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- व्यावसायिक पर्यावरण की व्याख्या कर सकें,
- व्यावसायिक पर्यावरण की प्रकृति एवं उसके विभिन्न घटकों को जान सकें,
- व्यावसायिक पर्यावरण के अध्ययन का महत्व भी बता सकें,
- व्यावसायिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले तत्वों का विवरण कर सकें।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

व्यावसायिक पर्यावरण दो शब्दों–व्यवसाय एवं पर्यावरण के संयोग से बना है। व्यवसाय, विद्यमान पर्यावरण में रहकर अपनी क्रियाओं को संचालित करता है। व्यवसाय को पर्यावरण प्रभावित करता है और व्यवसाय पर्यावरण को प्रभावित करता है। अतः दोनों ही अन्तर्सम्बन्धित हैं। वास्तव में व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी परिस्थितियों, घटनाओं एवं कारकों का योग है जो व्यवसाय पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

1.3 व्यावसायिक पर्यावरण का अर्थ (Meaning of Business Environment)

व्यवसाय का शाब्दिक अर्थ मनुष्य को व्यस्त रखने वाली क्रियाओं से है। एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि व्यवसाय में उन्हीं मानवीय आर्थिक क्रियाओं को शामिल किया जाता है जो समाज की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए की जाती है। खेलना–कूदना, खाना–पीना, यात्रा करना, विश्राम करना जैसी अनार्थिक क्रियाओं को व्यवसाय में शामिल नहीं किया जाता। **मैकनॉटन (Mc Naughton) के शब्दों में, "व्यवसाय शब्द से तात्पर्य, पारस्परिक हित के लिए वस्तुओं, मुद्रा अथवा सेवाओं के विनियम से है।"** (The term business means the exchange of goods, money or services for mutual benefits) । व्यवसाय को परिभाषित करते हुए **उर्विक (Urwick)** का कहना है, "यह एक ऐसा उपक्रम है जो समुदायों की आवश्यकता की पूर्ति हेतु वस्तुओं या सेवाओं का निर्माण, वितरण तथा इन्हें उपलब्ध कराता है।" (Business is any enterprise which makes, distributes or provides articles or services which other members of the community needs) व्यवसाय को परिभाषित करते हुए **एल.एच. हैने (L.H. Haney)** ने लिखा है, "व्यवसाय से तात्पर्य उन मानवीय क्रियाओं से है जो वस्तुओं के क्रय–विक्रय द्वारा धन उत्पादन या धन प्राप्ति के लिए की जाती है।" (Human activity directed towards producing or acquiring wealth through buying and selling goods is called business) इन परिभाषाओं के निष्कर्ष स्वरूप स्पष्ट है कि "व्यवसाय से तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन, वितरण एवं विनियम सम्बन्धी क्रियाओं से है जिनके फलस्वरूप उपभोक्ताओं एवं समाज की आवश्यकताएँ पूरी होती है।"

व्यावसायिक पर्यावरण जटिल एवं अनियंत्रित बाह्य, आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा तकनीकी घटकों का योग है जिनके अन्दर एक व्यवसाय को कार्य करना पड़ता है। पर्यावरण ही व्यवसाय को नये आकार, नयी भूमिका तथा नये तेवर ग्रहण करने को बाध्य करता है।

1.4 व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषाएँ (Definitions of Business Environment)

व्यवसाय की समस्त क्रियाएँ राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, वैधानिक, प्रौद्योगिकीय, नैतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण या पर्यावरण के सन्दर्भ में निर्धारित होती है। इसलिए व्यावसायिक पर्यावरण के अर्थ को भली–भाँति जान लेना अति आवश्यक हो जाता है। सामान्यतः व्यावसायिक वातावरण से तात्पर्य

उन समस्त कारकों (factors) से होता है, जो व्यवसाय के संचालन को प्रभावित करती है। व्यावसायिक पर्यावरण की परिभाषा विभिन्न विद्वानों द्वारा निम्न प्रकार दी गयी है–

डेविक (Devic) के अनुसार, "व्यावसायिक वातावरण उन सभी परिस्थितियों, घटनाओं एवं कारकों का योग है जो व्यवसाय पर प्रभाव डालते हैं।"[1]

ग्लूक व जॉक (Gluek and Jouck) के शब्दों में, "पर्यावरण में फर्म के बाहर के घटक शामिल होते हैं, जो फर्म के लिए अवसर एवं खतरा पैदा करते हैं। इनमें सामाजिक, आर्थिक, प्रौद्योगिकीय व राजनैतिक दशाएँ प्रमुख हैं।"[2]

शॉल (Schoell) के कथनानुसार, "यह उन समस्त तत्वों का योग है, जिनके प्रति व्यवसाय अपने को अनावृत करता है तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करता है।"[3]

रिचमैन एवं कोपन (Richman and Copen) के मतानुसार, "पर्यावरण में दबाव व नियन्त्रण होते हैं, जो अधिकांशतः वैयक्तिक फर्म एवं इसके प्रबन्धकों के नियन्त्रण के बाहर होते हैं।"[4]

विभिन्न विद्वानों द्वारा व्यावसायिक पर्यावरण की दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण के पश्चात् निम्नलिखित बातें परिलक्षित होती है–

- व्यावसायिक पर्यावरण अनेक जटिल व अनियन्त्रित बाह्य आर्थिक, सामाजिक, भौतिक एवं तकनीकी घटकों का योग है, जिसकी परिसीमा में व्यवसाय को संचालित करना होता है।
- वातावरण या पर्यावरण ही व्यवसाय को नये आकार, नयी भूमिका, मान्यता व नये स्वरूप ग्रहण करने के लिए बाध्य करता है।
- कोई अकेली व्यावसायिक फर्म अपनी क्रियाओं या गतिविधियों द्वारा पर्यावरण को प्रभावित नहीं कर सकती है।
- व्यवसाय के लिए पर्यावरण बाह्य तत्व होते हैं।

---

1 Business Environment is the sum of such situation, incident and factors which affect the business. **–Devic.**

2 In Environment there are external factors, which constantly spin out opportunities and threats to the business firm. **-William Glueck Jouck**

3 The Environment of business consists of all those external things to which it is exposed and by which it may be influenced, directly. **-Reineek & Schoell, Introduction to business, P.43.**

4 There are lot of pressures and controls which are mostly outside the control of individual firm and its managers. **-Richman and Copen.**

- नये अवसरों की खोज में पर्यावरण द्वारा व्यवसाय में प्रोत्साहन व नयी ऊर्जा का संचार होता है।
- विभिन्न व्यावसायिक फर्म अपनी सामूहिक क्रियाओं या गतिविधियों द्वारा पर्यावरण को प्रभावित कर सकती है।
- व्यावसायिक पर्यावरण के परिवर्तन में व्यवसाय भी महत्वपूर्ण घटक होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि "व्यावसायिक पर्यावरण विभिन्न गतिशील, जटिल व अनियन्त्रित वाह्य आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, भौतिक एवं तकनीकी घटकों का योग है, जिसके अन्दर ही रहकर व्यवसाय को कार्य करना पड़ता है।" यह वतावरण, व्यवसाय को नये आकार, प्रकार, स्वरूप, नयी चुनौतियाँ, नयी भूमिका, मान्यताएँ व नये तेवर ग्रहण करने को बाध्य करता है। भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में नये व सर्वोत्तम अवसरों की खोज के वातावरण से व्यवसाय को प्रोत्साहन व एक नयी ऊर्जा प्राप्त होती है। साथ ही साथ व्यवसाय भी वातावरण के परिवर्तन में अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक सिद्ध होता है।

किसी भी व्यवसायी को आर्थिक क्षेत्र में अनेक आर्थिक निर्णय लेने होते हैं, जिसमें उत्पाद का आकार–प्रकार, उत्पाद की किस्म, मूल्य, लागत, संरचना, उत्पाद प्रणाली, वितरण श्रृंखला (distribution channel), पूँजी प्रबन्धन, आय प्रबन्ध ान आदि प्रमुख होते हैं। खुली या स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में इस प्रकार के निर्णय व्यवसाय के स्वामी द्वारा स्वयं लिये जाते हैं, जबकि बन्द अर्थव्यवस्था (closed economy) में ऐसे निर्णय सरकार द्वारा लिये जाते हैं। व्यवसायी वर्ग व्यावसायिक निर्णय, गतिशील वातावरण तथा भविष्य के वातावरण को ध्यान में रखकर लेता है। व्यवसाय की समस्त क्रियाएँ, राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक, राजैनतिक, वैधानिक, प्रौद्योगिकीय, नैतिक व सांस्कृतिक वातावरण के सन्दर्भ में निर्धारित होती है। एक सतर्क एवं जागरूक व्यवसायी या साहसी अपने परिवेश या वातावरण या पर्यावरण की उपेक्षा नहीं करता है, बल्कि व्यावसायिक परिवेश या पर्यावरण के समक्ष आने वाली बाधाओं, सीमाओं, अवसरों एवं चुनौतियों को स्वीकार करके सकारात्मक एवं सर्वोत्तम व्यावसायिक निर्णय लेता है।

1.5 व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषताएँ (Characteristics of Business Environment)

व्यावसायिक पर्यावरण के अर्थ एवं पहलुओं का अध्ययन करने के उपरान्त इसमें कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ परिलक्षित होती है। इन विशेषताओं को निम्नलिखित

बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

- व्यावसायिक पर्यावरण मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं से सम्बन्धित होता है।
- व्यावसायिक वातावरण क्षेत्र, देश या विश्व के भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक वातावरण से मुख्यतया प्रभावित होता है।
- व्यवसाय का आर्थिक वातावरण सरकार की नीतियों, निर्णय या नियमों द्वारा निर्धारित होता है।
- व्यावसायिक वातावरण पर आधारभूत सुविधाओं (बिजली, पानी, परिवहन, संचार आदि) का प्रभाव पड़ता है।
- जनता या उपभोक्ता का दृष्टिकोण भी व्यावसायिक वातावरण के निर्धारक तत्वों में शामिल होता है।
- समाज में धन या आय के वितरण का स्वरूप भी व्यावसायिक वातावरण पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डालता है।
- व्यावसायिक वातावरण आर्थिक विचारधारा जैसे– पूँजीवादी (Capitalistic), समाजवादी (Socialistic), साम्यवाद (Communistic) तथा मिश्रित (Mixed) अर्थव्यवस्थाओं से भी प्रभावित होता है।
- नियोजित अर्थव्यवस्था (Planned Economy) भी व्यावसायिक वातावरण की दशा एवं दिशा तय करने में सहायक होता है।
- पूँजी उपलब्धता की सीमा भी व्यावसायिक वातावरण को तय करती है।
- किसी भी समाज में जनता का नैतिक मूल्य भी व्यवसाय के वातावरण की दिशा को तय करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यावसायिक वातावरण समाज में घटने वाली समस्त बड़ी घटनाओं से प्रभावित हो सकता है, जिसका प्रभाव किसी व्यवसाय पर सकारात्मक या नकारात्मक पड़ सकता है, जो व्यवसाय के आकार, प्रकार एवं सीमा पर निर्भर होता है।

1.6 व्यावसायिक पर्यावरण की प्रकृति एवं घटक (Nature and Components of Business Environment)

व्यावसायिक पर्यावरण अत्यन्त विशाल एवं जटिल है। यह विभिन्न घटकों का जालसूत्र होने के साथ–साथ प्रतिपल परिवर्तित होने की क्षमता भी रखता

है। किसी भी व्यवसाय की प्रगति एवं विकास दो तत्वों पर निर्भर करता है– पहला व्यवसाय की अपनी किस्म (The quality of the business itself) तथा दूसरा बाह्य परिवेश, जिसमें यह पोषित एवं विकसित होता है। व्यावसायिक वातावरण की व्यापकता को दृष्टिगत रखते हुए इसे आर्थिक, भौगोलिक, राजनैतिक, शासकीय, सामाजिक–सांस्कृतिक, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय, वैधानिक एवं न्यायिक आदि घटकों में मुख्यतया विभाजित किया जा सकता है। इन प्रमुख घटकों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

1.6.1 आर्थिक घटक (Economic Components)

ये घटक देश की आर्थिक घटनाओं से सम्बन्धित होते हैं। इनमें मुख्यतया निम्नलिखित आर्थिक घटक शामिल होते हैं–

(i) आर्थिक नीतियाँ (Economic policies)– किसी भी देश के संतुलित आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार सुदृढ़ आर्थिक नीति बनाती है। ये आर्थिक नीतियाँ देश की आय में असमानता को कम करने, बेराजगारी दूर करने, संतुलित क्षेत्रीय विकास को प्राप्त करने, प्राकृतिक संसाधनों का उचित एवं अधिकतम विदोहन करने, गरीबी दूर करने, अधिकतम कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने, आत्मनिर्भरता आदि प्राप्त करने के उद्देश्य से बनायी जाती है। साथ ही साथ देश में पूँजी निर्माण, विदेशी मुद्रा भण्डार में वृद्धि, विदेशी व्यापार में वृद्धि आदि को भी ध्यान में रखकर आर्थिक नीतियाँ तैयार की जाती है।

(ii) माँग एवं पूर्ति (Demand and supply) – किसी व्यवसाय का वातावरण उसकी बाजार में स्थिति से स्पष्ट होता है। इसमें व्यवसाय के उत्पाद या सेवा की समाज में कितनी माँग (demand) है? कब–कब माँग है? कितने मूल्य पर उचित माँग है? आदि महत्वपूर्ण है। यदि व्यवसाय की वस्तु या सेवा की माँग बाजार में प्रभावशाली है तो व्यवसाय की स्थिति संतोषजनक होगी। इसी प्रकार माँग के अनुरूप पूर्ति (supply) का भी होना आवश्यक होता है। यदि व्यवसाय अपने उत्पाद या सेवा की अच्छी माँग होने के बावजूद पर्याप्त एवं उचित पूर्ति करने में सक्षम नहीं है तो, इस व्यवसाय का आन्तरिक वातावरण संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है।

(iii) पूँजी एवं विनियोग (Capital and investment)– किसी व्यवसाय में पूँजी एवं विनियोग की स्थिति (situation) एवं उपलबधता (vailability) उसके वातावरण का एक महत्वपूर्ण घटक होता है। यदि किसी व्यवसाय में पूँजी एवं विनियोग की स्थिति व्यवसाय की आवश्यकता के अनुरूप है, तो वहाँ व्यावसायिक वातावरण स्वस्थ एवं सकारात्मक होगा, विकास के अवसर उत्पन्न होंगे। इसके

विपरीत स्थिति में अनेक व्यावसायिक जटिलताएँ विद्यमान हो सकती हैं।

(iv) औद्योगिक प्रवृत्तियाँ (Industrial trends)– यदि किसी देश की औद्योगिक प्रवृत्ति में महत्वपूर्ण सकारात्मक परिवर्तन जैसे– आधारित संरचना का निर्माण, उद्योगों का सकल घरेलू उत्पाद में बढ़ता योगदान, भारी तथा पूँजीगत वस्तु के उद्योगों का विकास, टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं का तीव्र विकास, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का विकास, आयात प्रतिस्थापन, उद्योगों का विकास आदि संतोषजनक रूप से हुए हैं, तो ऐसे देश में प्रायः व्यावसायिक वातावरण अच्छा होगा। इसी प्रकार किसी एक उद्योग की प्रवृत्ति भी व्यावसायिक वातावरण का महत्वपूर्ण घटक होती है।

(v) वित्तीय एवं आर्थिक दबाव (Financial and economic pressure)– यदि किसी देश में या किसी व्यवसाय में वित्तीय एवं आर्थिक दबाव की मात्रा अधिक है, तो वहाँ के उद्योगों पर भी दबाव पड़ता है, वह आर्थिक एवं वित्तीय दबाव ऋण पर ब्याज, अधिक लाभ एवं लाभांश, पूँजी वापसी, कर का भुगतान आदि के रूप में पड़ सकता है। इन दबावों के बीच व्यवसाय को अपना कार्य संचालित करना पड़ता है। अतः ये वित्तीय एवं आर्थिक दबाव व्यावसायिक वातावरण के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(vi) विनियोग एवं प्रवाह स्तर (Level and flow of Investment) – किसी देश में या किसी व्यवसाय के अन्दर स्वामी पूँजी (owner's capitals), ऋण–पूँजी (borrowed capital), स्वामी पूँजी एवं ऋण पूँजी अनुपात, प्राप्त पूँजी, विनियोग या ऋण पूँजी की अवधि, पूँजी की लागत (cost of capital) आदि प्रमुख घटक होते हैं।

(vii) आयात एवं निर्यात (Import and export) – ऐसा व्यवसाय जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का है या जिसके लिए कहीं न कहीं से निर्यात एवं आयात की आवश्यकता पड़ती है, उसमें आयात एवं निर्यात के अन्तर्गत आयात एवं निर्यात की मात्रा, समय, कीमत, उपलब्धता आदि महत्वपूर्ण घटक होते हैं।

(viii) राजकोषीय एवं कराधान नीतियाँ (Flscal and taxation policy) – सरकार राजकोषीय एवं कराधान नीति के माध्यम से एक ओर व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था, व्यय एवं बचत क्रियाओं को नियन्त्रित करके आवश्यक कोष (धनराशि) सरकारी खजाने (कोष) में जमा करती है वहीं दूसरी ओर अपनी व्यय नीति के द्वारा राष्ट्रीय कल्याण में वृद्धि के लिए प्राप्त धनराशि का वितरण करती है। राजकोषीय नीति का सम्बन्ध कर नीति, व्यय नीति, ऋणनीति, बजट निर्माण आदि से होता है। सरकार द्वारा इन क्रियाओं का उद्देश्यपूर्ण उपयोग आर्थिक स्थायित्व

(economic stability), द्रुतगामी एवं पूर्ण रोजगार आदि प्राप्ति के लिए किया जाता है। यह राजकोषीय एवं कराधान नीतियाँ व्यावसायिक वातावरण के महत्वपूर्ण निध ारिक घटक होते हैं।

(ix) मौद्रिक नीति (Monetary policy) – किसी भी देश की मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विकास, अधिक रोजगार, मूल्यों में स्थिरता, अनुकूल भुगतान संतुलन, आय का समान वितरण आदि होता है। इन उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए मुद्रा पर नियन्त्रण अति आवश्यक होता है। अतः मुद्रा से सम्बन्धित सभी प्रकार की अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन नीतियाँ मौद्रिक नीति के अन्तर्गत आती है जिसमें मूल्य नियन्त्रण, ब्याज दर में परिवर्तन, सरकारी बजट, विनिमय दर, सार्वजनिक व्यय, वेतन वृद्धि, साख का नियमन, आयात–निर्यात नियन्त्रण आदि सभी आर्थिक कार्य इसकी नीति के अन्तर्गत शामिल होते हैं। मौद्रिक नीति द्वारा किसी भी देश का व्यावसायिक वातावरण काफी हद तक प्रभावित होता है, इसलिए यह व्यावसायिक वातावरण का प्रमुख आर्थिक घटक माना जाता है।

1.6.2 भौगोलिक एवं पारिस्थितिक घटक (Geographical and situational component)

भौगोलिक एवं पारिस्थितिक घटक के अन्तर्गत देश में विद्यमान प्राकृतिक संसाधन, पर्यावरण, जलवायु, स्थानाकृति, समुद्री एवं आकाशीय संरचना, भूगर्भीय संसाधन, चुम्बकीय एवं सौर ऊर्जा आदि सम्मिलित होते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नमलिखित है–

(i) प्राकृतिक संसाधन (Natural resources) – देश के प्राकृतिक संसाधन व्यावसायिक वातावरण के महत्वपूर्ण एवं निर्धारक घटक होते हैं। इन घटकों में भूमि, हवा, जल आदि आते हैं।

(ii) पर्यावरण (Environment)– पर्यावरण जिसमें जल, वायु तथा ध्वनि आदि आते हैं, ये घटक भी व्यावसायिक वातावरण के लिए महत्वपूर्ण है। यदि किसी क्षेत्र में इस प्रकार के पर्यावरण प्रदूषण की मात्रा अधिक है, तो ऐसे उद्योग समाज पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। अतः पर्यावरण को दृष्टिगत रखते हुए व्यवसाय का अनुज्ञापन (license), स्थापना एवं विकास आदि का निर्धारण होता है।

(iii) जलवायु (Climate) – किसी भी देश की जलवायु व्यावसायिक वातावरण का प्रमुख निर्धारक घटक है। जलवायु के आधार पर भी अनेक व्यवसाय स्थापित एवं संचालित होते हैं। देश में जहाँ पर एक जैसी जलवायु रहती है, वहाँ अलग–अलग प्रकार के व्यवसाय सफल रहते हैं परन्तु वर्ष में विभिन्न जलवायु

वाले क्षेत्रों में किसी एक ही प्रकार व प्रकृति के व्यवसाय सफल होते हैं। इस प्रकार यदि व्यवसाय जलवायु पर निर्भर करता है, तो ऐसी स्थिति में व्यवसाय की सफलता काफी सीमा तक जलवायु पर निर्भर होगी।

(iv) समुद्री एवं आकाशीय संरचना (Structure of ocean and beacon) – किसी देश के व्यवसाय की उन्नति या विकास देश के समुद्री एवं आकाशीय संरचना पर निर्भर करता है। भारत जैसे देश जहाँ पर समुद्रीय तट या सीमा है, वहाँ पर देश के अनेक उद्योग विकसित हुए हैं तथा वह क्षेत्र भी आर्थिक रूप से संपन्न हुआ है। आकाशीय संरचना से तात्पर्य देश की भौगोलिक स्थिति से है। यदि किसी देश की आकाशीय संरचना देश के उद्योग एवं व्यापार के अनुकूल है, तो वह देश औद्योगिक रूप से विकसित होगा।

(v) भूगर्भीय संसाधन (Geological resources)– भूगर्भीय संसाधन का आशय जमीन के अन्दर या जमीन में पड़ी प्राकृतिक वस्तुओं से है, इसमें कोयला, अभ्रक, लोहा, हीरा, पेट्रोलियम, मैंगनीज, पत्थर, सोना, ताँबा, बाक्साइट, लिग्नाइट आदि खनिज प्रमुख है। देश में भूगर्भीय संसाधन सभी स्थानों पर समान रूप से नहीं पाये जाते हैं। इन संसाधनों के मामले में बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, मध्य प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल धनी प्रदेश है। अतः देश के जिन स्थानों पर जिन भूगर्भीय संसाधनों की प्रचुरता है, वहाँ उस संसाधन से सम्बन्धित व्यवसाय के विकास की सम्भावना अधिकाधिक रहती है। यही कारण है कि बिहार एवं झारखण्ड में कोयला उद्योग, मध्य प्रदेश में हीरा एवं पन्ना उद्योग विकसित हुए हैं। अतः भूगर्भीय संसाधन व्यावसायिक वातावरण का प्रमुख घटक है।

(vi) चुम्बकीय एवं सौर ऊर्जा (Magnetic and solar energy) – किसी देश में चुम्बकीय एवं सौर ऊर्जा वहाँ के व्यवसाय की दशा एवं दिशा का निर्धारक घटक हो सकता है क्योंकि कुछ ऐसे व्यवसाय होते हैं, जो चुम्बकीय एवं सौर ऊर्जा पर ही आधारित होते हैं।

1.6.3 राजनैतिक व शासकीय घटक (Political and Administrative Components)

किसी भी देश के व्यावसायिक वातावरण के निर्धारण में राजैनतिक व शासकीय घटक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन घटकों में मुख्यतया राजनैतिक व शासकीय व्यवस्था, आर्थिक व शासन प्रणाली, राजनैतिक दृष्टिकोण, प्रशासनिक संस्थाएँ, संवैधानिक व्यवस्था, देश की सुरक्षा आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं। इन घटकों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

(i) **राजनैतिक व शासकीय व्यवस्था (Political and administrative

arrangement) –** इसके अन्तर्गत किसी देश की समस्त राजनैतिक व शासकीय व्यवस्था को शामिल किया जाता है। व्यावसायिक वातावरण देश की राजनैतिक स्थिरता, व शासकीय इच्छा शक्ति पर निर्भर करता है।

(ii) आर्थिक व शासन प्रणाली (Economic and administrative system) – किसी भी देश की आर्थिक एवं शासन प्रणाली यदि देश में अधिकाधिक औद्योगिक विकास चाहती है, तो आर्थिक एवं शासन नीति व्यवसाय के अनुकूल बनाती हैं एवं उन्हें आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता एवं सुविधाएँ उपलबध कराती है। अतः किसी देश की आर्थिक एवं शासन प्रणाली उस देश के व्यावसायिक वातावरण के निर्धारक मुख्य घटक होते हैं।

(iii) राजनैतिक दृष्टिकोण (Political approach) – वर्तमान वैश्वीकरण एवं भूमण्डलीकरण के दौर में व्यवसाय के विकास एवं विस्तार में देश का राजनैतिक दृष्टिकोण व्यावसायिक वातावरण का महत्वपूर्ण घटक साबित हुआ है। इस दृष्टिकोण में घरेलू उद्योगों के संरक्षण की सीमा, विदेशी या बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर छूट की सीमा, पड़ोसी या अन्य देशों से राजनैतिक सम्बन्ध आदि महत्वपूर्ण होते हैं, जो व्यावसायिक वातावरण के निर्धारण में महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं।

(iv) प्रशासनिक संस्थाएँ (Administrative Institutions) – देश की विभिन्न प्रशासनिक संस्थाओं की कार्य प्रणाली, अधिकार, कार्यक्षेत्र एवं उत्तरदायित्व आदि व्यावसायिक वातावरण के निर्धारक घटक होते हैं, जो व्यवसाय को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

(v) संवैधानिक व्यवस्था (Constitional arrangement) – देश की संवैधानिक व्यवस्था उस समाज के व्यवसाय के वातावरण का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत जैसे देश जहा की संवैधानिक व्यवस्था प्रजातान्त्रिक (Democratic) है, यहाँ व्यापार एवं व्यवसाय करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। ऐसी परिस्थिति व्यावसाय को अनुकूल एवं स्वस्थ वातावरण उपलब्ध कराती है। यदि किसी देश मे संवैधानिक व्यवस्था कुछ लोगों के व्यवसाय के सन्दर्भ में होती है, तो यह निश्चित रूप से व्यवसाय की दशा एवं दिशा के निर्धारण में महत्वपूर्ण होगी। अतः संवैधानिक व्यवस्था भी व्यावसायिक वातावरण का एक अभिन्न घटक माना जाता है।

(iv) सुरक्षा व्यवस्था (Security arrangement) - देश की आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था को ध्यान में रखकर देश के नीति नियम ऐसे हो सकते हैं, जो कुछ व्यवसायों पर प्रतिबन्ध लगा सकते हैं तथा सुरक्षा के विस्तार हेतु कुछ उद्योगों को संरक्षण दिया जा सकता है। इस प्रकार किसी देश की सुरक्षा व्यवस्था उस

देश के व्यावसायिक वातावरण के निर्धारक तत्व हो सकते है।

1.6.4 वैधानिक एवं न्यायिक घटक (Legal and judicial components)

वैधानिक घटक के अन्तर्गत देश में व्यवसाय एवं समाज के हित में चलाये जा रहे विभिन्न नियम अधिनियम, सरकारी गजट, आदि आते हैं, जबकि न्यायिक घटक के अन्तर्गत व्यवसाय एवं समाज के हितों की रक्षा के लिए विवादों का समाधान करने के उपरान्त विभिन्न न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णय शामिल होते हैं। वैधानिक एवं न्यायिक घटक के अन्तर्गत मुख्यतः व्यावसायिक, औद्योगिक व श्रम सन्नियम शामिल होते हैं व प्रशासन व्यवस्था, व्यावसायिक, औद्योगिक व श्रम अधिनियम या सन्नियम के अन्तर्गत सरकार द्वारा समय–समय पर पारित अधिनियम जैसे – भारतीय संविदा अधिनियम (Indian Contract Act), 1872, भारतीय कम्पनी अधिनियम (Indian Companies Act), 1956; वस्तु विक्रय अधिनियम (Sales of Goods Act), 1930, भारतीय साझेदारी अधिनियम (Indian Partnership Act),1932, उद्योग विकास एवं नियमन अधिनियम (Industry Development and Regulation Act), 1951, एकाधिकार एवं प्रतिबंधित व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP Act 1969), प्रतिभूति प्रसंविदा नियमन अधिनियम (Securities Contract Regulation Act), 1956; भारतीय कारखाना अधिनियम (Indian Factories Act), 1948; औद्योगिक विवाद अधिनियम (Industrial Dispute Act), 1947; कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, (Workmans Compensation Act), 1923; मजदूरी भुगतान अधिनियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम, व्यापार एवं वस्तु चिन्ह अधिनियम आदि प्रमुख हैं जो देश की व्यावसायिक गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाने में सहायता करते हैं।

न्यायिक घटक के अन्तर्गत देश या समाज की ऐसी व्यावसायिक गति–विधियाँ जो समाज के हित में न्यायालय के हस्तक्षेप द्वारा समय–समय पर निर्णीत की गयी हों, शामिल किये जाते हैं। ये न्यायिक घटक तभी लागू होते हैं, जब वैधानिक घटक किसी व्यावसायिक समस्या को हल करने में सक्षम होता है। न्यायिक घटक भविष्यलक्षी प्रकृति के होते हैं अर्थात् एक बार निर्णय हो जाने पर समान वाद (sue) समस्या पर भविष्य में वही निर्णय लागू होते हैं।

व्यावसायिक वातावरण वैधानिक एवं न्यायिक घटक के अधीन एवं नियन्त्रण में संचालित होता हैं। कोई भी व्यवसाय इसका उल्लंघन नही कर सकता है। इस प्रकार वैधानिक एवं न्यायिक घटक किसी समाज के व्यवसाय का अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं निर्धारक घटक होता है।

1.6.5 विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय घटक (Scientific & technological components)

बदलते व्यापारिक परिवेश में गलाकाट प्रतियोगिता के अन्तर्गत कोई देश, एक व्यवसायी या व्यवसाय दूसरे से आगे निकलने के लिए सदैव तत्पर रहता है जिसमें ये घटक व्यवसाय को नयी–नयी ऊँचाइयों पर पहुँचने में सक्षम होते हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय घटक के अन्तर्गत वैज्ञानिक शोध (Sciencific research), प्रौद्योगिकीय विकास, यान्त्रिकी, आणविक शक्ति (Atomic energy), सैटेलाइट सम्प्रेषण (Satellite communication), नाभिकीय शोध, आकाशीय शोध प्रयोगशालाएँ आदि प्रमुख हैं। इन घटकों के माध्यम से व्यावसायिक कार्यक्षमता एवं उत्पादन में वृद्धि के लिए व्यावसायिक गतिविधियों का बेहतर संचालन तथा नियन्त्रण सम्भव हो पा रहा है। इस प्रकार विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीय घटक, व्यावसायिक वातावरण की दशा एवं दिशा तय करने के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक हैं।

1.6.6 सामाजिक – सांस्कृतिक घटक (Socio-cultural components)

व्यवसाय किसी भी देश के समाज या लोगों के बीच अपनी समस्त गतिविधियों को संचालित करता है। अतः व्यवसाय को उस समाज के विभिन्न सामाजिक–सांस्कृतिक घटकों जैसे–सामाजिक मूल्य, प्रथाएँ (customs), आस्थाएँ, धारणाएँ, सामाजिक व्यवस्था, भौतिकवाद, धर्म, संस्कार आदि प्रमुख रूप से प्रभावित करते हैं। भारत जैसे देश जहाँ सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों को सर्वोपरि रखा गया है, यहाँ पर कोई भी व्यवसाय इन मूलयों की अनदेखी करके दीर्घकाल तक सफल नहीं हो सकता हैं। इस प्रकार किसी भी व्यवसाय इन मूल्यों की अनदेखी करके दीर्घकाल तक सफल नहीं हो सकता है। इन प्रकार किसी भी व्यवसाय के लिए यह आवश्यक है कि वह देश के सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों को बनाये रखते हुए स्थापित, संचालित एवं नियन्त्रित हो, ताकि उसको इन घटकों के विरोध का सामना न करना पड़े। अतः व्यावसायिक वातावरण को किसी समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक घटक प्रभावित एवं निर्धारित करते हैं।

1.6.7 अन्य घटक (Other components)

किसी भी देश या समाज के व्यावसायिक वातावरण के निम्न घटक भी महत्वपूर्ण होते हैं –

- **जनसंख्या (Population)-** इसके अन्तर्गत कुल जनसंख्या वृद्धि दर, लिंग अनुपात, बच्चों, वयस्कों, व वृद्धों का अनुपात आदि महत्वपूर्ण कारक या घटक हैं।

- **शैक्षिक स्तर (Education level)-** किसी समाज के शैक्षिक स्तर के अन्तर्गत शिक्षित लोगों की संख्या व प्रतिशत, तकनीकी शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, प्रशिक्षण का स्तर आदि घटक व्यावसायिक वातावरण के घटकों में शामिल है।
- **उपभोक्ता व्यवहार (Customer's relations)-** उपभोक्ता व्यवहार के अन्तर्गत उपभोक्ताओं की आदत, क्रय शक्ति, पसन्द आदि प्रमुख कारक आते हैं, जो किसी उत्पाद या सेवा के उपयोग के प्रति व्यवसाय को उत्साहित करने में सक्षम होते हैं।
- **अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियाँ (International powers)-** इन शक्तियों के अन्तर्गत देश के बाहर शेष–विश्व की समस्त क्रियाएँ शामिल होती हैं, जो किसी देश के व्यवसाय के वातावरण के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जैसे–युद्ध, मन्दी, तेजी, प्राकृतिक आपदाएँ आदि।
- **औद्योगिक शान्ति एवं संघर्ष (Industrial peace and dispute)-** किसी देश या समाज के अन्दर औद्योगिक शान्ति एवं संघर्ष की स्थिति व्यावसायिक वातावरण के निर्धारण का महत्वपूर्ण घटक होती है। इन घटकों में मुख्यतया औद्योगिक सम्बन्धें में मधुरता, सहयोग, अपनत्व की भावना, हड़ताल (strike), तालाबन्दी (lock-out), विवाद आदि आते हैं।

अतः स्पष्ट है कि व्यवसाय को सरलतापूर्वक एवं सफलापूर्वक संचालित करके कोई भी देश या समाज अपना व्यावसायिक विस्तार एवं विकास तभी कर सकता है, जब वह व्यावसायिक वातावरण के प्रमुख घटकों का अध्ययन करके उसके अनुरूप अपने व्यवसाय को संचालित करता है। ये उपरोक्त घटक या तत्व देश के समस्त व्यवसायों से या किसी एक व्यवसाय से सम्बन्धित हो सकते हैं। साथ ही साथ यह आवश्यक नहीं है कि सम्पूर्ण घटक समस्त व्यवसायों या किसी व्यवसाय पर एक साथ लागू हों अर्थात किसी व्यवसाय के लिए कुछ ही घटक महत्वपूर्ण हो सकते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जो भी घटक व्यवसाय से सम्बन्धित होते हैं, उनके द्वारा व्यवसाय प्रभावित होता है।

1.7 व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करने वाले तत्व (Elements affecting Business Environment)

किसी भी व्यवसाय के सफलतापूर्वक संचालन के लिए उपयुक्त नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण एवं नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। साथ ही साथ बाह्य वातावरण की उपयुक्तता भी अपरिहार्य होती है, परन्तु व्यवसाय की स्थापना से

लेकर उसके उद्देश्य को पूरा करने तक कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो व्यवसाय को सकरात्मक (Positive) एवं नाकारात्मक (negative) दोनों या केवल एक प्रकार नकारात्मक या सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। इसी सन्दर्भ में सम्पूर्ण व्यावसायिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले तत्वों को दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है– प्रथम आन्तरिक तत्व (Internal elements), द्वितीय वाह्य तत्व (external elements)।

1.7.1 (अ) आन्तरिक तत्व (Internal elements)

आन्तरिक तत्व वे होते हैं, जो किसी संगठन के अन्तर्गत होते हैं, इन आन्तरिक तत्वों को व्यवसाय अपने पक्ष में कर सकता हैं, क्योंकि ये तत्व फर्म के नियन्त्रण में होते हैं। इन तत्वों का शीर्षकवार विश्लेषण निम्नलिखित है–

- **व्यापारिक आचार संहिता (Business code of conduct)-** विभिन्न व्यवसायों में व्यापारिक आचार संहिता विद्यमान रहती है। यह आचार संहिता समाज के हित को ध्यान में रखकर सरकार द्वारा निर्मित एवं विनियमित की जाती हैं। इसके अन्तर्गत व्यवसाय को सुचारू रूप से चलाने के लिए कानून, नियम व दिशा–निर्देश रहते हैं। यह आचार संहिता विभिन्न प्रकार की प्रकृति के व्यवसायों के लिए भिन्न–भिन्न होती है। व्यवसाय को इन्हीं आचार संहिताओं की परिधि ा में रहकर संचालित होना पड़ता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ये आचार संहितायें व्यवसाय के आन्तरिक तत्व को प्रभावित करती है।
- **संस्था या व्यवसाय का वातावरण (Environment of institute or business)-** किसी व्यवससाय के आन्तरिक वातावरण के अन्तर्गत उसके कारखाने का वातावरण बहुत महत्वपूर्ण होता है, जो व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करने में सक्षम होता है। यदि कारखाने में पर्याप्त कच्चे माल की उपलब्धता, मशीनों का समुचित सदुपयोग, कम से कम क्षय व अपव्यय, श्रमिकों में आपसी भाईचारा, पर्याप्त मजदूरी व बोनस, पर्याप्त कल्याण सम्बन्धी सुविधाएं, प्रबन्धन से अच्छे सम्बन्ध ा आदि की स्थिति विद्यमान है, तो ऐसा वातावरण व्ययवसाय व कर्मचारियों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है, इसके विपरीत स्थिति होने पर संस्था के अन्दर तनाव, भय, अशान्ति, क्षमता का निम्न उपयोग आदि की स्थिति विद्यमान रहती है, जो नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। अतः व्यवसाय का वातावरण सम्बन्धी तत्व व्यवसाय की दशा एवं दिशा दोनो तय करता है।
- **व्यवसाय का उद्देश्य (Object of business) –** विभिन्न व्यवसायों के उद्देश्य भिन्न–भिन्न होते हैं। कुछ व्यवसाय सफल होने के लिए छोटे–छोटे उद्देश्यों को निर्धारित करते हैं, जबकि कुछ बड़े उद्देश्य निर्धारित करते हैं। कुछ प्रबन्धक समयावधि के हिसाब से अल्पकालीन उद्देश्य निर्धारित करते हैं, जबकि

कुछ दीर्घकालीन। कुछ व्यवसाय में एक निश्चित समय में विकास के कुछ लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं जबकि अन्य में कुछ, और इस प्रकार समग्र रूप से कहा जा सकता है कि व्यवसाय के उद्देश्य व्यवसायिक वातावरण को प्रभावित करने वाले आन्तरिक तत्व होते हैं।

- **व्यवसायिक एवं प्रबन्धकीय नीतियाँ (Business and managerial policies)** व्यावसायिक एवं प्रबन्धकीय नीतियों का ढाँचा व प्रारूप व्यावसायिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले तत्वों में से एक है। यदि व्यावसायिक एवं प्रबन्धकीय नीतियाँ केवल व्यावसायिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए बनाई गयी हैं, जिसमें संगठन में हित रखने वाले अन्य पक्षकारों को महत्व नहीं दिया गया है, तो ऐसी नीतियाँ दीर्घकाल तक सफल नहीं हो पाती हैं। इसके विपरीत यदि ऐसी नीतियाँ संगठन में हित रखने वाले समस्त पक्षकारों के हितों को ध्यान में रखकर बनायी गयी हैं, तो सम्भव है, वे अल्पकाल में उतनी सफल न हों, परन्तु दीर्घकाल में निश्चित रूप से सफल होंगी।

- **श्रम–प्रबन्ध सम्बन्ध (Relation of labour management)** श्रम तथा प्रबन्ध सम्बन्ध किसी संस्था के पर्यावरण को प्रभावित करने वाले तत्व होते हैं। किसी संगठन में श्रमिक कार्य करने वाला तथा प्रबन्धक कार्य कराने वाला होता है। अतः यदि इनके मध्य तालमेल या अच्छे सम्बन्ध नहीं होंगे तो निश्चित रूप से संगठन को लक्ष्य प्राप्त करना असम्भव हो जाता है। इसके विपरीत यदि इनके मध्य अच्छे सम्बन्ध हैं, तो कठिन से कठिन लक्ष्य आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार श्रम–प्रबन्ध सम्बन्ध किसी संगठन में बहुत महत्वपूर्ण होते हैं।

- **संसाधनों की उपलब्धता (Avialability of resources)** किसी भी संगठन का आन्तरिक तत्व उस संगठन को उपलब्ध मानवीय एवं आर्थिक संसाधनों की मात्रा, दर व प्राप्ति समय द्वारा प्रभावित होता है। यदि किसी संगठन में इन संसाधनों की उपलब्धता आसानी से एवं उचित मात्रा, उचित बाजार दर पर एवं उचित समय पर है, तो संस्था को लक्ष्य प्राप्त करना आसान हो जाता है। इसके विपरीत यदि संस्था में इन संसाधनों का अभाव रहता है, तो संस्थागत लक्ष्य प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है। इस प्रकार संसाधनों की उपलब्धता व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करती है।

- **प्रबन्धकीय सूचना प्रणाली (Management information system)** प्रबन्ध सूचना प्रणाली से तात्पर्य उस संरचना से है, जो प्रबन्धकों को उनकी समस्याओं के अभिज्ञान, विश्लेषण एवं समाधान में सहायता प्रदान करती है। इस

प्रणाली द्वारा सही समय पर, सही व्यक्ति का, सही रूप में, उपयुक्त सूचना प्रदान करके प्रबन्धक द्वारा सम्प्रेषण की समस्या को हल करने का प्रयास किया जाता है। यह सूचना प्रणाली जितनी मजबूत व कारगर होगी संगठन में निर्णयन सम्बन्धी प्रक्रिया उतनी ही सरल एवं आसान होती है। यदि संगठन में प्रबन्ध सूचना प्रणाली (MIS) कमजोर है, तो कोई भी सूचना सही व्यक्ति तक सही समय पर नहीं पहुंच पायेगी जिससे संगठनात्मक लक्ष्य को प्राप्त करना मुश्किल होगा। इस प्रकार 'प्रबन्ध सूचना प्रणाली' व्यवसाय के आन्तरिक वातावरण को प्रभावित करने वाला प्रमुख तत्व या घटक माना जाता है।

- **व्यावसायिक विकास की सम्भावना (Possibility of business growth)** – वर्तमान में चल रहे व्यवसाय के विकास की सम्भावना तथा विकास की अवधि भी व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करने वाली घटक होती है। यदि व्यवसाय पुराना हो गया है तथा उसने विकास के चरम बिन्दु स्पर्श कर लिये हैं, तो व्यवसाय में गतिहीनता की स्थिति विद्यमान होगी और संस्था में उत्साह की कमी दिख सकती है। इसके विपरीत यदि व्यवसाय में विकास की अपार सम्भावनाएं विद्यमान हैं, तो ऐसी स्थिति में नयी ऊर्जा का संचार होता है, तथा संस्था से सम्बन्धित समस्त वर्ग विकास की उच्च रेखा स्पर्श करने के लिए तत्पर रहते हैं, जिससे समग्र सकारात्मक वातावरण विद्यमान रहता है।

(ब) वाह्य तत्व (External elements)

व्यावसायिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले वाह्य तत्व व्यवसाय के नियन्त्रण में नहीं रहते हैं। इन तत्वों के कुप्रभावों से बचने के लिए केवल कुछ ही उपाय किये जा सकते हैं। इन वाह्य तत्वों का विवरण निम्नलिखित है–

व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्वी (Business competitior) व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्वी का सदैव यह प्रयास रहता है कि वह व्यावसायिक दृष्टिकोण से आगे निकल जाय। अतः यदि किसी व्यवसाय में कड़ी प्रतिस्पर्धा (competition) विद्यमान है तथा कई प्रतिद्वन्द्वी हैं, तो ऐसी स्थिति में व्यवसायी को प्रति इकाई कम लाभ से ही सन्तोष करना पड़ता है। इसके विपरीत यदि प्रतिस्पर्धा कम या नहीं है, तो व्यवसाय में प्रति इकाई उत्पादन पर अधिक लाभ कमाने की सम्भावना रहती है। साथ ही साथ व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्वी आर्थिक एवं व्यावसायिक रूप से सुदृढ़ है, तो भी व्यवसाय पर असर पड़ता है। अतः स्पष्ट है कि व्यावसायिक प्रतिद्वन्दिता की सीमा, दृढ़ता आर्थिक स्थिति आदि तत्व व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करने में सक्षम होते हैं।

ग्राहक (Customers) किसी भी व्यवसाय के लिए ग्राहक रीढ़ की हड्डी

के समान होते हैं, बिना ग्राहक के व्यवसाय की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। ये ग्राहक व्यवसाय से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े होते हैं। ऐसे तत्व जो व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करते हैं, उनमें ग्राहकों की संख्या, क्रय शक्ति, क्रय की मात्रा, उधार या नकद लेने की प्रवृत्ति, उनका संस्था के प्रति विश्वास व व्यवहार आदि प्रमुख है।

जनसंख्या (Population) कोई भी व्यवसाय प्रायः तभी उन्नति या विकास करता है, जब उसके ग्राहकों की संख्या अधिक हो, अतः ग्राहकों की अधिक संख्या के लिए पर्याप्त जनसंख्या का होना आवश्यक है। व्यावसायिक दृष्टिकोण से अधिक जनसंख्या व्यवसाय के लिए लाभप्रद होती है। इसके विपरीत यदि किसी क्षेत्र में जैसे–पहाड़, जंगल, नदी, समुद्र, पठार आदि अधिक हैं तथा जनसंख्या नाम मात्र की है, तो वहाँ व्यावसायिक गतिविधियाँ संकुचित एवं कम होंगी। इस प्रकार जनसंख्या सम्बन्धी तत्व व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करते हैं।

विपणन श्रृंखला (Marketing channel) विपणन श्रृंखला से आशय उत्पादक से उपभोक्ता तक वस्तु या सेवा को पहुंचाने वाले मध्यस्थों (middlemen) से है। यदि किसी व्यवसाय में मध्यस्थों की संख्या अधिक है, तो निश्चित रूप से वस्तु या सेवा की कीमत अधिक होगी। इसके विपरीत कम मध्यस्थ की दशा में वितरण लागत कम होती है, जिससे कुल लागत भी कम आती है। अतः यह विपणन या वितरण श्रृंखला व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करने के लिए महत्वपूर्ण तत्व सिद्ध होती है।

तकनीकी स्थिति (Technical Situation) व्यावसायिक वातावरण में तकनीक के प्रयोग की सीमा तथा आवश्यकता भी व्यावसायिक वातावरण के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि देश या समाज तकनीकी रूप से सुदृढ़ है, तो वहां व्यावसायिक वातावरण पिछड़े तकनीकी क्षेत्र से भिन्न होगा तथा व्यवसाय गलाकाट प्रतियोगिता की स्थिति में निपटने में सक्षम होगा, जिससे व्यवसाय के विकास एवं विस्तार के मार्ग प्रशस्त होंगे।

राजनैतिक, शासकीय एवं प्रशासनिक वातावरण (Political, Governmental and Administrative environment) किसी देश की राजनीति, सरकार, प्रशासन तथा व्यवसाय के बीच होने वाली गतिविधियाँ व्यवसाय की कार्य प्रणाली को प्रभावित करती हैं। व्यवसाय की अनेक संरचनाओं का जन्म राजनैतिक निर्णयों के कारण होता है, कई बार ऐसे राजनैतिक निर्णय होते हैं, जो व्यवसाय की समृद्धि में सहायक होते हैं। परन्तु कुछ व्यावसायिक निर्णय ऐसे होते हैं, जो व्यवसाय की पूरी दिशा ही बदल देते हैं। ये राजनैतिक निर्णय अनेक कारणों

से प्रभावित व शासित होते हैं। इनमें विचारधाराएं, चिन्तन, जनकल्याण, जनसेवा, राजनैतिक दबाव, अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव/दबाव, स्वार्थ भावना, समूह विशेष का दबाव राष्ट्रीय सुरक्षा एवं एकता तथा राष्ट्रहित आदि प्रमुख हैं। शासकीय तथा प्रशासनिक वातावरण से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक होता है, क्योंकि यही तत्व व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करते हैं।

आर्थिक वातावरण (Economic environment) किसी देश के आर्थिक वातावरण के अन्तर्गत आने वाले तत्वों व व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करने वाले तत्वों में कृषि नीति, औद्योगिक नीति, व्यापार नीति, मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति, आर्थिक संरचना, बचत एवं विनियोग (निवेश) नीति, सरकार की आर्थिक भूमिका, विदेशी पूंजी आदि प्रमुख हैं।

कानूनी वातावरण (Legal environment) कानूनी वातावरण का निर्माण देश द्वारा समाज के आर्थिक एवं सामाजिक लक्ष्यों, विचारधाराओं तथा मूल्यों के आधार पर निर्धारित होता है। विकासोन्मुखी व कल्याणकारी राज्य में उपभोक्ताओं, निर्धनों, बेरोजगारों, महिलाओं, बूढ़ों तथा अन्य जरूरतमन्द लोगों के हितों की रक्षा के लिए कानूनी प्रावधान किये जाते हैं। इसके लिए सरकार विभिन्न अधिनियमों एवं नियमों के माध्यम से व्यवसाय का संचालन करती है। अतः व्यवसाय भी इन्हीं परिसीमाओं के मध्य संचालित होता है। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री आर्थरलेविस का कहना है कि "सरकार का व्यवहार आर्थिक क्रियाओं के प्रोत्साहन एवं हतोत्साहन द्वारा भी व्यवसाय की दिशा व दशा तय करने में महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करने वाला तत्व है।

अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण (International enviornment) अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण का सम्बन्ध विदेश नीति, विदेशी विनियम नीति, अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियाँ या समझौते, विदेशी आर्थिक मन्दी, संरक्षण नीति आदि से प्रमुख रूप से है। ये तत्व किसी व्यवसाय या देश के व्यावसायिक वातावरण को प्रभावित करने वाले तत्व होते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यावसायिक वातावरण दो प्रमुख तत्वों या घटकों– आन्तरिक एवं वाह्य से मिलकर बना है तथा यही तत्व व्यावसायिक वातावरण को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार से प्रभावित करते हैं।

1.8 व्यावसायिक वातावरण का महत्व (Significance of Business Environment)

व्यावसायिक वातावरण की उपयुक्तता किसी भी देश के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है। व्यावसायिक वातावरण एक ओर जहाँ देश की आर्थिक विकास, समृद्धि

एवं रोजगार का मार्ग प्रशस्त करता है, वहीं दूसरी ओर यदि उपयुक्त व्यावसायिक वातावरण का अभाव है तो गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी एवं अशान्ति की स्थितियाँ सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को झकझोर कर रख देती हैं। तीव्र बदलते आर्थिक, सामाजिक, कानूनी एवं राजनैतिक परिवेश का मूल्यांकन, पूर्वानुमान एवं इसके प्रभावों का निर्धारण करने के पश्चात ही किसी भी व्यवसाय द्वारा सफलतापूर्वक अपनी नीतियों एवं योजनाओं का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार व्यवसाय एवं इसके प्रबन्धकों के साथ–साथ समाज के लिए व्यवसाय या प्रबन्धकों आदि के लिए व्यावसायिक वातावरण की महत्ता को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से भलीभांति समझा जा सकता है–

व्यवसाय के आन्तरिक वातावरण की जानकारी (Understanding Internal environment of business) किसी भी व्यवसाय के उद्‌देश्य की प्राप्ति हेतु आवश्यक होता है कि यह व्यवसाय प्रबन्धकों द्वारा बनायी गयी नीतियों एवं निर्देशों के अनुरूप संचालित हो। अतः व्यवसाय के पूर्वानुमान की नीतियों, लक्ष्यों, साधनों, योजनाओं, व्यूहरचनाओं आदि की जानकारी के साथ–साथ इनमें हो रहे परिवर्तनों की भी जानकारी व्यवसाय (प्रबन्ध तन्त्र या स्वामी) के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है। अतः व्यावसायिक वातावरण में हो रहे नित नये परिवर्तन की जानकारी के लिए संगठनों द्वारा विकसित एवं आधुनिकतम प्रबन्धन सूचना प्रणाली (Management Information System) का सहारा लिया जाता है।

व्यवसाय की समस्याओं एवं चुनौतियों का ज्ञान (Knowledge of problem and challenges of business) व्यवसाय के आन्तरिक वातावरण के माध्यम से व्यवसाय में उत्पन्न समस्याओं एवं नयी–नयी उत्पन्न चुनौतियों आदि के बारे में समय रहते पता चला जाता है। अतः व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन एवं विश्लेषण के पश्चात् व्यवसाय में उत्पन्न इस तरह की आन्तरिक समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करने व समाधान खोजने के लिए प्रबन्धकों को विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है।

आर्थिक प्रणालियों का अध्ययन (Study of economic system) आर्थिक प्रणाली का स्वरूप अर्थव्यवस्था में संलग्न व्यवसाय को प्रभावित करता है। विश्व की अर्थव्यवस्थाएं पूंजीवादी, समाजवादी, साम्यवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में पायी जाती हैं। इन सभी अर्थव्यवस्थाओं की अपनी अलग–अलग विशेषताएं होती हैं, जो विभिन्न व्यवसायों को प्रतिकूल या अनुकूल रूप से प्रभावित करती हैं। तीव्र बदलते आर्थिक परिवेश में जहां समाजवादी तथा साम्यवादी अर्थव्यवस्थाएं, मिश्रित अर्थव्यवस्था की तरफ अग्रसर हो रही हैं वहीं मिश्रित अर्थव्यवस्थाएं, पूंजीवादी

अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो रही हैं। इसलिए इन परिवर्तनों के कारण व्यवसाय पूर्ण रूप से प्रभावित होता है। इसलिए इन परिवर्तनों का अध्ययन करने के लिए व्यवसाय के सम्पूर्ण वातावरण का अध्ययन करना अति आवश्यक हो जाता है। इसलिए व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन के उपरान्त ही व्यवसाय आवश्यक सुधारात्मक कार्यवाही करने में सक्षम होता है।

उत्पन्न होने वाले खतरों के प्रति सतर्कता (Being alert regarding impending trouble) वर्तमान वैश्वीकरण एवं भूमण्डलीकरण परिवेश या वातावरण के कारण वैश्विक अर्थव्यवस्था में खुलापन विद्यमान होने लगा है। इस कारण विभिन्न वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं में जहां विकास की नयी–नयी ऊँचाइयाँ प्राप्त हुई हैं तथा रोजगार एवं अन्य विभिन्न अवसर उत्पन्न हुए हैं, वहीं हर पल नयी–नयी चुनौतियों, खतरों व समस्याओं के उत्पन्न होने की आशंका बनी रहती है। इनमें आर्थिक नीतियों, मांग एवं पूर्ति में कमी या वृद्धि, उपभोग की प्रवृत्ति, क्रय प्राथमिकताएं, प्रतिस्पर्धा आदि में होने वाले परिवर्तन व्यवसाय के लिए अनेकों चुनौतियाँ या प्रश्न खड़ा कर देते हैं। अतः इन परिवर्तनों के कारण किसी व्यवसाय में उत्पन्न होने वाले खतरों की जानकारी व समाधान व्यावसायिक वातावरण का अध्ययन एवं मूल्यांकन करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

सरकार की आर्थिक नीतियाँ (Economic Policies of Government) किसी भी देश की सरकारी नीति वहाँ के व्यावसायिक वातावरण का महत्वपूर्ण अंग होती है। सरकार द्वारा समयानुसार घोषित औद्योगिक नीति, (Industrial Policy), अनुज्ञापन नीति (Licencing policy), आयात–निर्यात नीति (Exim Policy), विदेशी विनिमय नीति (Foreign Exchange policy) मौद्रिक नीति (Monetary policy), राजकोषीय नीति (Fiscal policy) व कराधान नीति (Taxation policy) आदि व्यवसाय पर स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष प्रभाव डालती हैं। अतः व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन एवं मूल्यांकन के द्वारा इन नीतियों का व्यवसाय पर पड़ने वाले प्रभाव को न्यूनतम करके अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन योजनाएं मांगी जा सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की दशा में (Impact of International events) वर्तमान व्यावसायिक क्षेत्र के वैश्विक होने के कारण विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं पर अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं व इसके प्रभाव व्यवसाय पर पड़ने लगते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तनों से कोई भी राष्ट्र व वहां का व्यवसाय प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। साथ ही साथ अर्थव्यवस्थाओं में लिये जाने वाले निर्णय, अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावों व संस्थागत एवं शासकीय दबावों से प्रभावित होते हैं, जिसका प्रभाव व्यवसाय पर पड़ता है। अतः व्यवसाय के स्थायित्व,

अस्तित्व, लाभदेयता एवं प्रभावशाली कार्य प्रणाली के लिए अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं, प्रभावों व दबावों का अध्ययन व विश्लेषण किया जाना अत्यन्त आवश्यक होता है। यह सब कार्य व्यावसायिक वातावरण के माध्यम से सरलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है।

अधिकतम लाभ प्राप्त करने की चाहत (Desire of getting maximum profit) वर्तमान व्यावसायिक परिवेश में व्यवसाय का प्रमुख उद्देश्य अधिकाधिक लाभ कमाना माना जाने लगा है। अतः अधिकतम लाभ प्राप्ति हेतु व्यवसायों के लिए आवश्यक हो जाता है कि वे अपने उत्पाद एवं सेवा की लागत को न्यूनतम करने के साथ–साथ सर्वोत्तम सेवा प्रदान करके अधिकतम लाभ कमायें। अतः इसके लिये व्यवसाय को उत्पादन से लेकर वितरण तक की समस्त पहलुओं या प्रक्रियाओं का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण करके सर्वोत्तम विकल्प एवं अधिकतम कुशलता प्राप्त करनी होगी। यह लक्ष्य व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन एवं मूल्यांकन के पश्चात् ही प्राप्त हो सकता है।

उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम या अनुकूलतम उपयोग (Maximum or optimum utilisation of available resources) किसी भी देश में उपलब्ध साधनों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है– पहला प्राकृतिक संसाधन **(Natural Resources)** तथा दूसरा–मानवीय संसाधन **(Human Resources)** देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन किसी व्यवसाय की प्रकृति, परिमाप एवं प्रगति निर्धारित करते हैं, जबकि मानवीय संसाधन व्यवसाय में अपनाये जाने वाली तकनीक, ज्ञान, उत्पादन, परिमाप, तकनीकें, औद्योगिक सद्भाव, प्रबन्धकीय कुशलता से काफी सीमा तक प्रभावित होती है। अतः व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि किसी देश या व्यवसाय में उपलब्ध संसाधनों का कितना प्रयोग हो रहा है? यदि पूर्ण क्षमता प्रयोग नहीं हो पा रहा है तो भी इसको व्यावसायिक वातावरण के अध्ययन द्वारा परिलक्षित किया जा सकता है।

बाजार की परिस्थितियों का ज्ञान (Knowledge of market situations) किसी भी देश या समाज के व्यवसाय के लिए बाजार की संरचना एवं इसमें होने वाले परिवर्तनों की नवीनतम जानकारी रखना अपरिहार्य हो गया है जिसमें वस्तुओं की मांग का सृजन, एकाधिकारी प्रवृत्तियाँ, व्यापार चक्र **(business cycle),** लाभ प्रवृत्तियों के साथ–साथ सरकार द्वारा संचालित व्यावसायिक गतिविधियों, नियमों आदि की सही व पर्याप्त जानकारी रखना व्यवसाय के लिए अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार यह सब महत्वपूर्ण जानकारी व्यावसायिक वातावरण

के अध्ययन के उपरान्त ही स्पष्ट हो पाती है।

दीर्घकालीन नीति या रणनीति के लिए (For long term policy or strategy) व्यवसाय के दीर्घकालीन लक्ष्य को ध्यान में रखकर व्यवसाय द्वारा दीर्घकालीन नीति या रणनीति का निर्माण किया जाता है। इसके लिए व्यावसायिक वातावरण के समस्त घटकों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना व्यवसाय के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। इसमें भविष्य में माँग की प्रकृति व सीमा, व्यवसाय की उत्पादन क्षमता, उपभोक्ता की बदलती आदत आदि का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। वर्तमान व्यावसायिक वातावरण में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सफलता की दर इसलिए अधिक है, क्योंकि ये कम्पनियाँ उत्पादन एवं वितरण की दीर्घकालीन नीति या रणनीति बनाकर लक्ष्य की ओर अग्रसर होती हैं। अतः इस प्रकार की नीति या रणनीति का सफल निर्माण एवं सुचालन व्यावसायिक वातावरण के उचित अध्ययन एवं मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव होता है।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय विकास की दशा में (Impact of Scientific and technological development) वर्तमान समय में व्यवसाय का सफल संचालन वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रयोग की सीमा पर अधिक निर्भर होने लगा है। व्यवसायों को नये उत्पादों, नये माडल तथा उत्पादन की नवीन तकनीकों को अपनाने के लिए नये नये प्रौद्योगिकीय विकास एवं वैज्ञानिक प्रगति की जानकारी रखना आवश्यक होता है। इस प्रकार के विकास की जानकारी व्यवासायिक वातावरण के अध्ययन एवं विश्लेषण करने के उपरान्त ही पायी जा सकती है।

उपरोक्त बिन्दुओं के अन्तर्गत व्यावसायिक वातावरण के महत्व का अध्ययन करने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि किसी भी व्यवसाय के प्रवर्तन (formation) से लेकर उसके उत्पाद या सेवा के वितरण तक एवं उपभोक्ताओं या समाज की संतुष्टि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि व्यवसाय अधिकतम कुशलता के साथ कार्य करे, जिसके लिए व्यावसायिक वातावरण या माहौल का पूर्ण ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

1.9 सारांश (Summary)

व्यावसायिक पर्यावरण उन सभी परिस्थितियों, घटनाओं एवं कारकों का योग है जो व्यवसाय पर प्रभाव डालते हैं। व्यवसायी को व्यावसायिक पर्यावरण की विशेषताओं, उसके तत्वों तथा व्यावसायिक पर्यावरण को प्रभावित करने वाले घटकों की सम्पूर्ण जानकारी रखनी चाहिए तभी वह अपने व्यवसाय संचालन में सफल हो सकता है। व्यावसायिक पर्यावरण के अर्न्तगत, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक प्रौद्योगिकीय, वैधानिक एवं जनांनकिकीय घटकों का अध्ययन

एवं इसके व्यवसाय पर होने वाले अनुकूल एवं प्रतिकूल प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

व्यवसाय की नीतियां एवं रणनीतियां प्रगतिशील होनी चाहिए। प्रगतिशीलता नये वातावरण को स्वीकार करने से ही प्राप्त हो सकती है। एक व्यवसाय की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि व्यवसाय भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का अनुमान लगा सके और उसी के अनुरूप अपनी व्यावसायिक नीतियों को बदले। व्यावसायिक पर्यावरण का अध्ययन इस सन्दर्भ में बहुत सहायक है।

1.10 शब्दावली (Keywords)

व्यवसाय : व्यवसाय का तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन, वितरण, एवं विनिमय सम्बन्धी क्रियाओं से है जिसके फलस्वरूप व्यवसायी, उपभोक्ता एवं समाज की आवश्यकतायें पूरी होती है।

पर्यावरण : पर्यावरण को हम वातावरण भी कह सकते हैं। वातावरण परिवेश पर निर्भर करता है। परिवेश में सामाजिक, आर्थिक, वैधानिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, भौगोलिक घटक या तत्व आते हैं।

व्यावसायिक पर्यावरण के प्रकार : व्यवसाय का आन्तरिक एवं व्यवसाय का बाह्य पर्यावरण दो प्रमुख प्रकार बताये जाते हैं। आन्तरिक पर्यावरण पर व्यवसाय का काफी सीमा तक नियंत्रण होता है लेकिन बाह्य वातावरण पर व्यवसाय का कोई नियंत्रण नहीं होता।

वैधानिक वातावरण : सरकार द्वारा बनाये गये कानूनी प्रावधान वैधानिक वातावरण तैयार करते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण : विदेश नीति, विदेशी विनियम नीति, अन्तर्राष्ट्रीय समझौते, संरक्षण नीति आदि अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण बनाती है।

राजनैतिक वातावरण : राजनैतिक एवं शासकीय व्यवस्था, शासन प्रणाली, राजनैतिक दृष्टिकोण, देश की सुरक्षा, राजनैतिक स्थिरता आदि राजनैतिक वातावरण तैयार करती है।

1.11 बोध प्रश्न

(I) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. व्यावसायिक पर्यावरण से क्या तात्पर्य है? इसके विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिए।

What is meant by 'Business Environment'? Describe its various components.

2. **व्यावसायिक पर्यावरण के अध्ययन की महत्ता या आवश्यकता को** विस्तार से समझाइये।

Explain in detail the significance or need of study of the Business Environment.

3. व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण के घटकों का संक्षेप में वर्णन कीजिए

   Discuss in brief the componets of Economic Environment of Business.

4. व्यवसायिक पर्यावरण के मुख्य अनार्थिक संघटकों की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

   Explain in brief the main non-economic components of Business Environment.

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. 'व्यवसायिक पर्यावरण' को परिभाषित कीजिए।

   Define 'Business Environment'.

2. व्यवसाय के विशिष्ट पर्यावरण से आप क्या समझते हैं?

   What do you understand by micro environment of business?

3. विशिष्ट पर्यावरण के प्रमुख संघटकों को बताइये।

   Describe the main components of micro environment.

4. आर्थिक प्रणालियों से आप क्या समझते हैं।

   what do you understand by economic systems?

5. आर्थिक नीतियों की विषय–वस्तु क्या है?

   What is the subject-matter of economic policies?

6. व्यवसाय के सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण की व्याख्या कीजिए।

   Explain the socio-cultural environment of business.

7. जनसांख्यिक पर्यावरण का विवेचन कीजिए।

   Describe the demographic environment.

इकाई–2 सूक्ष्म एवं व्यापक पर्यावरण विश्लेषण (Micro and Macro Environment)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 व्यावसायिक पर्यावरण के प्रकार

2.4 व्यवसाय का सूक्ष्म पर्यावरण

2.5 व्यवसाय के सूक्ष्म पर्यावरण के घटक

2.6 व्यवसाय का व्यापक पर्यावरण

2.7 व्यवसाय के व्यापक पर्यावरण के घटक

2.8 सारांश

2.9 शब्दावली

2.10 अभ्यास के प्रश्न

2.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि:–

- व्यावसायिक पर्यावरण के प्रमुख प्रकारों–सूक्ष्म एवं व्यापक पर्यावरण का विश्लेषण कर सकें।
- व्यवसाय के सूक्ष्म पर्यावरण के प्रमुख घटकों के बारे में जान सके।
- व्यावसाय के बृहद पर्यावरण के प्रमुख घटकों के बारे में जान सके।
- व्यवसाय के सूक्ष्म एवं व्यापक पर्यावरण का व्यवसाय पर प्रभावों का विलेषण कर सकें।

2.2 प्रस्तावना (Introduction)

व्यावसायिक पर्यावरण मुख्य रूप से आन्तरिक एवं बाह्य पर्यावरण के योग से बनता है। आन्तरिक पर्यावरण के घटक है जो एक फर्म के नियंत्रण में होते हैं। इस प्रकार के घटक फर्म के संसाधनों, नीतियों एवं उद्देश्यों से सम्ब–न्धित होते हैं। लेकिन जब हम व्यावसायिक पर्यावरण के उन घटकों की बात करते हैं जो गतिशील एवं स्वतंत्र होते हैं या जो नियंत्रण योग्य नहीं है तो उसे हम बाह्य पर्यावरण कहते हैं। व्यवसाय के बाह्य पर्यावरण को पुनः दो भागों में बांटा गया है। 1. सूक्ष्म (Micro) पर्यावरण 2. बृहद (Macro) पर्यावरण।

व्यवसाय या फर्म के आस–पास दिखने वाले घटकों को हम सूक्ष्म (Macro) पर्यावरण कहते हैं जैसे आपूर्तिकर्ता, ग्राहक, श्रमिक, विपणन मध्यस्थ, प्रतियोगी आदि। व्यवसाय के वृहद (Micro) पर्यावरण में हम उन घटकों का अध्ययन करते हैं जो नियन्त्रण योग्य नहीं है। इन्हें हम 1. आर्थिक पर्यावरण 2. अनार्थिक पर्यावरण के रूप में जानते हैं।

2.2 व्यावसायिक पर्यावरण के प्रकार (Types of Business Environment)

व्यावसायिक पर्यावरण के संघटकों को निम्नांकित चार्ट द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है:

व्यावसायिक पर्यावरण के प्रकार

(Types of Business Environment)

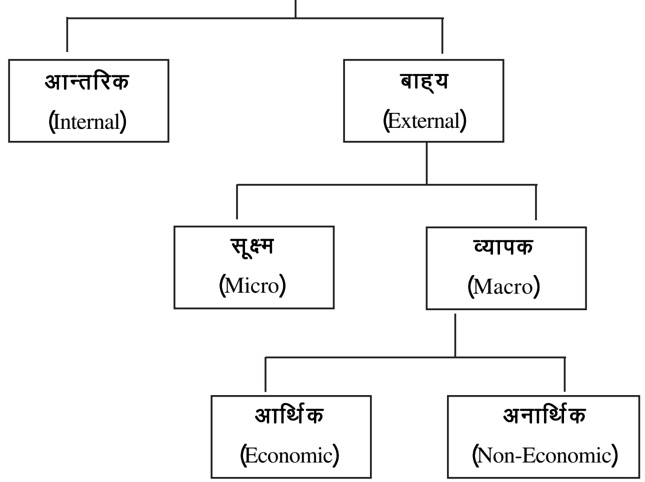

व्यवसाय का आन्तरिक पर्यावरण (Internal Environment of Business)– व्यवसाय के आन्तरिक पर्यावरण में अग्रलिखित घटकों का समावेश किया जाता है: (1) व्यवसाय के उद्देश्य एवं लक्ष्य (2) व्यवसाय से सम्बन्धित विचारधारा एवं दृष्टिकोण, (3) व्यावसायिक एवं प्रबंधकीय नीतियाँ, (4) व्यावसायिक संसाधनों की उपलब्धि तथा उपदेयता, (5) उत्पादन व्यवस्था, मशीन एवं यन्त्र तथा तकनीकें, (6) कार्यस्थल का समग्र पर्यावरण, (7) व्यावसायिक क्षमता एवं वृद्धि की सम्भावनायें, (8) पूँजी का उपयुक्त नियोजन, (9) श्रम एवं प्रबंध की कुशलता, (10) व्यावसायिक संगठन की संरचना, (11) व्यावसायिक योजनाएं एवं व्यूहरचनाएं, (12) केन्द्रीयकरण,

विकेन्द्रीयकरण तथा विभागीकरण, (13) श्रम संघ व समूह तथा दबाव, (14) सामाजिक दायित्वों के प्रति दृष्टिकोण, (15) प्रबन्ध सूचना प्रणाली तथा संदेशवाहक व्यवस्था, (16) व्यावसायिक दृष्टि।

व्यवसाय के आन्तरिक पर्यावरण पर व्यवसायी आसानी से नियंत्रण रख सकता है। लेकिन इसमें निरंतर बाधायें सामने आती रहती हैं। व्यावसायिक पर्यावरण के आन्तरिक पर्यावरण की पहचान करना तथा उसे पूर्णरूप से समझना व्यवसायी का अहम दायित्व हो जाता है। सामान्यतया व्यवसाय का उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। इसके बावजूद विभिन्न उद्योगों के उच्च पदस्थ अधिकारी 'कुछ मूल्यों' (Some Values) को मान्यता देते हैं जिससे उनकी नीतियाँ, व्यवहार तथा सम्पूर्ण आन्तरिक पर्यावरण प्रभावित होता है। इसी के फलस्वरूप व्यवसाय में श्रम कल्याण कार्यों की ओर ध्यान दिया जाता है।

वर्तमान में किसी कम्पनी के प्रबंध की शक्ति मुख्य रूप से कम्पनी के अंशधारियों, संचालक मण्डल के सदस्यों तथा उच्च अधिशासी अधिकारियों के पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर करती है। संचालकों में मतभेद उत्पन्न होने पर कम्पनी में अंशधारियों का विश्वास कम होता है। इससे कम्पनी की आन्तरिक कार्यदशायें कुप्रभावित होती है। इसके विपरीत परिस्थिति में जब आन्तरिक पर्यावरण या कार्यदशाएं उत्तम होती हैं, कम्पनी सफलता की ओर अग्रसर होती है।

व्यवसाय का बाह्य पर्यावरण (External Environment of Business)– कम्पनी के बाहर कार्यरत शक्तियाँ, दशायें एवं संगठन व्यवसाय के बाह्य पर्यावरण में शामिल किये हैं। ये व्यवसाय पर पृथक रूप से तथा सामूहिक रूप से प्रभाव डालते हैं। अतः व्यावसायिक निर्णयकर्ताओं को पर्यावरण के प्रभावों को ध्यान में रखते हुए योजनायें बनानी चाहिए।

व्यवसाय के बाह्य पर्यावरण को दो वर्गों में रखा जा सकता है: (1) व्यवसाय का सूक्ष्म या विशिष्ट पर्यावरण (Micro Environment of Business), तथा (2) व्यवसाय का व्यापक या समष्टि पर्यावरण (Macro Environment of Business)

2.4 व्यवसाय का सूक्ष्म पर्यावरण (Micro Environment of Business)

व्यवसाय के अन्तर्गत अनेक उद्योग और अनेक फर्में कार्य करती हैं। प्रत्येक का अपना व्यावसायिक प्रबन्ध होता है। एक उद्योग में कार्यरत फर्मों में विशिष्ट अथवा सूक्ष्म पर्यावरणीय घटकों का समान प्रभाव नहीं होता है। एक फर्म के पर्यावरणीय घटक दूसरी फर्म पर प्रभाव नहीं डालते हैं, क्योंकि प्रत्येक फर्म की

अपनी–अपनी विशिष्टता होती है। अतः एक फर्म की कुशलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने विशिष्ट पर्यावरण के संघटकों (Components) को किस प्रकार से प्रयोग में लाकर सफलता प्राप्त करती है।

2.5 व्यवसाय के सूक्ष्म पर्यावरण के घटक (Factors of Micro Enivronment)

एक कम्पनी की व्यावसायिक क्रियाओं की दृष्टि से सूक्ष्म पर्यावरण अति महत्वपूर्ण है। फिलिप कोटलर (Philip Kotler) के शब्दों में, ''एक कम्पनी के आस–पास दिखायी पड़ने वाले घटकों को सूक्ष्म पर्यावरण में शामिल किया जाता है।'' (The micro environment consists of the factors in the company's immediate environment) सूक्ष्म पर्यावरण के प्रमुख संघटकों या निर्धारकों में निम्नलिखित को शामिल किया जाता है।

(i) **कच्चेमाल के आपूर्तिकर्ता (Supplier of Raw Materials)** – वस्तुओं की कम उत्पादन लागत पर कम्पनी की सफलता निर्भर करती है। इसके लिए कच्चे माल की निरन्तर आपूर्ति होते रहना आवश्यक है। व्यवसाय के सुव्यवस्थित संचालन के लिए विश्वसनीय आपूर्ति साधन का होना अति आवश्यक है। यदि आपूर्ति में तनिक भी अनिश्चितता होती है तो कम्पनी को अतिरिक्त कच्चे माल का संग्रहण करना पड़ता है जिस पर अतिरिक्त लागत वहन करनी पड़ती है। अतः आवश्यक है कि एक ही आपूर्तिकर्ता पर निर्भर न रहा जाय। ऐसी व्यवस्था होना आवश्यक है कि एक आपूर्तिकर्ता से कच्चामाल प्राप्त न होने पर दूसरे आपूर्तिकर्ता से इस कमी को पूरा कर लिया जाय।

(ii) **ग्राहक (Customers)** – सूक्ष्म पर्यावरण में ग्राहकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। एक कम्पनी के कई प्रकार के ग्राहक हो सकते हैं, जैसे–थोक ग्राहक, फुटकर ग्राहक, औद्योगिक ग्राहक, विदेशी ग्राहक, सरकारी निकाय ग्राहक इत्यादि। इन लोगों की वस्तु में रूचि उससे मिलने वाली संतुष्टि पर निर्भर करती है। जब तक वस्तु विशेष ग्राहकों की आवश्यकता को पूरा करती है, तब तक उसकी माँग की जाती है। यहाँ महत्वपूर्ण है कि किसी एक ग्राहक वर्ग पर निर्भर रहना कम्पनी के लिए काफी जोखिम पूर्ण होता है। अतः सुदृढ़ विपणन प्रणाली से कम्पनी को अधिकतम वर्ग के लोगों को अपना ग्राहक बनाये रखना चाहिए। व्यवसाय की सफलता के लिए ग्राहकों की रूचि को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

(iii) **श्रमिक एवं उनके संघ** (Workers and their Unions)– श्रम उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है, इसके अभाव में उत्पादन होना लगभग असम्भव

है। श्रम श्रमिकों या कर्मचारियों द्वारा प्रदान किया जाता है जो संगठित हो सकता है या असंगठित। यदि श्रमिक असंगठित है तो कम्पनी श्रमिकों को अति अल्प मजदूरी स्वीकार करने हेतु बाध्य कर सकती है। लेकिन वर्तमान समय में अधिकांश कम्पनियाँ अपने को सुदृढ़ अवस्था में इसलिए नहीं पाती क्योंकि श्रमिक कम्पनी में रोजगार पाते ही श्रम संघ की सदस्यता ग्रहण कर लेते हैं। कुछ श्रम संघ कम्पनी से टकराहट की नीति अपनाते हैं जबकि कुछ इस स्थिति से बचने का प्रयास करते हैं। श्रमिक एवं प्रबंध के मध्य लगातार संघर्ष दोनों के ही हित में नहीं होता है। व्यवसाय के हित में कम्पनी व श्रमिकों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध होना आवश्यक है।

(iv) **विपणन मध्यस्थ (Marketing Intermediaries)–** एक कम्पनी के सूक्ष्म पर्यावरण में विपणन मध्यस्थों जैसे–फुटकर विक्रेता अभिकर्ता वितरक इत्यादि का महत्वपूर्ण स्थान है। ये कम्पनी तथा अन्तिम उपभोक्ता के मध्य एक कड़ी का कार्य करते हैं। इनका गलत चयन होने पर कम्पनी को भारी हानि का सामना करना पड़ सकता है। उपयुक्त विपणन व्यवस्था के अभाव में कम्पनी अपने उत्पाद को उपभोक्ता तक पहुँचाने में अत्यन्त असमर्थ पाती है। वितरण फर्मे जिनमें भण्डारगृह तथा परिवहन फर्मे शामिल की जाती हैं, वे कम्पनी के माल को स्टॉक करने तथा इनके मूल स्थान से उपभोग–स्थल तक पहुँचाने में सहायता करती हैं।

(v) **प्रतियोगी (Competitiors)–** प्रतियोगियों की भी व्यवसाय संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रतियोगियों के व्यवहार को ध्यान में रखते हुए व्यवसाय को अपनी विभिन्न गतिविधियों का संचालन करना पड़ता है और उनमें परिवर्तन लाने पड़ते हैं। प्रतियोगिता कई प्रकार की हो सकती हैः

(अ) इच्छाओं की प्रतियोगिता (Desire Competition) – इस प्रतियोगिता का मूल उद्देश्य इच्छाओं को प्रभावित करना होता है। किसी फर्म की प्रतियोगिता केवल एक जैसी वस्तु का उत्पादन करने वाली फर्मों से ही नहीं होती बल्कि उन सभी फर्मों से होती है जो उपभोक्ता की सीमित आय को अपनी ओर खींचना चाहती है। उदाहरणार्थ–टेलीविजन कम्पनी की प्रतियोगिता फ्रिज निर्माता, स्कूटर, कम्प्यूटर निर्माता तथा अन्य कम्पनियों जो बचत व विनियोग योजनायें चलाती हैं, से भी होती हैं क्योंकि ये सभी उपभोक्ता की सीमित आय को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

(ब) जनन प्रतियोगिता (Genetic Competition)– वैकल्पिक वस्तुओं में

पारस्परिक प्रतियोगिता किसी विशेष प्रकार की इच्छा को संतुष्ट करने वाली प्रतियोगिता को जनन प्रतियोगिता कहते हैं। उदाहरणार्थ– एक व्यक्ति अपनी बचत को बैंक में या डाकघर में रख सकता है अथवा अंशों का क्रय कर सकता है। इस प्रकार विभिन्न निवेश योजनाओं के बीच होने वाली प्रतियोगिता जनन प्रतियोगिता कहलाती है।

(स) उत्पादन स्वरूप प्रतियोगिता (Product Form)– इस प्रतियोगिता में उपभोक्ता को उत्पाद के विभिन्न स्वरूपों में से चयन करना पड़ता है, जैसे यदि कोई उपभोक्ता टेलीविजन खरीदना चाहता है तो उसे निर्णय लेना होता है कि बड़ा टी0वी0 लेगा या छोटा, इसके साथ ही यह भी निर्णय करना होता है कि वह रंगीन टेलीविजन लेगा अथवा ब्लैक एण्ड व्हाइट।

(द) ब्रांड प्रतियोगिता (Brand Competition)– एक ही उत्पाद का उत्पादन अनेक कम्पनियाँ अलग–अलग ब्रांड नाम से करती है। अतः उपभोक्ता को उनमें से चयन करना पड़ता है कि वह कौन से ब्रांड का क्रय करें। रंगीन टेलीविजन क्रय करने का निर्णय करने के पश्चात उसके सामने प्रश्न उठता है कि वह कौन सा ब्रांड खरीदें, जैसे–फिलिप्स, वीडियोकॉन, बी0पी0एल0 या सैमसंग इत्यादि।

(vi) **जनता (Public)** – कम्पनी के पर्यावरण में जनता भी शामिल है। फिलिप कोटलर (Philip Kotler) के अनुसार ''जनता व्यक्तियों का वह समूह है जो किसी संस्था के हितों को प्राप्त करने की योग्यता पर वास्तविक अथवा सम्भावित प्रभाव रखता है'' जनता के प्रमुख उदाहरण है– पर्यावरणवेत्ता, उपभोक्ता, संरक्षण समूह, मीडिया (Media) से सम्बन्धित लोग एवं स्थानीय जनता, ऐसी कम्पनियाँ जो अपनी उत्पादन प्रक्रिया से पर्यावरण को प्रदूषित करती हैं, उनके विरूद्ध अनेक कदम उठाये जाते हैं। अब पर्यावरणवेत्ता सरकार के साथ मिल सामान्य जनता के हित में न्यायालय में प्रदूषण सम्बन्धी मामले ले जाते हैं। मीडिया के लोग भी व्यवसाय को बड़ी सीमा तक प्रभावित कर सकते है। व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न सूचनाओं को इनके द्वारा प्रकाशित व प्रसारित करवाया जा सकता है। पर्यावरण प्रदूषण के विरूद्ध अनेक बार स्थानीय जनता द्वारा आन्दोलन चलाये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप कम्पनी को अपनी व्यवसाय नीति तथा उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन करना पड़ता है।

2.6 व्यवसाय का व्यापक पर्यावरण (Macro Environment of Business)

कोई भी फर्म अथवा व्यवसाय विशिष्ट अथवा सूक्ष्म पर्यावरण को अपनी सूझ–बूझ से नियन्त्रित कर लेता है। जहाँ तक व्यवसाय के व्यापक पर्यावरण अथवा वातावरण का प्रश्न है, यह अकेले एक व्यवसायी के नियन्त्रण की सीमा से बाहर की बात है। व्यापक पर्यावरण एक चुनौती के रूप में व्यवसायी के सामने आता है, उसे इस चुनौती का सामना करना पड़ता है। व्यवसाय का व्यापक वातावरण– व्यवसाय के व्यापक पर्यावरण में उन क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है जिन पर सूक्ष्म घटकों की तुलना में नियंत्रण रखना कठिन होता है व्यवसाय के व्यापक पर्यावरण को दो वर्गों में रखा जा सकता है :–

- आर्थिक पर्यावरण
- अनार्थिक पर्यावरण

बोध प्रश्न–'अ' (Check your progress-A)

1. सूक्ष्म पर्यावरण के घटकों को बताइये।

....

....

....

2. व्यापक पर्यावरण के घटकों को बताइये।

....

....

....

2.6.1 व्यवसाय का आर्थिक पर्यावरण (Economic Environmental of Business)

व्यावसायिक पर्यावरण में आर्थिक पक्ष का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक व्यवसायिक इकाई बाजार में अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है। एक व्यवसाय का व्यवहार आर्थिक प्रकृति का होता है। व्यवसायिक जीवन चक्र के लगभग सभी कार्यकलापों में आर्थिक पहलू की प्रधानता होती है। किसी भी देश के आर्थिक पर्यावरण को निर्मित करने में तीन महत्वपूर्ण घटकों की भूमिका होती है:

- उस देश की आर्थिक प्रणाली,
- उस देश की आर्थिक नीति, तथा

- उस देश में विद्यमान आर्थिक दशाएँ

- **आर्थिक प्रणालियाँ (Economic Systems)**–किसी देश की आर्थिक प्रणाली उस देश की आर्थिक विचारधारा, आर्थिक संरचना तथा आर्थिक स्वतंत्रता को व्यक्त करती है। आर्थिक प्रणालियाँ मुख्य रूप से तीन प्रकार की हैः–

(i) **पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली** (Capitalist Economic System) – इस आर्थिक प्रणाली में सभी साधनों पर निजी क्षेत्र का स्वामित्व होता है। क्या, कैसे, कब तथा किस प्रकार उत्पादन किया जाय, ये सभी निर्णय पूँजीपतियों द्वारा स्वयं लिये जाते है। इसीलिए पूँजीवाद को 'स्वतंत्र अर्थव्यवस्था, 'अनियोजित अर्थव्यवस्था' या 'बाजारोन्मुखी' अर्थव्यवस्था भी कहते हैं। इस अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ हैंः आर्थिक स्वतंत्रता, निजी सम्पत्ति, निजी लाभ, स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा, व्यवसाय चयन की स्वतंत्रता, सरकार की सीमित भूमिका, उत्पादन के साधनों में पूँजी को सर्वोच्च स्थान, उपभोक्ता सम्प्रभुता का महत्वपूर्ण स्थान इत्यादि।

(ii) **समाजवादी आर्थिक प्रणाली (Socialist Economic System) –** समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का स्वामित्व पाया जाता है।सामान्यत्या आर्थिक निर्णय एक केन्द्रीय सत्ता द्वारा लिये जाते हैं। इस व्यवस्था में संसाधनों का आंवटन, विनियोजन स्वरूप, उत्पादन, उपभोग, वितरण आदि सरकार द्वारा निर्देशित होते हैं। इस व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार हैः अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका में वृद्धि तथा व्यापक हस्तक्षेप, केन्द्रीय नियोजन की प्रधानता, आय वितरण में समानता पर बल, केन्द्रीय इकाइयों की प्रधानता, उपभोक्ता सम्प्रभुता की अवहेलना, स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा का अभाव, व्यवसाय व रोजगार चुनने में स्वतंत्रता का अभाव इत्यादि।

(iii) **मिश्रित आर्थिक प्रणाली (Mixed Economic System)** – मिश्रित अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी तथा समाजवादी दोनों अर्थव्यवस्थाओं का सह–अस्तित्व रहता है। इसमें दोनों क्षेत्र आपसी प्रतियोगिता समाप्त करके मानव कल्याण में वृद्धि करने का प्रयास करते हैं। इस अर्थव्यवस्था में दोहरे बाजार की स्थिति पायी जाती है अर्थात् कुछ कीमतें माँग तथा आपूर्ति के आधार पर बाजारी ताकतों द्वारा तय की जाती हैं तो कुछ वस्तुओं के ऊपर सरकार का नियंत्रण रहता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें ये हैंः निजी एवं लोक क्षेत्र का सह–अस्तित्व, केन्द्रीय नियोजन, निजी क्षेत्र को पर्याप्त प्रोत्साहन, सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सरकार द्वारा संचालन, आर्थिक क्रियाओं पर सरकार द्वारा नियंत्रण व विनियमन इत्यादि।

- **आर्थिक नीतियाँ (Economic Policies) —** देश में व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण को निर्धारित करने में सरकार की आर्थिक नतियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आर्थिक नीतियों को मुख्यतया चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता हैः (i) औद्योगिक नीति, (ii) व्यापार नीति, (iii) मौद्रिक नीति, तथा (iv) राजकोषीय नीति।

(i) औद्योगिक नीति (industrial Policy)– विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में, व्यवसाय से प्रत्यक्ष एवं निकटतम सम्बन्ध रखने वाली क्रिया औद्योगिक क्रिया है। इसलिए व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण का विश्लेषण करते समय सरकार को औद्योगिक नीति का सावधानीपूर्वक परीक्षण करना आवश्यक है। सन् 1956 की औद्योगिक नीति में सार्वजनिक तथा निजी दोनों क्षेत्रों को औद्योगिक विकास की जिम्मेदारी सौंपी गयी। वर्ष 1991 में नयी औद्योगिक नीति लागू होने के पश्चात विभिन्न नियंत्रणों को समाप्त करने का व्यापक कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। सुरक्षा सामरिक महत्व और पर्यावरण की दृष्टि से संवेदनशील उद्योगों की छोटी–सी सूची में शामिल 6 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी औद्योगिक परियोजनाओं के लिए लाइसेंस की अनिवार्यता समाप्त कर दी गयी है।

(ii) व्यापार नीति (Trade Policy) — प्रारम्भ में भारत की व्यापार नीति का मुख्य उद्देश्य देश के विकास की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए आयात को नियमित करना था तथा आयात–प्रतिस्थापन उपायों के माध्यम से घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहित करना था। परन्तु उदारीकण का दौर शुरू होने के बाद व्यापार के जरिए विश्वव्यापीकरण तथा अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए निर्यात को मुख्य हथियार बनाने के महत्व को मान्यता दी गयी।

सामान्यतः व्यापार नीति दो प्रकार की होती है। प्रथम 'संरक्षणवादी नीति' जिसमें सरकार अपने नये एवं छोटे उद्योगों को विदेशी प्रतियोगिता से बचाने हेतु आयात पर रोक लगा देती है, तथा द्वितीय, 'स्वतंत्र व्यापार नीति' के अन्तर्गत निर्यात या आयात पर सरकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है। 1 अप्रैल, 2001 से भारत ने विश्व व्यापार संगठन (WTO) की शर्तों के मुताबिक स्वतंत्र व्यापार नीति घोषित कर दी है। अब वे वस्तुएँ भी आयात की जा सकेंगी जिन पर पहले प्रतिबन्ध लगा हुआ था। आम उपभोक्ता एवं कृषि से सम्बन्धित कतिपय उत्पादों पर सरकार भारी आयात शुल्क लगायेगी, ताकि स्थानीय लघु उद्योगों तथा कृषकों के हितों पर विपरीत प्रभाव न पड़े। इस विवेचन से स्पष्ट है कि देश के व्यवसायिक पर्यावरण पर सरकार की व्यापार नीति का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

(iii) मौद्रिक नीति (Monetary Policy) – मौद्रिक नीति से तात्पर्य, केन्द्रीय बैंक की उस नियंत्रण नीति से है जिसके द्वारा केन्द्रीय बैंक सामान्य आर्थिक नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्यों से मुद्रा की पूर्ति पर नियंत्रण करता है। भारत में यह कार्य रिजर्व बैंक द्वारा सम्पादित किया जाता है। यह बैंक मौद्रिक एवं साख नीति का निर्धारण करता है जिससे साख–नियंत्रण के उपाय किये जाते हैं। देश का आर्थिक विकास तथा मूल्यों की स्थिरता इस नीति के उद्देश्य माने जाते हैं। हाल के वर्षों में बाह्य प्रतियोगी पर्यावरण में भारतीय अर्थव्यवस्था का खुलापन, विश्व व्यापार में देश के निर्यात में वृद्धि तथा वाह्य ऋणों को कम करने के लिए घरेलू कीमत स्तर को स्थिर रखने की आवश्यकता होती है और यह कार्य सामान्यता मौद्रिक नीति से किया जाता है। मौद्रिक उपाय ही आर्थिक तथा व्यवसायिक कार्यकलापों को उचित दिशा निर्देश देते हैं, इसीलिए इसे आर्थिक नीति का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

(iv) राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)– राजकोषीय नीति का संचालन वित्त मंत्रालय द्वारा किया जाता है। इस नीति के अन्तर्गत सरकारी आय–व्यय, सार्वजनिक ऋण (बाजार ऋण, क्षतिपूर्ति एवं अन्य ऋणपत्र, रिजर्व बैंक, राज्य सरकारों व वाणिज्यिक बैंकों आदि को जारी किये गये ट्रेजरी बिल, विदेशों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से लिए गये ऋण इत्यादि) तथा घाटे की अर्थव्यवस्था को शामिल किया जाता है। राजकोषीय नीति के प्रमुख उद्देश्यों में पूँजी निर्माण, विनियोग–निर्धारण, राष्ट्रीय लाभांश तथा प्रतिव्यकित आय में वृद्धि, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, स्थिरता के साथ विकास तथा आर्थिक समानता लाना, इत्यादि होते हैं।

- **आर्थिक दशायें (Economic Conditions)**– देश में विद्यमान आर्थिक दशायें वहाँ के आर्थिक विकास एवं स्तर को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है। व्यवसाय के लिए आर्थिक दशाओं का महत्व व्यावसायिक सम्भावनाओं तथा अवसरों की पूर्ति से जुड़ा है। आर्थिक दशाओं का महत्व व्यावसायिक सम्भावनाओं तथा अवसरों की पूर्ति से जुड़ा है। आर्थिक दशाओं को नियोजन एवं विकास का आधार मानकर उस देश की सरकार अनेक आर्थिक कार्यक्रमों को संचालित करती है। आर्थिक दशाओं में अग्रलिखित घटकों को शामिल किया जा सकता है। (i) देश में प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता, (ii) मानवीय संसाधनों की उपलब्धता, किस्म तथा उपयोग, (iii) बचतों की स्थिति तथा पूँजी निर्माण की मात्रा, (iv) राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय आय तथा वितरण व्यवस्था, (v) विदेशी पूँजी का आकार, (vi) देश में उद्योगों की स्थिति, प्रकार तथा उत्पादन की मात्रा, (vii) देशवासियों

के उपभोग का स्तर, (viii) देश में लोक कल्याणकारी कार्य, (ix) विदेशी व्यापार की स्थिति तथा विदेशी मुद्रा अर्जन, (x) देश की मौद्रिक नीति, बैंकिग व्यवस्था तथा ब्याज की दरें, (xi) उद्यमशीलता तथा साहस का स्तर, (xii) शोध एवं अनुसंधान, (xiii) देश में प्रचलित सामान्य मूल्य स्तर, (xiv) आर्थिक विकास तथा प्रगति की दर।

2.6.2 व्यवसाय का अनार्थिक पर्यावरण (Non-Economic Environment of Business)

व्यवसाय एक आर्थिक क्रिया है। इसके बावजूद यह अनार्थिक पर्यावरण से प्रभावित होती है। अनार्थिक पर्यावरण को सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनैतिक, कानूनी, तकनीकी, जनसांख्यिक पर्यावरण में वर्गीकृत कर सकते हैं।

(i) सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण (Socio-Cultural Environment)– व्यवसायिक फर्में सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण में संचालित की जाती हैं, इसीलिए उनकी नीतियाँ इस घटक को ध्यान में रखकर बनायी जाती है। संस्कृति से तात्पर्य समाज में रहने वालों द्वारा किये गये साम्य आचरण से हैं। इसमें रीति–रिवाजों, मान्यताओं, परम्पराओं, रूचियों, प्राथमिकताओं इत्यादि को सम्मिलित किया जा सकता है जिनकी अवहेलना करने पर फर्मों को बड़े दुष्परिणामों का सामना करना पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा का स्तर, भाषा, आदतें भी व्यवसाय पर व्यापक प्रभाव डालती हैं।

व्यवहार में सामान्यतया देखने को मिलता है कि एशिया व अफ्रीका के देशों की तुलना में यूरोपीय देशवासी अपने स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरूक होते हैं, अतः वहाँ स्वास्थ्य हेतु हानिकर उत्पादों को सफलतापूर्वक बाजार में उतारना सम्भव नहीं होता है। इसी प्रकार बहुत से मुस्लिम देशों में अभी भी पर्दा प्रथा विद्यमान है अतः वहाँ श्रृंगार सामग्री तथा आधुनिक फैशनेबुल कपड़ों का बाजार सीमित है। भारतीय समाज में धीरे–धीरे उदारता का विकास हो रहा है और नयी–नयी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ देश में प्रवेश कर रही हैं। इससे लोगों की रूचि, फैशन, आदतों में परिवर्तन आया है। पारम्परिक पैंट तथा सलवार कुर्ता के स्थान पर आज भारतीय लड़के–लड़कियाँ नीली जीन्स को प्राथमिकता देते हैं। अतः स्पष्ट है कि एक देश में सफल व्यवसाय की रणनीति बिना उस देश के सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण को ध्यान में रखे नहीं बनायी जा सकती है।

(ii) राजनीतिक पर्यावरण (Political Environment) – एक व्यवसाय की सफलता के लिए कुशल तथा स्वच्छ राजनैतिक पर्यावरण होना आवश्यक है। व्यवसाय की विभिन्न संरचनाओं के मूल में राजनीतिक निर्णय होते हैं। कुछ

राजनीतिक निर्णय व्यवसाय विशेष के लिए लाभप्रद हो सकते हैं, जबकि कुछ के लिए हानिप्रद। राजनीतिक निर्णय को प्रभावित करने में कई घटकों का हाथ होता है, जैसे–विचारधारा, जनसेवा, चिन्तन, राजनैतिक दबाव, अन्तर्राष्ट्रीय दबाव व प्रभाव, राष्ट्रीय एकता व सुरक्षा इत्यादि। व्यवसाय के साथ ही प्रशासकीय वर्ग आता है। राजनैतिक निर्णयों की अनुपालना प्रशासनिक स्तर पर की जाती है। निर्णयों का जितनी शीघ्रता से पालन किया जायेगा उतना ही जनहित में रहेगा। किन्तु जहाँ तक हमारे देश का प्रश्न है, धीमी गति, भ्रष्टाचार, मनमानी आदि ऐसी समस्याएं हैं जो प्रगति के मार्ग को अवरूद्ध करती हैं।

किसी देश के व्यवसायिक विकास हेतु राजनैतिक स्थिरता भी अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक है। जितनी अधिक स्थिरता होगी, उतना ही अधिक सरकार में जनता का विश्वास होगा जिस का व्यवसाय तथा उद्योगों पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इससे आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति में सुधार होगा। देश में शान्ति व सुरक्षा का वातावरण होना भी आवश्यक है ताकि विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ तथा विदेशी पूँजी आकर्षित हो सके। यदि देश में सुरक्षा तथा न्याय की समुचित व्यवस्था है तो लोगों में बचत की प्रवृत्ति होगी जिससे पूँजी निर्माण में सहायता मिलेगी तथा व्यवसाय के विकास को प्रोत्साहन मिलेगा।

(iii) वैधानिक पर्यावरण (Legal Environment) – वैधानिक पर्यावरण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इससे आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन प्रभावित होता है। जहाँ तक व्यवसाय व उद्योग का प्रश्न है, इनके अलग–अलग पक्षों के लिए अलग–अलग अधिनियमों का निर्माण किया गया है। इसके साथ ही न्यायालयों तथा न्यायाधिकरणों की पृथक व्यवस्था है जो इस बात का प्रयास करते हैं कि विभिन्न अधिनियमों व कानूनों का पालन हो तथा पीड़ित पक्षकार को न्याय मिल सके। देश में व्यवसाय तथा उद्योगों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कुछ अधिनियम निम्नलिखित हैंः–

- भारतीय कारखाना अधिनियम, 1948
- औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947
- भारतीय कम्पनीज, अधिनियम, 1956
- आयात एवं निर्यात (नियंत्रण) अधिनियम, 1947
- विदेशी विनिमय तथा नियमन अधिनियम, 1947
- उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951
- विदेश मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम (फेमा), 1999
- मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936
- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948

- कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
- बोनस भुगतान अधिनियम, 1965
- कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952
- श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923
- प्रशिक्षु अधिनियम, 1961
- ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972
- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986
- बिजली नियामक आयोग अधिनियम, 1948
- अन्य–खान अधिनियम, बागान अधिनियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम, पेटेन्ट्स अधिनियम इत्यादि।

(iv) तकनीकी पर्यावरण (Technological Environment) – औद्योगिक परिवर्तन तथा क्रान्ति मुख्यतया तकनीकी पर्यावरण पर निर्भर करती है। वैज्ञानिक शोधों से नयी–नयी प्रणालियों का अविष्कार होता है तथा प्रौद्योगिकी उन प्रणालियों का उपयोग करके व्यवसाय जगत में आमूल–चूल परिवर्तन ला देती है। राष्ट्र का तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी विकास उत्पादन की प्रणालियों, नयी वस्तुओं, नये कच्चे माल के स्रोत, नये बाजार, नये यन्त्र व उपकरण, नयी सेवाओं इत्यादि को प्रभावित करता है।

विकसित देशों में तकनीकी परिवर्तन तेजी से होते हैं क्योंकि वहाँ नयी तकनीक शीघ्रता से उपलब्ध हो जाती है। ये देश नयी तकनीक के उपलब्ध होते ही पुरानी तकनीक को शीघ्रता से त्याग देते हैं। किसी भी व्यवसायिक इकाई को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए नवीनतम तकनीक को अपनाना अनिवार्य है संरक्षण प्राप्त बाजार तकनीकी परिवर्तन धीमी गति से होते हैं और बहुत सी फर्में बिना कोई परिवर्तन के वर्षों अपना उत्पादन करती रहती हैं। इसका एक प्रमुख कारण प्रतियोगिता का अभाव होना भी है। भारतीय संदर्भ में ऑटामोबाइल्स इंडस्ट्री का उदाहरण दिया जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् चार दशकों तक कार क्षेत्र पर 'फियेट' का एकाधिकार रहा जबकि इसकी उत्पाद तकनीकी उत्कृष्ट स्तर की नहीं थी। उपभोक्ताओं के समक्ष कोई दूसरा विकल्प नहीं था, अतः 'फियेट' कार का उत्पादन तथा माँग निरन्तर रही। किन्तु श्रेष्ठ व उन्नत तकनीक के साथ स्थापित मारूति उद्योग के पश्चात पूरा परिदृश्य बदल गया। हाल के वर्षों में औद्योगिक क्षेत्र में हुए उदारीकरण के कारण ऑटोमोबाइल तकनीक में तेजी से परिवर्तन आये हैं। अब इस क्षेत्र में तकनीकी उत्कृष्टता के बिना टिक पाना असम्भव है।

(v) जनसांख्यिकी पर्यावरण (Demographic Environment) – मनुष्य उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों होता है। इसलिए जनसांख्यिकी कारक जैसे जनसंख्या का आकार तथा विकास दर, जीवन प्रत्याशा, आयु एवं लिंग संरचना, जनसंख्या का वितरण, रोजगार स्तर, जनसंख्या का ग्रामीण एवं शहरी वितरण, शैक्षणिक स्तर, धर्म, जाति तथा भाषा इत्यादि सभी व्यवसाय के लिए संगत हैं। जनसंख्या में वृद्धि विकासशील देशों की एक प्रमुख विशेषता है। इसीलिए इन देशों में बच्चों हेतु वस्तुओं की माँग तथा उत्पादन में वृद्धि दृष्टिगोचर हुई है। भारत जैसे विकासशील देश में ज्यों–ज्यों जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, त्यों–त्यों बेबी फूड, बेबी साबुन इत्यादि की माँग में वृद्धि हो रही है।

बड़ी जनसंख्या वाले देशों में बड़ी मात्रा में श्रम शक्ति भी उपलब्ध रहती है। भारत में कम मजदूरी पर बड़ी संख्या में श्रमिक उपलब्ध हो जाते हैं। विकसित पश्चिमी देशों में इसके विपरीत दृश्य है। जन्म दर कम होने से वहाँ जनसंख्या भी कम है और इसीलिए विकसित देशों में श्रम अपर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो पाता है। इस कमी को पूरा करने के लिए गहन पूँजी की तकनीक का उपयोग करते है। पूँजी की कमी के कारण इस तकनीक का प्रयोग अविकसित/विकासशील देश नहीं कर पाते हैं।

उत्पादन करने के स्थान पर यदि श्रमिक व कर्मचारी बाहर से बुलाये गये हों तो भाषा, धर्म व जाति की समस्या सामने आती है। इससे सेविवर्गीय प्रबन्ध के सामने विभिन्न समस्याएं आती है। बहुराष्ट्रीय निगमों ने उत्पादन क्षेत्र के लोगों को ही अपने प्लान्ट में नियोजित कर इस समस्या के निदान का प्रयास किया है।

(vi) प्राकृतिक पर्यावरण (Natural Environment) – वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के बावजूद, व्यवसायिक क्रियाएं एक बहुत बड़ी सीमा तक प्राकृतिक पर्यावरण से प्रभावित होती है। इसे स्पष्ट करने के लिए अग्रलिखित उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैंः (i) उत्पादन कच्चे माल पर निर्भर करता है। चीनी मिल अधिकतर उस स्थान पर स्थापित की जाती है जहाँ उन्हें कच्चा माल (गन्ना) आसानी से उपलब्ध हो सके। (ii) परिवहन एवं संचार भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। पहाड़ी क्षेत्रों में सड़क परिवहन सुविधाजनक होता है। (iii) दो क्षेत्रों के मध्य व्यापार भौगोलिक स्थितियों पर निर्भर करता है। (iv) खनन एवं उत्खनन प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित है। जहाँ प्राकृतिक संसाधन पाये जाते हैं, वहीं पर खनन एवं उत्खनन क्रियाएं सम्पादित की जाती हैं। (v) विभिन्न बाजारों की भौगोलिक स्थितियों में अन्तर होने से बाजार में परिवर्तन आ जाता है।

आधुनिक काल में परिस्थितिकी कारक (Circumstantial Factors) एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है। प्राकृतिक संसाधनों में तीव्रगति से कमी आना, पर्यावरण प्रदूषण तथा प्राकृतिक असन्तुलन ने सभी का ध्यान आकृष्ट किया है। अतः सरकार की नीति का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक असन्तुलन को कम करना तथा पुनः पूर्ति (Replenishment) न होने वाले संसाधनों को संरक्षण देना है। इसके फलस्वरूप व्यवसाय के उत्तरदायित्वों में वृद्धि हुई है।

(vii) नैतिक पर्यावरण (Ethical Environment)– व्यवसाय को समाज के नैतिक पर्यावरण का पालन करना होता है। वर्तमान जटिल व्यवसायिक पर्यावरण में नैतिक सिद्धान्त तथा संहिताएँ प्रबन्धकों के व्यवहार का मार्गदर्शन करती है। अनेक विकसित देशों ने नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों का पालन करके अन्तर्राष्ट्रीय सफलताएं प्राप्त की हैं। आज व्यवसाय शहरीकरण, शोरगुल, प्रदूषण, औद्योगिक बस्तियाँ, गन्दगी जैसी समस्याओं का निदान ढूँढ़ रहा है। व्यवसायिक क्रियाओं को नीतिशास्त्र के अनुकूल संचालित करने के लिए नियम–कानून तथा सरकार विशेष बल दे रही है।

(viii) अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण (International Environment)– अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण ने व्यवसायिक क्रियाओं पर गहरा प्रभाव डाला है। संचार, परिवहन, प्रौद्योगिकी, बहुराष्ट्रीय व्यवसाय, देशों के पारस्परिक सम्बन्धों आदि में आये क्रान्तिकारी परिवर्तनों में से व्यवसायिक क्रियाएं प्रभावित हुई हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं के कार्यकलापों तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से विभिन्न देशों पर एक बड़ी सीमा तक प्रभाव पड़ता है। उपभोग के क्षेत्र में जो आमूल–चूल परिवर्तन देखने को मिलता है, उसके पीछे अन्तर्राष्ट्रीय संचार तथा विज्ञापन माध्यमों का हाथ है।

आधुनिक युग में पर्यावरण या वातावरण को बचाने का आन्दोलन तथा इसके प्रति जन–चेतना जागृत करने का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के प्रभाव की ही देन है। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं विभिन्न देशों को आने वाली सम्भावित बीमारियों तथा खतरों से अवगत कराती हैं। चाहे ये खतरे कैंसर व एड्स जैसी बीमारियों से सम्बन्धित हों या आर्थिक व वित्तीय संकट या जनसंख्या के विस्फोट से।

बोध प्रश्न–'ब' (Check your progress-B)

1. व्यावसायिक पर्यावरण के विभिन्न प्रकार बताइये।

....

....

2. व्यवसाय का आर्थिक पर्यावरण क्या है ?

....

....

2.7 सारांश (Summary)

व्यवसाय एक ऐसा क्रिया–कलाप है जो लाभ कमाने के लिये किया जाता है। व्यावसायिक पर्यावरण अनेक घटकों का योग है जो व्यवसाय को प्रभावित करता है। एक व्यवसाय को इन्हीं सूक्ष्म एवं वृहद पर्यावरण के घटकों का अध्ययन कर अपने व्यवसायिक निर्णय लेने होते हैं। वृहद पर्यावरण में अनेक ऐसे घटक होते हैं जो व्यवसाय के नियंत्रण में नहीं होते हैं इन्हें हम वाह्य या वृहद पर्यावरण (Macro Environment) कहते हैं। इन्हें हम आर्थिक (Economic) एवं अनार्थिक (Non Economic) पर्यावरण में बांट सकते हैं। आर्थिक पर्यावरण के अन्तर्गत हम सरकार की आर्थिक नीतियों जैसे मौद्रिक, राजकोषीय, औद्योगिक नीति आदि का अध्ययन करते हैं।

अनार्थिक पर्यावरण जो व्यापक (Macro) पर्यावरण का महत्वपूर्ण भाग है के अन्तर्गत – सामाजिक सांस्कृतिक, राजनैतिक, वैधानिक, तकनीकी जनसंख्या, नैतिक, प्राकृतिक, अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण आदि का अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार एक व्यवसाय की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह इन सूक्ष्म एवं वृहद पर्यावरण के विभिन्न घटकों जो नियंत्रण योग्य नहीं है उनके साथ किस प्रकार अपनी नीतियों, निर्णयों, भविष्य की योजनाओं को समायोजित करता है।

2.9 शब्दावली

आन्तरिक पर्यावरण– आन्तरिक पर्यावरण के अन्तर्गत वे घटक आते हैं जिन पर व्यवसाय आसानी से नियन्त्रण रख सकता है जैसे व्यवसाय के उद्देश्य, व्यवसायिक नीतियाँ, उत्पादन के संसाधन, उत्पादन व्यवस्था, श्रमिक संघ, सूचना प्रणाली आदि।

बाह्य पर्यावरण– इसके अन्तर्गत व्यवसाय या फर्म के बाहर कार्यरत शक्तियाँ, दशायें आदि घटक आते हैं। इन्हें हम सूक्ष्म एवं वृहद पर्यावरण के रूप में बांट सकते हैं।

सूक्ष्म पर्यावरण – एक फर्म के आस पास दिखाई पड़ने वाले घटकों को सूक्ष्म पर्यावरण में शामिल किया जाता है। जैसे–ग्राहक, विपणन मध्यस्थ, प्रतियोगी, आपूर्तिकर्ता आदि।

वृहद (Macro) पर्यावरण– यह अकेले एक व्यवसायी के लिये संभव नहीं है कि वृहद पर्यावरण को नियंत्रित करें। वृहद पर्यावरण के अन्तर्गत – आर्थिक एवं अनार्थिक दोनों प्रकार के घटक होते हैं।

आर्थिक पर्यावरण– के अन्तर्गत हम उस देश की आर्थिक नीति, आर्थिक प्रणाली एवं आर्थिक दशाओं का अध्ययन करते हैं।

अनार्थिक पर्यावरण– के अन्तर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, वैधानिक, तकनीकी, जनसंख्या सम्बन्धी, नैतिक, अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण के घटकों का अध्ययन करते हैं।

2.10 अभ्यास के प्रश्न

I. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. व्यावसायिक पर्यावरण के विभिन्न प्रकारों के बारे में बताइये।
   (Discuss Various Types of Business Environment.)
2. व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण के घटकों का संक्षेप में वर्णन कीजिये।
   (Discuss in brief the components of Economic Environment of Business.)
3. व्यावसायिक पर्यावरण से सूक्ष्म एवं वृहद पर्यावरण के घटकों को समझाइये।
   (Discuss the Micro and Macro factors of Business Environment.)

II. लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Question)

1. व्यवसाय के सूक्ष्म वातावरण से आप क्या समझते हैं ?
   (What do you understand by Micro Environment of Business?)
2. आर्थिक नीतियों की विषय–वस्तु क्या है ?
   (What is the subject matter of Economic policies.)
3. व्यवसाय के अनार्थिक पर्यावरण के विभिन्न घटकों को संक्षेप में बताइये।
   (Discuss in brief the factors of Non Economic Environment of Business.)

इकाई–3 : पर्यावरण विश्लेषण की तकनीक (Techniques for Environmental Analysis)

इकाई की रूपरेखा–

3.1 उद्देश्य
3.2 प्रस्तावना
3.3 पर्यावरण विश्लेषण का आशय एवं आवश्यकता
3.4 पर्यावरण विश्लेषण की प्रक्रिया
3.5 पर्यावरण विश्लेषण/पूर्वानुमान
3.6 पूर्वानुमान के तरीके
3.7 पर्यावरण विश्लेषण के लाभ
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली (Keywords)
3.10 अभ्यास के प्रश्न

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेगे कि

- पर्यावरण विश्लेषण क्या है?
- पर्यावरण विश्लेषण क्यों आवश्यक है?
- पर्यावरण विश्लेषण की तकनीके क्या है?
- पर्यावरण विश्लेषण/पूर्वानुमान के लाभ एवं महत्व क्या है?
- पर्यावरण विश्लेषण/पूर्वानुमान की सीमायें क्या है?

3.2 प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाइयों में आपने व्यावसायिक पर्यावरण के महत्वपूर्ण घटकों के बारे में पढ़ा जिससे यह स्पष्ट होता है कि व्यवसाय पर इन घटकों का स्पष्ट एवं निर्विवाद प्रभाव पड़ता है। व्यावसायिक निर्णय विशेष रूप से रणनीतिक निर्णय लेने के पहले इन घटकों का सूक्ष्म एवं वृहद विश्लेषण आवश्यक होता है। व्यवसाय के बारे में बहुत से मुद्दों पर सूक्ष्म एवं वृहद जानकारी के लिये हमें खोज, विश्लेषण एवं पूर्वानुमान की विधियों का सहारा लेना पड़ता है। व्यवसाय से

सम्बन्धित तमाम मुद्दों का व्यावसायिक ? पर क्या प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिये, उदारीकरण (Liberlisation) का एक फर्म/कम्पनी पर क्या प्रभाव पड़ सकता है। उदारीकरण की क्या चुनौतियां है या उदारीकरण ने क्या अवसर प्रदान किये हैं? इनका उत्तर पाने के लिए हमें पर्यावरण की सूक्ष्म एवं वृहद विश्लेषण की आवश्यकता है। पर्यावरण विश्लेषण, भविष्य की रणनीति (strategy) तैयार करने में व्यावसायिक फर्मों को मदद करता है।

3.3 पर्यावरण विश्लेषण का आशय एवं आवश्यकता (Concept & Need of Enviornmental Analysis)

वातावरण के विश्लेषण से हमें मौजूदा वातावरण तथा इसमें होने वाले हर सम्भव परिवर्तनों को समझने में सहायता मिलती है। वर्तमान वातावरण को जानने के साथ–साथ भावी स्थिति का अनुमान भी लगाना पड़ता है। इससे भावी रणनीति को तैयार करने में मदद मिलती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वातावरण के अध्ययन से निम्न लाभ हैं :

- फर्म की रणनीति तय करने तथा दीर्घकालीन नीति निर्धारण में सहायता मिलना,
- तकनीकी प्रगति के कार्यक्रम को विकसित करने में मदद मिलना,
- फर्म के स्थायित्व पर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व सामाजिक, आर्थिक प्रभावों का पूर्वानुमान लगाना,
- प्रतिस्पर्धियों की रणनीति का विश्लेषण तथा प्रभावी जवाब की तैयारी करना, तथा
- गतिशीलता बनाए रखना।

व्यावसायिक वातावरण के प्रति जागरूक नहीं रहने के भयानक एवं कष्टदायी परिणाम निकल सकते हैं। सम्भव है कि कम्पनी अपने को अजेय मान ले तथा बाजार में क्या घटनायें घट रही है उनकी ओर न तो ध्यान दे और न उनकी जांच करें। इस स्थिति में कम्पनी न तो वातारण में परिवर्तन के अनुसार अपनी रणनीति में समायोजन करेगी और नहीं बदलते वातावरण के अनुसार प्रतिक्रिया करेगी। ऐसी कम्पनी को परेशानी में पड़ना स्वाभाविक है।

वातावरण का विश्लेषण कम्पनी को इतना समय प्रदान करता है कि वह अवसरों की जानकारी पहले ही प्राप्त कर ले और उनके अनुसार रणनीति में परिवर्तन करें। यह रणनीति निर्धारकों को एक पूर्व चेतावनी व्यवस्था (early warning

system) विकसित करने में मदद देता है ताकि खतरे से बचा जा सके एवं खतरे को अवसर में बदला जा सके।

प्रबन्ध पर समय का काफी दबाव रहता है। वातारण के व्यवस्थित अध्ययन एवं विश्लेषण की अनुपस्थिति में प्रबन्धक वातावरणीय परिवर्तनों पर पर्याप्त समय नहीं दे पाएंगे। फलतः ऐसे परिवर्तनों का सामना सही ढंग से नहीं हो पाएगा, लेकिन जहां व्यावसायिक पर्यावरण का विश्लेषण होता है वहां प्रबन्धकीय निर्णय अधिक सही होते हैं। इस स्थिति में प्रबन्धक अन्य महत्वपूर्ण कार्यों पर अधिक समय दे सकेंगे। इसी वजह से **विलियम एफ, ग्लुयके** तथा **लॉरेंसे आर. जॉच** (William F. Glueck and Lawrence R. Jauch) ने कहा, "फर्म जो व्यवस्थित रूप से पर्यावरण का विश्लेषण तथा निदान करती है, ऐसा नहीं करने वालों की तुलना में अधिक प्रभावी होती है।" ("Firms which systematically analyse and diagonse the environment are more effective than those which don't".)

पर्यावरण से पूरा लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादन के स्तर पर तथा प्रक्रिया–सम्बन्धी विश्लेषण की आवश्यकता है।

(1) उत्पादन के स्तर पर पर्यावरण विश्लेषण को निम्न पर ध्यान देना है :

- चालू समय में जो परिवर्तन हो रहे हैं उनका वर्णन,
- भविष्य में होने वाले सम्भावित परिवर्तनों का अग्रदूत,
- भावी परिवर्तनों की वैकल्पिक व्याख्या।

ऐसी जानकारी के विश्लेषण से बाह्म मुद्दों को समझने तथा तदनुसार समायोजन का समय मिल जाता है तथा खतरों को अवसरों में बदलने का मौका।

3.4 पर्यावरण विश्लेषण की प्रक्रिया (Process of Environmental Analysis)

पर्यावरण विश्लेषण की प्रक्रिया के स्तर पर यह मान लिया जाता है कि वाह्म शक्तियों से फर्म का संगठन प्रभावित होता हैं। वास्तव में वह विश्लेषण चुनौती भरा, लम्बा (काफी समय लेता है), तथा खर्चीला है। यह विश्लेषण निम्न चार चरणों में किया जा सकता है :

(i) परीक्षण (Scanning) – पर्यावरण विश्लेषण का यह प्रथम चरण है। इसमें पर्यावरण सम्बन्धी सभी–कारकों की सामान्य निगरानी की जाती है तथा इनकी अन्तक्रियाओं पर ध्यान दिया जाता है; ताकि

- पर्यावरण सम्बन्धी सभी सम्भव परिवर्तनों की शुरू में ही पहचान की जा

सके; तथा

- पर्यावरण सम्बन्धी वे परिवर्तन जो घटित हो चुके हैं, को खोज निकाला जा सके।

पर्यावरण विश्लेषण की प्रक्रिया का परीक्षण अच्छा ढांचा प्रस्तुत नहीं करता है तथा अस्पष्ट है। परीक्षण के लिए उपलब्ध आंकड़े न केवल अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है बल्कि बिखरे हुए अस्पष्ट तथा सटीक नहीं है। ऐसे अस्पष्ट, असम्बद्ध तथा बिखरे हुए आंकड़ों का परीक्षण एक चुनौती भरा कार्य है।

(ii) अनुश्रवण (Monitoring) – इसका कार्य वातावरणीय प्रवृत्ति, घटनाक्रम या क्रियाओं के प्रवाह पर नजर रखना। यह वातावरण के परीक्षण से प्राप्त संकेतों को समझने का प्रयास करता है। निर्देशन का उद्देश्य पर्याप्त आंकड़े इकट्ठे करना है ताकि यह समझा जा सके कि किसी प्रवृत्ति तथा पैटर्न का उदय हो रहा है या नहीं। निर्देशन की प्रगति के साथ–साथ अस्पष्ट आंकड़े स्पष्ट एवं सुनिश्चित दिखने लगते हैं।

अनुश्रवण के निम्न तीन परिणाम निकलते हैं–

- वातावरण की प्रवृत्ति तथा पैटर्न, जिनकी भविष्यवाणी करनी है, का सुस्पष्ट विवरण;
- और आगे निर्देशन के लिए प्रवृत्ति की पहचान; तथा
- और आगे परीक्षण के लिए क्षेत्रों तथा स्थलों की पहचान।

(iii) पूर्वानुमान (Forecasting) – परीक्षण तथा निर्देशन से वह तस्वीर निकलती है जो बन चुकी है तथा बनने जा रही है। रणनीति–सम्बन्धी निर्णय भविष्य की ओर देखता है। अतः वातावरण के विश्लेषण में स्वाभाविक रूप से भविष्यवाणी करना आवश्यक अंग बन जाता है। भविष्यवाणी का सम्बन्ध वातावरण सम्बन्धी परिवर्तन की दिशा, क्षेत्र तथा गहनता के विषय में युक्तियुक्त परियोजना को विकसित करना है। प्रत्याशित परिवर्तनों के विकास पथ के निर्माण की कोशिश की जाती है। भविष्यवाणी का सम्बन्ध निम्न प्रश्नों से है :

- नई तकनीकों को बाजार तक पहुंचने में कितना समय लगेगा?
- क्या चालू स्टाइल जारी रहने वाला है?
- परीक्षण तथा निर्देशन से भिन्न, भविष्यवाणी अधिक निगमनात्मक तथा जटिल क्रिया है।

(iv) आकलन (Assessment) – उपरोक्त तीनों प्रक्रियाएं–परीक्षण, निर्देशन तथा पूर्वानुमान अपने आप में उद्देश्य नहीं है। इन प्रक्रियाओं से प्राप्त परिणामों

का आकलन करके व्यवसाय की चालू तथा भावी रणनीतियों को तय करना होता है। आकलन से जिन प्रश्नों के उत्तर देने हैं, वे हैं :

- वातावरण किन मुख्य मुद्दों को उपस्थित करता है?
- इन मुद्दों का संगठन के लिए क्या महत्व है?

बोध प्रश्न : अ (Check your progress)–

1. पर्यावरण विश्लेषण से आप क्या समझते हैं?

....

....

2. पर्यावरण विश्लेषण की प्रक्रिया बताइये?

....

....

3.5 पर्यावरण पूर्वानुमान (Environmental Forecasting)

पूर्वानुमान ज्ञात तथ्यों से निष्कर्ष निकाल कर भविष्य का परीक्षण करने के लिये एक व्यवस्थित प्रयास है। इस तकनीक के अन्तर्गत भविष्य की घटनाओं का अनुमान लगाने के लिए भूत व वर्तमान की सूचना का प्रयोग किया जाता है। इसका ध्येय प्रबन्ध को ऐसी सूचना प्रदान करने का है जिस पर वह नियोजन निर्णय आधारित कर सके।

नियोजन व पूर्वानुमान एक दूसरे से जुड़े हुए हैं परन्तु पूर्वानुमान योजना नहीं होती, उससे मात्र अनुमान लग सकता है और उसका हमारे कार्य–कलापों पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। जैसा कि फेयोल ने कहा है, "एक योजना अनेक पूर्वानुमानों का संश्लेषण होती है।" पूर्वानुमान नियोजन में पहला चरण होता है। भरोसेमंद योजना सटीक पूर्वानुमानों पर आधारित होती है। पूर्वानुमान अधिकतर उन घटनाओं पर आधारित होते हैं जिनका होना सम्भव तो है, परन्तु निश्चित नहीं।

अधिकतर कम्पनियाँ अपने व्यवसाय के बारे में ऊपर से नीचे व नीचे से ऊपर तक पूर्वानुमान लगाने का प्रयास करती है और इन दोनों पूर्वानुमानों को आपस में जोड़ देती है। जब हम ऊपर से नीचे जाते हैं तो हम पहले देश की सम्पन्नता, उसके बाद अपने उद्योग में विक्रय, फिर अपनी कम्पनी, और अन्त में अपनी वस्तुओं का पूर्वानुमान लगाते हैं। जब हम नीचे से ऊपर की ओर जाते

हैं तो हम अपने विक्रेता तथा डीलरों को अपनी वस्तुओं के विक्रय के विषय में पूर्वानुमान लगाने को कहते हैं और उनको आपस में जोड़ देते हैं।

पूर्वानुमान एक या अनेक उत्पादों का भविष्य में कुछ समय के लिये माँग के स्तर का आकलन है। इसमें भविष्य में होने वाली परिस्थितियों को प्रभावित करने वाले निर्पेक्ष व सापेक्ष कारकों के महत्व व परिमाण का आकलन करने की आवश्यकता पड़ती है। कभी–कभी इसे पढ़ा–लिखा अनुमान भी कहा जाता है। कुछ प्रबन्धक अपने अन्तर्ज्ञान के आधार पर भी पूर्वानुमान लगाते हैं। यह वे अपने कार्य के अनुभव के कारण कर पाते हैं। परन्तु आज के जैसे जटिल पर्यावरण में ऐसा पूर्वानुमान लगाना खतरनाक हो सकता है।

ऐसे में परिष्कृत पूर्वानुमान तकनीकों की आवश्यकता होती है।

ग्लूइक (Glueek) के अनुसार, "पूर्वानुमान भविष्य की घटनाओं का अनुमान लगाने के लिए औपचारिक तरीका है जो कि संगठन के कार्यकलापों को प्रभावित करता है।"

उपर्युक्त वर्णन पूर्वानुमान की निम्नलिखित विशेषताएं प्रस्तुत करता है–

(i) पूर्वानुमान भविष्य की घटनाओं से सम्बन्धित है।

(ii) यह नियोजन के लिए आवश्यक अभ्यास है।

(iii) यह भविष्य की सम्भावित घटनाओं के होने के बारे में भविष्यवाणी करने का प्रयास करता है।

(iv) इसमें उन सभी कारकों का परीक्षण शामिल होता है जो भूत और वर्तमान में संगठन के कार्य को प्रभावित करते हैं।

(v) यद्यपि व्यक्तिगत अवलोकन पूर्वानुमान में सहायता कर सकता है तब भी उचित यही होगा कि जोखिम कम करने के लिए विवेकपूर्ण तकनीक का प्रयोग किया जाय।

पूर्वानुमान की आवश्यकता और महत्व (Need and Importance of Forecasting)

पूर्वानुमान नियोजन प्रक्रिया की कुंजी है। नियोजन शून्यता में नहीं हो सकता। पूर्वानुमान के द्वारा भविष्य के बारे में पता लगाया जा सकता है कि जो कि नियोजन में सहायक होता है। जब तक प्रबन्धकों को यह न ज्ञात हो कि वस्तुयें किस प्रकार से होंगी, वे योजना नहीं बना सकते। इस प्रकार पूर्वानुमान एक आमुख आधार निर्धारित करता है जिसके अन्तर्गत नियोजन किया जाएगा।

पूर्वानुमान संगठन के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता करता है। प्रत्येक संगठन के निश्चित उद्देश्य होते है। ये लक्ष्य तभी प्राप्त किये जा सकते हैं

जबकि उनसे सम्बन्धित क्रिया–कलाप को कार्यान्वित किया जाए। इस सम्बन्ध में प्रश्न उठता है कि किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कौन से क्रिया–कलाप संगत है? इस प्रश्न का उत्तर क्रिया–कलाप के सम्भावित परिणाम पर निर्भर करता है और सम्भावित परिणाम केवल पूर्वानुमान के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

एक संगठन के अन्दर पूर्वानुमान परोक्ष रूप से समन्वय करता है। पूर्वानुमान सभी प्रकार की सूचना, भूत और वर्तमान दोनों पर निर्भर करता है। इस प्रकार की सूचना सभी स्रोतों–आन्तरिक एवं वाह्य से एकत्रित की जाती है। संगठन के सभी हिस्से आवश्यक सूचना एकत्रित करने में लगे रहते हैं। इस प्रक्रिया में वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं जो कि उनको पास लाने व एक दूसरे को समझने में सहायकता करते है। यह सब संगठन के विभिन्न हिस्सों में बेहतर समन्वय लाता है।

सूचना एकत्रीकरण विधि, जिसका कि ऊपर वर्णन किया है, बेहतर नियन्त्रण की ओर भी ले जाती है। सूचना द्वारा प्रबन्धक संगठन के दुर्बल पहलुओं को जान लेते हैं और उसी के अनुसार सही कदम उठाते हैं। यह प्रबन्धन को अपने अधीनस्थों पर बेहतर नियन्त्रण करने में सहायता करता है। इस प्रकार पूर्वानुमान नियन्त्रण करने में सहायता करता है।

पूर्वानुमान अनिश्चितता को दूर करने में सहायक होता है। एक बार भविष्य की घटनाऐं व उनके सम्भाव्य परिणाम साथ हो जायें तो प्रबन्धक नियोजन कर सकते हैं कि उन्हें क्या करना है और कैसे करना है। इस प्रकार पूर्वानुमान **कार्य करने का सही तरीका** चयन करने में सहायता करता है।

वास्तव में, पूर्वानुमान संगठन को सफलता की ओर ले जाता है। सभी संगठन उस वातावरण से प्रभावित होते हैं जिसमें वे कार्य करते है। इसके अतिरिक्त सभी संगठनों में अपने अन्दर ही परिवर्तन होता रहता है। ये सब पूर्वानुमान द्वारा सही समय पर पता लगाए जा सकते हैं और सही कदम उठा कर संगठन को पूर्ण रूप से सफलता की ओर ले जाया जा सकता है।

पूर्वानुमान के चरण (Steps in Forecasting)

सबसे पहले, पूर्वानुमान का लक्ष्य निर्धारित करें अर्थात् पूर्वानुमान का उद्देश्य क्या है?

दूसरा, सभी आमुख को समझें। आमुख आन्तरिक व वाह्य हो सकते है। वाह्य आमुख संगठन के लिये वाह्य प्रतिबन्ध अथवा सहायक हो सकते हैं। इनके अन्तर्गत व्यावसायिक पर्यावरण जिसमें राजनैतिक माहौल (राजनैतिक स्थिरता का स्तर), सरकारी दृष्टिकोण (अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण की सीमा), जनसांख्यकीय कारक

(लोगों द्वारा पसन्द किये जाने वाली वस्तुएँ), आर्थिक विकास का स्तर (जो लोगों की खरीदने की शक्ति को निर्धारित करता है), मूल्य अभिसूचक (जो लाभ के स्तर को निर्धारित करता है), वित्तीय नीति (कर ढांचा व सरकारी खर्चे की सीमा), आर्थिक नीति (धन की आपूर्ति की सीमा) व तकनीकी विकास (संगठन को उनके अनुसार ढालने की आवश्यकता अन्यथा वह समाप्त हो जायेगा); बाजार के कारक जैसे कि प्राकृतिक संसाधन, आधारभूत सुविधाएं, कच्चे माल की सुलभता, उनकी आपूर्ति की नियमितता, अद्यतन मशीन की सुलभता व उसका मूल्य और संगठन को स्थापित करने व चलाने के लिये वित्तीय उपलब्धता; व वस्तु का बाजार जिसमें संगठन की वस्तु की मांग, प्रतिस्पर्धा का प्रकार, जैसे कि मूल्य, गुणवत्ता विज्ञापन, नवाचार व मांग का मूल्य में परिवर्तन के सन्दर्भ में लोच शामिल होते हैं। आन्तरिक आमुख संगठन के अन्दर की घटनाएं होती हैं। इनके अन्तर्गत संगठन की मूल नीतियाँ, नीतियों को लागू करने के लिए कार्यक्रम, संगठन का ढांचा व लक्ष्य प्राप्त करने के विषय में संगठन की अपने बारे में उम्मीद सम्मिलित होती है।

तीसरा, सभी ज्ञात और उपलब्ध सूचना को सभी स्रोतों से एकत्रित करना, चाहे आन्तरिक हों या बाह्य।

चौथा, सूचना का उचित तकनीक द्वारा विश्लेषण करना।

पाँचवां, समय–समय पर वास्तविक परिणाम की पूर्वानुमान से तुलना करना और उसी के अनुसार पूर्वानुमान की सफलता की दर निकालना। कमियों के कारणों की जांच व विश्लेषण करना।

अन्ततः, उपरोक्त तुलना के आधार पर पूर्वानुमान प्रक्रिया को पुनः संरचित व परिष्कृत करना, जिससे कि भविष्य में वह पूर्णतया सटीक हो।

पूर्वानुमान की कमियाँ (Limitations in Forecasting)

पूर्वानुमान करते समय हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि चाहे इस प्रक्रिया में कितनी भी परिष्कृत तकनीकों का प्रयोग किया गया हो तब भी यह वास्तविक कथन नहीं होते वरन् मात्र परिकल्पना होते हैं।

पूर्वानुमान अधिकतर इस आमुख पर आधारित होता है कि घटनाएं बहुत लम्बे समय तक अपना रूख नहीं बदलेंगी। यह सही नहीं है क्योंकि घटनाओं में अकस्मात व तीव्र परिवर्तन हो सकते हैं जो कि अधिकतर प्रबन्ध से जुड़े लोगों के नियन्त्रण के बाहर होते हैं।

पूर्वानुमान अनेक प्रकार की सूचना पर आधारित होता है। कहीं पर भी किसी

एक कारक में परिवर्तन या त्रुटि से परिणाम काफी मात्रा तक बदल सकते हैं जिससे कि पूर्वानुमान व वास्तविक घटना में अन्तर आ सकता है।

ऐसे भी क्षेत्र हो सकते हैं जहाँ पूर्वानुमान लगाना कठिन हो या अत्यन्त हानिकारक हो। उदाहरण के लिए कर ढांचे में परिवर्तन या दो देशों के बीच युद्ध या भंयकर महामारी या प्राकृतिक आपदा का अनुमान नहीं लगाया जा सकता क्योंकि यह बीती हुई घटनाओं पर आश्रित नहीं होतीं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पूर्वानुमान केवल भविष्य की प्रवृत्ति को इंगित करते हैं और किसी भी रूप में निर्पेक्ष व अन्तिम सत्य नहीं होते।

पूर्वानुमान में यह कमी है कि प्रबन्धकों को पूर्वानुमान में हो सकने वाली त्रुटि की सीमा को भी ध्यान में रखना पड़ता है। पूर्वानुमान की अवधि जितनी दीर्घ होगी उतनी ही त्रुटि की सम्भावना बढ़ जाएगी।

पूर्वानुमान एकत्रित सूचना की गुणवत्ता व मात्रा पर निर्भर होता है जो कि आवश्यक सूचना को एकत्रित करने में व्यय किये गये धन व समय से निर्धारित होता है। बड़े व समृद्ध संगठन व्यय करने में सक्षम होते हैं, परन्तु छोटे संगठनों के पास ऐसे अभ्यासों के लिए कठिनता से ही संसाधन हो पाते हैं। इसलिए वे परिष्कृत तकनीकों का प्रयोग नहीं कर पाते जिससे कि उनके द्वारा किये गए पूर्वानुमान की विशुद्धता प्रभावित होती है।

3.6 पर्यावरण पूर्वानुमान के तरीके अथवा तकनीकें (Forecasting Methods or Techniques)

पूर्वानुमान के तरीकों को अधिकतर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता हैः–

(क) ऐतिहासिक सादृश्य विधि (Historical Analogy Method) : इसके अन्तर्गत पूर्वानुमान भूतकाल में हुए ऐतिहासिक सादृश्य पर आधारित होता है। इस प्रकार विकासशील देशों की प्रगति का विश्लेषण विकसित देशों में हुई उन्नति के सन्दर्भ में किया जा सकता है और उसके अनुरूप आने वाले समय की घटनाओं के स्वरूप का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। यह विधि सामान्य प्रवृत्ति का अनुमान लगाने में सहायक है परन्तु यह विशिष्ट प्रवृत्ति के पूर्वानुमान में बहुत अधिक कारगर सिद्ध नहीं होती।

(ख) पर्यलोकन विधि (Survey Method) : पर्यलोकन विधि में सम्बन्धित लोगों का प्रश्नावली या साक्षात्कार द्वारा परीक्षण किया जाता है। इस प्रकार ग्राहकों से विशेष वस्तुओं के विषय में उनकी पसन्द पूछी जा सकती है। पर्यवलोकन विधि का प्रयोग परिमाणात्मक व गुणात्मक सूचना को एकत्रित करने

में किया जा सकता है। समय व धन की सीमा के कारण सब लोगों का साक्षात्कार करना सम्भव नहीं है इसलिए कुछ मानक तकनीकों द्वारा एक प्रतिदर्श विकसित किया जाता है। इसमें यह ध्यान देना चाहिए कि प्रतिदर्श उस समूह का सच्चा प्रतिनिधि हो जिसकी राय संगठन प्राप्त करना चाहता है। पर्यवलोकन से एकत्र सूचना के आधार पर वर्तमान व नई वस्तुओं के विषय में पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

(ग) विचार मतदान (Opinion Polls) : विचार मतदान (opinion poll) का प्रयोग विषय में बुद्धिमान व ज्ञान रखने वाले लोगों का मत जानने के लिए किया जाता है। इस प्रकार विचार मतदान का प्रयोग चुनाव के नतीजों का अनुमान लगाने में किया जाता है। इसी प्रकार थोक विक्रेता अथवा डीलर के विचार मतदान के द्वारा अलग–अलग वस्तुओं की मांग का अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे ही विक्रय प्रतिनिधियों के विचार की भी मतगणना की जा सकती है। जहां विचार मतगणना के द्वारा विभिन्न मत निकलकर आयें वहाँ विषय पर विचार विमर्श किया जा सकता है तथा एक विशेष मत देने के कारणों की परिचर्चा की जा सकती है और उसके हिसाब से सर्वसम्मिति पर पहुंचा जा सकता है। इस अभ्यास के आधार पर भविष्य को प्रक्षिप्त किया जा सकता है।

(घ) अभिसूचक तरीका (Index Mehod) : अभिसूचक (Index) पर आधारित पूर्वानुमान उतना ही अच्छा या खराब होता है जितना कि उसका आधार बनने वाला अभिसूचक व वास्तविक मांग और अभिसूचक आधारित पूर्वानुमान में परस्पर सहसम्बन्ध। ऐसे पूर्वानुमान में उच्चस्तरीय परिशुद्धता के लिए विक्रय व अभिसूचक में सहसम्बन्ध उच्च होना आवश्यक है। इसी प्रकार अभिसूचक अंकों का प्रयोग दो अथवा अधिक कलाविधि के बीच में अर्थव्यवस्था की स्थिति को मापने के लिये किया जा सकता है। यह अभिसूचक प्रवृत्तियों, मौसमी उतार–चढ़ाव, चक्रीय चाल व अनियमित उतार–चढ़ाव का अध्ययन करने के लिए एक साधन है। इन अभिसूचक अंगों को जब एक–दूसरे के साथ सम्बन्धित या जोड़ा जाता है तो यह अर्थव्यवस्था किस दिशा में जा रही है उस ओर इंगित करता है।

(ङ) प्रवृत्तीय विधि अथवा समय–श्रृंखला विश्लेषण (The Trend Method or Time-Series Analysis) : इस विधि के अन्तर्गत पुराने आंकड़े या सूचना के आधार पर प्रवृत्ति को प्रस्तुत करके भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है। यह इस पूर्व धारणा पर आधारित है कि भविष्य भूत से ही जन्म लेता है। इस तकनीक के अन्तर्गत एक काल में हुई आर्थिक क्रिया के मुख्य सूचक अथवा परिवर्तन बिन्दु का पता लगाकर उसके आधार पर भविष्य की प्रवृत्ति का अनुमान

लगाया जाता है। इस प्रकार यदि युद्ध के कारण आवश्यक वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हुई है तो ऐसा भविष्य में भी होने की सम्भावना है। हालांकि इस प्रकार का पूर्वानुमान तभी किया जा सकता है जबकि काफी लम्बे समय के आंकड़ें प्राप्त हों और प्रवृत्ति काफी हद तक स्पष्ट व स्थायी हो।

(च) औसत विधि (Average Method) : इसका तात्पर्य यह है कि भूतकाल की मांग भविष्य की मांग की सूचक होती है। गणितीय औसत अथवा माध्य इसका एक तरीका है। दूसरा तरीका चलायमान औसत का है। छमाही चलायमान औसत पिछले 6 महीनों की मांग को 6 से भाग देने पर प्राप्त होता है। प्रत्येक माह गुजरने पर उसका आंकड़ा पिछले पांच महीनों के योग में जोड़ दिया जाता है और सबसे पहले महीने को हटा दिया जाता है। संक्षेप में, चलायमान औसत पिछले 6 महीने की प्रवृत्ति का माप है और यह श्रृंखला में अगले मान, जो कि अगले महीने की मांग होती है, का आंकलन है।

(छ) बर्हिर्वेशन (Extrapolation) : बर्हिवेशन पुराने अनुभवों के आधार पर भविष्य प्रवृत्ति को प्रस्तुत करने का एक तरीका है। इस प्रकार यह समय श्रृंखला की तरह ही है। यदि एक कम्पनी हर वर्ष अपना विक्रय एक करोड़ से बढ़ा रही है तो यह आसानी से अनुमानित किया जा सकता है कि निकट भविष्य में भी वह ऐसा करना जारी रखेगी। इस प्रकार की पूर्वानुमान तकनीक का प्रयोग उद्योग के विकास, राष्ट्रीय आय अथवा जनसंख्या प्रवृत्ति का अनुमान लगाने में किया जाता है।

(ज) लीड तथा लैग विधि (Lead and Lag Method) : इस तरीके में विभिन्न प्रकार की सांख्यिकी के ऐतहासिक व्यवहार का परीक्षण किया जाता है जिससे कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि वे सामान्य व्यावसायिक प्रवृत्ति (लीड समूह) से निरन्तर आगे हैं, प्रवृत्ति के साथ (क्वाइन्सिडैंट समूह) हैं, अथवा उससे पीछे रह गए हैं (लैग समूह)। ऐसे परिवर्तन बिन्दुओं के आधार पर पूर्वानुमान किया जाता है।

(झ) न्यूनतम वर्ग विधि (Least-Square Method) : पुराने विक्रय पर आधारित पूर्वानुमान के सही होने की संभावना होती है यदि भूत व भविष्य में परस्पर सम्बन्ध है। जब कई वर्षों की विश्वसनीय ऐतिहासिक सूचना प्राप्त हो तो उस सूचना को विक्रय प्रवृत्ति दर्शाने के लिए आलेखित करना सहायक होता है।

(ञ) इकोनोमिट्रिक माडल (Econometric Models) इकोनोमिट्रिक माडल का प्रयोग पूर्वानुमान लगाने में किया जा सकता है। यह माडल आंकड़ों का विश्लेषण करने व अनुमान लगाने के सांख्यिकीय तरीकों पर आधारित है। ये परिणात्मक रूप में एक क्रिया के चरों के परस्पर सम्बन्धों को व्यक्त करता है। इस प्रकार

ठोस राष्ट्रीय उत्पाद (जी0एन0पी0) का प्रयोग पिछले सम्बन्ध के आधार पर भविष्य के विक्रय का अनुमान लगाने में किया जाता है। इस तरीके में मुख्य चरों को समीकरणों की श्रृंखला से जोड़ा जाता है। इकोनोमिट्रिक्स सांख्यिकी, आर्थिक सिद्धान्त व गणित को मिलाकर एक माडल बनाती है व किसी निर्धारित काल की आर्थिक सिद्धान्त व गणित को मिलाकर एक माडल बनाती है व किसी निर्धारित काल की आर्थिक क्रियाओं के बारे में अनुमान लगाती है।

(ट) प्रतिगमन विश्लेषण (Regression Analysis) इसका प्रयोग दो या अधिक परस्पर सम्बन्धित क्रियाओं की श्रृंखला के सापेक्ष व्यवहार का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है। इस प्रकार इस तरीके का प्रयोग करने से एक या अधिक सम्बन्धित चरों में बदलाव के फलस्वरूप एक चर में आये बदलाव का आकलन किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर बाजार में प्रति–स्पर्धा के स्तर का नियंत्रित अथवा उदार अर्थव्यवस्था के साथ सम्बन्ध व उसका वस्तुओं की गुणवत्ता पर प्रभाव।

(ठ) आदा–प्रदा विधि (Input-Output Method) इसके अन्तर्गत प्रदा की मात्रा जानने से आदा का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। यह इस पूर्वधारणा पर आधारित है कि आदा और प्रदा में एक निश्चित सम्बन्ध है। इस प्रकार यदि हम देश की सम्पूर्ण ईंधन मांग का आंकलन कर सकते हैं तो हम रसोई गैस का कितना उत्पादन किया जाय, इस बात का पूर्वानुमान लगा सकते हैं। इसी प्रकार नये कनेक्शन की प्रतीक्षा सूची दूर–संचार विभाग द्वारा नई लाइनों की भविष्य विस्तार योजना का निर्णय लेने में सहायता कर सकती है।

बोध प्रश्न 'ब' (Check your progress 'B')–

1. पूर्वानुमान के चरण (steps) बताइये।

   ....

   ....

2. पूर्वानुमान की तकनीकों को बताइये।

   ....

   ....

3.7 पर्यावरण विश्लेषण के लाभ (Benefit of Environmental Analysis)

पर्यावरण विश्लेषण के अनेक लाभ है। कुछ प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :

- पर्यावरण विश्लेषण का विचार पर्यावरण एवं संगठन के बारे में व्यक्ति को जागरूक बनाता है।
- पर्यावरण विश्लेषण व्यवसायी को वर्तमान एवं भविष्य की चुनौतियों एवं अवसर को पहचानने में मदद करता है।
- पर्यावरण विश्लेषण व्यवसाय को प्रभावित करने वाले घटकों के बारे में बहुत ही लाभदायक एवं आवश्यक जानकारी उपलब्ध करता है।
- पर्यावरण विश्लेषण किसी उद्योग विशेष में होने वाले परिवर्तनों को समझने में मदद करता है।
- तकनीकी पूर्वानुमान भविष्य में होने वाली चुनौतियों एवं अवसर की जानकारी देता है।
- पर्यावरण विश्लेषण का एक महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह खतरों (Risks) को पहचानने में मदद करता है।
- व्यवसाय को अपने रणनीतिक निर्णय लेने में पर्यावरण विश्लेषण एक आवश्यकता है।
- व्यवसाय को अपने रणनीतिक निर्णयों में फेरबदल करने में पर्यावरण विश्लेषण मदद करता है।
- पर्यावरण विश्लेषण प्रबन्धकों को प्रगतिशील, सावधान एवं सूचित रखता है।

3.8 सारांश (Summary)

वर्तमान जटिल व्यवसायिक परिस्थितियों में व्यवसाय के लिये रणनीतिक प्रबन्धकीय निर्णयन बिना पर्याप्त एवं सटीक सूचनाओं के विश्लेषण के सम्भव नहीं है। भविष्य की रणनीति ही व्यवसाय की सफलता का आधार होती है। व्यावसायिक पर्यावरण का विश्लेषण/अनुमान रणनीतिक प्रबन्धन (Strategic Management) के लिये अति आवश्यक है। पर्यावरण विश्लेषण के लिये कई तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। जिसमें परीक्षा, खोज एवं विश्लेषण/पूर्वानुमान की विधि बहुत प्रचलित है। पूर्वानुमान की अनेक विधियां हैं जिसमें इकनोमिट्रिक माडल, प्रवृत्ति विश्लेषण तकनीक आदि प्रमुख हैं। पर्यावरण विश्लेषण आज के जटिल व्यवसायिक वातावरण में अपरिहार्य हो गया है। पर्यावरण विश्लेषण/पूर्वानुमान के अनेक लाभ है जिसकी वजह से यह अनिवार्य होता जा रहा है। पर्यावरण विश्लेषण/पूर्वानुमान की कुछ सीमायें भी हैं।

3.9 शब्दावली (Keywords)

- परीक्षण (Scanning) पर्यावरण सम्बन्धी समस्त कारकों की सामान्य निगरानी
- पूर्वानुमान (Forecasting) पर्यावरण सम्बन्धी भविष्य में परिवर्तन की दिशा/दशा का
- आकलन (Assessment) परीक्षण एवं पूर्वानुमान के बाद की रणनीति तय करना
- इकोनोमिट्रिक माडल (Econometric Model) पूर्वानुमान लगाने का सांख्यिकी माडल।

3.10 अभ्यास के प्रश्न

1. पर्यावरण विश्लेषण क्या है? पर्यावरण विश्लेषण की आवश्यकता बताइये।

   What is Environmental Analysis? Discuss the need of Environmental Analysis.

2. पर्यावरण विश्लेषण के तरीके क्या हैं ? समझाइये।

   Discuss the methods of Environmental Analysis.

3. पर्यावरण पूर्वानुमान क्या है? पूर्वानुमान की आवश्यकता एवं महत्व को समझाइये।

   What is Environmental Forecasting? Discuss the need and significance of Environment forecasting.

4. पर्यावरण विश्लेषण के क्या लाभ हैं ?

   What are the Benefits of Environmental Analysis

उपयोगी पुस्तकें (Some useful books)–

- Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.
- Tandory B & Tandon K.K., Indian Economy, Tata McGraw Hill, New Delhi.
- V. Neelem egam, Business Environment, Vrinda Publications (P) Ltd., Delhi.
- Mishra & Puri, Indian Economy.
- Dutta & Sundaram, Indian Economy.

- जगदीश सरन माथुर, व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- एक.के. सिंह, व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
- ए.के. पन्त, व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- ए.के. मालवीय, व्यावसायिक पर्यारवरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- जे.एन. मिश्र, भारतीय अर्थव्यवस्था
- जगदीश प्रकाश, राज्य एवं व्यवसाय, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

इकाई–4 : आर्थिक प्रणाली (Economic system)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 आर्थिक प्रणाली से आशय एवं परिभाषा

4.4 आर्थिक प्रणाली के मूल तत्व

4.5 आर्थिक प्रणाली के महत्वपूर्ण कार्य

4.6 आर्थिक प्रणाली के प्रकार

4.6.1 पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली

4.6.2 समाजवादी आर्थिक प्रणाली

4.6.3 मिश्रित आर्थिक प्रणाली

4.7 भारत में मिश्रित आर्थिक प्रणाली

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 अभ्यास के प्रश्न

4.1 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेगें कि:

- आर्थिक प्रणाली का आशय एवं इसके मूल तत्वों के बारे में जान सकें
- आर्थिक प्रणाली के विभिन्न प्रकारों की जानकारी हो सकें।
- पूंजीवादी, समाजवादी तथा मिश्रित आर्थिक प्रणालियों की विशेषतायें तथा उनके गुणदोष की जानकारी कर सकें।
- भारत में मिश्रित आर्थिक प्रणाली अपनाये जाने के कारणों की जानकारी कर सकें।

4.2 प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक प्रणाली किसी भी देश में आर्थिक क्रियाओं के संगठन पर प्रकाश डालती है। उत्पादन के साधनों का स्वामित्व निजी व्यक्तियों के हाथों में, सरकार के पास या फिर दोनों के हाथों में होता है। अब स्वामित्व अधिकतर निजी

व्यक्तियों के हाथों में हो तो ऐसी आर्थिक व्यवस्था को पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था कहते है। यदि सरकार के हाथ में हो तो इसे समाजवादी अर्थव्यवस्था कहते हे। इंग्लैण्ड, संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी फ्रांस पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के उदाहरण कहे जा सकते है। चीन, दक्षिणकोरिया आदि समाजवादी अर्थव्यवस्था के उदाहरण कहे जाते है। जब निजी व्यक्तियों और सरकार दोनो बड़ी मात्रा में साधनों के स्वामी हो तो इसे मिश्रित आर्थिक प्रणाली कहते है। वास्तव में, एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों का अनुपात अधिकतर निजी क्षेत्र के पास रहता है जबकि कम लेकिन काफी महत्वपूर्ण, भाग सरकार के हाथ में रहता है। इसीलिये मिश्रित अर्थव्यवस्था को मिश्रित पूंजीवादी अर्थव्यवस्था भी कहते है। एशिया के अधिकतर देश एवं विश्व के अन्य देश भी इसी वर्ग में आते है। भारत ने भी मिश्रित आर्थिक प्रणाली अपनाई है।

4.3 आर्थिक प्रणाली से आशय एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Economic System)

आर्थिक प्रणाली समाज की आर्थिक क्रियाओं के संगठन पर प्रकाश डालती है तथा इसमें उपभोग, उत्पादन, वितरण एवं विनिमय के तरीकों का अध्ययन किया जाता है। निजी व्यवसाय का क्षेत्र तथा आर्थिक क्रियाओं में सरकार के हस्तक्षेप की सीमा प्रमुख रूप से आर्थिक प्रणाली की प्रकृति पर निर्भर करती है।

आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत वे संस्थाएँ सम्मिलित की जा सकती है, जिन्हें देश या देश का समूह, अपने निवासियों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए विभिन्न साधनों के प्रयोग हेतु अपनाता है। दूसरे शब्दों में, आर्थिक प्रणाली का अर्थ वैधानिक तथा संस्थागत ढँाचे (legal and institutional frame-work) से हैं, जिसके अन्तर्गत आर्थिक क्रियाएँ संचालित की जाती है। प्रत्येक देश में मानव के आर्थिक जीवन में कम या अधिक राज्य हस्तक्षेप भी पाया जाता है। इसलिए आर्थिक प्रणाली का रूप राज्य के हस्तक्षेप की मात्रा या सीमा पर निर्भर करता है। आर्थिक प्रणाली की एक उचित परिभाषा निम्न प्रकार से दी जा सकती है–

"आर्थिक प्रणाली संस्थाओं का एक ढाँचा है, जिसके द्वारा उत्पत्ति के साधनों तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के प्रयोग पर सामाजिक नियन्त्रण किया जाता है।"[1]

1 "Economic system is the frame-work of institutions by which the use of the means of production and of their products is socially contolled."

4.4 आर्थिक प्रणाली के मूल तत्व (Basic Elements of Economic System)

किसी भी देश की आर्थिक प्रणाली देश के सम्पूर्ण घटकों द्वारा निर्धारित होती है, जिसमें निम्नलिखित तत्त्व शामिल होते हैं–

• **व्यक्ति (People)** – इसमें देश के भीतर लोगों की विभिन्न भूमिकाओं जैसे– ऋणदाता, ग्राहक, नियोक्ता, कर्मचारी, स्वामी, पूर्तिकर्ता आदि के सहयोग एवं सम्बन्धों से आर्थिक प्रणाली का निर्माण होता है, परन्तु यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि कौन–कौन से व्यक्ति विद्यमान आर्थिक प्रणाली में शामिल हैं।

• **संसाधन (Resources)** – आर्थिक प्रणाली का संचालन उत्पादन एवं वितरण के विभिन्न साधनों जैसे– भूमि, श्रम, पूँजी, साहस, संगठन तथा बाजार आदि से होता है। ये साधन किसी देश की दशा एवं दिशा (condition and directin) निर्धारित करने में महत्वपूर्ण तत्व के रूप में शामिल होते हैं।

• **प्रतिफल (Consideration)** – उत्पादन एवं वितरण के साधन किस प्रेरणा से कार्य करते हैं? साहसी इन्हें कार्य पर क्यों लगाता है? प्रतिफल प्राप्त करने की आशा में ही उत्पादन के समस्त साधन अपने प्रयासों का योगदान करते हैं। इस प्रकार लाभ एवं सामाजिक कल्याण समस्त आर्थिक प्रणालियों का प्रमुख आधार है।

• **नियमन (Regulation)** – समस्त आर्थिक प्रणाली कुछ व्यक्तियों, संस्थाओं अथवा घटकों से नियमित एवं नियन्त्रित होती है। व्यावसायिक एवं औद्योगिक क्रियाओं का नियमन करने वाले प्रमुख घटक प्रतिस्पर्धी (competitor), माँग एवं पूर्ति (demand and supply) सरकार आदि हैं।

4.5 आर्थिक प्रणाली के महत्वपूर्ण कार्य (Important functions of Economic System)

किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रणाली द्वारा महत्वपूर्ण निर्णय या कार्य के माध्यम से मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का राष्ट्रहित में प्रयोग किया जाता है। इनके द्वारा राष्ट्र की उत्पादन एवं उपभोग की क्रियाओं से सम्बन्धित निम्नलिखित निर्णय लिये जाते हैं–

- कौन सी वस्तु उत्पादित की जाय तथा उत्पादन कितनी मात्रा में हो (Which Commodity should be produced and in which Quantity)

किसी देश का सर्वप्रथम कार्य इस बात का निर्धारण करना है कि कौन

सी वस्तु का उत्पादन किया जाय ताकि समाज में व्यक्तियों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकें, अर्थात प्रत्येक अर्थव्यवस्था को उत्पादन की संरचना का निर्धारण करना पड़ता है। जिन वस्तुओं के उत्पादन का निर्णय लिया जाता है, उसके अनुसार ही अर्थव्यवस्था में सीमित साधनों का वितरण करना होता है, तत्पश्चात् यह निश्चित करना होता है कि उपभोक्ता या पूँजीगत वस्तुओं की कितनी मात्राओं का उत्पादन किया जाय, ताकि माँग एवं पूर्ति में उचित सामंजस्य बना रहे।

- **वस्तु का उत्पादन कैसे किया जाय (How shall the goods be produced)**

आर्थिक प्रणाली का दूसरा प्रमुख कार्य है कि, "निर्धारित वस्तुओं का उत्पादन कैसे किया जाय? अर्थात् किन विधियों द्वारा उत्पादन किया जाय? दूसरे शब्दों में, उत्पादन का संगठन कैसे किया जाय? इस कार्य से अभिप्राय है कि विभिन्न उद्योगों में किन फर्मों को उत्पादन करना है तथा वे आवश्यक साधनों को कैसे प्राप्त करेंगी। उत्पादन के लिए सर्वोत्तम तकनीक कौन सी है? आदि का निर्धारण किया जाता है।"

- **वस्तुओं का वितरण कैसे किया जाय (How shall the goods be distributed)**

उत्पादन प्राप्त कर लेने के पश्चात यह प्रश्न उठता है कि उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं को उत्पादकों तथा व्यापारियों, उत्पादकों, सरकार, उपभोक्ताओं तथा परिवारों में किस प्रकार वितरित किया जाय। अर्थात उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं का समाज के विभिन्न जरूरतमन्द वर्गों में वितरण कैसे किया जाय।

उपरोक्त तीनों प्रश्नों का हल निकालने के लिए आर्थिक प्रणाली महत्वपूर्ण निर्णय लेती है तथा इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्य करती हैं।

4.7 आर्थिक प्रणाली के प्रकार (Kinds of Economic System)

स्वामित्व के आधार पर आर्थिक प्रणालियों को मोटे तौर पर निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

- पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली (Capitalistic Economic System)
- समाजवादी आर्थिक प्रणाली (Socialistic Economic System)
- मिश्रित आर्थिक प्रणाली (Mixed Economic System)

4.6.1 पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली (Capitalistic Economic System)

(i) लूक्स एवं हूट– "पूँजीवादी अर्थव्यवस्था वह अर्थव्यवस्था है जिसमें प्राकृतिक एवं मनुष्यगत पूँजी पर व्यक्तियों का निजी अधिकार होता है तथा इनका

उपयोग वे अपने लाभ के लिए करते हैं।"

Loucks and Hoot 'Capitalism is a system of economic organisation feathered by the private ownership and the use for private profit of nature-made and man-made capital.']

(ii) ए0सी0 पीगू : "पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अथवा पूँजीवादी व्यवस्था वह है जिसमें उत्पत्ति के संसाधनों का मुख्य भाग पूँजीवादी उद्योगों में लगा होता है– एक पूँजीवादी उद्योग वह है जिसमें उत्पादन के भौतिक साधन निजी व्यक्ति के अधिकार में होते हैं अथवा वे उनको किराये के रूप में ले लेते हैं तथा उनका उपयोग उनकी आज्ञानुसार इस भाँति होता है कि उनकी सहायता से उत्पन्न वस्तुयें या सेवायें लाभ पर बेची जायें।

[A.C. Pigou- 'A capitalist economy or capitalist system is one the main part of whose productive resources is engaged in capitalist industries .... A capitalist industry is one in which material instruments of production are owned or hired by private persons and are operated at their orders with a view to selling at a porfit the goods or services that they help to produce.']

पूँजीवादी के दो प्रकार हो सकते हैं–

(i) प्राचीन, स्वतंत्र पूँजीवाद जिसमें सरकार का हस्तक्षेप नगण्य होता है अथवा अनुपस्थित रहता है, तथा

(ii) नवीन नियमित या मिश्रित पूँजीवाद जिसमें सरकारी हस्तक्षेप पर्याप्त मात्रा में होता है।

पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताएं

(Important Characterstics of Capitalistic Economic system)

विशुद्ध पूँजीवाद की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(i) निजी स्वामित्व (Private ownership)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का स्वयं मालिक होता है। उसे उत्पादन के विभिन्न साधनों को अपने पास रखने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। प्रत्येक व्यक्ति सम्पत्ति रख सकता है, बेच सकता है या अपनी इच्छानुसार उपयोग कर सकता है।

(ii) उपभोक्ता की प्रभुसत्ता (Consumers' Sovereignty)-पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। उत्पादक उपभोक्ता की माँग व रूचि के अनुसार उत्पादन करता है। उपभोक्ता की स्वतंत्रता

में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती है, इसीलिए बेन्हम (Benham) ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की तुलना राजा से की है।

(iii) उत्तराधिकार (Inheritance)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसमें उत्तराधिकार के अधिकार का पाया जाना है। इस अर्थव्यवस्था में पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति का स्वामी उसका पुत्र हो जाता है। पूँजीवाद को जीवित रखने हेतु उत्तराधिकार का अधिकार बनाये रखना आवश्यक होता है।

(iv) बचत एवं विनियोग की स्वतंत्रता (Freedom to save and invest)- उत्तराधिकार का अधिकार लोगों में बचत करने तथा पूँजी संचय को प्रोत्साहन देता है। अपने परिवार की सुख–सुविधा के लिए लोग बचत करते हैं तथा यही बचत पूँजी संचय में वृद्धि करती है। इस पूँजी को अपनी इच्छानुसार विनियोग करने की स्वतंत्रता होती है।

(v) मूल्य यंत्र (Price Mechanism)- मूल्य–यंत्र सम्पूर्ण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का संचालन करता है। इसकी सहायता से ही एक उत्पादक यह निर्धारित करता है कि किस वस्तु का कितना उत्पादन किया जाय। दूसरी ओर उपभोक्ता भी इस यंत्र को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय लेता है कि किस वस्तु के कहाँ से और कितनी मात्रा में खरीदा जाय।

(vi) प्रतियोगिता (Competition)- प्रतियोगिता पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है। जो उत्पादक अन्य उत्पादकों की तुलना में अधिक कुशल, अनुभवी एवं शक्तिशाली होता है, वह प्रतियोगिता में सफल होता है। अकुशल उत्पादकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की उत्पादन लागत अधिक होती है। कुशल उत्पादकों द्वारा निर्मित वस्तुओं की लागत कम आती है। अतः वे सस्ते मूल्य पर उपभोक्ताओं को वस्तुएं उपलब्ध करा पाने में सफल रहते हैं जिससे उनकी मांग बढ़ती है।

(vii) आर्थिक कार्य की स्वतंत्रता (Freedom of Economic Activities)- पूँजीवाद में प्रत्येक व्यक्ति को आर्थिक कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। वह अपनी इच्छानुसार उत्पादन प्रारम्भ एवं बंद कर सकता है। अपना लाभ बढ़ाने के लिए वह उत्पादन प्रणाली में भी परिवर्तन कर सकता है।

(viii) साहसी की महत्वपूर्ण भूमिका (Important Role of Entrepreneur)- पूँजीवाद में साहसी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। साहसी द्वारा उत्पादन के साधनों को संगठित करके वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन को सम्भव

बनाया जाता है। वह सदैव ऐसा निर्णय लेने की कोशिश करता है ताकि उसके लाभ में वृद्धि हो सके।

(ix) व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता (Freedom of Choice of Occupation)- एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यतानुसार व्यवसाय चुनने के लिए स्वतंत्र होता है। इस स्वतंत्रता से कर्मचारी अपने श्रम के लिए सौदेबाजी करने योग्य बनता है।

(x) आय की असमानता (Inequality of Income)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सदैव आय की असमानता पायी जाती है। इस अर्थव्यवस्था में समाज दो वर्गों—पूँजीपति तथा श्रमिक में बँट जाता है जिनमें सदैव आपसी संघर्ष चलता रहता है। नियोक्ता अपने श्रमिकों को न्यूनतम भुगतान करके अपने लाभ को अधिकतम करना चाहते हैं। दूसरी ओर, श्रमिक अधिक से अधिक मजदूरी प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार दोनो वर्गों में संघर्ष होता है।

(xi) केन्द्रीय नियोजन का अभाव (Absence of Central Planning)- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था है, अतः इसमें केन्द्रीय नियोजन का अभाव रहता है। दूसरे शब्दों में, पूँजीवादी प्रणाली की विभिन्न आर्थिक इकाइयाँ किसी केन्द्रीय योजना से निर्देशित समन्वित अथवा नियंत्रित नहीं होती हैं। इसमें समस्त कार्य स्वतंत्रतापूर्वक मूल्य—यंत्र की सहायता द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। यह एक स्वतःशासित अर्थव्यवस्था है।

(xii) सरकार की सीमित भूमिका (Limited Role of Government)- केन्द्रीय नियोजन के अभाव से यह तात्पर्य नहीं है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सरकार की बिल्कुल भूमिका नहीं होती है। पूँजीवादी प्रणाली को सुव्यवस्थित रूप से संचालित करने हेतु कहीं—कहीं सरकारी हस्तक्षेप की नितान्त आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणार्थ—सम्पत्ति के अधिकारों को परिभाषित करना, समुदाय विशेष की आवश्यकताओं की संतुष्टि को सुनिश्चित करना, इत्यादि। इसके बावजूद सरकारी हस्तक्षेप अत्यन्त सीमित होता है।

व्यवहार में विशुद्ध पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का कोई उदाहरण नहीं मिलता है। वर्तमान में पायी जाने वाली पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में पर्याप्त मात्रा में सरकारी हस्तक्षेप होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, स्विटजरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, ब्रिटेन, इटली, फ्रांस, स्वीडन, डेन्मार्क, बेल्जियम, इत्यादि ऐसे राष्ट्र हैं जहां

आधुनिक पूँजीवाद अथवा मिश्रित प्रणाली पायी जाती है। अनियमित अथवा विशुद्ध पूँजीवाद में निम्नलिखित महत्वपूर्ण दोष हैं जिनकी वजह से पूँजीवाद का आधुनिक स्वरूप सामने आया है।

(i) विनियोग सदैव लाभ को ध्यान में रखकर किया जाता है। उच्च वर्ग हेतु उत्पादित वस्तुओं में लाभ का मार्जिन अधिक होता है। अतः उद्योगपति उन्हीं वस्तुओं का उत्पान करेंगे। इस प्रकार विशुद्ध पूँजीवाद में उत्पादन के संसाधनों का आवंटन सर्वश्रेष्ठ विधि से नहीं हो पाता है।

(ii) स्वतंत्र प्रतियोगिता होने के कारण बड़ी फर्मों द्वारा एकाधिकार प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार एकाधिकार के समस्त दोष इसमें आ जाते हैं।

(iii) सम्पत्ति रखने के अधिकार तथा व्यवसाय की स्वतंत्रता से आय तथा धन के केन्द्रीयकरण का संकट उत्पन्न हो जाता है तथा अमीरों तथा श्रमिकों के बीच की खाई और चौड़ी हो जाती है।

4.6.2 समाजवादी आर्थिक प्रणाली (Socialistic Economic System)

समाजवाद के बारे में इतना अधिक लिखा तथा कहा गया है कि इसकी एक उपयुक्त परिभाषा देना अत्यन्त कठिन कार्य है। लूक्स एवं हूट (Loucks and Hoot) ने सही कहा है कि 'बहुत सी वस्तुओं को समाजवाद कहा गया है तथा समाजवाद के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है।' (Socialism has been called many things and many things have been called socialism) सरल शब्दों में, समाजवाद से तात्पर्य ऐसी आर्थिक प्रणाली से है जिसमें उत्पादन के साधनों पर सरकार का या तो अधिकार रहता है या उसके नियंत्रण में रहते हैं। इसमें विनियोग, संसाधनों को आवंटन, उत्पादन, वितरण, उपभोग, आय, इत्यादि सरकार द्वारा निर्देशित एवं नियमित किये जाते हैं। लूक्स एवं हूट ने सही लिखा है, ''समाजवाद एक आन्दोलन है जिसका उद्देश्य सभी प्रकार के प्राकृतिक एवं मनुष्यकृत उत्पादन की वस्तुओं का जो कि बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रयोग की जाती है, स्वामित्व एवं प्रबंध व्यक्तियों के स्थान पर सम्पूर्ण समाज के हाथ में देना होता है और उद्देश्य यह होता है कि राष्ट्रीय आय में हुई वृद्धि का इस प्रकार समान वितरण किया जाय कि व्यक्ति के आर्थिक उत्साह, आर्थिक स्वतंत्रता एवं उपभोग के चुनाव में कोई विशेष हानि न होने पाये।''

समाजवादी आर्थिक प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताएँ (Important Charactersitics of Socialistic Economic System)

समाजवादी व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित है—

(i) सरकार का स्वामित्व एवं नियंत्रण (Government Ownership and Control)- समाजवादी व्यवस्था में उत्पत्ति के प्रमुख साधनों पर सरकार का अधिकार होता है, अर्थात् इस अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति किसी व्यक्ति की न होकर सम्पूर्ण समाज की होती है। कुछ समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में निजी क्षेत्र की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है, लेकिन उस अवस्था में राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए सरकार विनियोग का आवंटन एवं उत्पादन–संरचना का निर्देशन एवं नियमन करती है।

(ii) आर्थिक नियोजन (Economic Planning)- समाजवादी व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता आर्थिक नियोजन होती है जो इसे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था से एकदम अलग करती है। समाजवाद में मूल्य–यंत्र नहीं पाया जाता है। इसमें अर्थव्यवस्था में स्थायित्व लाने के लिए, आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। इसमें उत्पादन, वितरण आदि से सम्बन्धित निर्णय एक केन्द्रीय योजना के अन्तर्गत किये जाते हैं।

(iii) आय का समान वितरण (Equal Distribution of Income)- समाजवाद का उदय समाज में धन के असमान वितरण को दूर करने हेतु हुआ। धनी एवं निर्धन के मध्य व्याप्त आर्थिक असमानता समाप्त करना ही समाजवाद का प्रमुख लक्ष्य होता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मजदूरी दर का निर्धारण, प्रशुल्क नीति, विभिन्न आर्थिक उपायों इत्यादि कदमों को सरकार द्वारा उठाया जाता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यतानुसार कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है। आर्थिक दृष्टि से इसमें वैसा भेद–भाव नहीं होता जैसा कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में होता है।

(iv) प्रतियोगिता का अभाव (Lack of Competition) चूँकि इसमें उत्पादन, वितरण आदि से सम्बन्धित निर्णय एक केन्द्रीय संस्था द्वारा लिये जाते हैं इसलिए इसमें विक्रेताओं एवं उत्पादकों की अधिक संख्या नहीं होती। इसके परिणामस्वरूप समाजवाद में प्रतियोगिता की अनुपस्थिति रहती है। प्रतियोगिता न होने से साधनों का अपव्यय, विज्ञापन एवं प्रचार–प्रसार पर होने वाले व्यय इत्यादि में महत्वपूर्ण कमी आती है तथा पूँजी के दुरूपयोग पर अंकुश लगता है।

(v) व्यवसाय की स्वतंत्रता की अनुपस्थित (Freedom of Occupation is absent)- इसमें व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता नहीं होती है अथवा सरकार द्वारा प्रतिबन्धित होती है। एक व्यक्तिगत व्यवसायिक इकाई

अपनी इच्छानुसार व्यवसाय करने के लिए स्वतंत्र नहीं होती है।

(vi) शोषण न होना (No Explotitation)- समाजवादी अर्थव्यवस्था में पूँजीपति एवं श्रमिकों के वर्ग–भेद को मिटा दिया जाता है। श्रमिकों का शोषण समाप्त हो जाता है। इस अर्थव्यवस्था में लाभ–उद्देश्य के स्थान पर समाज कल्याण या सेवा उद्देश्य से कार्य सम्पादित किये जाते हैं।

समाजवाद की महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख ऊपर किया गया है। व्यवहार में आज कई प्रकार के समाजवाद पाये जाते हैं– जैसे वैज्ञानिक समाजवाद, राजकीय समाजवाद, साम्यवाद इत्यादि। किन्तु इन विभिन्न प्रकार के समाजवाद में एक विशेषता समान रूप से सभी में पायी जाती है– पूंजीवादी व्यवस्था की तुलना में उत्पादन के साधनों पर सरकार का कहीं अधिक नियंत्रण होना। उपरोक्त विशेषताओं के बावजूद समाजवादी अर्थव्यवस्था अनेक दोषों से ग्रसित है। कुछ प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं:

(i) समाजवाद में उपभोक्ताओं को वस्तुएँ चुनने की स्वतंत्रता नहीं होती है। राज्य द्वारा जिन वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, उपभोक्ता द्वारा उन्हीं वस्तुओं का उपयोग किया जाता है।

(ii) समाजवादी अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद की तरह ऐसा कोई यंत्र नहीं होता है जिससे यह ज्ञात हो सके कि उपभोक्ता किस वस्तु की अधिक मांग कर रहे हैं तथा किन साधनों का अनुकूलतम उपयोग हो रहा है। पूँजीवाद में जो लाभ मूल्य–यंत्र प्रणाली से प्राप्त किये जा सकते हैं, वे लाभ समाजवाद की केन्द्रीय नियोजन प्रणाली से प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं।

(iii) चूँकि समाजवाद में निजी व्यवसाय की स्वतंत्रता नहीं होती है, इसलिए योग्य व अनुभवी लोगों की सेवाओं से राष्ट्र वंचित रहता है।

(iv) समाजवादी व्यवस्था में लाभ भावना एवं प्रतियोगिता का अभाव, उत्तराधिकार की समाप्ति, आदि के कारण व्यक्ति को कार्य करने की आर्थिक प्रेरणा नहीं मिलती है। समाजवाद के प्रत्येक श्रमिक एक सरकारी कर्मचारी होता है, इसलिए उसे अधिक कार्य करने हेतु प्रोत्साहन नहीं मिलता है।

(v) समाजवादी अर्थव्यवस्था में नौकरशाही का प्रभुत्व होता है जिसमें अक्सर महत्वपूर्ण निर्णयों को टाल दिया जाता है। कभी–कभी किसी कार्य हेतु उच्च अधिकारियों की स्वीकृति की आवश्यकता होती है, इसमें काफी समय लग जाता है, जिससे समस्या समाप्त होने के स्थान

पर ज्यों–कि–त्यों बनी रहती है।

(vi) समाजवाद की प्रकृति केन्द्रीयकरण की होती है। इसमें सभी शक्ति व अधिकार राज्य में केन्द्रित हो जाते हैं। शक्ति का केन्द्रीयकरण धन के केन्द्रीयकरण से कम खतरनाक नहीं होता है।

समाजवादी आर्थिक प्रणाली एवं समाजवादी आर्थिक प्रणाली में अन्तर– (Difference between capitalistic economic system and socialist economic system)

क्रम सं0	पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली	समाजवादी आर्थिक प्रणाली
i.	यह एक मुक्त अर्थव्यवस्था होती है।	यह एक नियन्त्रित अर्थव्यवस्था होती है।
ii.	इसमें उत्पत्ति के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है।	इसमें उत्पत्ति के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है।
iii.	मूल्य संयन्त्र (Price mechanism) स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करता है।	मूल्य संयन्त्र नियमित एवं नियंत्रित होता है।
iv.	इस प्रणाली में उद्देश्य 'लाभ प्राप्त करना' होता है	इसमें 'सामाजिक कल्याण' का उद्देश्य होता है।
v.	इसमें आर्थिक असमानताएं पायी जाती हैं।	इसमें आर्थिक समानता पर बल दिया जाता है।
vi.	इसमें वर्ग–संघर्ष पनपता है।	इसमें वर्ग संघर्ष का अभाव पाया जाता है।
vii.	इस प्रणाली में व्यापार चक्र आते रहते हैं।	इसमें व्यापार चक्र का अभाव व आर्थिक स्थिरता पायी जाती है।
viii.	अर्थव्यवस्था में स्वतन्त्र प्रतियोगिता पायी जाती है।	इस प्रणाली में प्रतियोगिता का अभाव पाया जाता है।
ix.	अर्थव्यवस्था को इस प्रणाली से आर्थिक प्रोत्साहन मिलता है।	इसके अन्तर्गत आर्थिक शिथिलता पायी जाती है।
x.	अर्थव्यवस्था में कुशलता एवं विशेषज्ञता पायी जाती है।	इस प्रणाली में भ्रष्टाचार एवं लालफीताशाही का बोलबाला रहता है।

4.6.3 मिश्रित आर्थिक प्रणाली (Mixed Economic System)

पूँजीवादी की कमियों को दूर करने के लिए समाजवाद का जन्म हुआ। समाजवादी अर्थव्यव्था पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विपरीत कार्य करती है। लेकिन इसमें पूँजीवाद के लाभों से भी वंचित रहना पड़ता है। इस प्रकार हमारे समक्ष दो अर्थव्यव्स्थाओं में से एक चुनाव करना होता है। दोनों की ही अपनी–अपनी विशेषताएं एवं लाभ–हानि हैं। इन दोनों अर्थव्यवस्थाओं को सबसे बड़ा दोष यह है कि एक के लाभ–दूसरे से प्राप्त नहीं किये जा सकते। अतः एक ऐसी अर्थव्यवस्था की आवश्यकता महसूस की गयी जो दोनों अर्थव्यवस्थाओं के लाभों को एक साथ प्राप्त कर सके। इस आवश्यकता को पूरा करने हेतु मिश्रित अर्थव्यवस्था का उदय हुआ। इसमें पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों के लाभों का मिश्रण होता है। इस व्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र का सह–अस्तित्व रहता है। इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन, वितरण तथा राष्ट्र के आर्थिक विकास के कार्यक्रम न तो पूरी तरह से सरकार के हाथ में रहते हैं और न ही निजी उद्यमियों के हाथ में।

मिश्रित आर्थिक प्रणाली का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Mixed Economic System)

मिश्रित अर्थव्यवस्था पूँजीवाद एवं समाजवाद के बीच की व्यवस्था है। इसमें निजी तथा सार्वजनिक दोनों साथ–साथ चलते हैं। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में देश आर्थिक विकास के लिए निजी क्षेत्र पर विशेष महत्व देते हुए आवश्यक सामाजिक नियन्त्रण भी रखा जाता है। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में कुछ उद्योग पूर्णतया सरकारी क्षेत्र में होते है तो कुछ पूर्णतया निजी क्षेत्र में होते है तथा कुछ उद्योगों में निजी तथा सार्वजनिक दोनो ही भाग ले सकते हैं। दोनों के कार्य करने का क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है, परन्तु इसमें निजी क्षेत्र की प्राथमिकता रहती है। दोनों अपने–अपने क्षेत्र में इस प्रकार मिलकर कार्य करते हैं कि बिना शोषण के सभी वर्गों के आर्थिक कल्याण में वृद्धि तथा तीव्र आर्थिक विकास प्राप्त हो सके।

प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गयी मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिभाषाओं का विवेचन निम्नलिखित प्रकार से है–

प्रो0 जे0डी0 खत्री के अनुसार– ''मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है, जिसमें समुदाय के सभी वर्गों के आर्थिक कल्याण के सम्वर्द्धन के लिए सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र को विशेष भूमिकाएं दी जाती हैं।''[2]

2 A mixed economic syste is a system in which the public sector and the private sector are alloted their respective rules in promoting the economic welfare of the all sections of the community. **Prof. J.D. Khatri.**

मुण्ड एवं रोनाल्ड वोल्फ (Mund and Ronald Wolf)- के शब्दों में "मिश्रित अर्थव्यवस्था को निजी व सरकारी स्वामित्व या नियन्त्रित उपक्रमों की एक मिली–जुली व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें व्यावसायिक क्रिया अनेक व्यावसायिक स्वरूपों अथवा अवस्थाओं द्वारा संचालित की जाती है न कि केवल एक के द्वारा।[3]

एम0सी0 वैश्य– के मतानुसार, "मिश्रित अर्थव्यवस्था दो विरोधी विचार–धाराओं के मध्य का मार्ग है, जिनमें एक ओर तो उत्पादन एवं अन्य आर्थिक क्रियाओं के समाजीकरण के पक्ष में तर्क देती है तथा दूसरी ओर पूर्ण आर्थिक स्वतन्त्रता में आस्था रखती है।"[4]

जे0डब्ल्यू. ग्रोव (G.W. Grove) के अनुसार– "मिश्रित अर्थव्यवस्था की पूर्व धारणाओं में से एक धारणा यह है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन एवं उपभोग से सम्बद्ध मुख्य निर्णयों को प्रभावित करने में निजी संस्थानों को स्वतन्त्र पूँजीवादी व्यवस्था के अधीन प्राप्त स्वतन्त्रता से कम स्वतन्त्रता प्राप्त होती है तथा सार्वजनिक उद्योग सरकार के कठोर नियन्त्रण से मुक्त होते हैं।"[5]

उपरोक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि, "मिश्रित अर्थव्यवस्था ऐसी आर्थिक प्रणाली है जिसमें निजी एवं सार्वजनिक उद्यमों का सह–अस्तित्व होता है तथा मानवीय मूल्यों, आर्थिक विकास एवं समाज कल्याण को समन्वित किया जाता है।" इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत राज्य विभिन्न आर्थिक क्रियाओं का आवंटन विभिन्न क्षेत्रों में उनके महत्व, प्रभाव क्षेत्र शोषण तत्व, कल्याण तत्व एवं अर्थव्यवस्था में उसकी स्थिति के आधार पर करता है, जिससे साधनों का अधिकतम उपयोग समाज के कल्याण के लिए करना सम्भव होता है।

मिश्रित आर्थिक प्रणाली अपनाने के कारण (Causes of adoption of Mixed Economic System)

वैश्विक अर्थव्यवस्था के जिन देशों में मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया है, वहाँ इसके अपनाने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं–

3 A mixed economy may be defined as system of mixed private and governmentally owned or controlled enterprise, it is one in which business activity is carried on with numerous business forms and arrangements, not just one- **Mund and Ronald Wolf.**

4 The mixed economy is the outcome of the compromise between the two widely different schools of thought-the one strongly pleading for the socialisation of all the means of production and entire economic acivity in mass and the other which champions because of laissez faire par excellence. **M.C. Vaish.**

5 One of the pre-sppositions of mixed economy is that private firms are less free to control major decisions about production and counsumption than they would be under capitalist free enterprises and that public industry is free from government restrains than it would be under centrally directed socialist enterprise." J.W. Grove.

1. **पूँजीवाद के दोष दूर करना (To remove the demerit of capitalism)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत पूँजीवादी शक्तियों पर सरकारी नियमन एवं नियन्त्रण होता है, जिस कारण निजी उद्योगपति जनहित के विरूद्ध कार्य नहीं कर पाते हैं। मिश्रित अर्थव्यवस्था में ब्याज की दर, निवेश एवं रोजगार में नियोजन प्रक्रिया द्वारा व्यापार चक्रों पर अंकुश लगाया जाता है। नियोजित अर्थव्यवस्था होने के कारण इसके कार्यों में दोहरेपन की अपव्ययता से भी बचा जा सकता है।

2. **पूँजीवाद के समस्त लाभ प्राप्त होना (To achieve all benefits of capitalism)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत पूँजीवादी प्रणाली के समस्त दोषों को दूर करके लाभ प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था मे निजी क्षेत्र की सीमा को आवश्यकतानुसार घटा–बढ़ाकर अधिकतम कुशलता या लाभ प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

3. **समाजवाद के लाभ प्राप्त होना (To achieve benefits of socialism)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में समाजवादी प्रणाली के गुणों का समावेश होने तथा सरकारी नियमन, नियोजन तथा नियन्त्रण के द्वारा विकास प्रक्रिया अपनाये जाने के कारण आय एवं सम्पत्ति का समान वितरण समभव होता है। उत्पादन के साधनों का अनुकूलतम एवं विवेकपूर्ण विदोहन से जन सामान्य को लाभ प्राप्त होता है।

4. **आधारभूत एवं जनहित उद्योग का विकास (Development of basic & public utility industries)** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सार्वजनिक कल्याण एवं जनहित को ध्यान में रखकर सरकार ऐसी औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करती है, जहाँ भारी मात्रा में निवेश होता है तथा लाभार्जन क्षमता कम होती है। ऐसी उद्योग देश की संरचना, सुरक्षा, विकास एवं जन कल्याण के लिए आवश्यक एवं उपयोगी होते है। इन उद्योगों में मुख्यतया रेलवे, बिजली, गैस, पानी, संचार, यातायात तथा सुरक्षा सम्बन्धी सार्वजनिक उपक्रम आते हैं। दूसरी तरफ ऐसे उद्योगों में बहुत अधिक निवेश की आवश्कयता पड़ती है तथा लाभ नहीं के बराबर होता है, जिस कारण निजी क्षेत्र आकर्षित नहीं होता है। अतः इसके लिए सरकार निजी क्षेत्र के साथ मिलकर इन उद्योगों का संचालन करती है, जो मिश्रित अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण कार्य होता है।

मिश्रित आर्थिक प्रणाली की विशेषताएँ (Characteristics of Mixed Economic System)

मिश्रित अर्थव्यवस्था की संकल्पना का आधारिक तत्व सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के मध्य कार्यों का स्पष्ट विभाजन होता है तथा विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र का सापेक्षिक महत्व पृथक हो सकता है। इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

- **विभिन्न क्षेत्रों का समावेश (Presence of various sector)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में विभिन्न क्षेत्रों जैसे–सार्वजनिक, निजी, मिश्रित तथा सहकारी क्षेत्रों की विद्यमानता रहती है, जिनकी अपनी–अपनी विशेषताएँ होती हैं तथा पृथक–पृथक लाभ व गुण होते हैं। इसी कारण इस अर्थव्यवस्था को विभिन्न क्षेत्रों के लाभ प्राप्त हो जाते हैं, जिससे सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है।
- **निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र का सह–अस्तित्व (Co-existence of private & public sector)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों साथ–साथ कार्य करते हैं। सरकार द्वारा निजी उद्योग तथा सार्वजनिक उद्योगों का अलग–अलग क्षेत्र निश्चित कर दिया जाता है। सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत लोहा इस्पात, रासायनिक उद्योग, परिवहन, विद्युत, खनिज व संचार, आयुध आदि शामिल होते हैं, जोकि निजी क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि आधारित लघु एवं मध्यम स्तरीय तथा उपभोक्ता आधारित उद्योग आदि शामिल होते हैं। दोनों ही क्षेत्र एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं।
- **सार्वजनिक हित सर्वोपरि (Maximization of public interest)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक हित का स्थान सर्वोपरि होता है। इसके लिए सरकार निजी क्षेत्र के साथ मिलकर कार्य करती है तथा आवश्यकतानुसार निजी क्षेत्र को निर्देशित एवं नियन्त्रित भी करती रहती है। जरूरत पड़ने पर निजी क्षेत्र को सरकार आर्थिक मदद या सुविधाएं भी प्रदान करती है।
- **आय की समानता के लिए प्रयास (Efforts for equality of income)-** समाज में आय व सम्पत्ति की असमानता को कम करने के लिए सरकार नियम, नीतियों आदि के माध्यम से आवश्यक प्रयास करती रहती है जिसके लिए विभिन्न प्रकार के कर जैसे–आयकर, सम्पत्ति कर, उपहार कर, सेवा कर आदि माध्यमों द्वारा अधिक आय प्राप्त करने वालों से कर वसूल कर

देश के विकास में लगाया जाता है जो कम आय प्राप्त करने वालों को अप्रत्यक्ष रूप से आय बढ़ाने में मदद करता है। साथ ही साथ एकाधिकारी प्रवृत्ति पर सरकारी नियन्त्रण होता है।

- **आर्थिक नियोजन (Economic planning)-** आधुनिक युग में आर्थिक नियोजन से अभिप्राय केवल आर्थिक प्रगति से नहीं लगाया जाता है, बल्कि सामाजिक न्याय को भी शामिल किया जाता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में सरकारी एवं नियंत्रित निजी क्षेत्रों के द्वारा नियोजन का संचालन किया जाता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत आर्थिक नियोजन के द्वारा देश की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना में परिवर्तन करके अर्थव्यवस्था में आर्थिक प्रगति को गतिमान किया जाता है।
- **सरकारी नियन्त्रण (Government control)** मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की सहभागिता होती है तथा देश की दशा एवं दिशा तय करने में इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः सरकार निजी क्षेत्र के साथ काम करते हुए अनेक कानूनों, नियमों, नीतियों आदि का निर्माण करती है जिससे निजी क्षेत्र भी राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति में देश एवं सरकार का सहभागी बने। निजी क्षेत्र द्वारा व्यक्तिगत लाभ के लिए अधिक प्रयास किया जाता है अतः इसके लिए भी सरकारी नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है।
- **आर्थिक स्वतन्त्रता (Economic freedom)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में व्यक्ति की आवश्यक स्वतंत्रताओं को कम किये बिना ही केन्द्रीय नियन्त्रण एवं नियमन सम्भव होता है। आर्थिक क्षेत्र में व्यक्ति का उपभोग या व्यवसाय को चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। किसी भी देश के लोगों को प्राप्त आर्थिक स्वतन्त्रता की विद्यमानता का मापदण्ड निजी, सहकारी एवं मिश्रित क्षेत्र कहे जा सकते हैं।
- **साधनों का कुशल उपयोग (Fair use of resources)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक नियोजन की पद्धति अपनाये जाने के कारण साधनों को निजी, सार्वजनिक, संयुक्त एवं सहकारी क्षेत्रों में एक पूर्वनिर्धारित व सुनिश्चित योजनानुसार बांटा जाता हैं, जिस कारण समस्त साधनों का कुशलतम प्रयोग सुनिश्चित होता है।
- **नियोजन के लाभ (Benefit of planning)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था को एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार चलाया जाता है। अतः ऐसी अर्थव्यवस्था को आर्थिक नियोजन के समस्त लाभ प्राप्त हो सकते हैं, जैसे साधनों का विवेकपूर्ण बंटवारा, व्यापार चक्रों से मुक्ति, तीव्र आर्थिक विकास, कुशलता

का ऊँचा स्तर आदि।

- **व्यक्तिगत उपक्रम को महत्व (Importance of personal enterprise)-** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तिगत उपक्रम को अधिक महत्व दिया जाता है। सरकार द्वारा उद्योगों को वित्तीय सहायता, अनुदान, अनुज्ञापत्र, कर में छूट, बाजार व्यवस्था, उद्योगों का स्थानीयकरण आदि के लिए विशेष सुविधा उपलब्ध करायी जाती है। इस अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सरकार निजी उद्यमी को मान्यता देती है तथा ऐसे अवसर प्रदान करती रहती है, जिनसे व्यक्तिगत उपक्रम राष्ट्रीय प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दे सकें।
- **सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र का संयुक्त विकास (Joint development of public & private sector)-** सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र मिश्रित आर्थव्यवस्था के लिए समान महत्व रखते हैं। अतः सरकार का यह प्रयास रहता है कि दोनों क्षेत्र संयुक्त रूप से फले–फूलें, इसके लिए सरकार निजी क्षेत्र को साथ लेकर चलने के लिए आर्थिक प्रोत्साहन व सहायता प्रदान करती है व संरक्षण देती है।

इस प्रकार मिश्रित अर्थव्यवस्था की उपरोक्त विशेषताओं का अध्ययन करने के उपरान्त स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था दो अन्य अर्थव्यवस्थाओं पूंजीवादी एवं समाजवादी की तुलना में अधिक लोक कल्याणकारी, विकासोन्मुखी व संतुलित आर्थिक प्रणाली होती है।

बोध प्रश्न : (Check your progress)

1. आर्थिक प्रणाली से आप क्या समझते हैं ?
2. आर्थिक प्रणाली के विभिन्न प्रकारों को संक्षेप में बताइये?
3. पूंजीवादी एवं समाजवादी आर्थिक प्रणाली में अन्तर बताइये?
4. मिश्रित आर्थिक प्रणाली को अपनाये जाने के कारण बताइये?

4.7 भारत में मिश्रित आर्थिक प्रणाली (Mixed Economic System in India)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था थी, क्योंकि देश में ब्रिटिश सरकार की व्यापारिक नीतियाँ पूर्णरूपेण लागू थीं। ब्रिटिश सरकार की व्यापारिक नीतियाँ पूर्णरूपेण पूँजीवादी थीं व इसमें व्यापारिक गतिविधियों (पूंजी का) का वर्चस्व था। साथ ही ब्रिटेन ने जब–जब अपनी आर्थिक एवं व्यापारिक नीतियों में परिवर्तन किया तब–तब भारत को भी अपनी आर्थिक एवं व्यापारिक

नीतियों में उसी के अनुरूप परिवर्तन करने के लिए विवश होना पड़ा, परन्तु स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् देश की अर्थव्यवस्था को तीव्र गति से विकसित करने की अत्यधिक आवश्यकता थी। अतः देश में सर्वप्रथम 6 अप्रैल 1948 को प्रथम औद्योगिक नीति के लागू होने से ही मिश्रित अर्थव्यवस्था की शुरूआत हुई। मिश्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से जहाँ एक ओर व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को स्थान मिलता है, वहीं दूसरी ओर सरकारी नियन्त्रण भी बना रहता है। भारत, मिश्रित अर्थव्यवस्था के लक्ष्य को अपनाकर समस्त नियोजन प्रक्रिया सम्पन्न कर रहा है। हमारे देश की पंचवर्षीय योजनाएं देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था का उल्लेखनीय उदाहरण हैं। इन योजनाओं में सार्वजनिक एवं निजी दोनों क्षेत्रों को पर्याप्त स्थान दिया गया है। देश में जहाँ एक ओर सरकार सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार कर रही है, वहीं दूसरी ओर निजी क्षेत्र में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व विकास को पर्याप्त स्थान दिया जा रहा है।

भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्व भी मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्थापना में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। नीति निदेर्शक सिद्धान्तों में स्पष्ट उल्लेख है कि भारतीय भौतिक साधनों को इस प्रकार वितरित करना है कि धन एवं उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण (एकत्रीकरण) न हो पाये। संविधान में भौतिक साधनों को राजकीय अथवा निजी किसी भी एक क्षेत्र के अधिकार में रखने की चर्चा नहीं की गयी है। इसका निर्णय राज्य या सरकार के अधिकार में है कि अर्थव्यवस्था के किस क्षेत्र का संचालन निजी क्षेत्र द्वारा किया जाय।

भारतीय संविधान द्वारा नयी सामाजिक व्यवस्था में स्वतन्त्रता, निजी प्रारम्भिकता एवं व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लाभों के लिए प्रावधान है तथा दूसरी ओर इन क्षेत्रों पर सामाजिक नियन्त्रण का लाभ उठाने के लिए भी व्यवस्था है, जिन पर सामाजिक नियन्त्रण द्वारा जनहित सम्भव होता है। संविधान द्वारा निर्धारित व्यवस्था में निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों को स्थान दिया गया है तथा इन दोनों को एक दूसरे के पूरक एवं सहायक के रूप में कार्य करने का आयोजन किया गया है।

देश की प्रथम औद्योगिक नीति, 1948 में लागू हुई, जो भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की जन्मदाता है। इस औद्योगिक नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में उद्योगों को निम्न तीन भागों में विभाजित किया गया था।

- ऐसे उद्योग जिनका संचालन केवल केन्द्र सरकार ही कर सकती थी,
- ऐसे उद्योग जिनके विकास का उत्तरदायित्व राज्य सरकार पर था तथा
- ऐसे उद्योग जो पूर्णतः निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिये गये थे।

देश में विभिन्न औद्योगिक नीतियों एवं पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से

मिश्रित अर्थव्यवस्था को और मजबूत करने पर बल दिया है तथा अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण क्षेत्र पर समान व न्यायपूर्ण ध्यान देकर उच्च संतुलित आर्थिक विकास के लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास किया गया है।

4.8 सारांश (Summary)

आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत वे संस्थायें सम्मिलित की जा सकती हैं जिन्हें देश अपने निवासियों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये अपनाता है। आर्थिक प्रणाली यह निश्चित करती है कि कौन सी वस्तु, कैसे और कितनी उत्पादित की जाय तथा उसका वितरण कैसे किया जाय।

स्वामित्व के आधार पर आर्थिक प्रणाली तीन प्रकार की होती है। पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली, समाजवादी आर्थिक प्रणाली एवं मिश्रित आर्थिक प्रणाली। पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के दोषों के कारण समाजवादी आर्थिक प्रणाली अपनाई गई। परन्तु समाजवादी एवं पूंजीवादी दोनों ही प्रणालियों के दोषों को दूर करने के लिये एक नयी प्रणाली जिसे मिश्रित आर्थिक प्रणाली कहते हैं, अपनाई जाने लगी।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मिश्रित आर्थिक प्रणाली अपनाई गई। मिश्रित आर्थिक प्रणाली लागू करने के लिये भारत सरकार को अपनी आर्थिक नीति एवं अधिनियम उसी के अनुरूप बनाना पड़ा।

4.9 शब्दावली

पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली (Capilalistic Economic System) वह प्रणाली है जिसमें उत्पादन एवं सेवा के सभी साधनों का स्वामित्व निजी हाथों में होता है जो इन साधनों का उपयोग अपने लाभ को अधिकतम करने के लिये करते है।

समाजवादी आर्थिक प्रणाली (Socialistic Economic System) वह अर्थव्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व होता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economis System) वह अर्थव्यवस्था है जिसमें निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र साथ–साथ चलते हैं।

आर्थिक नियोजन (Economic Planning) देश के त्वरित आर्थिक विकास के लिये नियोजित तरीके से आर्थिक विकास का तरीका।

4.10 अभ्यास के प्रश्न

1. आर्थिक प्रणाली के प्रमुख कार्य क्या हैं?

What are the main functions of Economic System?

2. पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by Capitalistic Economic System?

3. पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

Describe main characteristics of Capitalistic Economic System.

4. समाजवादी अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by Socialistic Economy?

5. समाजवादी आर्थिक प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

Explain the main characteristics of Socialistic Economic System.

6. मिश्रित आर्थिक प्रणाली से आप क्या समझते हैं? इसकी मुख्य विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

What do you understand by mixed economy system explain its main characteristics.

इकाई–5 : संस्कृति एवं व्यवसाय (Culture and Business)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 व्यवसाय का सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण

5.4 संस्कृति का आशय

5.5 संस्कृति की विशेषतायें या प्रकृति

5.6 संस्कृति के प्रकार

5.7 संस्कृति के घटक

5.8 प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक परिवर्तन

5.9 बदलती हुई मूल्य व्यवस्था

5.10 सामाजिक – सांस्कृतिक मूल्यों का व्यवसाय एवं समाज पर प्रभाव

5.11 सारांश

5.12 शब्दावली

5.13 अभ्यास के प्रश्न

5.1 उद्देश्य (Ojectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- व्यवसाय के सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण के बारे में बता सकें।
- उन सांस्कृतिक कारकों को पहचान सकें जिनका सामाजिक पर्यावरण के साथ सम्बन्ध होता है।
- संस्कृति के आशय, उसकी प्रकृति तथा प्रकार के बारे में जान सकें।
- संस्कृत के विभिन्न घटक क्या है? जान सकें।
- प्रौद्योगिकी का सामाजिक परिवर्तन के साथ क्या सम्बन्ध है? जान सकें।
- व्यवसाय एवं समाज पर बदलते हुये मूल्यों का क्या प्रभाव पड़ रहा है? जान सकें।

5.2 प्रस्तावना (Introduction)

संस्कृति व्यावसायिक पर्यावरण का बहुत ही जटिल एवं गूढ़ घटक है। संस्कृति के विभिन्न आयामों को भलीभांति समझना उत्पाद–विकास, उत्पाद प्रोत्साहन, व्यावसायिक रणनीति, मानव संसाधन प्रबन्धन एवं सामाजिक, राजनैतिक पर्यावरण के प्रबन्धन के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है। जो व्यावसायिक संगठन संस्कृति के विभिन्न घटकों को भली–भांति अध्ययन किये बिना अपना कार्य करते हैं, वे प्रायः सफल नहीं होते। बहुराष्ट्रीय व्यावसायिक संगठन सांस्कृतिक वातावरण को एक बहुत ही परेशानी पैदा करने वाला घटक मानते है। कई बार प्रबन्धकों की सफलता/विफलता संस्कृति के ज्ञान/अज्ञान के कारण होती है। सांस्कृतिक विशेषतायें व्यवसाय को प्रगतिशील रणनीति बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, विशेषरूप से रीति रिवाज, फैशन, परम्परायें, पसन्द, नापसन्द आदि। एक अमेरिकन कम्पनी को इटली में पापकार्न को बनाकर बेचने में इसलिए सफलता नहीं मिली क्योंकि इटली के लोग 'पापकार्न' को जानवरों का खाद्य पदार्थ मानते है। इसी प्रकार नेस्ले कम्पनी विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न प्रकार के स्वादों की कॉफी बनाकर बेचती है।

5.3 व्यवसाय का सामाजिक–संस्कृति पर्यावरण (Socio Cultural Environment of Business)

व्यवसाय का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण सम्पूर्ण व्यावसायिक पर्यावरण का ही अभिन्न अंग है। कोई भी व्यवसायिक इकाई सामाजिक घटकों तथा मूल्यों की अवहेलना करके अपने अस्तित्व को सुरक्षित नहीं रख सकती है। समाज व संस्कृति व्यवसाय का मूलभूत आधार कहे जाते है। व्यवसायिक निर्णयों को समाज की मान्यतायें, विश्वास, मूल्य तथा जीवन शैली महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। उपभोक्तावाद तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की विचारधाराओं ने व्यवसाय को उपभोक्ता तथा समाज अभिमुखी बना दिया है।

समाज में रहते हुए, व्यवसाय में कार्यरत एक व्यवसायिक इकाई को सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को जानना आवश्यक हो जाता है। व्यावसायिक सफलता के लिए व्यवसायिक इकाई को ऐसा करना जरूरी है। सामाजिक मूल्यों का सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष से न होकर सम्पूर्ण समाज से होता है। अतः ये सभी व्यवसायों के व्यवहारों को प्रभावित करते है। वर्तमान में कोई भी व्यवसाय सामाजिक मूल्यों की अवहेलना करके अपना प्रतिष्ठित स्थान नहीं बना सकता है। जो व्यवसायी सामाजिक मूल्यों के प्रति सजग रहा है उसके व्यवसाय की गरिमा में वृद्धि हुई है। सामाजिक मूल्यों में समय के अनुसार परिवर्तन भी होते रहते

हैं और नयी सामाजिक मान्यताओं की स्थापना होती रहती है। नयी मान्यताओं में से कुछ प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित है :

- व्यवसाय के प्रति पहले की तुलना में अधिक सद्भावना व विश्वास पाया जाता है।
- व्यवसाय में प्रतियोगिता की भावना का उदय हुआ है।
- व्यक्तियों के पद व घरानों के स्थान पर उनके कार्यों, योग्यताओं तथा व्यवहार का सम्मान होने लगा है।
- जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय के स्थान पर व्यक्ति के प्रति आदर–भावना में वृद्धि हुई है।
- समाज में यह विश्वास बढ़ा है कि कार्य की इच्छा व क्षमता रखने वाले व्यक्तियों के लिए समाज में हमेशा 'अवसर' उपलब्ध रहते हैं।
- शिक्षा, प्रशिक्षण तथा ज्ञानार्जन के प्रति रूचि बढ़ी है।
- विज्ञान एवं तकनीक तथा तर्कसंगत बातों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है।
- कार्य के नये ढंग, विधि, प्रविधि तथा तकनीक विकसित करने के लिए प्रयोग तथा शोध व अनुसंधान का महत्व बढ़ा है।
- उच्च जीवन–स्तर यापन में विश्वास के फलस्वरूप नयी सामाजिक संरचना ने व्यवसाय की कार्य प्रणालियों तथा पद्धतियों में गहन व मूलभूत परिवर्तन किये हैं।

सामाजिक मूल्यों की तरह ही सांस्कृतिक मूल्य भी व्यवसाय को नया आकार व स्वरूप देते हैं। यह सामाजिक संरचना तथा समाज के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की झलक व्यवसाय के दृष्टिकोण, विचारधाराओं तथा मान्यताओं एवं उसके द्वारा लिये गये निर्णयों में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। सांस्कृतिक मूल्य ही मानसिक क्रान्ति, मानसिक विकास तथा मानसिकता को संवारने में सहायक होते हैं। व्यवसाय की क्रियाएँ, आचरण, कार्यशैली, भविष्य के प्रति आशा आदि जैसे पहलू सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित होते हैं। सांस्कृतिक मूल्य ही व्यवसाय में नैतिकता, उचित–अनुचित, सदाचार तथा समाज के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराते हैं। फार्मर एवं रिचमैन ने सामाजिक–सांस्कृतिक घटकों में इस तथ्य को महत्वपूर्ण माना है कि समाज का व्यवसाय के प्रति क्या दृष्टिकोण

है? इनके विचार में समाज में व्यवसाय के प्रति निम्नलिखित दृष्टिकोण हो सकते हैं:

- प्रबन्ध, व्यवसाय तथा उद्यमशीलता के प्रति समाज का दृष्टिकोण।
- सत्ता, अधिकार, शक्ति तथा अधीनस्थों के प्रति दृष्टिकोण।
- श्रम–प्रबन्ध, पूँजी–प्रबन्ध आदि समूहों के मध्य सहयोग की सीमा।
- वर्ग संरचना, वैयक्तिक गतिशीलता, सन्दर्भ समूहों के प्रति दृष्टिकोण।
- कार्य सम्पादित करने, दायित्व ग्रहण करने, उपलब्धि आदि के प्रति दृष्टिकोण।
- धन, भौतिक लाभों, उपयोगिताओं व सम्पत्ति के प्रति दृष्टिकोण।
- परिवर्तनों, जोखिमों, साहस आदि के प्रति दृष्टिकोण।

सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों में समाज व संस्कृति अन्तर्व्याप्त है तथा दोनों का गहरा आपसी सम्बन्ध है। सामाजिक मूल्य, मूल रूप से सांस्कृतिक अवधारणाओं तथा संस्कारों के प्रभाव से सृजित होते हैं। इसी तरह संस्कृति व संस्कारों का पोषण एवं संरक्षण सामाजिक संरचना में ही अन्तर्निहित है।

5.4 संस्कृति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitions of Culture)

ई. डब्ल्यू. टेलर के अनुसार, "संस्कृति वह जटिल समग्रता (Complex whole) है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून प्रथा तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं व आदतों को शामिल किया जाता है, जो मनुष्य द्वारा समाज का एक सदस्य होने के नाते प्राप्त की जाती है।" संस्कृति मानव की सर्वश्रेष्ठ धरोहर है, जिसकी सहायता से वह पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ता जा रहा है। संस्कृति के अभाव में मानव समाज की रचना सम्भव नहीं है। संस्कृति एक सामाजिक विरासत है जिसे भौतिक तथा अभौतिक अथवा मूर्त व अमूर्त भागों में विभक्त किया जा सकता है। लोबी के अनुसार सम्पूर्ण सामाजिक परम्परा (Whole of Social Tradition) को संस्कृति कहते हैं।

संस्कृति मनुष्य के सीखे हुए व्यवहार–प्रतिमानों का योग है। मनुष्य जिस समाज में जन्म लेता है, उसी संस्कृति को धीरे–धीरे समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखता है। एक मनुष्य का लालन–पालन किसी सांस्कृतिक पर्यावरण में ही होता है। संस्कृति में प्रचलित रीति–रिवाजों, धर्म, दर्शन, संगीत, कला, विज्ञान प्रथाओं इत्यादि का प्रभाव मनुष्य के व्यक्तित्व पर पड़ता है। सभी समाजों में

धर्म, परिवार, विवाह, रिश्ते–नातेदारी, प्रथाएँ इत्यादि देखने को मिलती है, चाहे इनके बाहरी आवरण में कुछ अन्तर क्यों न हो। प्रत्येक संस्कृति में कुछ तत्व ऐसे होते हैं जो सभी संस्कृतियों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

5.5 संस्कृति की विशेषताएँ या प्रकृति (Characteristics or Nature of Culture)

संस्कृति की विशेषताएँ या प्रकृति को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है :

- संस्कृति किसी समाज की एक अमूल्य धरोहर होती है।
- संस्कृति मानव–निर्मित होती है।
- संस्कृति का हस्तान्तरण पीढी–दर–पीढ़ी होता रहता है।
- संस्कृति वंशानुक्रमण में प्राप्त होती है।
- संस्कृति सीखी व अपनायी जाती है।
- संस्कृति में सामाजिक गुण शामिल रहता है।
- संस्कृति समूह के लिए आदर्श होती है।
- प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है।
- संस्कृति में अनुकूलन की क्षमता होती है।
- संस्कृति में संतुलन एवं संगठन होता है।
- संस्कृति मानव आवश्यकताओं को पूरा करती है।
- मानव व्यक्तित्व के निर्माण से संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- संस्कृति मानव एवं जीवन से ऊपर तथा श्रेष्ठ होती है।

संस्कृत तथा संस्कृति दोनों ही 'संस्कार' शब्द से बने हैं। 'संस्कार' शब्द का अर्थ है कुछ कृत्यों को विधि के अनुसार करना। एक हिन्दू जन्म से ही विभिन्न प्रकार के संस्कारों को पूरा करता है जिनमें उसे अनेक प्रकार की भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। संस्कृति का अर्थ विभिन्न संस्कारों द्वारा सामाजिक जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति है। संस्कारों को निभाने पर ही एक मानव श्रेष्ठ सामाजिक प्राणी बनता है।

5.6 संस्कृति के प्रकार (Types of Culture)

संस्कृति दो प्रकार की हो सकती है : (1) भौतिक संस्कृति, तथा (2) अभौतिक संस्कृति।

- **भौतिक संस्कृति (Material Culture) –** मनुष्य द्वारा निर्मित भौतिक तथा मूर्त वस्तुओं को भौतिक संस्कृति में शामिल किया जाता है। मनुष्य ने विभिन्न प्रकृतिदत्त वस्तुओं व शक्तियों को परिवर्तित करके अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया है। ये सभी भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत आती है। भौतिक संस्कृति में साइकिल, स्कूटर, कार, पेन–पेन्सिल, कागज, पंखे, कूलर, फ्रिज, बल्ब, रेल, जहाज, वायुयान, टेलीफोन, मोबाइल इत्यादि सभी आते हैं। भौतिक संस्कृति के सभी अंगों व तत्वों को सूचीबद्ध करन सरल कार्य नहीं है। मानव समाज के विकास के साथ–साथ भौतिक संस्कृति का भी विकास हुआ तथा पुरानी पीढ़ी की तुलना में नयी पीढ़ी के पास भौतिक संस्कृति अधिक है।
- **अभौतिक संस्कृति (Non-Material Culture)–**इस संस्कृति में सामान्यतः सामाजिक विरासत में प्राप्त विश्वास, विचार, व्यवहार, प्रथा, रीति–रिवाज, मनोवृत्ति, ज्ञान, साहित्य, भाषा, संगीत, धर्म, नैतिकता इत्यादि को शामि किया जाता है। ये पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे चलती है तथा प्रत्येक पीढ़ी में इसका अर्जन व परिवर्तन भी सम्भव होता है। यदि कोई व्यक्ति अपने समाज के रीति–रिवाजों प्रथाओं, धर्म व नैतिकता के विरूद्ध कार्य करता है तो उसे आलोचना या निन्दा का शिकार होना पड़ता है। महत्वपूर्ण है कि अभौतिक संस्कृति भौतिक संस्कृति की तुलना में कम परिवर्तनशील है तथा इसमें अधिक स्थायित्व पाया जाता है।

5.7 सांस्कृतिक से घटक (Cultural Factors)

'संस्कृति' शब्द के अन्तर्गत मूल्य, मापदंड, कलाकृतियां तथा लोगों के स्वीकृत व्यवहार के स्वरूप आते हैं जिनका बहुत लम्बे काल के अंतर्गत समाज में विकास हुआ है। संस्कृति की परिभाषा व्यवहार की समग्रता (totality of behaviour) के रूप में भी दी जाती है जिसे मानव समाज आपने पुरखों से सीखता है और फिर उन्हें आगे आने वाली पीढ़ी को सिखाता है।

समाज में जो सांस्कृतिक परिवर्तन हुआ है तथा अभी भी जो हो रहा है उसके कारक रहे हैं– विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में प्रगति, बड़े पैमाने के

उद्योगों का विकास तथा देश के अंदर एवं देश के बाहर परिवहन और संचार के साधनों में सुधार। औद्योगिक प्रगति के चलते विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं के लिए मांग होने लगी है, लोगों की रूचि और पसंद में परिवर्तन हुआ है तथा इन सभी का प्रभाव लोगों की आदतों और रीति–रिवाजों पर पड़ा है।

धर्म (Regligion)–

धर्म संस्कृति का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। यह मानवीय क्रियाओं के प्रति लोगों की अभिवृत्तियों, उनके नैतिक मूल्यों और आचार–नीतियों को प्रभावित करता है। भारत में व्यवसाय को इसलिए बुरा माना गया है कि इसका संबंध धन अर्जन से है जिसे धर्म अच्छा नहीं मानता। लेकिन समय बीतने के साथ–साथ इस धारणा में परिवर्तन आया है। फिर भी ईमानदारी सच्चाई तथा कष्ट में पड़े हुए लोगों के प्रति सहानुभूति ऐसे मौलिक मूल्य हैं जिनका धर्म के साथ गहरा संबंध होता है और इन्हें अपनाना लोग अच्छा मानते हैं। सामाजिक शक्ति के रूप में धर्म ने तो लोगों के बीच मजबूत संवेदात्मक बंधन की व्यवस्था की है परन्तु दूसरी ओर धार्मिक कट्टरपंथिता ने लोगों के दृष्टिकोण को फिरकावादी बना दिया है और इसके चलते लोग दूसरों के मत के प्रति हठधर्मी और असहिष्णु हो गये हैं।

भारतीय समाज विभिन्न धर्मों के लोगों से बना है। अलग–अलग धार्मिक समुदायों में अलग–अलग पंथ एवं संप्रदाय हैं। लोग अपनी आस्था के अनुसार धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करते हैं। उनकी आस्थाओं, आदतों और रीति–रिवाजों में उनके धर्म की झलक मिलती है। धर्म निरपेक्षता को भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष माना जाता है। धर्मनिरपेक्षता से आशय यह होता है कि राज्य, नैतिक सिद्धांत, शिक्षा आदि का धर्म से कोई संबंध नहीं होता। भारत के संविधान में यह सुनिश्चित कर दिया गया है कि भारत के नागरिकों को अपने–अपने धर्मों को पालने का अधिकार है परन्तु राज्य का कोई धर्म नहीं होगा। भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। इस प्रकार लोग अपने निजी और सामाजिक जीवन में अपने–अपने धार्मिक अनुष्ठानों का पालन करते हैं लेकिन उनके सामाजिक दायित्वों पर धर्म का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

धर्म निरपेक्षता के लाभकारी प्रभावों का परीक्षण करने पर हम पाएंगे कि इसका क्या महत्व है। पहली बात तो यह है कि शिक्षा, रोजगार तथा सरकारी कार्यों से संबंधित लोगों के सार्वजनिक जीवन में धर्म के आधार पर उनके बीच कोई भेदभाव नहीं किया जाता। दूसरी बात है कि विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के अनुयायी अपनी सामान्य समस्याओं का समाधान एक साथ मिलकर करते

हैं। खाद्य पदार्थों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के व्यवसाय के संबंध में ग्राहकों के साथ धार्मिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता। इसके अतिरिक्त चूँकि सभी धर्मों के बुनियादी मूल्य तथा आचार–नीतियां एक जैसी हैं अतः सामान्य आधार पर उनके बीच एकता कायम रखी जा सकती है।

मूल्य (values)

संस्कृति का एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व मूल्य है। सभी समाजों के लोगों की मान्यता होती है कि कुछ आचार–विचार उनके लिए उचित होंगे। इन्हें मूल्य कहा जाता है। मूल्य प्रणाली से आशय यह होता है कि कुछ कार्यों को उनके उचित होने की प्राथमिकता और वांछनीय के सापेक्ष महत्व के आधार पर किया जाए। इसी के आधार पर व्यक्ति तथा व्यक्तियों का समूह अच्छे और बुरे के बीच अंतर कर पाता है। वह जान पाता है कि 'क्या करना चाहिए' और 'क्या नहीं करना चाहिए'।

सामाजिक संदर्भ में मूल्यों के सापेक्ष महत्व को समझने के लिए उन्हें विभिन्न प्रकार के वर्गों में बांटा जा सकता है। जैसे कि सैद्धांतिक मूल्य (सत्यता और तर्कसंगतता), आर्थिक मूल्य (भौतिक लाभ और व्यावहारिकता), सामाजिक मूल्य (लोगों के प्रति प्रेम, समानता), राजनीतिक मूल्य (शक्ति प्राप्त करना), धार्मिक मूल्य (नैतिकता, सद्व्यवहार) और उपयोगितावादी मूल्य (अधिक लोगों की अधिकतम भलाई)। किसी मूल्य विशेष को कितनी प्राथमिकता दी जाती है यह इस बात पर निर्भर करता है कि समाज में विभिन्न हितों वाले कौन से लोग हैं।

पश्चिम के समाजों में जिन मूल्यों की प्रधानता है वे एशिया के देशों के मूल्यों से भिन्न हैं। लेकिन मूल्य स्थायी (static) नहीं होते। मध्य युग में पश्चिम के देशों में धार्मिक मूल्यों की प्रधानता थी। लेकिन अब वहां स्थिति बिल्कुल विपरीत हो गई है। मध्य युग में द्रव्य और संपत्ति की प्राप्ति (आर्थिक मूल्य) को दोषपूर्ण माना जाता था लेकिन पूंजीवादी समाज का तो यह प्रमुखगुण माना जाने लगा है। आगे चलकर अल्पविकसित देशों में भी ऐसा ही हुआ। भारत के स्वतंत्र होने के बाद के पिछले 50 वर्षों के दौरान इस देश के लोगों ने पाश्चात्य मूल्यों को अपना लिया है, विशेषतः नगरी क्षेत्रों में धार्मिक और सामाजिक मूल्यों के स्थान पर लोग अब आर्थिक और राजनीतिक मूल्यों पर अधिक बल देने लगे हैं।

5.8 प्रौद्योगिकी और सामाजिक परिवर्तन (Technology and Social Change)

सामाजिक परिवर्तनों को लाने में प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति का बहुत

बड़ा योगदान रहा है। गत्यात्मक सामाजिक वातावरण में प्रौद्योगिकी प्रायः गुणक का कार्य करती है। उदाहरणार्थ इंटर्नल कंबुशन इंजन के आविष्कार और मोटरगाड़ियों के निर्माण की तकनीक का केवल व्यक्तियों और वस्तुओं के परिवहन एवं लोगों की गतिशीलता पर ही असर नहीं पड़ा बल्कि इन सबका प्रभाव आवास के स्थान, उपभोग के स्वरूप और जीवन शैली पर भी पड़ा है। प्रौद्योगिकीय प्रगति का एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ है कि उत्पादिता में वृद्धि हो गई है तथा उत्पादों की किस्मों में सुधार हुआ है। उत्पादिता में वृद्धि होने तथा अच्छी किस्म की वस्तुओं के बनने का लाभकारी प्रभाव सम्पूर्ण सामाजिक प्रणाली पर पड़ा है इन सबके फलस्वरूप अधिकाधिक लोग अब पहले से बेहतर और सुरक्षित जीवन जीने लगे हैं। समय के साथ–साथ प्रौद्योगिकीय प्रगति के फलस्वरूप जीवन स्तर में सुधार हुआ है, बीमारियों से मरने वालों की संख्या घटी है तथा पर्यावरण पर नियंत्रण की मात्रा बढ़ी है।

आधुनिक दूर संचार प्रणाली भी प्रौद्योगिकीय प्रगति का परिणाम है। एक ही साथ दूर–दूर के क्षेत्रों तक संचार की सुविधा हो जाने से ज्ञान तथा संदेश के प्रसार का कार्य आसान हो गया है। इससे समय तथा शक्ति की बहुत अधिक बचत होने लगी है। टेलीकांफ्रेसिग तथा अन्य संचार विधियों द्वारा दूरस्थ शिक्षा प्रणाली ने ज्ञान के प्रसार में बहुत अधिक योगदान दिया है। ऑडियो–विजुअल तथा इलेक्ट्रॉनिक माध्यम (टेलीविजन) ने नये उत्पादों के विपणन तथा वर्तमान उत्पादों की सुधरी हुई किस्मों के विपणन के कार्य को बहुत अधिक आसान बना दिया है।

प्रौद्योगिकीय प्रगति के चलते श्रम की बचत करने वाले उपकरण आए हैं तथा जो काम हाथ से किए जाते थे वे अब स्वचालित मशीनों से किए जाते हैं और कार्यकुशलता बढ़ गई है। इन सबके फलस्वरूप आवश्यक हो गया है कि अधिकाधिक रूप से तकनीकी में दक्ष कामगारों को काम पर लगाया जाए। बड़े–बड़े संगठनों में लेखाकरण, भंडारण तथा आंकड़ों संबंधी जिन कार्यों को हाथ में लिया जाता था उनका वहां पर कंप्यूटरीकरण किया जा रहा है। पत्र व्यवहार करने तथा प्रलेखों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिए फैक्स और इंटरनेट सुविधाओं का प्रयोग किया जाने लगा है।

कुल मिलाकर देखने पर हम पाते हैं कि आज आधुनिक समाज की विशेषता उत्पादन, वितरण, परिवहन और संचार की ऐसी प्रणाली है जो पिछले दो सदियों में हुए प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों पर आधारित है। इससे बहुत बड़ी संख्या में लोगों में केवल जीवन–स्तर में ही सुधार नहीं हुआ है बल्कि बहुत बड़े क्षेत्रों में पहले

से बेहतर सुविधाओं को उपलब्ध भी कराया जाने लगा है। इन सबसे बड़ी बात यह है कि लोगों को बेहतर चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही है और उनके स्वास्थ्य में सुधार हुआ है।

लेकिन प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के समाज के लिए अनेक अवांछनीय परिणाम भी हुए हैं। इन परिवर्तनों के द्वारा आज जो आर्थिक संवृद्धि हो रही है उनके कुछ प्रत्यक्ष दुष्परिणाम है– दुर्लभ प्राकृतिक संसाधनों का दुरूपयोग, वनोन्मूलन (deforestation) तथा पर्यावरण का प्रदूषण। अतृपय उपभोक्तावाद के चलते भौतिक मूल्यों ने नैतिक मूल्यों को अपने वश में कर दिया है, मनुष्य पर मशीनें हावी हो गई हैं तथा मानवीय मूल्यों में गिरावट आई है।

बोध प्रश्न क (Check you Progress-A)

1. 'संस्कृति' का क्या अर्थ होता है?

....

....

2. धर्मनिरपेक्षतावाद को भारतीय संस्कृति का बहुमूल्य पक्ष क्यों माना जाता है?

....

....

3. संक्षेप में स्पष्ट कीजिए कि प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों का गुणक प्रभाव किस प्रकार हो सकता है।

4. बताइये कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत है?

(i) विभिन्न समाजों की संस्कृति और परंपरा के अनुसार उनके मूल्यों में भी अंतर हो सकता है।

(ii) भारत में हुए वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के फलस्वरूप इस देश की संस्कृति में भी परिवर्तन आया है।

(iii) प्रौद्योगिकीय प्रगति अमिश्र वरदान (unmixed blessing) नहीं है।

(iv) श्रम–बचत युक्तियों के फलस्वरूप लोगों में बेरोजगारी फैलती है लेकिन उन्हें यदि मशीनों पर कार्य करने का प्रशिक्षण दिया जाए तो बेरोजगारी से बचा जा सकता है।

उत्तर– **4 (i) सही, (ii) सही, (iii) सही, (iv) गलत**

5.9 बदलती हुई मूल्य व्यवस्था (Changing Value System)

समाज में बदलती हुई मूल्य व्यवस्था के महत्व का स्पष्टीकरण करने के पहले व्यक्तिगत मूल्यों और सामाजिक मूल्यों के अर्थ को स्पष्ट करना आवश्यक है।

व्यक्तिगत मूल्यों की परिभाषा हम इस रूप में कर सकते हैं कि किसी वस्तु या विचार के अच्छा या वांछनीय होने के संबंध में किसी व्यक्ति के आदर्श दृष्टिकोण क्या हैं इस प्रकार मूल्य के मानक या निर्देश चिह्न हैं जो किसी व्यक्ति के निर्णय, आचार एवं व्यवहार में उसका मार्गदर्शन करते हैं।

सामाजिक मूल्यों से आशय होता है वांछनीय लक्ष्यों और मानवीय आचार के संबंध में लोगों का सम्मिलित विश्वास। इस प्रकार व्यक्तिवाद ऐसे सामाजिक मूल्यों की प्रणाली में वांछनीय हो सकता है। जिसमें कार्यों के संबंध तथा दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा के संबंध में लोग अपने व्यक्तिगत हितों को ही ध्यान में रखते हैं ऐसे 'समाज में प्रतियोगिता में सफल होने को ही अच्छा माना जाता है। लेकिन कुछ ऐसे सामाजिक आदर्श भी हैं जो बताते हैं कि हारने वाले या जीतने वाले को किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। लोग ऐसे व्यक्तियों को अच्छा नहीं मानते जो जीतने की स्थिति में दंभ से भर जाएं या हारने की स्थिति में बराबर शिकायत करते रहें।

मूल्य व्यवस्था से आशय मूल्यों के सेट से होता है जिसमें विभिन्न प्रकार के मूल्यों का स्थान उनकी प्राथमिकता के अनुसार होता है। उदाहरणार्थ अलग–अलग देशों वाले लोगों के मूल्य अलग–अलग प्रकार के होते हैं। व्यवसाय के प्रबंधक आर्थिक मूल्यों (भौतिक लाभ, व्यवहार्यता) को सामाजिक मूल्यों (लोगों के लिए प्यार, समानता) से ऊँचा स्थान देते हैं और इसी आधार पर व्यवसाय संबंधी निर्णय लिए जाते हैं। इसके विपरीत सामाजिक मूल्यों की व्यवस्था में सैद्धांतिक मूल्यों (सच्चाई, ईमानदारी) का स्थान आर्थिक मूल्यों से ऊँचा हो सकता है। इसके अतिरिक्त सामाजिक मूल्यों की व्यवस्था में ही धार्मिक मूल्यों (नैतिकता तथा नीतिपरायणता) का स्थान अन्य मूल्यों से ऊँचा होता है।

किसी समाज में स्थिरता अन्य बातों के अलावा उसकी मूल्य व्यवस्था पर निर्भर करती है। मूल्य व्यवस्था के सम्बन्ध में विचार किए बिना किसी समाज की प्रगति के संबंध में सोच नहीं सकते। फिर भी मूल्य और मूल्य व्यवस्था स्थिर संकल्पनाएं नहीं हैं। मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन हो सकता है। अनेक समाजों में आधुनिक मूल्य व्यवस्था ने परंपरागत मूल्य व्यवस्था का स्थान ले लिया है।

भारत में भी ऐसा ही हुआ है। नगरों में ऐसा बहुत हुआ है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भी इस प्रकार के परिवर्तन की प्रक्रिया दिखाई देने लगी है। ऐसे परिवर्तन के स्वरूप और उसके कारणों को नीचे दिया जा रहा है :–

- आर्थिक रूप से विकसित देशों में शिक्षा के प्रसार तथा मूल्य व्यवस्था के संबंध में जागरूकता के साथ आर्थिक मूल्यों तथा आर्थिक लाभ की प्राप्ति को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। उसी प्रकार राजनीतिक मूल्यों के अनुसार शक्ति की प्राप्ति को वांछनीय माना जाता है। और भारत के शिक्षित समाज का एक बहुत बड़ा भाग इससे प्रभावित हुआ है। इसके फलस्वरूप सामाजिक मूल्यों और धार्मिक मूल्यों का महत्व कम हो गया है।
- आर्थिक समृद्धि के होने तथा व्यापार, द्रव्य और विनिमय के महत्व को स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ है कि लोग अब मानने लगे हैं कि लाभ का अर्जन, धन का संचय, रूपया उधार देना और पूंजी का निवेश कार्य समाज के लिए हानिकारक नहीं होते। लोग तो अब निजी लाभ और व्यक्तिवाद के पुजारी बन गए हैं। इसके साथ ही साथ नीतिपरायणता, ईमानदारी तथा सच्चाई जैसे नैतिक मूल्यों में गिरावट के कारण सामाजिक ढाँचा टूटता हुआ नजर आ रहा है।
- लोकतंत्रीय मूल्यों (समान अधिकार), के प्रति लोगों की रूचि बढ़ी है जिसके फलस्वरूप मानव गरिमा की वैद्यता तथा मानव अधिकारों की स्वीकृति जैसे कुछ सांस्कृतिक मूल्यों का महत्व बढ़ रहा है।

व्यावसायिक मूल्य (Business Values)

सामाजिक मूल्यों पर व्यावसायिक मूल्यों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। व्यावसायी वर्ग के पास सामाजिक और राजनीतिक शक्ति होती है तथा सामाजिक प्रश्नों के संबंध में वह जनमत को बदल सकता है। अतः समाज की संस्थाओं पर उसका बहुत अधिक प्रभाव होता है। सभी यह मानते हैं कि सरकारी नीतियों के निर्धारण में बड़ी–बड़ी व्यावसायिक प्रतिष्ठानों का भी हाथ होता है। मिलिबैंड ने लिखा है (द स्टेट इन कैपिटेलिस्ट सोसाइटी, 1969) कि ''आर्थिक जीवन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर व्यवसाय का नियंत्रण होने के कारण सरकार व्यवसायों पर उन नीतियों को लागू नहीं कर पाती जिनका कि वे विरोध करते हैं।'' ब्रिटेन की लेबर पार्टी ने 1967 में अत्यधिक सुधारवादी कार्यक्रमों के साथ सरकार बनायी थी। इस संबंध में मिलिबैंड ने लिखा है कि व्यवसायी वर्ग के साथ उस सरकार को निजी तौर पर बातचीत करके उन्हें आश्वासन देना पड़ा कि आर्थिक नीतियों

के निर्धारण संबंधी सरकारी योजनाओं को बनाते समय उनके विचारों को पर्याप्त रूप से महत्व दिया जाएगा।

कंपनी उद्यमों में निर्णय लेने के संबंध में जिन मूल्यों का विशेष योगदान होता है वे हैं– व्यक्तिगत मूल्य, समूह मूल्य, सामाजिक–आर्थिक पर्यावरण के घटकों (ग्राहकों, सप्लायरों, प्रतियोगिता सरकारी एजेन्सियों) के मूल्य तथा समाज के सांस्कृतिक मूल्य। व्यावसायिक मूल्य उन कसौटियों से बनते हैं जो यह निर्धारित करती है कि अच्छा व्यवसाय क्या है? किन लक्ष्यों को प्राप्त करना है तथा किसके हित की प्राप्ति करनी है? व्यवसाय कार्य क्या केवल उनके मालिकों के निजी हित के लिए ही करने हैं? व्यवसाय को चलाने वालों का एकमात्र लक्ष्य क्या लाभ को अधिकतम करना ही है और इस संबंध में क्या उन्हें साधनों की अच्छाई–बुराई पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं होती? व्यवसाय में होने लगी समृद्धि में क्या श्रमिकों का कोई अंश नहीं होता? इन सब प्रश्नों के उत्तर में हम समाज की मूल्य व्यवस्था की झलक पाते हैं।

सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन के साथ तथा व्यावसायिक मूल्यों में परिवर्तन लाने की दृष्टि से भारत सरकार ने अनेक प्रकार के सामाजिक कानून बनाए हैं। ये हैं– वायु और जल प्रदूषण पर रोक और नियंत्रण, पर्यावरण का संरक्षण, श्रमिकों को उत्पादित और लाभ बोनस का भुगतान, उपभोक्ता संरक्षण और उपभोक्ता कल्याण, बेनामी सौदों पर निषेध आदि। इसके साथ ही साथ बड़े–बड़े व्यवसायिक प्रतिष्ठान भी अपने सामाजिक दायित्वों से अवगत हैं। उन्हें मालूम है कि उनका दायित्व अपने शेयर धारियों की प्रति होने के साथ ही साथ समाज तथा आम जनता के प्रति भी है।

5.10 सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभाव (Impact of Socio-Cultural Values)

यदि कोई व्यवसाय सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण से दूर हो जाता है तो वह पहले उस देश के लोगों से तथा फिर अपने व्यवसाय से अलग हट जाता है। व्यावसायिक निर्णयों को प्रभावित करने में सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों व प्रतिमानों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये मूल्य ऐसे मानक के रूप में होते हैं जिनके आधार पर हम किसी व्यवहार, भावना, लक्ष्य तथा साधन को अच्छा या बुरा अथवा उचित या अनुचित ठहराते हैं। मूल्य एक तरह के सामाजिक माप है जिसके आधार पर किसी वस्तु का मूल्यांकन किया जाता है। एम0 हारलाम्बो के अनुसार, ''मूल्य एक विश्वास है जिससे यह ज्ञात होता है कि क्या उचित व वांछनीय है। यह बताता है कि क्या महत्वपूर्ण है, लाभप्रद है तथा प्राप्त करने

योग्य है।'' दुर्खेम ने भी सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों को सामूहिक जीवन के लिए आवश्यक माना है। डॉ0 राधाकमल मुखर्जी का कहना है कि यदि कोई समाज अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है तो उसे व्यक्तित्व के सर्वोच्च मूल्यों की नियमित रूप से पूर्ति करनी चाहिए। संक्षेप में मूल्य वे कसौटियां हैं जो कि सम्पूर्ण संस्कृति व समाज को अर्थ व महत्व प्रदान करती हैं।

सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य किस प्रकार से सामाजिक व व्यवसायिक जीवन पर प्रभाव डालते हैं?

(How do Socio-Cultural Values affect Social and Business Life?)

सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य निम्नलिखित तरीके से सामाजिक तथा व्यवसायिक जीवन को प्रभावित करते हैं:–

- **भौतिक संस्कृति के महत्व में वृद्धि करना :** भौतिक संस्कृति के कुछ तत्व समाज के कुछ लोगों के लिए चाहे अधिक महत्व के न हों लेकिन उनके पीछे सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य विद्यमान रहते हैं। उदाहरणार्थ– कुछ लोग कार रखना चाहते हैं क्योंकि इससे उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। 'स्टेटस सिम्बल' बनाने हेतु सामाजिक मूल्य इन वस्तुओं (कार, मोबाइल, टेलीविजन) की अनिवार्यता को रेखांकित करते हैं।
- **सामाजिक नियंत्रण में सहायक :** सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य सामाजिक नियंत्रण में सहायक होते हैं। ये मूल्य किसी व्यक्ति या समूह को किसी कार्य को करने या न करने हेतु दबाव डालते हैं। इन मूल्यों का पालन करने वालों की प्रशंसा व सराहना तथा अवहेलना करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की जाती है।
- **सामाजिक क्षमता का मूल्यांकन :** सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा ही लोग यह जान पाते हैं कि दूसरों की दृष्टि में उनका क्या स्थान है ? समूह व व्यक्ति की क्षमता का मूल्यांकन सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर ही किया जाता है।
- सामाजिक भूमिकाओं का निर्देशन– किसी विशिष्टि परिस्थिति में एक मनुष्य का व्यवहार कैसा होगा, यह सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य निश्चित करते हैं। भारत में पति–पत्नी का सम्बन्ध ब्रिटेन में रहने वाले पति–पत्नी से भिन्न होता है क्योंकि इन दोनों राष्ट्रों की 'मूल्य व्यवस्था' में अन्तर होता है जो कि उक्त सम्बन्धों में भिन्नता का कारण बनता है।
- **समाज में एकरूपता उत्पन्न होती है –** सामाजिक–सांस्कृति मूल्य, सामाजिक

सम्बन्धों व आचरण में एकरूपता लाते हैं। समाज विशेष में प्रचलित मूल्यों का उस समाज के सभी व्यक्तियों द्वारा पालन किया जाता है जिससे समाज के समस्त व्यवहारों में एकरूपता आती है।

- **व्यक्ति की सुरक्षा व प्रगति के लिए महत्वपूर्ण –** सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य सारे समूह व समाज की देन होते हैं। व्यक्ति उन मूल्यों को सरलता से आत्मसात कर लेता है। व्यक्ति का समूह के साथ एकीकरण उसकी सुरक्षा तथा सामाजिक प्रगति की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है।
- **बदलती हुई परिस्थितियों में परिवर्तित मूल्यों को अपनाना–** यदि सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य समय व परिस्थितियों के अनुसार नहीं बदले जाते तो लोगों द्वारा ऐसे मूल्यों का खण्डन तथा त्याग शुरु हो जाता है। लोग समायनुकूल नये मूल्यों को अपनाने लगते हैं। भारतीय समाज में प्रचलित बाल–विवाह, सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा इत्यादि से सम्बन्धित पुराने रुढ़िवादी मूल्य वर्तमान परिस्थितियों में सही नहीं बैठते, इसलिए लोगों ने धीरे–धीरे इन मूल्यों का त्याग कर नये मूल्यों को अपनाया है।
- **सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य व्यक्तित्व–निर्माण में सहायक–** लोगों में भिन्नता समाज व संस्कृति में भिन्नता के कारण होती है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी समाज व संस्कृति में जन्म लेता है और उसी में उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। मनुष्य अपनी संस्कृति की प्रथाओं, रीति–रिवाजों, धर्म, दर्शन इत्यादि को अपनाता है। ये सभी तत्व उसके व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं।
- **मानवीय मूल्य तथा आदर्शों के स्रोत–** मानव व्यवहार तथा आचरण से सम्बन्धित कुछ मूल्य व आदर्श प्रत्येक समाज व संस्कृति में पाये जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति उन मूल्यों व आदर्शों के अनुसार ही व्यवहार करता है, अन्यथा उसे आलोचना का शिकार होना पड़ता है।
- **मानव आवश्यकताओं की संतुष्टि में सहायक–** मनुष्य की शारीरिक, सामाजिक तथा मानसिक आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्य एक बड़ी सीमा तक सहायक होते हैं। समय–समय पर नये–नये अन्वेषण व अनुसंधान होते रहे हैं जो समाज व संस्कृति का हिस्सा बनते गये। समाज व सांस्कृतिक मूल्य यह तय करने में सहायक होते हैं कि मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को कैसे पूरा करें।

5.11 सारांश (Summary)

व्यवसाय को सफलता पूर्वक चलाने में सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों का ज्ञान अति आवश्यक है। संस्कृति एक अत्यन्त जटिल कारक है। सम्पूर्ण सामाजिक परम्परा ही संस्कृति है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय में सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों की अवहेलना करके व्यवसाय को प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। सांस्कृतिक मूल्य ही व्यवसाय में नैतिकता, उचित–अनुचित, सदाचार तथा समाज के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराते हैं।

प्रौद्योगिकी का सामाजिक परिवर्तन से गहरा समबन्ध है। व्यवसाय पर प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों का अनुकूल एवं व्यापक प्रभाव पड़ता है। बदलती हुई मूल्य व्यवस्था से व्यवसाय अछूता नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यवसाय पर सामाजिक सांस्कृतिक मूल्य गहरा प्रभाव डालते हैं।

5.12 शब्दावली

संस्कृति (Culture) : मूल्य, मापदंड, कलाकृतियाँ तथा लोगों के स्वीकृत व्यवहार। व्यवहार की समग्रता जिसे मानव समाज अपने पुरुखों से सिखता है।

आर्थिक मूल्य (Economic Values) : भौतिक लाभ और कार्य की व्हार्यता की वांछनीयता।

एकात्मक समाज (Monistic Society) : वह समाज जिसमें मानवीय कार्यकलाप एकल सामाजिक संख्या, अर्थात् ग्राम समुदाय, के संदर्भ में किए जाते थे।

बहुवादी समाज (Pluralistic Society) : वह समाज जिसकी सामाजिक व्यवस्था में अनेक हितों वाले समुदाय होते हैं।

धार्मिक मूल्य (Religious) : नैतिकता तथा नीतिपरायण आचार को अच्छा मानना।

सामाजिक दायित्व (Social responsibility) : सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने का दायित्व।

सामाजिक मूल्य (Social Value) : लोगों से प्रेम करने और समाज में समानता लाने की वांछनीयता।

उपयोगितावादी मूल्य (Utilisation Value) : अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम सुख लाने का सिद्धांत।

मूल्य (Value) : अच्छा और वांछनीय होने संबंधी आदर्शक मूल्य।

मूल्य व्यवस्था (Value System) : मूल्यों का सेट जिसमें विभिन्न प्रकार के मूल्यों का स्थान उनकी प्राथमिकता के अनुसार होता है।

5.13 अभ्यास के प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. व्यावसायिक पर्यावरण से आप क्या समझते है? सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों का व्यवसायिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना कीजिए।

   What do you Understand by Business Environment? Discuss the impact of Socio-Cultural Values on Business Environment.

2. सांस्कृतिक पर्यावरण से आपका क्या तात्पर्य हैं? सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्य किस प्रकार से सामाजिक व व्यवसायिक जीवन पर प्रभाव डालते हैं?

   What do you mean by Cultural Environment? How do Socio-Cultural Values affect Social and Business life?

(II) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. सांस्कृतिक पर्यावरण का क्या अर्थ है?

   What is the meaning of cultural environment?

2. सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों की विशेषताएँ लिखिए।

   Write the features of Socio-Cultural Values.

इकाई–6: व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Reposibilities of Business)

इकाई की रूपरेखा–

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व का आशय एवं परिभाषा

6.4 व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के विचार का विकास

6.5 सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष में तर्क

6.6 सामाजिक उत्तरदायित्व के विपक्ष में तर्क

6.7 व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व का क्षेत्र

6.8 भारतीय व्यवसायी एवं सामाजिक उत्तरदायित्व

6.9 सारांश

6.10 शब्दावली

6.11 अभ्यास के प्रश्न

6.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेगे कि

- व्यवसाय का सामाजिक उत्तरदायित्व क्या है।
- व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के विचार का किस प्रकार विकास हुआ।
- व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष एवं विपक्ष में विभिन्न अर्थशास्त्रियों के मत क्याहै।
- व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के विभिन्न आयाम क्या है।
- भारतीय व्यवसाइयों में सामाजिक उत्तरदायित्व कोपूरा करने स्थिति

6.2 प्रस्तावना (Introduction)

आधुनिक काल में नागरिकों के जीवन और समाज पर व्यावसायिक कार्यकलापों का विभिन्न रूप से बहुत बड़ा प्रभाव होता है। पूर्व–आधुनिक काल में व्यवसायी वर्ग के लिए व्यवसाय के 'सामाजिक' मूल्य के संबंध में चिंता करने की आवश्यकता

नहीं होती थी क्योंकि उस समय आशा की जाती थी कि बाजार की शक्तियाँ मूल्य व्यवस्था को स्वयं ही बनाए रखेंगी। यदि कोई व्यवसाय सफल होता था तो यह माना जाता था वह अपने से कम सफल व्यवसाय की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों को अधिक बनाए रख रहा है लेकिन आधुनिक युग के समाज–विज्ञानी ऐसा नहीं मानते। आज सभी मानते हैं कि व्यवसाय के अन्तर्गत केवल ग्राहकों को संतुष्ट करके केवल आर्थिक लाभ को प्राप्त करना ही नहीं आता बल्कि उसका कर्तव्य तो कुछ और सामाजिक दायित्वों को पूरा करना भी है। व्यवसाय के सामाजिक दायित्व से अभिप्राय होता है, फर्म द्वारा उन नीतियों को अपनाना और उन कार्यों को करना जो समाज की आशाओं और उसके हित की दृष्टि से वांछनीय हों। परन्तु मिल्टन फ्रीडमैन, एफ.ए. हेयक और गिल्बर बर्क जैसे कुछ क्लासिकी अर्थशास्त्रियों की मान्यता 1970 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक कुछ और ही थी।

6.3 व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व का अर्थ एवं परिभाषा (Meaninng and Definition of Social Responsibility of Business)

ए. दास गुप्ता के अनुसार, ''सामाजिक उत्तरदायित्व का क्षेत्र कुशलतापूर्वक व्यवसाय का संचालन करके लाभ अर्जित करना है एवं कर्मचारियों, उपभोक्ताओं, समुदाय तथा सरकार के प्रति दायित्वों का निर्वाह करना है।'' इसी प्रकार कूण्ट्ज एवं ओ' डोनेल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि, ''सामाजिक उत्तरदायित्व निजी हित में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का ऐसा दायित्व है जिससे वह स्वयं आश्वस्त होता हो कि उसके द्वारा अन्य व्यक्तियों के न्यायोचित अधिकारों तथा हितों को कोई क्षति नहीं पहुँचती है।''

इस प्रकार हम कह सकते है कि व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से अभिप्राय है फर्म द्वारा उन नीतियों को अपनाना और उन कार्यों को करना जो समाज की आशाओं और उसके हित की दृष्टि से वाँछनीय हो।

6.4 व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के विचार का विकास (Development of the Idea of Social Responsibility of Business)

अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी के उपनिवेशी काल (Colonial Era) में व्यवसाय बहुत छोटे स्तर पर किये जाते थे तथा व्यवसायी मितव्ययिता व किफायत से कार्य करते थे। इसके बावजूद वे समय–समय पर स्कूलों, गिरजाघरों तथा गरीबों

के उत्थान हेतु अंशदान किया करते थे। इसके अतिरिक्त, प्राचीनकाल में किसी प्राकृतिक विपदा के समय व्यवसायी जरूरतंद लोगों के लिए अपने गोदाम खोल दिया करते थे तथा निर्धनों की आवश्यकताओं को पूरा करते थे। इस प्रकार व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व का विचार कोई नवीन विचार नहीं है। प्राचीन काल से ही व्यवसायी अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझता रहा है तथा उनका निर्वाह करता रहा है। व्यवसाय का संचालित रहना, पूँजी की उपलब्धता, श्रम की प्राप्ति, लाभ इत्यादि समाज पर ही निर्भर है। व्यवसाय समाज में, समाज के लिए तथा समाज के लोगों द्वारा किया जाता है।

पिछले 40–50 वर्षों में व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के क्षेत्र में निरंतर वृद्धि हुई है। इसके क्षेत्र में शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कर्मचारी कल्याण, आवास, पर्यावरण संरक्षण, संसाधनों का संरक्षण इत्यादि से सम्बन्धित कार्यक्रमों को शामिल किया जाता है। यहाँ एक आधारभूत प्रश्न सामने आता है कि सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा एवं क्षेत्र में वृद्धि क्यो हुई है। इसका सीधा जवाब है कि बढ़ती हुई औद्योगिक क्रियाओं से समाज में अनेक परिवर्तन आये हैं तथा एक व्यवसायी की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह समाज के विभिन्न वर्गों के प्रति अपने उत्तरदायित्व को किस तरीके से निभाता है।

6.5 सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Social Responsibility)

व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष में अनेक तर्क दिये जा सकते है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण तर्क निम्नलिखित हैं –

- **व्यवसाय से सार्वजनिक अपेक्षाओं में परिवर्तन (Change in Public Expectations From Business)**

  सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष में एक महत्वपूर्ण तर्क यह है कि व्यवसाय से की जाने वाली सार्वजनिक अपेक्षाओं में काफी परिवर्तन हो चुका है। अब उन्हीं व्यवसायिक संस्थाओं का अस्तित्व बना रह सकता है जो समाज की आवश्यकताओं को संतुष्ट करती हैं। व्यवसाय दीर्घकाल में भी जीवित रहे इस हेतु उसे समाज की न केवल आवश्यकताएँ पूरी करनी होगी बल्कि समाज को वह भी देना होगा जो समाज चाहता है।

- **सार्वजनिक छवि में सुधार (Improvement in Public Image)**

  सामाजिक उत्तरदायित्व पूरा करने से व्यवसाय की सार्वजनिक छवि या प्रतिबिम्ब में सुधार होता है। प्रत्येक फर्म अपनी सार्वजनिक प्रतिरुप में वृद्धि करना

चाहती है ताकि उसे अधिक ग्राहकों, श्रेष्ठ कर्मचारियों, मुद्रा बाजार से अधिक सुविधाएँ इत्यादि के रूप में लाभ प्राप्त हो सकें। एक फर्म जो श्रेष्ठ सार्वजनिक प्रतिबिम्ब चाहती है उसे सामाजिक लक्ष्यों का समर्थन करना होता है।

- **नैतिक उत्तरदायित्व (Moral Responsibility)**

  आधुनिक औद्योगिक समाज अनेक गम्भीर सामाजिक समस्याओं, मुख्य रूप से बड़े उद्योगों या निगमों द्वारा उत्पन्न की गयी, से ग्रस्त है। अतः उद्योगों की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वे उन समस्याओं को दूर करने या उनकी गम्भीरता को कम करने में भरसक सहायता करे। चूँकि अर्थव्यवस्था के अनेक संसाधनों पर व्यवसायिक फर्मों या उद्योगों का नियंत्रण होता है इसलिए उन्हें कुछ संसाधनों का समाज के सुधार तथा विकास हेतु उपयोग करना चाहिए।

- **पर्याप्त संसाधन (Sufficient Resources)**

  कर्मचारी, योग्यता कार्यात्मक विशेषज्ञता, पूँजी इत्यादि के रूप में एक व्यवसाय के पास संसाधनों की एक बड़ी मात्रा होती है। इन संसाधनों के प्रभुत्व से व्यवसाय सामाजिक उद्देश्यों हेतु कार्य करने के लिए एक अच्छी स्थिति में होता है।

- **व्यवसाय के लिए अच्छा पर्यावरण (Better Environment for Business)**

  सामाजिक उत्तरदायित्व के पक्ष में एक महत्वपूर्ण तर्क यह है कि इससे व्यवसाय के अनुकूल एक अच्छा पर्यावरण बनता है। यह धारणा सत्य है कि अच्छे समाज से अच्छे पर्यावरण का जन्म होता है जो व्यवसायिक क्रियाओं के अनुकूल होता है। अच्छे पर्यावरण में श्रमिकों की भर्ती सरल हो जाती है, अच्छी योग्यता वाले श्रमिकों की उपलब्धि होती है तथा श्रमिकों की अनुपस्थिति दर में कमी आती है।

- **सरकारी नियमन से बचाव (Avoidance of Government Regulation)**

  सरकार एक अतिविशाल संस्था होती है जिसके अनेक अधिकार होते हैं। वह सार्वजनिक हित में व्यवसाय का नियमन करती है। यह नियमन काफी महंगा होता है तथा निर्णयन में व्यवसाय को आवश्यक स्वतंत्रता प्रदान नहीं करता है। इससे पहले कि सरकार अपने अधिकारों का प्रयोग करे व्यवसाय को समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करना चाहिए।

- **श्रम आन्दोलन (Labour Movement)**

  आज का श्रमिक अपने अधिकारों एवं मांगों के प्रति काफी सजग है तथा श्रम आन्दोलन व एकता के कारण व्यवसायी भी अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक हो गये हैं। व्यवसायी भी आज इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि एक संतुष्ट कर्मचारी या श्रमिक व्यवसाय की अमूल्य पूंजी होता है। इसलिए श्रमिकों के प्रति दायित्वों को पूरा करना व्यवसाय का एक प्राथमिक कर्तव्य हो गया है।

- **वैधानिक प्रावधान (Legal Provisions)**

  व्यवसाय पर नियंत्रण रखने हेतु आज विश्व के सभी राष्ट्रों में वैधानिक प्रावधानों को तेजी से लागू किया जा रहा है। इन प्रावधानों का पालन करके व्यवसायी अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा कर लेते हैं। श्रम कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा, न्यूनतम मजदूरी, क्षतिपूर्ति बोनस, कारखाना अधिनियम आदि के कानूनी प्रावधान सामाजिक उत्तरदायित्वों को बल देते हैं।

- **अन्तःनिर्भरता में वृद्धि (Increase in Inter-dependence)**

  सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था का व्यवसाय एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। औद्योगिक विकास के साथ–साथ समाज एवं व्यवसाय की एक–दूसरे पर निर्भरता में वृद्धि हुई है तथा दोनों विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए एक–दूसरे का सहयोग चाहते हैं। इस पारस्परिक निर्भरता ने सामाजिक उत्तरदायित्वों को महत्वपूर्ण बना दिया है।

- **हितों में एकता (Unity In Interests)**

  व्यवसायिक के संचालन में व्यवसायी के अतिरिक्त समाज के विभिन्न पक्षों का योगदान रहता है। यदि इन पक्षों के हित में टकराहट होती रहे तो व्यवसाय अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकेगा। सामाजिक उत्तरदायित्व को निभा कर विभिन्न पक्षों के हितों में एकता स्थापित की जा सकती है।

- **कृतज्ञता का कर्तव्य (Duty of Gratitude)**

  व्यवसायिक इकाइयाँ समाज से विभिन्न प्रकार से लाभान्वित होती हैं। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जिससे हम लाभ प्राप्त करते हैं, उसके प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं। सामाजिक दायित्वों को पूरा कर इस कृतज्ञता को सुविधा से चुकाया जा सकता है।

- **सामाजिक चेतना (Social Awareness)**

  शिक्षा के प्रसार तथा संदेशवाहन के साधनों (अखबार, पत्रिकायें, टेलीविजन, रेडियो आदि) ने सामाजिक चेतना में एक क्रान्ति–सी उत्पन्न कर दी है। आज समाज का प्रत्येक वर्ग सामाजिक दायित्वों को पूरा किये जाने की आशा करने लगा है। इस चेतना के पर्यावरण में व्यवसायी को अपने दायित्वों का निर्वाह करना आवश्यक हो जाता है।

6.6 सामाजिक उत्तरदायित्व के विपक्ष में तर्क (Arguments Against Social Responsibility)

- **अतिरिक्त लागत (Additional Costs)**

  व्यवसायी द्वारा सामाजिक उत्तरदायित्व की लागतों को समाज पर हस्तान्तरित कर दिया जाता है। इस प्रकार इन लागतों का सम्पूर्ण भार समाज पर पड़ता है। व्यवसायी स्वयं इन लागतों को नहीं वहन करता बल्कि वस्तुओं के मूल्य बढ़ाकर इन्हें समाज से वसूल कर लेता है। सामाजिक उत्तरदायित्वों के विपक्ष में यह एक महत्वपूर्ण तर्क है।

- **सामाजिक दक्षता का अभाव (Lack of Social Skills)**

  व्यवसायिक प्रबंधक व्यवसायिक मामलों में निपटने में सिद्धहस्त होते हैं, न कि सामाजिक समस्याओं के मामले में। उनका दृष्टिकोण आर्थिक होता है तथा सामाजिक मामलों में वे अपने को असहज महसूस करते हैं। यह स्थिति सामाजिक उत्तरदायित्व के विपक्ष में जाती है।

- **समर्थन न मिलना (Lack of Support)**

  बहुत से व्यवसायी समाजिक दायित्वों को पूरा करना चाहते हैं, लेकिन व्यवहार में कुछ अन्य व्यवसायी इसका विरोध करते हैं। समर्थन के अभाव में इच्छुक व्यवसायी भी अपने हाथ खींच लेते हैं। सामान्य जनता के अतिरिक्त सरकार, व्यवसायी एवं बुद्धिजीवी वर्ग में भी इस मुद्दे पर सहमति का अभाव पाया जाता है।

- **लाभ अधिकतम करना (Profit Maximisation)**

  सामाजिक उत्तरदायित्व के विपक्ष में जाने वाला एक शक्तिशाली तर्क व्यवसाय का मुख्य उद्देश्य अपने लाभ को अधिकतम करना है। प्रबंधक जो स्कंधधारियों (Stockholders) के एजेन्ट होते हैं, उनके सारे निर्णय लाभ को ध्यान में रखकर किये जाते हैं न कि सामाजिक दायित्व को ध्यान

में रखकर।

- **जबावदेयता की कमी (Lack of Accountability)**

  एक मतानुसार व्यवसायी की जनता के प्रति प्रत्यक्ष जबावदेयता नहीं होती है, इसलिए ऐसे क्षेत्र में उन्हें उत्तरदायित्व देना जिसमें वे जबावदेय नहीं है, अनुचित होगा।

- **शक्ति का केन्द्रीयकरण (Concentration of Power)**

  व्यवसाय का प्रभाव सम्पूर्ण समाज में महसूस किया जाता है। चाहे शिक्षा हो, घर हो, बाजार हो या सरकार, यह सभी जगह विद्यमान होता है। यह सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन करता है। सामाजिक क्रियाओं को व्यवसाय की आर्थिक क्रियाओं के साथ जोड़कर हम व्यवसाय में शक्ति का अत्यधिक केन्द्रीयकरण कर देंगें। अतः व्यवसाय को अधिक शक्ति देना किसी भी दृष्टि से उपयुक्त नहीं होगा।

- **फ्रीडमैन एवं लेविट के विचार (Views of Friedman and Levitt)**

  सामाजिक उत्तरदायित्व की अकाट्य आलोचना प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मिल्टन फ्रीडमैन द्वारा की गयी है। उनकी आलोचना दो धारणाओं पर आधारित है आर्थिक एवं कानूनी। आर्थिक परिप्रेक्ष्य में उनका कहना है कि यदि प्रबंधक कोषों को लाभ अधिकतम करने हेतु व्यय नहीं करता है तो बाजार तंत्र की कुशलता नष्ट हो जायेगी तथा अर्थव्यवस्था में संसाधनों का गलत आंबटन हो जायेगा। जहां तक कानूनी परिप्रेक्ष्य का प्रश्न है, फ्रीडमैन का विचार है कि चूंकि प्रबंधक स्कंधधारियों के कानूनी एजेन्ट होते हैं, अतः उनका एकमात्र कर्तव्य स्कंधाधारियों के वित्तीय लाभ को अधिकतम करना होता है। इस प्रकार यदि वे कोषों को सामाजिक उद्देश्यों पर व्यय करते हैं तो इसका मतलब होगा– स्कंधधारियों के हितों को चोट पहुंचाना। यहाँ फ्रीडमैन का सुझाव है कि यदि स्कंधधारी सामाजिक उद्देश्यों पर व्यय करना चाहते हैं तो वे व्यक्तिगत रूप से अपने लाभांश में से ऐसा करने के लिए स्वतंत्र हैं। लेविट का कहना है कि इससे व्यवसायिक मूल्य समाज पर प्रभुत्व जमा सकते हैं। इसलिए उन्होंने भी सामाजिक उत्तरदायित्व के विरूद्ध अपने विचार व्यक्त किये।

6.7 व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्वों का क्षेत्र (Scope of Social Responsibilities of Business)

व्यवसाय के संचालन एवं सफलता में विभिन्न वर्गों का योगदान होता है। उन सभी वर्गों के प्रति व्यवसाय के कुछ न कुछ उत्तरदायित्व होते हैं। प्रमुख वर्गों के प्रति व्यवसाय के उत्तरदायित्वों का विवेचन निम्नलिखित हैं :

(i) स्वामियों या अंशधारियों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibilities towards owners or shareholders)

(ii) कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibilities towards Employees)

(iii) उपभोक्ताओं के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibilities towards Consumers)

(iv) सरकार के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibilities towards Government)

(v) समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibilities towards community)

(i) स्वामियों या अंशधारियों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibilities towards owners or shareholders)

एक व्यवसाय या कम्पनी का अपने अंशधारियों के प्रति जो कम्पनी के स्वामी भी होते हैं, बुनियादी उत्तरदायित्व होता है। वास्तविकता तो यह होती है कि अंशधारी कम्पनी में अपनी पूंजी का विनियोजन करके एक बड़ा जोखिम वहन करते हैं। कम्पनी के स्वामियों के प्रति एक व्यवसायी के प्रमुख उत्तरदायित्वों का उल्लेख निम्न प्रकार है–

- **अंशधारियों के हितों की सुरक्षा (To safeguard the Interests of the shareholders)**

व्यवसायी का यह मूल उत्तरदायित्व है कि वह अंशधारियों के हितों की पूर्णरूप से सुरक्षा करे। अंशधारियों की पूंजी सुरक्षित रहे तथा उन्हें पर्याप्त लाभांश मिलता रहे, इस हेतु आवश्यक है कि व्यवसायी अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाये रखे। व्यवसायी को अपने व्यवसाय का विकास तथा उसमें आवश्यक सुधार करने चाहिए तथा वित्तीय स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिए। अंशधारियों को लाभांश प्रदान करने के लिए व्यवसाय को लाभ अर्जित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त एक कोष बनाया जाना चाहिए ताकि व्यवसाय की खराब स्थिति में भी उस कोष से स्वामियों को एक उचित लाभांश प्रदान किया जा सके।

- **कम्पनी की सार्वजनिक छवि में सुधार (Improvement in the public image of the company)**

कम्पनी में किया गया विनियोग सुरक्षित रहे और उस पर पर्याप्त प्रतिफल मिलता रहे, इसी से अंशधारी संतुष्ट नहीं होते बल्कि वे कम्पनी की सार्वजनिक छवि में भी रूचि रखते हैं। अतः व्यवसायी का यह उत्तरदायित्व है कि वह कम्पनी की छवि में सुधार को सुनिश्चित करे ताकि उसकी सार्वजनिक छवि ऐसी बने जिससे अंशधारी अपनी कम्पनी पर अभिमान कर सके।

- **अन्य उत्तरदायित्व (Other Responsibilities)**

व्यवसायी के अपने स्वामियों के प्रति अन्य प्रमुख उत्तरदायित्व इस प्रकार से हैं– (i) उसे अपने स्वामियों को उचित आदर व सम्मान देना चाहिए। (ii) लाभांश का समय से भुगतान करना चाहिए। (iii) व्यवसाय की प्रत्येक गतिविधि से स्वामियों को अवगत कराते रहना चाहिए (iv) स्वामियों के निर्देशों का पालन करना चाहिए। (v) अंशधारियों द्वारा मांगे जाने पर आवश्यक प्रलेखों की प्रतिलिपियां उपलब्ध कराना चाहिए। (vi) अंशों की बिक्री के पश्चात् उन्हें अंश बाजार में सूचीबद्ध करा देना चाहिए।

(ii) कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibilities towards Employees)

किसी भी संगठन की, एक बहुत बड़ी सीमा तक, सफलता उसके कर्मचारियों के हार्दिक सहयोग एवं मनोबल पर निर्भर करती है। कर्मचारियों का मनोबल नियोक्ता एवं कर्मचारी के सम्बन्ध तथा कर्मचारियों के प्रति पूरे किये गये उत्तरदायित्वों पर निर्भर करता है। संगठन के कर्मचारियों के प्रति महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व निम्नलिखित हैं :

- कर्मचारियों को समय से उचित पारिश्रमिक का भुगतान करना।
- कर्मचारियों को हरसम्भव श्रेष्ठ कार्यदशाएं उपलब्ध करना।
- कार्य के उचित मानदण्ड का निर्माण करना।
- कर्मचारियों एवं श्रमिकों को हरसम्भव कल्याण सुविधायें प्रदान करना।
- कर्मचारियों हेतु उचित प्रशिक्षण एवं शिक्षा की व्यवस्था करना।
- पदोन्नति के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराना।
- कुशल परिवेदना निवारण पद्धति (Efficient Grievance Handling System) की स्थापना करना।
- कार्य के समय दुर्घटनाग्रस्त होने पर क्षतिपूर्ति करना।
- कर्मचारी संगठन एवं श्रम संघ का उचित सम्मान करना।
- कर्मचारियों को लाभ में से उचित हिस्सा प्रदान करना।
- प्रबन्ध में उन्हें आवश्यक प्रतिनिधित्व देना।
- कर्मचारियों की विशेष योग्यताओं एवं क्षमताओं की प्रशंसा करना तथा मान्यता प्रदान करना।
- मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना हेतु हरसम्भव प्रयास करना।

- कर्मचारी मनोबल को बढ़ाना, अच्छे कार्य की प्रशंसा करना तथा उपयोगी सुझाव देने हेतु कर्मचारी को प्रोत्साहित करना, इत्यादि।

(iii) उपभोक्ताओं के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibilities towards Consumers)

पीटर एफ ड्रकर (Peter F. Drucker) के अनुसार, ''व्यवसायिक उद्देश्य की सिर्फ एक उचित परिभाषा है– ग्राहक (उपभोक्ता) का सृजन करना।'' (There is only one valid definition of business purpose to create a customer) उपभोक्ता व्यवसाय की नींव होता है तथा उसके अस्तित्व को बनाये रखता है। वह अकेला रोजगार प्रदान करता है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण उपभोक्ता को बाजार का राजा कहा जाता है। उपभोक्ताओं के प्रति व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्वों का संक्षिप्त ब्यौरा निम्न प्रकार से है :

- व्यवसाय की कार्यकुशलता में सुधार करना ताकि उसकी उत्पादकता में वृद्धि हो तथा उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर वस्तुएं प्राप्त हो सके।
- उपभोक्ताओं को अच्छी किस्म की तथा स्वास्थ्यपूर्वक वस्तुएं उपलब्ध कराना।
- वितरण प्रणाली को सरल एवं सहज बनाना ताकि उपभोक्ताओं को वस्तुएं आसानी से मिल सके।
- शोध एवं विकास पर ध्यान देना जिससे उपभोक्ताओं को श्रेष्ठ एवं नये उत्पाद मिल सके।
- वितरण प्रणाली में पायी जाने वाली कमियों को दूर करने हेतु आवश्यक कदम उठाना जिससे मध्यस्थों या असमाजिक तत्वों द्वारा की जाने वाली मुनाफाखोरी हतोत्साहित हो।
- वस्तु के विज्ञापन में मिथ्यावर्णन न करना जिससे उपभोक्ता को धोखा न हो।
- विक्रय के पश्चात् आवश्यक सेवाएं (required after-sales services)उपलब्ध कराना।
- उत्पाद के बारे में उपभोक्ता को आवश्यक जानकारी देना, जैसे–उस वस्तु के प्रतिकूल प्रभाव, जोखिम, प्रयोग करते समय ली जाने वाली सावधानी, इत्यादि।
- उपभोक्ताओं की रूचि, आवश्यकता आदि का ध्यान रखना तथा उसी के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन करना।
- उपभोक्ता की शिकायतों को सुनना तथा उचित शिकायतों को अतिशीघ्र दूर करने का प्रयास करना।

- वस्तुओं को प्रमापित करवाना। भारत में 'भारतीय मानक संस्था' (Indian Standards Institution) यह कार्य करती है। वस्तुओं को प्रमापित करवाके उपभोक्ताओं का विश्वास जीता जा सकता है।
- उपभोक्ताओं से सुझाव मांगना तथा उनसे अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करना।

(iv) सरकार के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibilities towards the Government)

एक व्यवसाय का अपने आस–पास के समुदाय के प्रति काफी अधिक उत्तरदायित्व होता है। इन उत्तरदायित्वों में निम्नलिखित को शामिल किया जाता है :

- पर्यावरण प्रदूषण को रोकने हेतु आवश्यक कदम उठाने चाहिए तथा पारिस्थितिकी संतुलन (Ecological Balance) को बनाये रखना चाहिए।
- व्यवसायिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप विस्थापितों का पुनर्वास करना (Rehabilitate) चाहिए।
- लघु उद्योगों तथा आनुषंगिक (ancillaries) उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिए।
- शोध एवं विकास में योगदान करना चाहिए।
- पिछले क्षेत्रों का विकास तथा गन्दी बस्तियों के उन्मूलन हेतु यथासम्भव प्रयास करना चाहिए।
- स्थानीय समुदाय के पूर्णरूपेण विकास हेतु सहायता करना चाहिए।
- व्यवसायिक क्रियाओं की कुशलता में सुधार करना चाहिए।
- दुर्लभ संसाधनों को सुरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिए तथा वैकल्पिक साधनों का, जहाँ तक सम्भव हो, विकास करना चाहिए।
- विभिन्न सामाजिक कार्यों जैसे शिक्षा प्रसार, जनसंख्या नियंत्रण इत्यादि में यथासम्भव योगदान देना चाहिए।
- समुदाय के लाभार्थ पाठशालाएँ, चिकित्सालय, धर्मशालाएँ, पुस्तकालय इत्यादि का निर्माण कराना अपना उत्तरदायित्व समझना चाहिए।
- समान योग्यता व कुशलता वाले कर्मचारी व श्रमिक हों तो स्थानीय व्यक्ति को प्राथमिकता देनी चाहिए।
- अच्छे एवं स्वस्थ समाज के निर्माण में किये जा रहे राष्ट्रीय प्रयासों में योगदान करना चाहिए।

6.8 भारतीय व्यवसायी एवं सामाजिक उत्तरदायित्व (Indian Businessmen and Social Responsibility)

सामाजिक उत्तरदायित्व का विचार हमारे देश में बहुत पुराना है। व्यवसायियों द्वारा समाज के हित के लिए अपनी सम्पदा में से हिस्सा देने की अवधारणा

हमारे देश के लिए न तो आधुनिक है, और न ही पश्चिमी देशों से आयातित। प्राचीन भारतीय समाज में व्यवसायी का महत्वपूर्ण सम्मानित स्थान था तथा वे समाज के हित के लिए मूल तंत्र की भांति कार्य करते थे। बाढ़, सूखा, महामारी आदि प्राकृतिक विपत्तियों के समय वे अपने खाद्यान्न के गोदाम सामान्य जनता के लिए खोल देते थे तथा अपने धन से राहत कार्यों में सहायता करते थे। धर्मशालाओं तथा मंदिरों का निर्माण, रात्रि शरणस्थल (Night Shelters), जगह–जगह पीने के पानी की व्यवस्था, नदियों के किनारे घाटों का निर्माण, कुऐं बनवाना, इत्यादि व्यवसायियों के लिए आम बात थी। इसी प्रकार विद्यालयों में शिक्षा के लिए दान देना तथा गरीब लड़कियों के दहेज की व्यवस्था करना उनके लिए सामान्य कार्य था।

स्वतंत्रता के पश्चात् व्यवसायी वर्ग ने अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को निम्न प्रकार से पूरा किया :

- **स्वयं के प्रति**

व्यवसायी वर्ग ने अपने प्रति उत्तरदायित्व को अच्छी तरह से निभाया है। व्यवसायी वर्ग (मुख्य रूप से निजी क्षेत्र) का प्रमुख उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है। व्यवसायियों ने लाभ का अर्जन कर तथा उसका पुनर्विनियोग कर अपने व्यवसाय का बहुमुखी विकास किया है। निजी क्षेत्र में समस्त आर्थिक क्रियाएं न केन्द्रित हो जाएं, इस हेतु सरकार ने विभिन्न स्तर पर कदम उठाये हैं। व्यवसायियों ने नये–नये उत्पाद बनाकर नये बाजारों में प्रवेश किया है। अनुसंधान तथा आधुनिकीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया है।

- **स्वामियों के प्रति**

व्यवसायियों ने स्वामियों या अंशधारियों के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायित्व का निर्वहन नहीं किया है। अंशधारियों का हित इसमें होता है कि उन्हें समय से पर्याप्त मात्रा में लाभांश मिलता रहे। चूंकि अंशधारी बिखरे हुए होते हैं, अतः वे संचालक मण्डल पर विश्वास करके उसे अपना ट्रस्टी बना देते हैं। व्यवहार में अंशधारियों को कभी–कभी लाभांश मिलता ही नहीं है या मिलता भी है तो बहुत थोड़ी मात्रा में इससे अंशधारियों के हित कुप्रभावित होते हैं। सरकार ने अंशधारियों के हितों की रक्षा के लिए कई कदम उठाये हैं। 'सेबी' की स्थापना इन्हीं कदमों में से एक है।

- **कर्मचारियों के प्रति**

कुछ व्यवसायिक संगठनों को छोड़कर अधिकांश संगठनों ने कर्मचारियों के प्रति अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की अवहेलना ही की है। टाटा, बिड़ला,

जे0के0, रिलायन्स, मफतलाल, हिन्दुस्तान लीवर, डालमिया, इत्यादि कुछ गिने–चुने संगठन कर्मचारियों के प्रति उत्तरदायित्व को प्रभावी तरीके से सम्पादित करते हैं। अधिकांश व्यवसायी अपने कर्मचारियें का अधिकाधिक शोषण करते हैं। न तो इन व्यवसायियों के पास कार्य मापन हेतु उचित पैमाना होता है और न ही कर्मचारियों को कार्य करने के लिए उचित पर्यावरण ये व्यवसायी प्रदान करते हैं। गुलामों की भांति इन कर्मचारियों का भी क्रय–विक्रय किया जाता है।

- **उपभोक्ताओं के प्रति**

उपभोक्ताओं को अच्छी किस्म की तथा स्वास्थ्यवर्धक वस्तुएं उचित मूल्य पर प्राप्त करने का अधिकार है। परन्तु इस उत्तरदायित्व का निर्वहन करने में भारतीय व्यवसायी असफल रहा है। आज व्यवसायी नकली वस्तुओं को बेचकर, मिलावटी सामान बेचकर या अन्य किसी अनैतिक या अवैधानिक तरीके से थोड़े से समय में अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहता है। किन्तु विगत कुछ वर्षों से व्यवसायी वर्ग में अपने उपभोक्ताओं के प्रति जागरूकता आयी है। अब व्यवसायी उपभोक्ताओं की रूचि तथा आवश्यकता, विज्ञापन में मिथ्यावर्णन न करना, अच्छी व सस्ती वस्तुएं उपलब्ध कराना, विक्रय के पश्चात् सेवा, वितरण प्रणाली को सरल बनाना, वस्तुओं को प्रमापित करवाना, उपभोक्ता की शिकायतों को सुनना तथा उनका उचित तरीके से समाधान करना, इत्यादि पर ध्यान देने लगा है।

- **सरकार के प्रति**

जहाँ तक भारतीय व्यवसायियों द्वारा सरकार के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निभाने का प्रश्न है, इसमें वे एक बड़ी सीमा तक असफल रहे हैं। व्यवसायियों के लिए करों की चोरी, रिश्वत देकर अधिकारियों को भ्रष्ट करना, राजनैतिक सम्बन्धों का अपने तुच्छ हितों हेतु दुरूपयोग करना, इत्यादि सामान्य बातें हैं। व्यवसायी काला बाजारी, मिलावट आदि करके विभिन्न सरकारी नियमों–अधिनियमों का खुला उल्लंघन करते हैं।

- **समुदाय के प्रति**

व्यवसायी ने अपने आस–पास के समुदाय तथा राष्ट्र के लिए एक सीमा तक अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन किया है। समुदाय के लाभार्थ उन्होंने विद्यालयों, चिकित्सालयों, धर्मशालाओं, पुस्तकालयों इत्यादि के निर्माण में योगदान दिया है। शिक्षा का प्रसार तथा जनसंख्या पर नियंत्रण जैसे कार्यों में भी वे पीछे नहीं रहे हैं। व्यवसायिक क्रियाओं के माध्यम से विस्थापितों का पुनर्वास, लघु उद्योगों तथा आनुषंगिक उद्योगों को प्रोत्साहन, शोध एवं विकास के कार्यों

को विशेष महत्व दिया है।

विभिन्न औद्योगिक एवं व्यवसायिक नेताओं जैसे जी0डी0 बिरला, जे0आर0डी0 टाटा, लाला श्री राम, कस्तुरभाई लालाभाई, धीरूभाई अम्बानी एवं अन्य लोगों ने वैज्ञानिक एवं तकनीकी संस्थानों की स्थापना करने के साथ–साथ भारतीय कला, इतिहास व सभ्यता से सम्बन्धित केन्द्रों की स्थापना भी की है। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फन्डामेन्टल रिसर्च, पिलानी तथा रांची में स्थापित बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, धीरूभाई अम्बानी के रिलायन्स ग्रुप द्वारा गांधीनगर में स्थापित टेक्नोलाजी इंस्टीट्यूट (मुम्बई), इत्यादि प्रमुख संस्थान निजी क्षेत्र द्वारा स्थापित किये गये हैं। इसी प्रकार सांस्कृतिक रंगमंचों की कमी को पूरा करने के लिए श्री राम बन्धुओं द्वारा दिल्ली में श्रीराम सेन्टर फॉर आर्ट्स एण्ड कल्चर स्थापित किया गया है।

6.9 सारांश (Summary)

व्यवसाय एवं समाज एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। व्यवसाय, समाज का एक अभिन्न अंग है। व्यवसाय को सामाजिक अभिरूचियों, मान्यताओं, लक्ष्यों एवं बदली हुई दशाओं के अनुरूप अपनी क्रियाओं का संचालन करना पड़ता है। प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री पीटर ड्रकर ने व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व पर बल देते हुए कहा कि व्यवसाय को अपनी भूमिका के माध्यम से सामाजिक दायित्वों का प्रबन्ध करना है।

कुछ अर्थशास्त्रियों का मानना है कि व्यवसाय मूल रूप से एक आर्थिक संस्था है, इसका उद्देश्य केवल लाभ कमाना ही होना चाहिए। यह सोचना कि व्यवसाय का लाभ कमाने का उद्देश्य एवं सामाजिक उत्तरदायित्व दो अलग–अलग पहलू गलत है। बिना समाज के व्यवसाय का अस्तित्व ही नहीं है और बिना व्यवसाय के समाज का, व्यवसाय एवं समाज एक गाड़ी के दो पहिये हैं। व्यवसाय समाज के विभिन्न वर्गों तथा अंशधारी, कर्मचारी, ग्राहकर, समुदाय, सरकार एवं स्वयं के प्रति उत्तरदायी होता है।

भारतीय व्यवसाइयों में सामाजिक उत्तरदायित्व को निर्वाह करने की पुरानी परम्परा रही है। आधुनिक समय में भी भारत के सभी बड़े औद्योगिक घराने अपने इस उत्तरदायित्व को पूरा करने में लगे हुए है।

6.10 शब्दावली (Keywords)

- सामाजिक उत्तरदायित्व (Social Responsibility) सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने का दायित्व।
- नैतिक उत्तरदायित्व (Moral Responsibility) व्यवसाय की गम्भीर समस्याओं के प्रति नैतिक जिम्मेदारी।

- सामाजिक चेतना (Social Awarness) शिक्षा के प्रसार एवं सन्देशवाहन से समाज में लोगों की जानकारी में वृद्धि हुई है।
- समुदाय के प्रति उत्तरदायित्व (Responsibility towards community) एक व्यवसाय का अपने आस–पास के लोगों के प्रति ज्यादा सचेत रहना चाहिए। पारिस्थिति की संतुलन बनाये रखना चाहिए।
- पारिस्थितिकी (Ecology) व्यक्तियों, फ्लोरा, फौना और उनका भौतिक वातावरण।

6.11 अभ्यास के प्रश्न (Exercise Question)

(i) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. व्यवसाय के सामाजिक उत्तरदायित्व से क्या तात्पर्य है? इसके पक्ष तथा विपक्ष में तर्क दीजिये।

   (What is meant by social responsibility of business? Give your arguments.)

2. समाज के विभिन्न पक्षों के प्रति व्यवसायी के सामाजिक उत्तरदायित्व का वर्णन कीजिये।

   (Describe the responsibility of businessmen towards different section of society.)

3. क्या आपके विचार में भारतीय व्यवसायी अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह कर रहे हैं?

   (Is in your opinion indian businessmen are complying social responsibility.)

4. "व्यवसाय में व्यक्तिगत लाभ के अतिरिक्त एक व्यवसायी के कुछ सामाजिक उत्तरदायित्व होते हैं।" वे कौन–कौन से हैं? स्पष्ट कीजिए।

   ("In addition to personal benefit in a business a business man has certain social responsibilities." What are they? Explain.)

(ii) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

1. कर्मचारियों के प्रति एक व्यवसाय के क्या उत्तरदायित्व हैं ?

   (What are the responsibilities of a business towards employees?)

2. सरकार के प्रति एक व्यवसाय के क्या उत्तरदायित्वों को लिखिए।

   (Write the responsibilities of a business towards Government?)

3. एक व्यवसाय के समुदाय के प्रति कौन–से उत्तरदायित्व हैं ?

   (What are the responsibilities of a business towards community.)

4. 'भारतीय व्यवसायी एवं सामाजिक उत्तरदायित्व' पर एक टिप्पणी लिखिए।

   (Write a note on 'Indian Businessmen and Social Responsibility'.)

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

M.COM-02
व्यावसायिक पर्यावरण
(Business Environment)

खण्ड
2

सरकार एवं व्यवसाय (Government and Business)

इकाई - 1 5

व्यवसाय में सरकारी हस्तक्षेप का स्वरूप
(Forms of Government Intervention in Business)

इकाई - 2 25

भारत में आर्थिक नियोजन वर्तमान पंचवर्षीय योजना
(Economic Planning in India Present Five Year Plan)

इकाई - 3 59

आर्थिक सुधार (Economic Reforms)

इकाई - 4 79

औद्योगिक नीति (Industrial Policy)

इकाई - 5 101

प्रतियोगिता नीति (Competition Policy)

इकाई - 6 116

मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

इकाई - 7 135

राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 दिनेश कुमार	एसो0 प्रोफेसर, इलाहाबाद डिग्री कालेज, सम्बद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से श्री एम0 एल0 कनौजिया, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2010
मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खण्ड-2 परिचय- सरकार एवं व्यवसाय (Government and Business)

व्यवसाय एवं सरकार के बीच एक जटिल सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को समझने के लिये हमें सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों को समझना होगा। पूंजीवादी, समाजवादी एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत व्यावसायिक क्रिया–कलापों में सरकारी हस्तक्षेप के सम्बन्ध में काफी परिवर्तन आया है।

इस खण्ड में 7 इकाईयाँ है।

इकाई–1 व्यवसाय में सरकारी हस्तक्षेप के स्वरूप से सम्बन्धित है। व्यवसाय में सरकारी हस्तक्षेप का स्वरूप बदला है अब सरकार नियोजक, प्रवर्तक, नियामक एवं उद्यमी की तरह आवश्यकतानुसार हस्तक्षेप कर रही है। सरकारी हस्तक्षेप अनेक कारणों से विकासशील देशों में आवश्यक माना जाता है।

इकाई–2 भारत में आर्थिक नियोजन एवं वर्तमान पंचवर्षीय योजना से सम्बन्धित है। आर्थिक नियोजन को आज आर्थिक प्रगति का शक्तिशाली तंत्र माना गया है। वास्तव में आर्थिक नियोजन संसाधनों के अधिकतम उपयोग का मार्ग है। हमारे देश में 1950 में योजना आयोग की स्थापना हुई। 1951 से अब तक दस पंचवर्षीय योजनायें लागू की जा चुकी हैं। वर्तमान समय में ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) लागू है। आर्थिक नियोजन का देश को अनेक क्षेत्रों में लाभ हुआ है। फिर भी कहीं–कहीं सुधार की आवश्यकता है।

इकाई–3 आर्थिक सुधारों से सम्बन्धित है। वास्तव में अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर घटित महत्वपूर्ण घटनाओं जैसे सोवियत संघ का छिन्न–भिन्न होना, अमेरिकी प्रभुत्व का स्थापित होना तथा हर तरफ वैश्वीकरण की शुरूआत ने भारत में भी आर्थिक सुधारों को अनिवार्य बना दिया। औद्योगिक नीति, लाइसेन्सिग नीति, लोक उद्यमों को वरीयता, विदेशी विनियम एवं व्यापार से सम्बन्धित नीतियों में आमूल–चूल परिवर्तन किये गये। आर्थिक सुधारों के अच्छे परिणाम देखने को मिल रहे हैं।

इकाई–4 औद्योगिक नीति से सम्बन्धित है। किसी भी देश में औद्योगिक विकास एवं विस्तार उस देश की औद्योगिक नीति से जुड़ा होता है। भारत में मुख्य रूप से 1948, 1956 एवं 1991 में औद्योगिक नीतियाँ घोषित की गई। 1948 के बाद 1956 में व्यापक परिवर्तन किये गये। फिर 1991 की नीति में वैश्वीकरण निजीकरण एवं उदारीकरण की नीति को अपनाया गया।

इकाई–5 प्रतियोगिता नीति से सम्बन्धित है। हमारे देश में 1969 के एम.आर.टी.पी. एक्ट के अर्न्तगत व्यवसायिक प्रतियोगिता से सम्बन्धित प्रावधान किये गये थे। एक एम.आर.टी.पी. आयोग की भी स्थापना की गई थी। वर्तमान बदली व्यवसायिक परिस्थितियों में वर्ष 2002 में एक प्रतियोगिता नीति की घोषणा की गई है। पूरे विश्व में अधिकांश देशों में अपने प्रतियोगिता नीति एवं कानून है। प्रतियोगिता नीति व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा एवं उपभोक्ता के हित संरक्षण को नियमित करने में मदद करती है।

इकाई–6 मौद्रिक नीति से सम्बन्धित हैं। मौद्रिक नीति का देश के विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों, व्यवसाय, रोजगार, बैकिंग, विदेशी व्यापार, औद्योगिक विकास सभी पर प्रभाव पड़ता है। केन्द्रीय बैंक समय–समय पर मौद्रिक नीति में परिवर्तन करता है। सरकार इस प्रकार आर्थिक गतिविधियों को गति देने में मुद्रा एवं साख को माध्यम से हस्तक्षेप करती है।

इकाई–7 राजकोषीय नीति से सम्बन्धित हैं यह समस्टि आर्थिक नीतियों के अन्तर्गत आती है। सरकारी खजाने से आय और व्यय होता है। किस प्रकार करारोपण किया जाय उसका व्यवसाय, रोजगार के स्तर विदेशी विनियोग तथा आय की असमानता पर क्या प्रभाव पड़ेगा रिजर्व बैंक एवं केन्द्रीय सरकार मिलकर इस नीति में समय–समय पर परिवर्तन करते रहते है।

इकाई–1 : व्यवसाय में सरकारी हस्तक्षेप का स्वरूप (Forms of Government's Interventions in Business)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 सरकारी हस्तक्षेप के कारण

1.4 सरकार की भूमिकायें

1.4.1 नियामक सम्बन्धी भूमिका

1.4.2 उद्यमीय सम्बन्धी भूमिका

1.4.3 संवर्धन सम्बन्धी भूमिका

1.4.4 आयोजक सम्बन्धी भूमिका

1.5 सरकार की पुनः परिभाषित भूमिका

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास के प्रश्न

1.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- व्यवसाय में सरकार के हस्तक्षेप के कारणों को बता सकें।
- व्यवसाय के क्षेत्र में सरकार की चौगुनी भूमिका का वर्णन कर सकें।
- सरकार की नियामक भूमिका के स्वरूप और उसके निहितार्थों को बता सकें।
- यह बता सकें कि सरकार की नियामक, उद्यमीय संवर्द्धन एवं आयोजक सम्बन्धी भूमिका क्या है।
- वर्तमान बदले परिदृश्य में सरकार की भूमिका में परिवर्तन के बारे में बता सकें।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

सत्रहवीं और अठारहवीं सदी में तथा यहां तक कि उन्नीसवीं सदी के शुरू में भी अहस्तक्षेप नीति (Laissez-faire doctrine) का बोलबाला था, जिसमें व्यवसाय के क्षेत्र में सरकार की भूमिका नहीं के बराबर होती थी। उस समय माना जाता था कि सरकार का काम केवल कानून और व्यवस्था तक ही सीमित होता है। लेकिन धीरे–धीरे इस सिद्धान्त का प्रभाव कम होता गया तथा राजकीय पूंजीवाद (State Capitalism) का जन्म हुआ। राजकीय पूंजीवाद के अंतर्गत व्यवसाय सरकार के हाथ में रहा और सरकार को यह जिम्मेदारी सौपी गई कि वह समाज के व्यापक हित के लिए व्यवसाय को चलाए, उस पर नियंत्रण रखे तथा उसे विनियमित करे। लेकिन तुरन्त ही महसूस किया गया कि ये दोनों ही आर्थिक विकास के हित में नहीं हैं। वास्तविकता तो यह है कि विश्व में कोई भी ऐसा देश नहीं है जो पूर्णतः पूंजीवादी या समाजवादी हो। तथाकथित आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्थाएँ (Mixed Economy) होती है जिसमें एक तिहाई या एक चौथाई अर्थव्यवस्था सरकार के हाथ में होती है। उसी प्रकार तथाकथित समाजवादी देशों में एक चौथाई या पांचवां भाग निजी क्षेत्र के हाथ में होता है। वास्तविकता तो यह है कि सरकार का नियंत्रण या उसकी भागेदारी अलग–अलग प्रकार की होती है। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था की विषेशता यह है कि इसमें सार्वजनिक, निजी, संयुक्त तथा सहकारी क्षेत्र साथ–साथ कार्य कर रहे है। इनमें इनका अनुपात विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है। इस इकाई में हम देखेगें कि व्यवसाय में सरकार की सहभागिता तथा उसकी ओर से हस्तक्षेप के स्वरूप और आयाम किस प्रकार के है जिससे व्यष्टि और समष्टि स्तर पर अर्थव्यवस्था की संवृद्धि और उसके विकास में कोई रूकावट नहीं हो पाती।

1.3 व्यवसाय में सरकारी हस्तक्षेप के कारण (Reasons of Governments Intervention in Business)

व्यवसाय में सरकारी हस्तक्षेप के निम्न कारण है–

- **नियोजित अर्थव्यवस्था (Planned Economy)-** अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था एक नियोजित अर्थव्यवस्था होनी चाहिए। अनियोजन (Non-Planning) के खतरों का परीक्षण करने पर नियोजन की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है। नियोजन के अभाव में अर्थव्यवस्था को उचित निर्देशन नहीं प्राप्त होता है, गलत प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती है, सीमित संसाधनों का दुरूपयोग होता है तथा तेजी व मंदी की अवस्थाओं से अर्थव्यवस्था को जूझना

होता है। तीव्र तथा संतुलित आर्थिक विकास के साथ–साथ संसाधनों का अपव्यय रोकने के लिए नियोजित अर्थव्यवस्था अनिवार्य है। सरकार के अतिरिक्त और कोई इस महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व को वहन नहीं कर सकता है। वह नियोजन तथा क्रियान्वयन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उपयुक्त है।

- **आधारभूत उद्योगों का विकास (Development of Basic Industries)-** आधारभूत उद्योगों की सशक्त नींव स्थापित करने के लिए राजकीय भागीदारी अनिवार्य हो जाती है। लोहा व इस्पात, विद्युत, ईधन, अणुशक्ति, मशीन टूल्स, परिवहन एवं संचार के साधनों से सम्बन्धित उद्योगों की जिम्मेदारी सरकार को ग्रहण करनी होती है क्योंकि निजी क्षेत्र द्वारा अपनी पूँजी का निवेश अधिक लाभ प्रदान करने वाले क्षेत्रों में किया जाता है, भले ही आधारभूत उद्योग अविकसित रह जायें।

- **संतुलित आर्थिक विकास (Balanced Economic Development)-** देश के सर्वांगीण एवं संतुलित आर्थिक विकास की भावना ने भी राजकीय हस्तक्षेप की भावना को प्रोत्साहित किया है। निजी क्षेत्र द्वारा अपने विनियोजन का अधिकांश भाग उन क्षेत्रों में किया जाता है जो उनके लाभ की दृष्टि से उचित हो, भले ही महत्वपूर्ण क्षेत्र अविकसित रह जायें। ऐसी परिस्थिति में उद्योगों के स्थानीयकरण का नियमन करने एवं पिछड़े अविकसित क्षेत्रों का विकास करने हेतु राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

- **संसाधनों का सदुपयोग (Proper Utillsation of the Resources)-** अविकसित एवं विकासशील देशों की ये मुख्य समस्या होती है कि वहाँ के राष्ट्रीय संसाधनों का सदुपयोग नहीं हो पाता है, क्योंकि निजी क्षेत्र अपने स्वार्थों को पूरा करने में लिप्त रहता है, उसे इससे कोई मतलब नहीं होता कि चाहे साधनों का दुरूपयोग हो या सदुपयोग। लेकिन राज्य से समाज का ट्रस्टी होने के नाते यह आशा की जाती है कि वह राष्ट्र के प्राकृतिक एवं मानवीय साधनों के सदुपयोग की दृष्टि से आवश्यक नियमन एवं नियंत्रण स्थापित करें।

- **अधिक कोष की आवश्यकता (Need for More Funds)-** प्रारम्भ में सरकार का मूल कार्य देश में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना था। लेकिन धीरे–धीरे सरकार के कार्यों में वृद्धि हुई तथा हमारे देश में लोगों के सामाजिक–आर्थिक कल्याण की जिम्मेदारी सरकार ने ग्रहण कर ली। इस परिवर्तित भूमिका को निभाने के लिए करों से प्राप्त आय पर्याप्त नहीं थी अर्थात सरकार को अपने विविध कार्यकलापों को पूरा करने के लिए अधिक आगम की आवश्यकता महसूस हुई। व्यवसाय में सक्रिय भाग लेकर सरकार अब आय के विभिन्न साधनों का

विदोहन कर सकती है तथा अपने नये व बढ़ते हुए उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए कोष प्राप्त कर सकती है।

- **श्रमिकों के हितों की रक्षा (To Secure the Interests of Labour)-** स्वतंत्र अर्थव्यवस्था एवं विशेषकर अर्द्ध विकसित राष्ट्रों में एक महत्वपूर्ण समस्या श्रम की असंतोषजनक दशायें थी। उनका निजी क्षेत्र द्वारा शोषण किया जाता था। अतः श्रमिकों के हितों की रक्षा तथा निजी क्षेत्र द्वारा किये जाने वाले शोषण से उन्हें बचाने के लिए राजकीय नियमन को प्रोत्साहन मिला।

- **सार्वजनिक उपयोगिता सेवाएँ (Public Utility Services)-** देश के प्रत्येक नागरिक के जीवन में कुछ सेवाएँ ऐसी होती हैं जिनका निर्बाध रूप से उपलब्ध होना अत्यन्त आवश्यक होता है। इन सार्वजनिक उपयोगिता की सेवाओं के अन्तर्गत जल, विद्युत, यातायात, डाक, तार, रेलवे इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। इन सेवाओं में यदि सूक्ष्म गतिरोध भी पैदा होता है तो समस्त देशवासियों को परेशानी होती है और कभी–कभी इन सेवाओं की अनुपलब्धता राष्ट्रीय जीवन के लिए खतरा उत्पन्न कर देती है। अतः इन सेवाओं के सचालन में सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

- **संवैधानिक बाध्यता (Constitutional Binding)-** हमारा संविधान भी सरकार की आर्थिक क्रियाओं में सक्रिय भाग लेने हेतु बाध्य करता है। संविधान में दिये गये मौलिक अधिकार, नीति निर्देशक सिद्धान्त, सभी के लिए स्वतंत्रता एवं समानता इत्यादि सरकार की आर्थिक क्रियाओं की भागीदारी को अनिवार्य बनाते है। सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आर्थिक क्रियाओं में सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।

- **संस्थापना एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण (Determination of Establishments and Priorities)-** किन उद्योगों की स्थापना की जायेगी, किन को प्राथमिकता दी जायेगी, उन्हें कैसे संचालित किया जायेगा, उद्योगों के उत्पादों के मूल्य का निर्धारण तथा वितरण कैसे होगा एवं अन्य सम्बन्धित बातें एक बड़ी सीमा तक सरकारी नीति से प्रभावित होती हैं। देशवासियों के रहन–सहन में वृद्धि, उच्च जीवन–स्तर, उपभोक्ता उत्पादों की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता तथा लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सरकार का सक्रिय योगदान अति आवश्यक है।

- **समाजवादी समाज की स्थापना (Establishment of Socilalist Society)-** आज विश्व के अधिकांश देशों में समाजवादी समाज की स्थापना पर जोर दिया जाता है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात समाजवादी समाज की स्थापना

पर बल दिया गया। ऐसे समाज के अन्तर्गत उत्पादन, विनिमय तथा वितरण के सभी साधनों पर राज्य का अधिकार होता है। राज्य इन सभी का प्रयोग आवश्यकतानुसार एवं सामान्य जनता के हित में करता है।

1.4 व्यवसाय में सरकार की भूमिका (Role of Government in Business)

समस्त अर्थव्यवस्था और व्यवसाय में सरकार की भूमिका में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा है। परंपरागत अर्थों में सरकार का कार्य होता है कानून और व्यवस्था को बनाए रखना, बाहरी आक्रमण से अर्थव्यवस्था की रक्षा करना, सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना, रक्षा उत्पादन को बढ़ावा देना तथा लोकोपयोगी सेवाओं पर नियंत्रण बनाए रखना। उपर्युक्त सभी व्यवसाय को आधारिक संरचना प्रदान करने के लिए होते थे जिससे कि देश के अंदर का पर्यावरण व्यवसाय के विकास में सहायक बना रहे। लेकिन समय गुजरने के साथ–साथ कुछ ऐसी घटनाएं घटी जिन्होंने परपंरागत भूमिका में परिवर्तन ला दिया। 1917 की रूस की क्रान्ति, 1929 की विश्वव्यापी मंदी, द्वितीय विश्व युद्ध तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास ऐसे कुछ प्रमुख कारक थे जिन्होंने इस विचार को जन्म दिया कि व्यवसाय का समाज के प्रति दायित्व होता है और इस दायित्व को पूरा करने का कार्य सरकार के ऊपर सौपा गया। इस उद्देश्य से व्यवसाय के क्षेत्र में सरकार की निष्क्रिय भूमिका को सक्रिय भूमिका कर दिया गया। इस संबंध में प्रमुख प्रयोजन यह था कि सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास तेजी से किया जाए। फिर भी सक्रिय भूमिका का अर्थ यह नहीं कि सरकार व्यवसाय को पूर्णतः अपने हाथ में ले ले।

सरकार का कर्तव्य अब यह नहीं है कि वह व्यवसाय को स्वयं ही चलाएं बल्कि उसकी जिम्मेदारी यह देखना है कि व्यवसाय का संचालन सुचारू रूप से हो सके। इस प्रकार सरकार की भूमिका के चार आयाम हो गये हैं– नियामक, संवर्धनात्मक, उद्यम संबंधी और योजना। इन चारों भूमिकाओं संबंधी विचारों के आधार यह है कि कि संवैधानिक ढांचे के अंतर्गत संतुलित आर्थिक विकास इस प्रकार होना चाहिए कि लोकोपयोगी सुविधाओं और आधारिक संरचना संबंधी सुविधाओं की व्यवस्था हो सके।

आयाम संबंधी इन चारों भूमिकाओं के अतिरिक्त सरकार व्यवसाय और उद्योगों को प्रत्यक्ष रूप से सहायता देने के लिए भी हस्तक्षेप करती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिता के होने, वित्तीय संकटों एवं तकनीकी जटिलताओं के होने

के कारण ऐसी सहायता देनी पड़ती है। प्रत्यक्ष सहायता के निम्नलिखित रूप हो सकते हैः संरक्षण प्रदान करना, वित्तीय सहायता देना, तकनीकी सलाह प्रदान करना, अनुसंधान एवं विकास में सहायता, औद्योगिक प्रशिक्षण तथा कर प्रोत्साहन। इस प्रकार की प्रत्यक्ष सहायता अनुकूल औद्योगिक वातावरण के निर्माण के लिए दी जाती है।

सरकार की इन विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं के संबंध में हम अब विस्तार से चर्चा करेंगे।

1.4.1 नियमन सम्बन्धी भूमिका (Regulatory Role)

व्यवसाय के विनियमित करने के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैः

i) बाजार के ढांचे को एकाधिकारी होने से रोकना,

ii) छोटे–छोटे और नये उद्यमकर्ताओं को विकसित करना, तथा

iii) समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के कल्याण को बढ़ावा देना।

नियमन सम्बन्धी भूमिका के अंतर्गत व्यवसाय एवं देश की अर्थव्यवस्था का सरकार द्वारा विनियमन करना होता है। नियमन से अभिप्राय होता है व्यवसाय के कामकाज में सहायता के उद्देश्य से उसका निर्देशन करना। इसके अंतर्गत व्यवसाय का नियंत्रण आता है जिसके द्वारा सरकार सामान्य मानकों और मापदण्डों का निर्धारण करती है। यह कार्य सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं के लाभ पर सीमा निर्धारित करके, डिविडेंडों की उच्चतम सीमा निर्धारित करके एवं अतिरिक्त लाभ कर लगाकर किया जा सकता है। नियमन के द्वारा कुछ थोड़े से लोगों के हाथों में आर्थिक शक्ति के अनुचित संकेन्द्रण एवं कुछ थोड़े से क्षेत्रों में व्यवसाय के संकेन्द्रण पर भी नियंत्रण किया जा सकता है। इसके लक्ष्यों के अंतर्गत प्रबंधकों एवं श्रमिकों के बीच के झगड़ों को निपटाना भी आता है।

कुल मिलाकर नियमन का प्रयास होता है व्यवसाय का सही मार्गदर्शन करना जिससे सामाजिक न्याय के साथ प्रगति हो सके। व्यवसाय का नियमन करते समय दो सावधानियां रखनी होती है। प्रथम, कानूनी नियमन बहुत कड़े नहीं होने चाहिए और द्वितीय, विनियमन का पालन बड़ी कुशलतापूर्वक होना चाहिए। यदि इन दो सावधानियों को ध्यान में नहीं रखा जाता है तो आर्थिक विकास और संवृद्धि के लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकेगी।

व्यवसाय पर सरकार का नियमन प्रत्यक्ष हो सकता है या अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष नियंत्रण अत्यंत कड़ा होता है और यह करने वाले के विवेक के ऊपर निर्भर करता है। सरकार अपनी इच्छा के अनुसार व्यष्टि स्तर पर व्यवसाय का नियंत्रण

फर्म या उद्योग के आधार पर करती है। प्रत्यक्ष नियंत्रण के पक्ष में मुख्य दलील यह है कि चूँकि सामाजिक न्याय की दृष्टि से निजी उद्यम में कुछ कमियां होती है, अतः उनके कार्यों पर नियंत्रण की आवश्यकता है जिससे आर्थिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक विचारों से उन्हें सही करार दिया जा सके। उदाहरणार्थ औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली का आधार यही है क्योकि बाजार तंत्र दुर्लभ साधनों का आवंटन सामाजिक दृष्टि से नहीं कर पाता, अतः इन पर नियंत्रण करना आवश्यक है।

अप्रत्यक्ष नियंत्रणों का स्वरूप अप्रत्यक्ष होता है तथा व्यष्टि स्तर पर यह राजकोषीय और मौद्रिक प्रोत्साहनों, अप्रोत्साहनों, दंडों और पुरस्कारों द्वारा किए जाते हैं। निर्यात–उन्मुख उद्योगों को विकसित करने की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के राजकोषीय और मौद्रिक प्रोत्साहन दिए जा सकते हैं। उसी प्रकार से आयात के स्तर को घटाने की दृष्टि से आयात शुल्क लगाए जा सकते हैं।

नियामक नियंत्रण के उद्देश्यों को तभी पूरा किया जा सकता है जबकि इस प्रकार के नियंत्रण अत्यधिक न हो तथा इन्हें अत्यंत कुशलतापूर्वक किया जाए। उदाहरणार्थ भारत में नियामक नियंत्रण निम्नलिखित प्रकार से किये जाते हैं:

i) **उद्योग (विकास और विनयमन) अधिनियम 1951 (Industries Development & Regulations Act 1951):** इसका मुख्य उद्देश्य उद्योगों के विकास को बढ़ावा देना और उनका विनियमन करना है। इस अधिनियम के द्वारा क) उपलब्ध साधनों का समुचित रूप से उपयोग हो पाता है, ख) आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर रोक लगाया जाता है, ग) संसाधनों का उचित रूप से आबंटन हो जाता है तथा घ) नए उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाता है।

इस अधिनियम के अंतर्गत विभिन्न प्रावधानों को तीन मुख्य वर्गों के अंतर्गत लाया जा सकता है:

क) **प्रतिबंधात्मक प्रावधान (Prohibitive Provision)** अनुसूचित उद्योगों के लाइसेंस और पंजीकरण की व्यवस्था करना और उनका नियंत्रण करना।

ख) **उपचारी प्रावधान (Curative provisions)** सरकार द्वारा प्रत्यक्ष प्रबंध एवं नियंत्रण तथा आपूर्ति, वितरण प्रणाली और कीमतों पर नियंत्रण।

ग) **रचनात्मक प्रावधान (Constructive provision)रू** केन्द्रीय सलाहकार बोर्डों, समीक्षा उपसमितियों, स्थायी समितियों, विकास बोर्डों तथा उद्योग सलाहकार ग्रुपों की नियुक्ति।

ii) **उद्योग लाइसेंस प्रणाली (Industrial Licensing System)–** इस प्रणाली का उद्देश्य नये उद्योगों का नियंत्रण करना तथा वर्तमान उद्योगों की क्षमता को बढ़ाना है। 1980 के पश्चात् इस प्रणाली के प्रावधानों को सरल करने और उन्हें उदार बनाने के अनेक प्रयास किए गए है।

iii) **पूंजी निर्गमन पर नियंत्रण (Control Over Capital Issue)** – 1947 के पूंजी निर्गमन (नियंत्रण) अधिनियम में पूंजी निर्गमन के नियत्रंक की अनुमति की व्यवस्था की गई थी। ऐसा इसलिए किया गया था कि पूंजी सही क्षेत्रों में लगाई जाए। परन्तु 1991–91 में इस नियंत्रण में बहुत कुछ ढील दी गई। अब पूंजी नियंत्रण प्रावधान भारतीय प्रतिभूति और निवेश बोर्ड ैमबनजतपजपमे ंदक म्गबींदहम ठवंतक व ्पदकपं ;ैम्ठप्द्ध के कार्यों के अंतर्गत आ गए है।

iv) **कीमत नियंत्रण (Price Control) :** केन्द्रीय सरकार और विभिन्न राज्य सरकारें कीमतों का विनियमन करती है जिससे उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा की जा सके।

v) वितरण प्रणाली **(Distribution Mechanism) :** आवश्यक वस्तु अधिनियम एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) के द्वारा दैनिक आवश्यक वस्तुओं के वितरण का विनियमन और नियंत्रण किया जाता है।

vi) **प्रतिभूति अनुबंध (विनियमन) अधिनियम 1956 (Securities Contract Regulaton Act. 1956) :** यह अधिनियम 1956 से लागू है और इसका लक्ष्य कंपनियों के शेयरों और डिबेंचरों का विनियमन और नियंत्रण करना है। यह विभिन्न स्टाक एक्सचेंज के कार्यकलापों का भी नियंत्रण करता है। 1995 तक भारत में 25 स्टाक एक्सचेंज **(stock exchange)** थे। उनके अतिरिक्त भारत सरकार ने ओवर द काउंटर एक्सचेंज ऑफ इण्डिया ;व्ज्ब्म्प्द्ध एवं नेशनल स्टॉक एक्सचेंज ;छैम्द्ध की स्थापना की है।

vii) **एकाधिकार तथा प्रतिबंधित व्यापारिक व्यवहार अधिनियम**

1969, (Monopolies and Restrictive Trade Practies Act, 1969) : इस अधिनियम के मुख्य उद्देश्य थे

क) आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर रोक लगाना, जिससे आम जनता के हितों की रक्षा हो सके तथा

ख) उन एकाधिकारी, प्रतिबंधित एवं अनुचित व्यापारिक व्यवहारों पर नियंत्रण करना जो आम जनता के हितों के विरूद्ध कार्य करते है। 1982, 1984 और 1991 में इस अधिनियम में बहुत महत्वपूर्ण संशोधन किए गए।

viii) विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम **(FERA) 1973 :** इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य विदेशी मुद्रा को विनियमित करना है।

ix) **विदेशी व्यापार का विनियमन और संवर्धन (Regulation & Promotion of Foreign Trade) :** निर्यात और आयात नीति (EXIM Policy) के द्वारा भारत का विदेशी व्यापार संचालित होता है। इस नीति का कार्यान्वयन मुख्यतः उन नियामक ढांचों से होता है जिनका प्रावधान विदेशी व्यापार (विकास और विनियमन) अधिनियम 1992 द्वारा किया जाता है।

x) **औद्योगिक नीति (Industrial Policy) :** 1948, 1956, 1973, 1977, 1980, 1990 और 1991 में भारत की औद्योगिक नीतियां घोषित की गई। इन नीतियों के द्वारा निजी क्षेत्र, सार्वजनिक क्षेत्र, सहकारी क्षेत्र, संयुक्त क्षेत्र और छोटे पैमाने के क्षेत्र के उद्योगों के विकास के संबंध में विभिन्न प्रकार की घोषणाएं की जाती है।

xi) **कंपनियों का विनियमन (Regulation of Companies):** कंपनी अधिनियम 1956 के अधीन पूंजी निर्गमन, डिविडेंड–वितरण, ऋण और अग्रिम, शेयर पूंजी एवं अन्य मामलों के प्रबंध का नियंत्रण और विनियमन किया जाता है जिससे शेयरधारियों और लेनदारों के हितों की रक्षा की जा सके।

xii) **श्रम मामले (Labour Affairs) :** श्रम के शोषण को रोकने के लिए सरकार ने अनेक कानूनी कदम भी उठाए है। इनमें से कुछ प्रमुख कानून ये हैं : फैक्टरी अधिनियम 1948, श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923, कर्मचारी प्रॉविडेंड फंड अधिनियम 1952, न्यूनतम मजदूरी भुगतान अधिनियम, प्रसूति हितलाभ अधिनियम 1961, बोनस

भुगतान अधिनियम 1975 तथा उद्योग विवाद अधिनियम 1947।

xiii) **वाणिज्यिक अधिनियम (Commercial Act) :** व्यापार और वाणिज्य के संचालन पक्ष को विनियमित करने के लिए सरकार ने भारतीय संविदा अधिनियम, वस्तु विक्रय अधिनियम, परक्राम्य प्रपत्र अधिनियम, विवाचन अधिनियम जैसे अनेक कानून बनाए है।

xiv) **विविध नियामक कानून (Miscellaneous Regulatory Enactment):** उपर्युक्त कानूनों के अतिरिक्त व्यवसाय के विभिन्न पक्षों से संबंधित अन्य अनेक कानून भी बनाए गए है। ये है : व्यापार और वाणिज्य वस्तु विपणन अधिनियम 1959, कृषि उत्पाद (ग्रेडिग और विपणन) अधिनियम 1959, मानकित भार और माप अधिनियम 1956, बैकिंग अधिनियम और आवश्यक वस्तु अधिनियम आदि।

बोध प्रश्न क (Check Your Progres A)

i) व्यवसाय में सरकार की सक्रिय भूमिका के मुख्य कारण क्या है?

....

....

ii) सरकार की भूमिकाओं का वर्णन कीजिए।

....

....

iii) व्यवसाय के नियमन के मुख्य उद्देश्य क्या है?

....

....

1.4.2 उद्यमीय सम्बन्धी भूमिका (Enterpreneurial Role)

उद्यमीय संबंधी भूमिका का अर्थ होता है कि सरकार स्वयं ही उद्यमी हो जाती है। इससे अभिप्राय है कि स्वामित्व सरकार के हाथ में आ जाता है। इसे सार्वजनिक क्षेत्र का आगमन कहा जाता है। भारी और मूल उद्योगों में जोखिम बहुत होते हैं। इनसे अधिक लाभ होने की संभावना नहीं होती, अतः निजी उद्यम इनकी उपेक्षा कर देते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी उद्योग होते है जिनकी स्थापना और उनसे उत्पादन होने व उत्पादित वस्तुओं के विक्रय की अवधि में

काफी अंतराल होता है। अतः शुरू–शुरू में उनमें हानि होने की भी संभावना हो सकती है। परन्तु समष्टि स्तर राष्ट्रीय हित को देखते हुए ये उद्योग अत्यंत महत्व के होते हैं। अतः सरकार इनके संबंध में उद्यमी की भूमिका निभाती है। ऐसे उद्योगों के कुछ उदाहरण हैः इस्पात, खनिज पदार्थ, रसायन उद्योग, इंजीनियरी उद्योग, सिंचाई, शक्ति और भारी बिजली प्लांट आदि। इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र को उद्यमकर्ता की भूमिका सौंपी जाती है।

1948 की उद्योग नीति संकल्प में अत्यंत स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया था कि शस्यास्त्रों और गोला–बारूदों के निर्माण, परमाणु ऊर्जा के उत्पादन और नियंत्रण एवं रेलवे परिवहन के स्वामित्व और प्रबन्ध पर केन्द्रीय सरकार का एकमात्र एकाधिकार होगा। इसमें यह भी प्रावधान किया गया था कि कोयला, लोहा और इस्पात, वायुयानों के निर्माण, जहाजरानी के निर्माण, टेलीफोनों, टेलीग्राफों और वायरलेस के पुर्जों के निर्माण तथा खनिजों जैसे अन्य छः उद्योगों के संबंध में नई उद्यम इकाइयों की स्थापना केवल सरकार द्वारा ही की जाएगी।

1956 की उद्योग नीति संकल्प में सरकार की भूमिका में और भी विस्तार दिया गया। 1956 के संकल्प की अनुसूची ए में 17 उद्योग दिए गए थे जिनके भविष्य में विकास का अधिकार केवल सरकार को ही दिया गया था। इसके अतिरिक्त अनुसूची बी में 12 उद्योगों की सूची दी गई थी जिनका स्वामित्व क्रमशः सरकार के हाथों में आना था तथा सरकार से आशा की गई थी कि वह इनसे संबंधित नई इकाइयों की स्थापना के संबंध में पहल करेगी। तभी से सरकार की उद्यमीय भूमिका बढ़ती गई है। उद्यमीय भूमिका के अंतर्गत केवल नये उद्योगों की स्थापना ही नहीं है। इसके अतिरिक्त कोयला, तांबा, बीमा तथा वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण तथा अनेक रूग्ण इकाइयों को सरकार द्वारा अपने हाथ में लेने के कारण भी सरकार द्वारा उद्यमीय भूमिका में विस्तार हुआ है।

सरकार की उद्यमीय सम्बन्धी भूमिका की भलीभांति छानबीन करना आवश्यक है। भारत में अनेक सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को अत्यधिक मात्रा में हानि हो रही हैं। हानि का वहन करने वाली अत्यधिक इकाइयां या तो गैर–प्राथमिक क्षेत्र में है या वे उन क्षेत्रों में हैं जिनमें निजी उद्यम अधिक कुशल सिद्ध होते हैं। हानि का वहन करने वाली इकाइयां रूग्ण भी हैं। स्थिति के बिगड़ने के अनेक कारण दिए जाते हैं। सरकार द्वारा चलाए जाने वाले उद्यमों का कुशलतापूर्वक न काम करने के कारणों में से कुछ यों हैः साधनों का आबंटन, उच्च अधिकारियों के पदों पर नियुक्ति में विलंब, निवेश संबंधी कड़े नियम–कानून तथा स्वायत्तता पर प्रतिबंध। इन इकाइयों को सरकारी इकाइयों जैसी नहीं बल्कि व्यवसायिक

इकाइयों जैसे कार्य करना चाहिए, इनको चलाने वालों में नौकरशाही जैसी प्रवृत्ति नहीं बल्कि उन्हें व्यवसायी व्यक्तियों जैसा होना चाहिए।

क्योंकि ऐसे उद्यमों को अपर्याप्त प्रायोजना प्रबंध, आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों के होने, तकनीकी कुशलता की कमी तथा अनुसंधान एवं विकास की ओर अपर्याप्त ध्यान न देने का शिकार होना पड़ा है अतः इन उद्यमों में और वृद्धि होने से सरकार पर भार बढ़ता है। इसीलिए कोई व्यावहारिक मार्ग ढूढ़ने के लिए गंभीर रूप से विचार करने की आवश्यकता पड़ी। जुलाई 1991 में घोषित नई उद्योग नीति में सरकार की उद्यम संबंधी भूमिका को पुनः परिभाषित किया गया। इस नीति के अनुसार निम्नलिखित को सार्वजनिक क्षेत्र का प्राथमिकता क्षेत्र माना गया :

क) आवश्यक आधारिक संरचना वस्तुएं और सेवाएं।

ख) तेल और खनिज संसाधनों का पता लगाना और उन्हें उपयोग में लाना।

ग) प्रोद्योगिकीय विकास तथा उन क्षेत्रों में विनिर्माण क्षमता लाना जो अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन विकास के लिए महत्वपूर्ण तो है परन्तु उनमें निजी क्षेत्र का निवेश पर्याप्त मात्रा में नहीं है, तथा

घ) उन क्षेत्रों में उत्पादन करना जो सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या को घटाकर केवल आठ कर दिया गया है। निजीकरण को बढ़ावा देने के उद्‌देश्य से अनेक उद्योगों में सार्वजनिक क्षेत्र के एकाधिकार को समाप्त कर दिया गया है। यह उद्योग है लोहा और इस्पात, शक्ति, जहाज–निर्माण, टेलीफोन, वायुयान, भारी प्लांट और मशीनरी।

कुछ ऐसे क्षेत्रों के संबंध में विचार किया जा रहा है जिनमें कुछ शर्तों के पूरा होने की स्थिति में उनमें से सरकारी निवेश को घटा दिया जाए तथा उनमें निजी क्षेत्र के निवेश को आने दिया जाए। उपर्युक्त शर्त हैः

क) कम मात्रा में प्रौद्योगिकी पर आधारित उद्योग।

ख) अकुशल और अनुत्पादक क्षेत्र, वे क्षेत्र जिनमें सामाजिक दायित्व शून्य या बहुत ही कम होता है।

ग) वे क्षेत्र जिनमें निजी क्षेत्र ने पर्याप्त उद्यम क्षमता विकसित कर लिया है, और

घ) लघु एवं असामरिक क्षेत्र

1.4.3 संवर्धन सम्बन्धी भूमिका (Promotional Role)

सरकार की संवर्धन सम्बन्धी भूमिका अप्रत्यक्ष रूप में होती है। सरकार न तो व्यवसाय के कार्यों में हस्तक्षेप करती है और न ही उन्हें विनियमित करने का प्रयास करती है। यह एक टीम के सदस्य की तरह कार्य नहीं करती बल्कि उसका लक्ष्य तो पर्याप्त आधारिक संरचनाओं की व्यवस्था करके, उपर्युक्त पर्यावरण बनाकर तथा विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहनों को देकर व्यवसाय का संवर्धन करना होता है, जिससे व्यवसाय के कार्यकलापों में वृद्धि हो सके। सभी प्रकार की आर्थिक प्रणालियां, चाहे वे विकसित हो या विकासोन्मुख हों, सरकार की ओर से संवर्धानात्मक प्रयासों की अपेक्षा करती हैं। अपनी इस भूमिका के अंतर्गत सरकार कुछ विकासोन्मुख मूल ढांचों का निर्माण करती है, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित आते हैं : सड़कों और पुलों का निर्माण, जलपूर्ति, बिजली की व्यवस्था, कुशल परिवहन सुविधाएं, औद्योगिक क्षेत्रों और बस्तियों का निर्माण, जिला उद्योग केन्द्र, परामर्श केन्द्र, विकास केन्द्र, संचार प्रणाली, उद्योग प्रशिक्षण की व्यवस्था, बैंकिग की सुविधा तथा विपणन–जल की व्यवस्था। सरकार अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक, निजी, संयुक्त एवं सहकारी जैसे अनेक क्षेत्रों में समायोजन करने का कार्य करती है और ऐसा करने के दौरान यह विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन प्रदान करने के उपायों का आश्रय लेती है।

व्यवसाय–कार्यों के संवर्धन के लिए सरकार की ओर से विभिन्न प्रकार के कार्य होते हैं। यह कार्य निम्नलिखित है :–

i) लोक उपयोगी सेवाओं की देखभाल करना।

ii) विभिन्न क्षेत्रों में विकास की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना।

iii) आर्थिक संसाधनों को उत्पादक और प्रगतिशील बनाना।

iv) विभिन्न संसाधनों का सही ढंग से उपयोग करना।

v) संपत्ति और आय के न्यायोचित वितरण को सुनिश्चित करना।

vi) विभिन्न क्षेत्रों में उचित संतुलन कायम करना।

vii) विकास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मुद्रा की उपलब्ध मात्रा पर नियंत्रण रखना।

viii) देश में निवेश का वातावरण बनाना।

ix) विदेश व्यापार के संवर्धन के लिए प्रोत्साहन की व्यवस्था करना।

इस प्रकार हम देखते है कि सरकार की संवर्धन सम्बन्धी भूमिका के अंतर्गत राजकोषीय, मौद्रिक एवं बजट संबंधी प्रोत्साहन आ जाते हैं जो अर्थव्यवस्था के प्राथमिकता क्षेत्रकों के तेजी से प्रसार एवं विकास के लिए आवश्यक होते हैः

1.4.4 आयोजक सम्बन्धी भूमिका (Planning Role)

भारत जैसे विकासशील देश में योजनाकार के रूप में सरकार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसा इसलिए कि आधुनिक समय में सरकार को समाज के कल्याण का अभिरक्षक माना जाता है। सबके कल्याण के लिए संतुलित संपन्नता को लाना आवश्यक होता है। उद्देश्य अलग–अलग होते हैं एवं उन्हें प्राप्त करने के लिए साधन भी अलग–अलग होते हैं, अतः उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना आवश्यक होता है। संसाधन सदा ही सीमित होते हैं, अतः उनका आबंटन इस प्रकार करना होता है कि इष्टतम उपयोग के इष्टतम परिणाम हो। इसके लिए प्राथमिकताओं का निर्धारण करना आवश्यक होता है। ये सभी कार्य योजना द्वारा किए जाते है। अन्य शब्दों में योजना संबंधी भूमिका का अर्थ होता है कि सरकार को योजना इसलिए बनानी पड़ती है कि सीमित संसाधनों का उपयोग सही कार्यों के लिए किया जाए जिससे सभी के हित में सुपरिभाषित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

योजना विश्वव्यापी होती है। प्रत्येक आर्थिक इकाई को व्यष्टि स्तर पर अपने कार्यकलापों की योजना बनानी होती है। उसी प्रकार समष्टि स्तर पर देश के लिए सामूहिक रूप से योजना बनानी होती है तथा सरकार द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत व्यष्टि स्तर की योजना बनाई जाती है। इस प्रकार सरकार की योजना संबंधी भूमिका का अर्थ है सरकार द्वारा उन बाह्य सीमाओं या विस्तृत सीमाओं का निर्धारण जिनके अतर्गत व्यष्टि स्तर के कार्यकलापों की योजना बनाई जाएगी और उनका संपादन होगा।

योजना की भूमिका के संदर्भ में व्यापक योजना हो सकती है या खंडशः योजना हो सकती है। व्यापक योजना के अंतर्गत समस्त अर्थव्यवस्था के लिए एक दी हुई अवधि में कार्यकलापों की एक श्रेणी होती है। उदाहरणार्थ हमारे देश की पंचवर्षीय योजनाएं ऐसी योजना के दृष्टांत हैं। इसके विपरीत खंडशः योजना अस्थायी या तदर्थ होती है जिसका उद्देश्य किसी आकस्मिक या अस्थायी परिस्थिति का सामना करना होता है। उदाहरणार्थ, किसी युद्ध के बाद पुर्ननिर्माण की योजना बनाना, या सामाजिक सुरक्षा की योजना या 20–सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम।

अवधि की दृष्टि से दीर्घकालीन योजना हो सकती है या अल्पकालीन

योजना हो सकती है। दीर्घकालीन योजना में भी लघुकालीन कार्यक्रम हो सकते हैं। योजना का वर्गीकरण संगठनात्मक आयाम की दृष्टि से भी किया जा सकता है। केन्द्रीकृत या विकेन्द्रीकृत योजना हो सकती है। केन्द्रीकृत योजना ऊपर से होती है तथा यह राज्य स्तर को और फिर उससे भी नीचे की ओर आती है। विकेन्द्रीकृत योजना नीचे से ऊपर की ओर जाती है, अर्थात् व्यक्तिगत इकाइयों जैसे पंचायत स्तर, क्षेत्रीय स्तर और क्षेत्रीय स्तर से होकर राष्ट्रीय स्तर तक। योजना का प्रकार कुछ भी हो, इससे संबंधित कार्यों को बड़ी सावधानी से करना होता है।

योजना के संबंध में कुछ स्पष्ट कदम उठाने होते हैं क्योंकि योजना के कार्यक्रमों के दौरान अर्थव्यवस्था के निर्बाध बाजार कार्यों में हस्तक्षेप करना होता है। सामाजिक–आर्थिक उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए लक्ष्यों को निर्धारित करना होता है। ये उद्देश्य राजनैतिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा ऐसे व्यापक ढांचे को दर्शाते हैं जिसके अंतर्गत प्राथमिकताएं दी गई होती हैं। ये उद्देश्य आर्थिक संवृद्धि, सामाजिक न्याय, पूर्ण रोजगार, स्थिरता और पारिस्थितिक संतुलन से संबंधित हो सकते हैं। सामाजिक–आर्थिक उद्देश्यों को जब ज्ञात कर लिया जाता है तब विभिन्न क्षेत्रों के लिए भौतिक लक्ष्यों को निर्धारित कर लिया जाता है। इन लक्ष्यों को निर्धारित करने के बाद इन्हें प्राप्त करने के साधनों को निर्दिष्ट किया जाता है। साधनों का अर्थ होता है नीति–मिश्रण की विस्तृत रूपरेखा। नीति–मिश्रण के अंतर्गत आती है मौद्रिक, भौतिक और राजकोषीय नीतियां। इस प्रकार ये साधन उद्देश्यों और लक्ष्यों को कार्यात्मक अर्थ प्रदान करते हैं। कार्यान्वयन की विधियों की भी योजना बनानी होती है। कार्यान्वयन यदि गलत ढंग से किया गया, तो योजना प्रायः असफल रहती है। अंततः योजना की प्रक्रिया के कार्य संपादन के संबंध में समय–समय पर समीक्षा भी करनी होती है, जिससे कार्य संपादन की प्रतिपुष्टि ज्ञात की जा सके। ऐसी समीक्षा के द्वारा लचीलापन बना रहता है एवं भविष्य में परिवर्तन की गुजांइश बनी रहती है।

सरकार की योजना संबंधी भूमिका संतुलित एवं इष्टतम होनी चाहिए। यहां इष्टतम और संतुलित से अभिप्राय होता है आर्थिक क्षमता और सामाजिक वांछनीयता से।

बोध प्रश्न (Check Your Progres)

i) नई आर्थिक नीति 1991 के अनुसार सार्वजनिक क्षेत्र के लिए प्राथमिक क्षेत्रों का विवरण दीजिए।

....

....

ii) व्यवसाय कार्यों के संवर्धन संबंधी सरकार के विभिन्न कार्यों का विवेचन कीजिए।

....

....

iii) व्यवसाय कार्यों के संबर्धन के संबंध में सरकार के किन्हीं पांच कार्यों की सूची बनाइए।

....

....

1.5 बदलते परिदृश्य में सरकार की पुनः परिभाषित भूमिका (Redefined Role of Government in Changing Scenario)

भारत के संविधान में दिए गए राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में प्रावधान है कि राज्य आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति का प्रयास करेगा। लेकिन किसी जिम्मेदारी को तब तक पूरा नहीं किया जा सकता जब तक कि उस संबंध में पर्याप्त अधिकार प्राप्त न हों। अतः अर्थव्यवस्था के नियंत्रण के संबंध में सरकार के पास पर्याप्त अधिकार होता है तदनुसार सरकार अपनी चार भूमिकाओं–नियामक, संवर्धन संबंधी, उद्यमकर्ता संबंधी और योजना संबंधी– को निभाने में अत्यंत सक्रिय रही है। फिर भी हाल के वर्षों में यह प्रश्न उठाया जाने लगा है कि सरकार की इन चार भूमिकाओं के फलस्वरूप गुणात्मक और मात्रात्मक रूप से वांछित आर्थिक संवृद्धि कहां तक हो पाई है। साम्यवादी देशों में हो रहे अनेक क्रांतिकारी परिवर्तनों से स्पष्ट हो गया है कि इन देशों की सरकारें आर्थिक कष्टों को दूर करने में असफल रही है। विभिन्न देशों के अनुभवों से चार महत्वपूर्ण तथ्य सामने आए हैः i) निर्देशित अर्थव्यवस्था (command economy) व्यवसाय को कुशलतापूर्वक चलाने में असफल रही है, ii) लोगों की आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन करने और न्यायोचित ढंग से उनका वितरण करने में बाजार अर्थव्यवस्था केन्द्रीय आयोजित प्रणाली की तुलना में अधिक प्रभावी साधन सिद्ध हुई है, iii) विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण एवं विकास के कार्य के लिए विदेशी प्रोद्योगिकी और निवेश को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है, तथा iv) बाजार निर्देशित प्रणाली की ओर संक्रमण को पुरानी प्रणाली के घनात्मक सामाजिक पक्ष के अनुरूप माना जाता है।

बहुत पहले से ही भारत में सरकार की भूमिका अत्यंत अव्यवस्थित स्थिति में रही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आर्थिक संवृद्धि बहुत कुछ हुई है। लेकिन ये परिवर्तन केवल मात्रात्मक रूप में ही हुए है। मात्रात्मक रूप में भी हम पाते है कि कोरिया, मलेशिया, जापान एवं सिंगापुर की तुलना में भारत की आर्थिक संवृद्धि की दर असंतोषजनक रही है। जैसे–जैसे यह महसूस किया जाने लगा कि राज्य की भूमिका अपर्याप्त होती है एवं उसके परिणाम प्रभावी नहीं हो पाते वैसे–वैसे राज्य की भूमिका पुनः परिभाषा देना आवश्यक समझा गया और इसी संदर्भ में 1980 के दशक के प्रारम्भ में उदारीकरण के कदम उठाए गए। यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर 1991 में पहुंची जबकि नई आर्थिक नीति की घोषणा की गई तथा निजीकरण, उदारीकरण और विश्वव्यापीकरण के रूप में प्रमुख परिवर्तन किए गए। इन क्रांतिकारी परिवर्तनों के प्रमुख उद्देश्य हैं– i) आर्थिक विकास की गति को बढ़ाना, ii) पूंजी का उपयोग और अच्छी तरह से करना, iii) बड़े पैमाने के लाभों को दूर करना, iv) पिछड़े हुए क्षेत्रों को विकसित करना एवं विकास के रूप में क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करना, v) निर्यात को एवं आयात–प्रतिस्थापन को बढ़ावा देना, vi) लागत को कम करके, बरबादी को दूर करके एवं दक्षता में वृद्धि करके गुणवत्ता एवं प्रभाविता के रूप में प्रतिस्पर्धा को बढ़ाना, तथा vii) विश्वव्यापी व्यवसाय में भारत के लिए आदरणीय स्थान प्राप्त करना।

नई आर्थिक नीति में यह माना गया है कि आर्थिक संवृद्धि के होने एवं औद्योगिक ढांचे और पर्यावरण में जटिलताओं के बढ़ने के साथ–साथ आवश्यक होता है कि कानूनी कार्यवाहियों के रूप में सरकार की ओर से होने वाले हस्तक्षेपों में काफी कमी की जाए। 1991 की नई आर्थिक नीति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं : i) लाइसेंस प्रणाली को समाप्त करना, ii) आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण के संबंध में एकाधिकार तथा प्रतिबंधित व्यापारिक व्यवहार (MRTP) विनियमों को समाप्त करना, iii) विदेशी निवेश एवं प्रौद्योगिकीय सहयोग को उदार बनाना, तथा iv) सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को पुनः परिभाषित करना।

नई नीति में उद्यमों के चयनात्मक निजीकरण पर जोर दिया गया है। यह भी निर्णय लिया गया है कि जो सार्वजनिक उद्यम सक्षमतापूर्वक नहीं चल रहे हैं उन्हें बंद कर दिया जाए और सार्वजनिक क्षेत्र की जिन रूग्ण इकाइयों को कुशलतापूर्वक चलाया जा सकता है उन्हें औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (BIFR) के अंतर्गत लाया जाए। नीति यह है कि सामाजिक एवं सैनिक महत्व के क्षेत्रों को छोड़कर विनिर्माण के सभी क्षेत्रों में, वह निजी क्षेत्र हो या सार्वजनिक क्षेत्र, एकाधिकार को समाप्त कर दिया जाए तथा सभी प्रकार के विनिर्माण कार्यकलापों को प्रतियोगिता के लिए मुक्त कर दिया जाए। इस नीति

के अंतर्गत शेयरों को म्युचुअल फंडों, श्रमिकों एवं आम जनता के बीच बेचकर उनका निजीकरण करने का भी प्रस्ताव है।

सार्वजनिक निवेश की वर्तमान सूची में भी परिवर्तन किया जा रहा है ताकि ऐसे कुछ क्षेत्रों से सार्वजनिक निवेश को हटा लिया जाए जिनमें कुछ विशेष स्थितियां पाई जाती है। ये स्थितियां निम्नलिखित हैः

i) कम मात्रा की प्रौद्योगिकी पर आधारित उद्योग

ii) छोटे पैमाने के और गैर सामरिक क्षेत्र,

iii) अकुशल और अनुत्पादक क्षेत्र,

iv) कम मात्रा या शून्य मात्रा में सामाजिक उत्तरदायित्व वाले क्षेत्र, और

v) वे क्षेत्र जिसमें निजी क्षेत्र ने पर्याप्त निपुणता हासिल कर लिया है।

सरकार की नई भूमिका में निजीकरण के लिए पर्यावरण की व्यवस्था पर जोर दिया गया है। सार्वजनिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र के सहयोग से संयुक्त क्षेत्र उपक्रमों को स्थापित करने का काम भी शुरू किया गया है। सरकार उन क्षेत्रों से अपना निवेश वापस कर रही है जिनमें निजी उद्यम अधिक कुशल सिद्ध होगा। इस प्रकार क्रमिक रूप से निजीकरण की प्रक्रिया की शुरूआत की जा चुकी है। इस नई भूमिका के फलस्वरूप जनता पर बजट भार कम होगा, विकास कार्यों के लिए अधिक संसाधनों को उपलब्ध कराया जा सकेगा, सरकार आवश्यक सरकारी कार्यों और प्राथमिकता के क्षेत्रों पर अधिक ध्यान दे पाएगी तथा उपभोक्ता सार्वजनिक क्षेत्र के उदासीन और अहंकारी व्यवहार से मुक्त हो पाएंगे। इस प्रकार पुनः परिभाषित रूप में यह कहना आवश्यक होगा कि भविष्य में सरकार की भूमिका में देश की अर्थव्यवस्था की न्यायसंगत रूप से संवृद्धि के लिए आधारिक संरचना और पर्यावरण की व्यवस्था करनी होगी। इस भूमिका में इस बात पर जोर दिया गया है कि सरकार को चाहिए कि वह आवश्यक कार्यकलापों और प्राथमिकता वाली समस्याओं पर अपना ध्यान दे, तथा अपनी शक्ति दुःसाध्य कार्यों पर न लगाए, दुर्लभ साधनों को बरबाद न करें और आम जनता के भार को और अधिक न करें।

1.6 सारांश (Summary)

व्यवसाय को प्रोत्साहित करने के संबंध में सरकार की भूमिका में सदा परिवर्तन होता रहता है। अहस्तक्षेप नीति के बाद अर्थव्यवस्था में सरकारी प्रभुत्व का समय आया तथा व्यवसायों की संवृद्धि और विकास का समस्त भार सरकार के

कंधे पर आ गया। इसके फलस्वरूप सर्वाधिकारी प्रकार की (totalitarian type) आर्थिक व्यवस्था का उदय हुआ। पर शीघ्र ही महसूस किया गया कि सर्वाधिकारी प्रणाली वांछित परिणाम नहीं ला सकती। अतः सरकार की भूमिका को विनियमों, संवर्धन, सहयोग एवं कानून के अर्थ में अधिक स्पष्ट हो गया कि हस्तक्षेप के इन क्षेत्रों में भी कुछ मात्रा में उदारीकरण की आवश्यकता होती है। इस अनुभूति के फलस्वरूप निर्देशित अर्थव्यवस्था ने बाजार अर्थव्यवस्था का रूप ले लिया। इस प्रकार अन्य देशों के अनुभवों एवं अपने ही देश के अनुभव के आधार पर लक्ष्य को पुनः परिभाषित करके उदारीकरण और निजीकरण पर जोर दिया जाने लगा। फिर भी सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि लाने को अब भी अच्छा माना जाता है।

1.7 शब्दावली (Key words)

व्यवसाय (Business) : लाभ का अर्जन करने की दृष्टि से किया जाने वाला कोई भी कार्यकलाप।

पूंजीवाद (Capitalism) : वह आर्थिक प्रणाली जिसमें उत्पादन और वितरण के साधन निजी क्षेत्र के हाथों में होते है।

उद्यमवृत्ति (Enterpreneurship) : वह स्थिति जिसमें व्यवसाय क्रियाओं के साथ जोखिम–वहन भी शामिल होता है।

अहस्तक्षेप नीति (Laissez-faire policy) : सरकारी नियंत्रण या हस्तक्षेप के बिना ही स्वतंत्र रूप से आर्थिक विकास लाने के सिद्धान्त।

मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) : वह आर्थिक प्रणाली जिसमें निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों ही साथ–साथ कार्य करते हैं।

निजी क्षेत्र (Private Sector) : वह क्षेत्र जिसमें उत्पादन और वितरण के साधन निजी व्यक्तियों के स्वामित्व और नियंत्रण में होते हैं।

सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) : वह क्षेत्र जिसमें उत्पादन और वितरण के साधन सरकार के स्वामित्व और नियंत्रण में होते हैं।

लोकोपयोगी सेवाएं (Public Utilities) : वे उपक्रम जो सार्वजनिक उपयोग की वस्तुओं का निर्माण तथा उनका वितरण करते हैं।

समाजवाद (Socialism) : वह आर्थिक प्रणाली जिसमें उत्पादन और वितरण के साधन सरकार के स्वामित्व में होते हैं तथा समाज के कल्याण को ध्यान में रखकर कार्य किए जाते हैं।

1.8 अभ्यास के प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. व्यवसाय में राजकीय हस्तक्षेप के कारणों की विवेचना कीजिए।

   Discuss the reasons for the state intervention in Business.

2. व्यवसाय के राजकीय नियमनों एवं नियंत्रणों को आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

   Critically evaluate the Government Regulations and Control on Business.

3. बदलते आर्थिक परिदृश्य में सरकार की भूमिका का वर्णन कीजिए।

   Discuss the role of Govt in changing economic scenario.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Question)

1. व्यवसाय में राज्य के हस्तक्षेप के किन्हीं चार कारणों का वर्णन कीजिए।

   Describe any four reasons of the State Intervention in Business.

2. एक प्रवर्तक के रूप में सरकार की आर्थिक भूमिका स्पष्ट कीजिए।

   Discuss the economic role of the Government as a promoter.

3. एक आयोजक के रूप में सरकार की भूमिका लिखिए।

   Write the role of the Government as a planner.

4. क्या व्यवसाय पर सरकारी नियमन एवं नियंत्रण उचित है?

   Is Government Regulation and Control on Business fair?

इकाई–2 : भारत में आर्थिक नियोजन – वर्तमान पंचवर्षीय योजना (Economic Planning in India – Present Five Year Plan)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 आर्थिक नियोजन की अवधारणा

2.4 आर्थिक नियोजन का उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व

2.5 भारत में नियोजन तंत्र. योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद्

2.6 भारत में नियोजन प्रक्रिया एवं नियोजन की प्राथमिकतायें

2.7 विभिन्न पंचवर्षीय योजना का संक्षिप्त विवरण

2.8 भारत में नियोजन की उपलब्धियाँ एवं मूल्यांकन

2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 अभ्यास के प्रश्न

2.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- आर्थिक नियोजन की अवधारणा, आवश्यकता एवं महत्व को बता सकें।
- भारत में आर्थिक नियोजन तंत्र के बारे में बता सकें।
- भारत में नियोजन की प्रक्रिया एवं प्राथमिकताएं क्या रही है, जान सकें।
- भारत में अब तक लागू विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं का एक संक्षिप्त विवरण जान सकें।
- और अन्त में, भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियां एवं उसका मूल्यांकन कर सकें।

2.2 प्रस्तावना (Introduction)

मानव समाज के लिए आर्थिक नियोजन का विचार नया नहीं है। वह मनुष्य

के विवेकपूर्ण व्यवहार का आधार रहा है। आधुनिक युग तो आर्थिक नियोजन का युग कहलाता है। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक चरण में, प्रत्येक दिशा में नियोजन का सबसे अधिक महत्व है। आज विश्व अर्थव्यवस्था की ध् ामनियों में अर्थ नहीं, बल्कि नियोजन प्रवाहित हो रहा है। आधुनिक युग में मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नियोजन का सहारा लिया जाता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति सर्वागीण सफलता के लिए विभिन्न चरणों में योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाता है, ठीक उसी प्रकार एक राष्ट्र भी अपने सर्वागीण विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक नियोजन अपनाता है। नियोजन से देश का विकास शीघ्रता से सम्भव हो जाता है तथा पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। नियोजन वह धुरी है जिसके चारों ओर आर्थिक क्रियायें चक्कर लगाती हैं। देश की समस्त आर्थिक क्रियाएँ नियोजन पर ही निर्भर करती हैं तथा व्यक्ति एवं समाज का विकास नियोजन की सहायता से ही सम्भव हो सकता है।

नियोजन को आर्थिक प्रगति का एक शक्तिशाली तन्त्र माना गया है। नियेजित विकास का लाभ समाज के प्रत्येक सदस्य तक पहुंचाने के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण द्रू (Decentralization of Power) किया जाता है। वर्तमान समय में विकसित एवं अविकसित दोनों ही प्रकार के राष्ट्रों में आर्थिक उच्चावचनों (Economic) को नियंत्रित करने हेतु नियोजन का सहारा लिया जाता है। प्रोफेसर हेयक के अनुसार–"पूर्णतया प्रतिस्पर्द्धी समाज में कोई भी व्यक्ति अपनी आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त किसी भी अन्य बात की चिंता नहीं करता है। ऐसी परिस्थितियों मे देश में एक ऐसी व्यवस्था होना आवश्यक है जो देश के व्यावसायिक उच्चावचनों को नियन्त्रित करके आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव न डाल सके। देश के साधनों का नियोजित ढंग से अधिकतम उपयोग करने हेतु उत्पादन एवं वितरण के क्षेत्र में सरकारी नियन्त्रण लगाया जाता है। नियोजन में उपलब्ध साधनों का विवेकपूर्ण ढंग से आवंटन (Allocation) करना ही नियोजन माना जा सकता है। किसी देश की अर्थव्यवस्था का विस्तृत एवं व्यवस्थित प्रबन्ध इस ढंग से किया जाए कि आर्थिक प्रगति की दर (Rate of Economic Growth) में पर्याप्त वृद्धि सम्भव हो सके। ऐसे प्रबन्ध को ही आर्थिक नियोजन कहा जाता है।

2.3 नियोजन की अवधारणा (Concept of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन की परिभाषा (Definition of Economic Planning) – आर्थिक नियोजन के अर्थ, स्वरूप एवं क्षेत्र के सम्बन्ध में सभी विद्वान एक

मत नहीं है। अतः इसकी कोई एक सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। आर्थिक नियोजन की प्रमुख विद्वानों द्वारा निम्नलिखित परिभाषाएँ दी गई हैं–

- **डॉ० डाल्टन (Dr. Dalton) के अनुसार–** ''व्यापक अर्थ में आर्थिक नियोजन विशाल साधनों के संरक्षणों द्वारा निश्चित लक्ष्यों की प्रप्ति हेतु आर्थिक क्रियाओं का सचेत निर्देशन है।''[1]

- **प्रो० एस. ई० हैरिस के अनुसार–** ''नियोजन से अभिप्राय आय तथा मूल्य के सन्दर्भ में, नियोजन अधिकारी द्वारा निश्चित किये गये उद्देश्यों तथा लक्ष्यों के लिए साधन का आवंटन मात्र है।''[2]

- **गुन्नार मिर्डल (Gunnar Myrdal) के अनुसार–** ''आर्थिक नियोजन राष्ट्रीय सरकार की रीति–नीति से सम्बन्धित वह कार्यक्रम है, जिसमें बाजार शक्तियों के कार्य–कलापों में राज्य हस्तक्षेप की प्रणाली की सामाजिक प्रक्रिया को ऊपर ले जाने हेतु लागू किया जाता है।''[3]

- **प्रो० मोरिस डाब (Maurice Dobb) के अनुसार–** ''नियोजन आर्थिक निर्णयों को समन्वित करने की प्रक्रिया है................. नियोजन एक ऐसी विधि है जिससे सभी तथा स्वतन्त्र इकाईयाँ अथवा क्षेत्र एक साथ समायोजित हो सकें।''[4]

- **भारतीय नियोजन आयोग (Indian Planning Commission) के अनुसार –** ''आर्थिक नियोजन आवश्यक रूप से सामाजिक उद्देश्यों के अनुरूप साधनों के अधिकतम लाभ हेतु संगठित एवं उपयोग करने का मार्ग है।''[5]

इस प्रकार सारांश में हम कह सकते हैं कि– आर्थिक नियोजन का अर्थ एक संगठित आर्थिक प्रयास से है जिसमें एक निश्चित अवधि में सुनिश्चित एवं सुपरिभाषित सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक साधनों का विवेकपूर्ण ढंग से समन्वय एवं नियंत्रण किया जाता है।''

---

1 "The Economic Planning in its widest sense is deliberate direction, by person in charge of large resources of economic activity towards chosen ends." **Dr. Dalton, Practical Socialism P. 243**

2 "Planning generally substitutes allocation according to goals, determined by authority for allocation of resources in response to prince and income mivement." **-S.E. Harris**

3 "Economic planning is a programme for the strategy of national government in applying a system of state interference with the play of market price than by condititoning them in such a way as to give an upward push to the social price." - **Gunnar Myrdal, Economic theory and Under-developed Regions**

4 "Planning is a mechanism for co-codinating decisions……….. a plan is a method of taking a combined decision about all, so that all the separate parts harmonize or fit together."

5 "Economic Planning is essentially a way of organisin and utilistion resources to maximum advantage in erms of social ends." -Indian Planning Commission

2.3 आर्थिक नियोजन के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व (Objectives, need and importance of Economic Planning)

आर्थिक नियोजन के उद्देश्य

- आर्थिक नियोजन के उद्देश्य का मुख्य उद्देश्य समाज के विभिन्न वर्गो में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण को कम करना होता हैं।
- आर्थिक नियोजन के माध्यम से देश के संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग कर उत्पादन, आय तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना होता हैं।
- संतुलित क्षेत्रीय विकास करना आर्थिक नियोजन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।
- इसका लक्ष्य देश की अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर बनाना होता है।
- आर्थिक नियोजन का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन एवं अधिकतम उत्पादन करना होता है।
- नियोजन का उद्देश्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना भी होता है।
- नियोजन के माध्यम से लोगों को अवसर की समानता देने का प्रयास किया जाता है।
- आर्थिक नियोजन का उद्देश्य सामाजिक उत्थान के लक्ष्यों को पूरा करना होता है।
- राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति मे आर्थिक नियोजन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सुरक्षा व शान्ति बनाये रखना नियोजन का प्रमुख लक्ष्य होता है क्योंकि इनके अभाव में आर्थिक विकास व समृद्धि की कल्पना करना व्यर्थ है।

आर्थिक नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Importance of economic Planning) अल्प–विकसित देशों में आयोजन का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक विकास की दर (Rate of Economic Growth) बढ़ाना है। विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में नियोजन की आवश्यकता विभिन्न कारणों से उत्पन्न हुई। प्रो० डी० आर० गाडगिल (Prof. D.R. Gadgil) के अनुसार– ''आर्थिक विकास के लिए आयोजन का अर्थ हैं योजना प्राधिकरण, जो अधिकांश अवस्थाओं में राज्य की सरकार ही होती है, के द्वारा आर्थिक क्रिया का बाह्रय निर्देशन अथवा नियमन।''

"Planned Economic Development implies external direction or regulation of economic activity by the planning authority which, in most cases is indentified with the government of the state."

-D.R. Gadgil. Planning and Economic Policy in India, P-88.

3. आर्थिक नियोजन की आवश्यकता– (Need Economic Planning)

डी० आर० गाडगिल के अनुसार – ''आर्थिक विकास के लिए आयोजन का अर्थ योजना प्राधिकरण है, जो अधिकांश अवस्थाओं में राज्य की सरकार ही होती है, जिसके द्वारा आर्थिक क्रिया का बाह्य निर्देशन किया जाता है।'' अधिकांश राष्ट्रों द्वारा आर्थिक नियोजन अपनाए जाने की आवश्यकता निम्न कारणों से उत्पन्न हुई–

- **आर्थिक विचारधारा (Economic Outlook)** – विश्व में समाजवाद के विकास ने आर्थिक नियोजन के विचार को और अधिक प्रभावित किया। वर्तमान समय में पूंजीवादी देशों में पूंजीवाद के दोषों को दूर करने के उद्देश्य से तथा समाजवादी राष्ट्रों में समाजवाद के सिद्धान्त अपनाने के उद्देश्य से आर्थिक नियोजन का उपयोग बढ़ रहा है। आर्थिक उच्चावचन (Economic Fluctuations) के द्वारा उत्पन्न हुई आर्थिक कठिनाइयों का निवारण करने हेतु राजकीय हस्तक्षेप (State Intervention) की आवश्यकता होती है।
- **अर्द्ध–विकसित राष्ट्रों की स्वतन्त्रता (Freedom of Under-developed Countries)** – द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् एशिया व अफ्रीका के कई उपनिवेशों को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई जिससे वहाँ की जनता में आर्थिक विकास की भावना जागृत हुई इससे वहाँ सरकारी हस्तक्षेप एवं आर्थिक नियोजन को महत्व दिया गया। देश के तीव्र विकास के लिए नियोजन की नीति को अपनाया जाना एक आवश्यक अंग बन गया हैं।
- **स्वतन्त्र उपक्रम एवं पूँजीवाद के दोष (Defects of Free Enterprise and Capitalism)** – प्रारम्भ में पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली विश्व के समस्त साधनों का अपव्यय, धन का असमान वितरण, व्यापारिक उतार–चढ़ाव आदि। इन्हीं दोषों के कारण नियोजन की आवश्यकता अनुभव की गयी। देश के आर्थिक विकास के लिए नियन्त्रण प्रणाली को अपनाना आवश्यक था जो नियोजन द्वारा सम्भव हो सकता था। पूँजीवादी के दोषों को दूर करने की दृष्टि से ही नियोजन की नीति का पालन

किया गया। प्रो० डार्बिन के अनुसार–नियोजन की पूँजीवाद के दोषों को दूर करने का एकमात्र साधन एवं आशा प्रस्तुत करता है।'' "Planning provides a hope and means of remedying capitalism." **- E.F,M. Durbin**

आर्थिक नियोजन का महत्व (Importance of Economic Planning) – वर्तमान युग नियोजन का युग है। रोबिन्स (Robins) ने स्पष्टतः कहा है–'अभी हम भले ही समाजवादी न हो, परन्तु लगभग सभी निश्चित रूप से समर्थक है।'' डर्बिन के शब्दों में–'आज हम सभी योजना निर्माता है। वास्तव में नियोजन उन सभी विषयों में से एक हैं जिस पर आज कोई वाद–विवाद नहीं किया जा सकता है।''

आधुनिक समय में आर्थिक नियोजन का महत्व बहुत ज्यादा बढ़ गया है इसलिये विश्व के अधिकांश राष्ट्र तीव्र आर्थिक विकास के लिये नियोजन का ही सहारा लेते है। विशेष रूप से अविकसित एवं विकासशील देशों के लिये नियोजन का विशेष महत्व है जिसके प्रमुख कारण है :

1. **सीमित साधनों का समुचित उपयोग (Proper Utilization of limited Resources)–** अर्द्ध–विकसित देशों में साधन सीमित, अपूर्ण एवं आयोग्य होते हैं जिससे तीव्र गति से विकास करना सम्भव नहीं हो पाता है। अतः सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग करने के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम का निर्माण करना आवश्यक हैं।

   नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत साधनों का उपयोग करते समय उनकी माँग और पूर्ति में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। प्रो० चार्ल्स बैटल हीम के शब्दों में– ''एक नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत स्त्रोतों के निर्धारण एवं शोषण के सम्बन्ध में सन्तुलित एवं विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाए रखना, नियोजन अधिकारी का प्रमुख कर्तव्य माना जाता है।''

2. **निर्णय एवं कार्य प्रणाली में समुचित समन्वय (Proper Co-ordination in Decision and Working)–** एक नियोजित अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय नियोजन सत्ता द्वारा जो निर्णय लिए जाते हैं वे विवेकपूर्ण तथा अर्थिक दृष्टि से न्याय संगत होते हैं। साधनों का आवंटन पूर्व निश्चित उद्देश्यों एवं प्राथिमिकताओं के आधार पर किया जाता है। अनियोजित अर्थव्यवस्था को बन्द आँखो वाली अर्थव्यवस्था (Economy with closed Eyes) कहा जाता है। प्रो० डर्बिन के अनुसार–''अनियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत

लिए गये निर्णय पूर्णतः भ्रमात्मक, लघुदर्शी, अविवेकपूर्ण तथा समाजिक पतन के समरूप होते हैं।'' नियोजित अर्थव्यवस्था इन सब दोषों से मुक्त होती है और इसलिए वह अनियोजित अर्थव्यवस्था से श्रेष्ठ है तथा इसका महत्व ज्यादा होता है।

"In this and a thousand other ways the decisions taken in an unplanned economy must be short-sighted, irrational, self-frustrating and socially disastrous." - E.F.M. Durbin

3. **आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं पर रोक (Check on Economic and Social Inequality)**– आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को कम करने की दृष्टि से भी नियोजित अर्थव्यवस्था का महत्व अधिक है। नियोजन से अर्थव्यवस्था में आय एवं धन का समान एवं न्यायपूर्ण वितरण होता हैं जिसके कारण आर्थिक विषमताएँ कम होने लगती हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा एवं प्रगति के समान अवसर प्रदान किये जाते हैं।

4. **उत्पत्ति के साधनों का समुचित वितरण (Proper Distribution of Resources)**– नियोजन द्वारा अर्थव्यवस्था में उत्पत्ति के साधनों का वितरण सामाजिक माँग को ध्यान में रखकर किया जाता है और निजी हित के स्थान पर सामाजिक हित को अधिक महत्व दिया जाता है।

5. **तीव्र आर्थिक विकास (Rapid Economic Growth)**– आर्थिक नियोजन की तकनीक को अपनाकर विकास की दर में तीव्र वृद्धि की जा सकती है। इसका कारण यह है कि नियोजन द्वारा अर्थव्यवस्था उत्पत्ति के साधनों का आवंटन नियोजन अधिकारियों के विवकेपूर्ण निर्णयों के आधार पर ही होता है।

6. **संतुलित विकास (Balanced Growth)**– किसी भी देश की अर्थव्यवथा के सन्तुलित विकास के लिए नियोजन का बहुत महत्व है। नियोजन द्वारा अर्थव्यवस्था में एक क्षेत्र का विकास दूसरे क्षेत्रों के विकास के साथ इस प्रकार समन्वित होता है कि अर्थव्यवस्था का सन्तुलित विकास हो सके।

7. **पूँजी निर्माण में वृद्धि (Increase in Capital Formation)**– नियोजन द्वारा अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण की दर अधिक होती है। इसका कारण यह हैं कि नियोजन द्वारा इसके लिए राष्ट्रीय आय का कुछ न कुछ भाग बचत के रूप में अवश्य रखा जाता है जिससे पूंजी निर्माण की

भारत में आर्थिक नियोजन
वर्तमान पंचवर्षीय
योजना

दर में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक उपक्रमों से प्राप्त बचतों का पुर्नविनियोजन किया जाता है।

8. **सार्वजनिक वित्त (Public Finance)**– वर्तमान समय में आर्थिक तथा सामाजिक कार्यों का अधिकाधिक उतरदायित्व सरकार के कन्धों पर होता है। सरकार कर लगाकर जनता से प्राप्त धनराशि को सार्वजनिक वित्त के कार्यों में व्यय कर देती है। जनता से प्राप्त धन का उचित उपयोग योजनाबद्ध ढंग से ही सम्भव हो सकता है।

9. **जनसंख्या में वृद्धि (Increase in Population)** – विश्व में बढ़ती जनसंख्या की समस्या के समाधान के लिए आर्थिक विकास के महत्व को अनुभव किया जा सकता है तथा आर्थिक वृद्धि को समझा जा सकता है। भोजन का प्रबन्ध करते समय जनसंख्या पर नियन्त्रण लगाने पर भी नियोजन द्वारा जोर दिया जाता है जिससे देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से हो सके।

2.5 भारत में नियोजन तंत्र– योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद (Planning Machinery in India – planning Commission, National Development Council)

आर्थिक नियोजन प्रत्येक समाज की आवश्यकता बन चुका है। चाहे वे पूँजीवादी राष्ट्र हो या समाजवादी, आर्थिक नियोजन को अपेक्षित महत्व दिया जा रहा है। भारत की नियोजन प्रणाली पूँजीवादी नियोजन तथा समाजवादी नियोजन का मिश्रित स्वरूप है। यहाँ व्यक्तिगत हितों के साथ–साथ सामाजिक हितों तथा निजी क्षेत्र के विस्तार के साथ–साथ सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार को भी प्रोत्साहन दिया जाता है।

भारत में नियोजन तंत्र का प्रशासनिक ढाँचा निम्नवत हैः

(1) **योजना आयोग (Planning Commission)-** भारतीय नियोजन तंत्र में योजना आयोग को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। 15 मार्च, 1950 को भारत सरकार के एक प्रस्ताव द्वारा इस आयोग का गठन किया गया। यह आयोग पूर्णतया एक सलाहकारी संस्था है जिसका कार्य योजनाओं का निर्माण करना, उनकी प्रगति की समीक्षा करना तथा सम्बन्ध में आवश्यक सिफारिशे करना है।

भारत का प्रधानमंत्री योजना आयोग का पदेन अध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त

योजना आयोग का एक उपाध्यक्ष तथा इसके कुछ सदस्य होते हैं। सदस्यों की संख्या समय–समय पर घटती–बढ़ती रहती है जिसके बारे में केन्द्र सरकार द्वारा निर्णय लिया जाता है। आयोग के प्रतिदिन का कार्य उपाध्यक्ष द्वारा देखा जाता है। आयोग के प्रतिदिन का कार्य उपाध्यक्ष तथा सदस्यों का कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता।

योजना आयोग के विभाग – योजना आयोग के विभिन्न विभागों को चार वर्गों में रखा जा सकता है:

(क) सामान्य विभाग – योजना आयोग के 6 सामान्य विभाग हैं:

(i) सांख्यिकी तथा सर्वेक्षण विभाग, (ii) आर्थिक विभाग, (iii) दृष्ट योजना (Prespective Planning), (iv) श्रम, रोजगार व जनशक्ति विभाग, (v) प्रबंध एवं प्रशासन विभाग, तथा (vi) संसाधन तथा वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग।

(ख) विषय विभाग – आयोग के 10 विषय विभाग इस प्रकार हैं:

(i) कृषि विभाग, (ii) विद्युत तथा सिंचाई विभाग, (iii) उद्योग तथा खनिज विभाग, (iv) ग्रामीण तथा लघु उद्योग विभाग, (v) भूमि सुधार विभाग, (vi) परिवहन तथा संचार विभाग, (vii) स्वास्थ्य एवं कल्याण विभाग, (viii) शिक्षा विभाग, (ix) आवास विभाग, (x) समाज कल्याण विभाग

ये सभी विभाग अपने–अपने विषयों से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करते है तथा विकास–कार्यक्रम तैयार करते हैं।

(ग) समन्वय विभाग– योजना आयोग में दो समन्वय विभाग हैं:–

(i) प्रोग्राम प्रशासन विभाग– इस विभाग का कार्य राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों की योजनाओं में समन्वय स्थापित करना, विकास परियोजनाओं की प्रगति पर रिपोर्ट देना, आयोग तथा राज्यों के मध्य विचार–विमर्श का आयोजन करना, केन्द्र द्वारा राज्यों को वित्तीय सहायता देने के बारे में परामर्श देना, इत्यादि है।

(ii) योजना समन्वय उप–विभाग– इस विभाग का मुख्य कार्य योजना के विभिन्न विभागों के मध्य समन्वय बनाये रखना है।

(घ) विशिष्ट विकास कार्यक्रम विभाग – इसके दो उप–विभाग हैं:

(i) ग्राम–कार्य विभाग, जो स्थानीय विकास कार्यों अर्थात् ग्राम जनशक्ति संसाधन के उपयोग से सम्बन्धित है।

(ii) लोक कल्याण विभाग, इसका मुख्य कार्य राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों में जनसहयोग को प्राप्त करना है।

योजना आयोग के कार्य (Functions of Planning Commission)

योजना आयोग के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है।

(i) राष्ट्र के भौतिक, पूँजीगत तथा मानवीय संसाधनों का अनुमान लगाना, (ii) राष्ट्रीय संसाधनों के सर्वोपयुक्त एवं प्रभावपूर्ण उपयोग हेतु विकास योजना का निर्माण करना (iii) योजना के विभिन्न चरणों का निर्धारण करना तथा प्राथमिकता के आधार पर संसाधनों का आवंटन करने का प्रस्ताव देना, (iv) सरकार को आर्थिक विकास की बाधाओं से अवगत कराना, (v) योजना की प्रगति का मूल्यांकन करना तथा आवश्यकतानुसार आर्थिक नीतियों में परिवर्तन लाने का सुझाव देना, तथा (vi) समय–समय पर केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा विशेष समस्या पर राय माँगने पर अपनी सलाह देना।

(2) राष्ट्रीय विकास परिषद

(National Development Council)

राष्ट्रीय विकास परिषद देश के नियोजन से सम्बन्धित नीति–निर्धारण करने वाली एक उच्च स्तरीय संस्था है जिसका गठन आर्थिक नियोजन हेतु राज्यों तथा योजना आयोग के बीच सहयोग का वातावरण बनाने क लिए किया गया। सरकार ने एक प्रस्ताव द्वारा 6 अगस्त, 1952 को राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन किया। प्रधानमंत्री ही इसके अध्यक्ष तथा योजना आयोग का सचिव ही इस परिषद का भी सचिव होता है। शुरू में राज्यों के मुख्यमंत्री ही इसके सदस्य होते थे। किन्तु 1967 के पश्चात् केन्द्रीय मंत्रिपरिषद के सभी सदस्य, केन्द्रशासित प्रदेशों के प्रशासक तथा योजना आयोग के सभी सदस्य इस परिषद के सदस्य होते हैं। योजना आयोग की तरह ही इस परिषद का भी कोई संवैधानिक आधार नहीं है। परषिद के मुख्य कार्य हैं: (i) योजना आयोग द्वारा तैयार की गयी योजना पर विचार–विमर्श करना तथा उसकी स्वीकृति देना, (ii) योजना के लिए दिशा–निर्देश जारी करना, (iii) राष्ट्रीय विकास को प्रभावित करने वाली सामाजिक तथा आर्थिक नीतियों की समीक्षा करना, (iv) योजना के निर्धारित लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की विवेचना करना एवं उनकी प्राप्ति के उपाय बताना, तथा (v) केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विकास सम्बन्धी कार्यों में समन्वय बनाए रखना। राष्ट्रीय विकास परिषद की अनुमति के अभाव में कोई भी योजना साकार रूप नहीं ले सकती है। इस सम्बन्ध में परिषद का निर्णय अंतिम होता है।

(3) राष्ट्रीय आयोजन परिषद

(National Planning Council)

इस परिषद् का गठन प्रत्येक योजना के निर्माण के समय किया जाता है। इसका कार्य योजना सम्बन्धी कार्यों के विषय में योजना आयोग को परामर्श देना है। इस परिषद् में अपने–अपने क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, उद्योगपति, इंजीनियर तथा अन्य विशेषज्ञ सदस्य नियुक्त किये जाते हैं। ये विशेषज्ञ अपने–अपने क्षेत्र सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करके उसकी रिपोर्ट योजना आयोग को देते हैं।

(4) अन्तर्राज्यीय परिषद

(Interstate Council)

योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद् का जहाँ कोई संवैधानिक आधार नहीं है, वहां अन्तर्राज्यीय परिषद् एक संवैधानिक संस्था है। केन्द्र तथा राज्यों के मध्य समन्वय स्थापित करने हेतु राष्ट्रपति ऐसी परिषद् का गठन कर सकता है। इस परिषद् के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं:

(i) राज्य तथा केन्द्र के मध्य जो विवाद हो उसकी जाँच कर उचित सलाह देना, (ii) राज्यों तथा केन्द्र के पारस्परिक हित से सम्बन्धित विषयों पर अनुसंधान करना, (iii) उपरोक्त विषयों के बारे में बेहतर समन्वय हेतु कार्यवाही की सिफारिश करना।

राष्ट्रपति को अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना करने तथा उसके संगठन, प्रक्रिया तथा दायित्यों के बारे में व्यवस्था करने का अधिकार होता है। यह परिषद् एक परामर्शदात्री संस्था के रूप में कार्य करती है।

(5) अन्य संस्थाएं

(i) **अनुसंधान कार्यक्रम समिति–** इस समिति में राष्ट्रीय स्तर के अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, समाजशास्त्री इत्यादि नियुक्त किये जाते है। जिनका सम्बन्ध विश्वविद्यालयों तथा अनुसंधा न संस्थाओं से होता है। इस समिति का कार्य योजना के निर्माण में सहयोग देना होता है।

(ii) **मंत्रणा दल–** योजना आयोग को परामर्श देने के लिए विभिन्न विभागों से सम्बद्ध मंत्रणा दल नियुक्त किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त, योजना आयोग के लिए 'संसद सदस्यों की सलाहकार समिति' एवं कार्यकारी दल तथा मूल्यांकन समितियों का भी गठन किया जाता है।

(6) राज्य योजना विभाग

(State Planning Department)

राज्य स्तर पर योजना निर्माण का कार्य राज्य योजना विभाग द्वारा सम्पदित किया जाता है। सम्बन्धित राज्य में राज्य योजना विभाग की स्थिति राष्ट्रीय स्तर पर बनाये गये योजना आयोग की भांति होती है। योजना आयोग का मुख्य कार्य राज्य सरकार तथा योजना आयोग के मध्य निकटतम सम्बन्ध तथा समन्वय बनाये रखना है।

2.6 भारत में नियोजन प्रक्रिया एवं नियोजन की प्राथमिकताएं (Planning Process and Planning Priorities in India)

भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण से लेकर क्रियान्वयन तक विभिन्न अवस्थाओं या चरणों से होकर गुजरना पड़ता है। इन अवस्थाओं या चरणों को ही आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया कहा जाता है। योजना निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है तथा प्रत्येक योजना के पीछे एक वृहद तंत्र का योगदान होता है।

हमारे देश में योजना निर्माण, स्वीकृति तथा क्रियान्वयन में योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद (NDC) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें शामिल होती हैं। योजना निर्माण की दृष्टि से योजना आयोग सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है। आयोग विभिन्न मंत्रालयों तथा राज्य सरकोरों से परामर्श करके कुछ निश्चित बिन्दुओं तथा परियोजना के लिए पूर्वानुमान लगाता है। आयोग नियोजन की प्राथमिकताओं को भी निश्चिय करता है तथा देश में उपलब्ध भौतिक, पूँजीगत तथा मानवीय साधनों–संसाधनों का अनुमान लगाता है। इस प्रकार प्राक्कलन (Estimation) का यह पहला चरण समाप्त हो जाता है। आयोग इन प्राक्कलनों को राष्ट्रीय विकास परिषद के सम्मुख रखता है। परिषद द्वारा इन प्राक्कलनों की सूक्ष्मतम समीक्षा की जाती है तथा गहन विचार–विमर्श के पश्चात् इन प्राक्कलनों के केन्द्रीय संघीय सरकारों को प्रेषित कर दिया जाता है।

दूसरे चरण में संघीय तथा राज्य सरकारें अपनी–अपनी योजनाएं बनाते हैं। इन योजनाओं को योजना आयोग को प्रेषित कर दिया जाता है। इन योजनाओं का अध्ययन करने के पश्चात् विभिन्न सरकारों द्वारा प्रेषित योजनाओं का योजना आयोग द्वारा एकीकरण किया जाता है। इस अवधि के दौरान आयोग विभिन्न विशेषज्ञों तथा राजनैतिक दलों से विचार–विमर्श भी करता है। इस प्रक्रिया के पश्चात् आयोग योजना का प्रारूप (Draft Plan) जारी कर देता है।

तीसरा चरण सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। इसकी शुरूआत आयोग द्वारा 'योजना का प्रारूप' जारी कर चुकने के पश्चात् होती है। इसमें आयोग तथा विभिन्न सरकारों के बीच चर्चा चलती है। इस चर्चा का उद्देश्य राज्य स्तरीय परियोजनओं की प्रकृति को निर्धारित करना होता है। इस अवस्था में प्रत्येक राज्य के लिए योजना के बारे में अंतिम निर्णय सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री की सलाह पर लिया जाता है। प्रकृति निर्धारित हो जाने के पश्चात् आयोग केन्द्रीय मंत्रिमण्डल से परामर्श करके योजना का अंतिम प्रारूप कैबिनेट के समक्ष रखता है। कैबिनेट के अनुमोदन के पश्चात् योजना प्रारूप राष्ट्रीय विकास परिषद् में भेज दिया जाता है। परिषद् योजना आयोग द्वारा प्रस्तावित योजना को अंतिम रूप से स्वीकृत करती है। तत्पश्चात् योजना को संसद के समक्ष प्रस्तुत कर दिया जाता है जिस पर संसद विचार–विमर्श कर योजना को स्वीकार कर लेती है। संसद की स्वीकृति पर यह प्रारूप योजना का रूप ले लेता है। योजना निर्माण की इस जटिल प्रक्रिया के पश्चात् केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें योजना को लागू करने हेतु प्रयास करती हैं।

भारतीय नियोजन में प्राथमिकताएँ (Priorities in Indian Planning)

(1) प्रथम योजना (First Plan)– इसमें शक्ति, सिंचाई एवं कृषि को प्राथमिकता दी गयी क्योंकि उद्योगों के लिए एक सुदृढ़ आधार का निर्माण करना आवश्यक था। इसमें उपभोक्ता की माँग का मार्ग अपनाया गया। कृषि पर 43.2 प्रतिशत व्यय किया गया। उद्योगों में प्राथमिकता सर्वप्रथम उपभोक्ता प्रधान उद्योगों व परिवहन साधनों को महत्व दिया गया। योजना में आधारभूत उद्योगों व उसके बाद छोटे उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गयी। औद्योगिक विकास के प्रयत्न किये गये परन्तु विकास की गति तीव्र नहीं थी।

(2) द्वितीय योजना (Second Plan)– इसमें उद्योगों को अधिक महत्व दिया गया। इस योजना में उद्योगों व परिवहन साधनों को महत्व दिया गया। योजना में आधार भूत उद्योगों व उसके बाद छोटे उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गयी। औद्योगिक विकास के प्रयत्न किये गये परन्तु विकास की गति तीव्र नहीं थी।

(3) तृतीय योजना (Third Plan)– कृषि को पुनः योजना में प्राथमिकता दी गयी और कृषि व सिंचाई पर 23% व्यय किया गया। योजना में ऐसे उद्योगो पर जोर दिया गया जो अर्थव्यस्था को आत्मनिर्भर बना सकें।

चीनी आक्रमण के कारण योजना को रक्षा प्रधान बनाया गया।

(4) चतुर्थ योजना (Fourth Plan)– इसमें कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी व उसके पश्चात् संगठित उद्योगों के विकास को महत्व दिया गया। कुल व्यय का 22.8 प्रतिशत कृषि पर, 22.5 प्रतिशत लघु व संगठित उद्योगों पर व्यय किया गया।

(5) पंचम योजना (Fifth Plan)– इस योजना में कृषि के विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी। तत्पश्चात् आधार भूत एवं संगठित उद्योगों के विकास पर ध्यान दिया गया।

(6) छठी योजना (Sixth Plan)– इस योजना में कृषि विकास, सिंचाई आदि पर अधिक ध्यान दिया गया। कुल योजना व्यय का 25% भाग कृषि पर व्यय किया जायेगा। योजना में कृषि पर 5,693 करोड़ रुपयें ग्रामीण विकास पर 5,364 करोड़ रुपयें, सिंचाई पर 12,160 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान रखा गया।

(7) सातवी योजना (Seventh Plan)– इसमें वित्त एवं तकनीकी विकास में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने पर बल दिया गया तथा कृषि के स्थान पर उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी गई। योजना में 1,80,000 करोड़ रुपये व्यय करने का कार्यक्रम बनाया गया।

(8) आठवीं योजना (Eighth Plan)– निर्धनता का उन्मूलन करना, बेरोजगारी को कम करना, उद्योगों का विकास करना, असमानताओं को दूर करना आदि योजना की प्राथमिकताएँ रहीं। विकास दर 6 प्रतिषत निर्धारित की गयी।

(9) नौवी योजना (Nineth Plan)– न्यायपूर्ण वितरण एवं समानता के साथ विकास करना विकास दर 6.5% निर्धारित की गई।

(10) दसवी योजना (Tenth Plan)– निर्धनता अनुपात में कमी लाना, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करना, सभी बच्चों को शिक्षा, पेयजल उपलब्ध कराना आदि योजना की प्राथमिकता रही विकास दर 8% निर्धारित की गई।

2.7 विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं का संक्षिप्त विवरण (Brief Discription of Various Five Year Plans)

प्रथम योजना (1 अप्रैल, 1951 से 31 मार्च, 1956)

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1951 से प्ररम्भ हुई। इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थेः

(1) द्वितीय विश्वयुद्ध तथा देश के विभाजन के फलस्वरूप क्षतिग्रस्त हुई अर्थव्यवस्था का पुनरुत्थान करना, (2) स्फीतिकारक प्रवृत्तियों को रोकना, (3) अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाना ताकि भविष्य में तीव्र गति से विकास सम्भव हो सके, (4) खाद्यान्न संकट को हल करना, (5) उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना तथा आर्थिक विषमता को यथासम्भव न्यूनतम करना। इस योजनावधि में 1960 करोड़ रुपये व्यय किये गये तथा कृषि को उच्चतम प्राथिमकता दी गयी।

द्वितीय योजना (1 अप्रैल, 1956 से 31 मार्च, 1961)

इस योजना का मूलभूत उद्देश्य देश में औद्योगीकरण की प्रक्रिया को शुरु करना था जिससे भारतीय अर्थव्यवथा का सुदृढ़ आधार पर सर्वांगीण विकास किया जा सके। इसके अतिरिक्त 1956 में घोषित की गई औद्योगिक नीति में समाजवादी ढंग के समाज (Socialistic Pattern of Society) की स्थापना को स्वीकार किया गया।

द्वितीय योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थेः (1) द्रुत गति से औद्योगीकरण करना जिसमें आधारभूत उद्योगों तथा भारी उद्योगों पर बल दिया गया हो, (2) योजना के पाँच वर्षों में राष्ट्रीय आय में 25% वृद्धि करना ताकि देश के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाया जा सके। (3) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना, (4) आर्थिक शक्ति का समान वितरण करना, (5) पूँजी निवेश की दर को 7% से बढ़ाकर 1960–61 तक 11% करना।

इस योजना में सरकारी क्षेत्र में वास्तविक व्यय लगभग 4672 करोड़ रुपये हुआ। प्रति व्यक्ति आय में 2% की वार्षिक वृद्धि हुई। द्वितीय योजना के कुल परिव्यय 4672 करोड़ रुपये में से 1049 करोड़ रुपये की विदेशी सहायता प्राप्त हुई जो कुल परिव्यय का 24% थी।

तृतीय योजना (1 अप्रैल, 1961 से 31 मार्च, 1966)

इस तृतीय योजना में अर्थव्यवस्था को आर्थिक गतिशीलता की अवस्था (Take of stage) तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया था। इस योजना के मुख्य उद्देश्य थेः (1) खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु कृषि उत्पादन को बढ़ाना। (2) आधारभूत उद्योगों को स्थापित करना ताकि स्वयं के साधनों से औद्योगीकरण की आवश्यकता पूरी की जा सके। (3) श्रमशक्ति का अधिकतम उपयोग करना

तथा रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना, (4) राष्ट्रीय आय में 5% से अधिक वार्षिक वृद्धि प्राप्त करना तथा वर्षों में 30% वृद्धि करना।

इस योजना में खाद्य उत्पादन में 6% औसत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था किन्तु उसमें वृद्धि 2% वार्षिक ही हो सकी। इसी प्रकार औद्योगिक उत्पादन में भी नगण्य उपलब्धि हो सकी। इस योजना को लगभग हर मोर्चे पर असफलता का सामना करना पड़ा। इसका मुख्य कारण 1962 में चीन के साथ एवं 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध छिड़ना था। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय की प्रस्तावित राशि 7500 करोड़ रुपये थी जबकि वास्तविक व्यय 8577 करोड़ रुपये था।

तीन वार्षिक योजनाएँ (1966–67 से 1968–69)

विभिन्न कारणोंवश चौथी पंचवर्षीय योजना को स्थगित कर दिया गया तथा उनके स्थान पर तीन वार्षिक योजनाएं लागू की गयी। कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस अवधि को 'योजना अवकाश' (Plan Hoilday) की संज्ञा दे दी क्योंकि इस अवधि में कोई नियमित नियोजन नहीं किया गया।

चतुर्थ योजना (1 अप्रैल, 1969 से 31 मार्च, 1974)

चतुर्थ योजना के मूल उद्देश्य थेः स्थिरता के साथ आर्थिक विकास (Growht with Stability) तथा आत्मनिर्भरता की अधिकाधिक प्राप्ति (Progress Towards Self Reliance)। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये गयेः

(1) कृषि में उत्पादन में 5% की वार्षिक दर से तथा औद्योगिक उत्पादन में 8 से 10% तक वार्षिकदर से वृद्धि करना, (2) अर्थव्यवस्था में 5.70% की वार्षिक दर से आर्थिक विकास, (3) मूल्य स्तर में स्थायित्व लाना, (4) जनसंख्या पर नियंत्रण, निर्यातों में वृद्धि, रोजगार के अधिकाधिक अवसरों का सृजन, सार्वजनिक क्षेत्र का विकास, आर्थिक समानता इत्यादि इस योजना के अन्य प्रमुख उद्देश्य थे।

चौथी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय की प्रस्तावित राशि 1590 करोड़ रुपये थी, जबकि वास्तविक व्यय 15,7999 करोड़ रुपये था।

पाँचवी योजना (1 अप्रैल, 1974 से 31 मार्च, 1979)

पाँचवी पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1974 से प्रारम्भ होकर 31 मार्च, 1979 को पूरी होनी थी। परन्तु जनता सरकार द्वारा इस योजना को एक वर्ष पूर्व ही समाप्त कर दिया गया। इस योजना का मुख्य उद्देष्य 'गरीबी–उन्मूलन तथा आत्मनिर्भरता'

था।

छठी योजना (1 अप्रैल, 1980 से 31 मार्च, 1985)

जनता सरकार ने पाँचवी योजना चार वर्षों (1974–78) में ही समाप्त करके 1 अप्रैल, 1978 से नयी योजना शुरु कर दी जिसे 'अनवरत योजना' (Rolling Plan) का नाम दिया गया। इसकी अवधि 1978 से 1983 थी। किन्तु 1980 में छठवीं योजना को समाप्त कर एक नयी छठी योजना (1980–85) प्रारम्भ की।

इस छठवीं योजना में गरीबी तथा बेरोजगारी में कमी लाना, देश में उपलब्ध संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना तथा उत्पादकता में वृद्धि करना तथा आर्थिक एवं तकनीकी क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए आधुनीकीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना इत्यादि का लक्ष्य रखा गया। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय की प्रस्तावित राशि 97,500 करोड़ रुपये थी किन्तु वास्तविक व्यय 1,09,292 करोड़ रुपये हुआ।

सातवीं योजना (1 अप्रैल, 1982 से 31 मार्च, 1990)

आत्मनिर्भरता, गरीबी निवारण, देशी तकनीक का विकास, ऊर्जा संरक्षण तथा गैर–परम्परागत स्त्रोतों का विकास पारिस्थितिकीय एवं पर्यावरणीय संरक्षण आदि सातवीं योजना के प्रमुख उद्देश्य थे। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र पर 1,80,000 करोड़ रुपये व्यय का लक्ष्य था जबकि वास्तविक व्यय 2,18,730 करोड़ रुपये हुआ।

आठवीं योजना (1 अप्रैल, 1992 से 31 मार्च, 1997)

आठवीं पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1990 से प्रारम्भ होने को थी किन्तु केन्द्र में राजनीतिक उथल–पुथल के कारण इसे 1 अप्रैल, 1992 से शुरू किया जा सका। तत्कालीन प्रधानमंत्री तथा योजना आयोग के अध्यक्ष पी.वी.नरसिम्हा राव के अनुसार आठवीं योजना का मूलभूत उद्देश्य विभिन्न पहलुओं में मानव विकास करना था। इस हेतु पर्याप्त रोजगार का सृजन करना, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण रखना, प्रारम्भिक शिक्षा को सर्वव्यापक बनाना तथा 15 से 35 वर्ष की आयु के मध्य के लोगों में निरक्षरता को पूर्णतः समाप्त करना, खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता तथा विकास की गति को तेज करने के लिए आधारभूत ढाँचे को सुदृढ़ बनाना, प्राथमिक चिकित्सा सुविधाओं का प्रावधान करना तथा मैला ढोने की प्रथा को पूर्णतया समाप्त करना आदि लक्ष्य रखे गये। इस योजना में 4,34,000 करोड़ रुपये व्यय का लक्ष्य निर्धारित किया गया था जबकि वास्तविक

भारत में आर्थिक नियोजन
वर्तमान पंचवर्षीय
योजना

व्यय 4,95,670 करोड़ रुपये हुआ।

नौवीं योजना (1 अप्रैल, 1997 से 31 मार्च, 2002)

इस योजना में गरीबी उन्मूलन, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, क्षेत्रीय असंतुलन को कम करना, गुणवत्तायुक्त जीवन व्यतीत करने हेतु लोगों की न्यूनतम प्राथमिक सुविधाओं में वृद्धि करना तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। नौवी योजना में निम्नलिखित क्षेत्रों को आत्मनिर्भरता हेतु चुना गया। • भुगतान संतुलन सुनिश्चित करना। • विदेशी ऋणभार में कमी लाना। • गैर ऋण विदेशी आय को बढ़ावा देना। • खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना। • प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग तथा संरक्षण। • प्रौद्योगिकी आत्मनिर्भरता प्राप्त करना।

सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय नौवी योजना में 8,75,000 करोड़ रुपये था जो घटाकर 1996–97 की कीमतों पर 8,59,200 करोड़ रुपये कर दिया गया जबकि वास्तविक परिव्यय 9,41,041 करोड़ रुपये रहा।

दसवीं योजना (1 अप्रैल, 2002 से 31 मार्च, 2007)

इस योजना के प्रमुख उद्देश्य तथा विशेषताएं निम्नलिखित हैः

(i) दसवीं योजना का कुल सार्वजनिक व्यय 15,25,639 करोड़ रुपये रखा गया किन्तु संसाधन 15,92,300 करोड़ रुपये (केन्द्र का व्यय 9,21,291 करोड़ रुपये तथा राज्यों का 6,71,009 करोड़ रुपये)।

इस योजना के प्रस्तावित व्यय मदवार निम्नलिखित हैः

मंदे		करोड़ रुपये में	कुल व्यय का प्रतिशत
(1)	सामाजिक सेवायें	3,47,391	22.8
(2)	ऊर्जा	4,03,927	26.4
(3)	परिवहन	2,25977	14.8
(4)	ग्राम विकास	1,21,928	8.0
(5)	सिंचाई व बाढ़ नियंत्रण	1,03,315	6.8
(6)	संचार	98,968	6.5
(7)	उद्योग	58,939	3.9
(8)	कृषि	58,933	3.9
(9)	सामान्य आर्थिक सेवायें	38,630	2.5
(10)	विज्ञान व प्रौद्योगिकी	30,424	2.0

(11)	विशेष क्षेत्र कार्यक्रम	28,879	1.4
(12)	सामान्य सेवाएं	16,328	1.0
		15,25,639	**100.0**

(स्त्रोत–दसवीं पंचवर्षीय योजना, खण्ड–1 पृष्ठ 89)

(ii) योजनाविधि में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि, (iii) निर्यात वृद्धि दर 12.38 प्रतिशत वार्षिक जबकि आयात वृद्धि दर 17.13 प्रतिशत वार्षिक। (iv) गरीबी अनुपात को 5 वर्षों में 26.1 से घटाकर 19.3 प्रतिशत तक लाना। (v) सभी बच्चों को वर्ष 2003 तक विद्यालय भेजना तथा योजनावधि में साक्षरता दर को बढ़ाकर 75 प्रतिशत पर लाना। (vi) योजनाकला में 5 करोड़ व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराना। (vii) सभी गाँवों में पेयजल की सुविधा उपलब्ध कराना। (viii) शिशु मुत्यु दर को 45% तक लाना (ix) 2007 तक वनाच्छानद बढ़ाकर 25% करने का उद्देश्य। (x) नदियों में प्रदूषित हिस्सों की सफाई करना। (xi) निवेश दूर सकल घरेलू उत्पाद (GDP) की 28.4%, घरेलू बचत दर (GDP) की 26.8 प्रतिशत तथा बाहरी बचत 1.6% पर लाना। (xii) केन्द्र में सकल कर संग्रहण को (GDP) के 8.6% से बढ़ाकर 10.3% करने का लक्ष्य। (xiii) जनसंख्या वृद्धि दर को घटाकर 16.2 प्रतिशत पर लाना।

दसवीं योजना की मध्यावधि समीक्षा

दसवीं पंचवर्षीय योजना ने 31 मार्च, 2005 को तीन वर्ष पूरे कर लिये। इन तीनो वर्षों में देश को औसत आर्थिक विकास दर 6.5% ही रही है। शेष दो वर्षों में उच्चतर आर्थिक वृद्धि करने के बावजूद 8.1% वार्षिक विकास दर कर लक्ष्य प्राप्त होने की सम्भावना नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल तथा राष्ट्रीय विकास परिषद की मंजूरी के पश्चात् इस योजना का विकास दर का लक्ष्य 8.1% से घटाकर 7 प्रतिशत किये जाने की सम्भावना है।

ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना (2007–2012) [The Eleventh Five Year Plan 2007-2012]

राष्ट्रीय विकास परिषद् ने 19 दिसम्बर 2007 को हुई अपनी 54वीं बैठक में 2007–08 से आरम्भ होने वाली ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना को स्वीकृति दी। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना, दसवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में हासिल सकल घरेलू उत्पाद में 7.8 प्रतिशत की औसत वृद्धि जो अब तक की किसी भी योजना अवधि में सबसे अधिक है, के मजबूत आधार पर तैयार की गई है और इसमें

योजना के दौरान 9 प्रतिशत की औसत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है।

इस योजना में कृषि, सिंचाई, जल स्रोत, शिक्षा, स्वास्थ्य, अधोःसंरचना, रोजगारःअनुसूचित, जनजातीय, अन्य पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक, स्त्री व बच्चों के लिए कल्याणकारी कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। सरकार यह चाहती है कि आर्थिक विकास का लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुँचे। छोटे किसान, भूमिहीन कृषि मजदूर, असंगठित क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारी प्रायः योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाते हैं। ग्यारहवीं योजना का यह प्रयास रहेगा कि आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय को बढ़ाया जाए। अतः ग्यारहवीं योजना को 'तेज और समावेशी विकास की ओर (Towards faster and more inclusive Growth) का नाम दिया गया।

ग्यारहवीं योजना के सामाजिक एवम् आर्थिक लक्ष्य

(Social and Economic Targets of Eleventh Plan)

इस योजना के प्रमुख सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्य निम्न प्रकार हैः

1. आय एवं निर्धनता (Income and Poverty)

- वर्ष 2016–17 तक प्रति व्यक्ति आय को दोगुना तक लाने के लिए सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) की वार्षिक संवृद्धि दर को 8 प्रतिशत से बढ़कर 10 प्रतिशत करना तथा इसे 10 प्रतिशत से 12 प्रतिशत के बीच बनाए रखना।
- उच्च विकास दर के लाभों को व्यापक स्तर पर लाने के लिए कृषि जीडीपी की वार्षिक संवृद्धि दर को 4 प्रतिशत तक बढ़ाना।
- रोजगार के 70 मिलियन नए अवसर सृजित करना।
- शैक्षिक बेरोजगारी को 5 प्रतिशत से नीचे लाना।
- अकुशल श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी दर में 20 प्रतिशत तक की वृद्धि करना।
- उपयोग निर्धनता के हेडकाउण्ट अनुपात में 10 प्रतिशत तक की कमी लाना।

2. शिक्षा (Education)

- प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर विद्यालय छोड़कर घर बैठ जाने वाले बालकों की दर (ड्राप आउट रेट) को प्रथम वर्ष 2003–04 में 52. 2 प्रतिशत से घटाकर वर्ष 2011–12 तक 20 प्रतिशत के स्तर पर

लाना।

- प्राथमिक विद्यालयों में शैक्षणिक ज्ञान प्राप्त करने के न्यूनतम मानक स्तरों को प्राप्त करना एवं गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए शिक्षा की प्रभावशीलता के मूल्यांकन हेतु नियमित रूप से जाँच करते रहना।
- 7 वर्ष से अधिक आयु वर्ग में साक्षरता दर को बढ़ाकर 85 प्रतिशत करना।
- साक्षरता में लिंग–अन्तराल (जेण्डर गैप) को 10 प्रतिशत तक नीचे लाना।
- प्रत्येक आयु वर्ग में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों के अनुपात की वर्तमान में 10 प्रतिशत से बढ़ाना ग्यारहवीं योजना के अन्त तक 15 प्रतिशत करना।

3. स्वास्थ्य (Health)

- 2009 तक सबके लिए स्वच्छ पेयजल का प्रावधान और यह सुनिश्चित करना कि 11वीं योजना के लिए तक कोई पिछड़ न गया हो।
- 11वीं योजना के अन्त तक महिलाओं एवं लड़कियों की एनेमिया में 50 प्रतिशत की कमी लाना।
- 0–3 वर्ष आयु समूह के बच्चों के कुपोषण के वर्तमान स्तर में आधे की कमी लाना।
- कुल प्रजनन दर में कमी लाकर 2.1 करना।
- प्रत्येक 1,000 जीवित बच्चों के जन्म पर शिशु मृत्युदर में कमी लाकर 28 प्रतिशत और मातृ मृत्युदर का प्रतिशत कम करना।

4. महिलाएँ एवम् बच्चे (Women and Children)

- यह सुनिश्चित करना कि सभी सरकारी योजनाओं को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लाभार्थियों का 33 प्रतिशत महिलाएँ एवं बालिकाएँ हों।
- यह निश्चित करना कि काम करने की बाध्यता के बगैर बच्चे का बालपन सुरक्षित रहे।
- 6 वर्ष के आयु समूह के लिंग अनुपात में वृद्धि कर 2011–12 तक 935 तथा 2016–17 तक 950 करना।

5. अधोसंरचना (Infrastructure)

- 2009 तक सभी गांवों तथा गरीबी रेखा के नीचे रह रहे परिवारों को बिजली का कनेक्शन उपलब्ध करवाना और योजना के अंत तक 24 घंटे बिजली उपलब्ध करवाना।
- 1000 या उससे अधिक आबादी (पहाड़ी और जनजातीय क्षेत्रों में 500) वाले सभी गावों में 2009–10 सभी मौसमों के लायक सड़कें उपलब्ध करवाना।
- नवम्बर 2007 तक सभी गांवों को टेलीफोन से जोड़ना तथा 2012 तक सभी गांवों को ब्राडबैंड (Broad Band) से जोड़ना।
- 2012 तक सभी को आवास–भूमि प्रदान करना तथा ग्रामीण क्षेत्र में गरीबों के लिए गृह निर्माण की गति तीव्र कर 2016–17 तक सभी गरीबों को आवास उपलब्ध कराना।

6. पर्यावरण (Environment)

- वनों तथा वृक्षों में 5 प्रतिशत की वृद्धि करना।
- सभी प्रमुख शहरों में 2011–12 तक विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार स्वच्छ वायु उपलब्ध करवाना तथा वायु प्रदूषण को रोकना।
- 2011–12 तक सभी नदियों के जल को स्वच्छ करना।
- 2016–17 तक ऊर्जा दक्षता (Energy Efficiency) में 20 प्रतिशत की वृद्धि करना।

क्षेत्रवार संसाधनों का आबंटन

(Sectorwise Allocation of Resources)

इस योजना के लिए महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखा गया जिसके तहत देश के विकास पर कुल 36लाख 45हजार करोड़ रूपये खर्च किया जायेगा तो पिछली योजना की तुलना में काफी अधिक है।

सारणी–1 ग्यारहवीं योजना में विभिन्न मदों पद प्रस्तावित व्यय

मदें	कुल व्यय करोड़ रूपये	कुल योजना व्यय का प्रतिशत
1. कृषि	136382	3.5
2. ग्रामीण विकास	301069	5.8

3. क्षेत्र कार्य{म	26329	1.4
4. सिंचाई	210326	6.9
5. ऊर्जा	854123	19.0
6. उद्योग	153599	4.5
7. परिवहन	572443	18.2
8. संचार	95380	4.6
9. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी	87933	1.9
10. अन्य आर्थिक सेवाएं	62523	2.1
11. सामाजिक सेवाएं	1102327	30.2
12. सामान्य सेवाएं	42283	1.2
कुल	**3644718**	**100.00**

उपर्युक्त सारणी के अंकों से स्पष्ट है कि इस योजना में विभिन्न मदों पर प्रस्तावित व्यय निम्न प्रकार है:

(1) आधारिक संरचना (Infrastructure) अर्थात् ऊर्जा परिवहन तथा संचार पर 41.8 प्रतिशत व्यय किया जायेगा।

(2) सामाजिक सेवाओं जैसे शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर 30.2 प्रतिशत व्यय होगा।

(3) कुल प्रस्तावित व्यय का 17.6 प्रतिशत भाग कृषि सम्बद्ध क्रियाओं, ग्रामीण विकास, विशेष क्षेत्र कार्यक्रम तथा सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण पर किया जायेगा।

(4) उद्योग एवं खनिज पर 4.5 प्रतिशत व्यय किया जायेगा।

(5) विज्ञान तथा तकनीकी पर 1.9 प्रतिशत, सामान्य आर्थिक क्रियाओं पर 2.14 प्रतिशत तथा सामान्य सेवाओं पर 1.2 प्रतिशत खर्च होगा।

इस प्रकार ग्यारहवीं योजना के कृषि क्षेत्र, निर्धनता, आय की असमानता, खाद्य एवं पोषण, बाल विकास, सुशासन पर कम ध्यान दिया जा रहा है या वास्तविकता से अधिक लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं।

2.8 भारत में नियोजन : उपलब्धियाँ एवं मूल्यांकन (Planning in India : Achievements & Evaluation)

सन् 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत में नियोजित ढंग से

आर्थिक विकास का प्रारम्भ 1 अप्रैल, 1951 से हुआ। उस समय से भारत अपनी दस पंचवर्षीय योजनाएँ समाप्त कर चुका है। भारत में विभिन्न उद्देश्यों को रखा गया जिनको चार भागों में बाँटा जा सकता हैं–

(i) विकास, (ii) आधुनिकीकरण, (iii) आत्म–निर्भरता, (iv) सामाजिक न्याय

इन्हीं उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में भारत में आर्थिक नियोजन की उपलब्धियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है–

(I) विकास (Growth)

1. **विकास दर (Growth Rate) –** अर्थव्यवस्था की प्रगति का महत्वपूर्ण मापदण्ड विकास दर के लक्ष्यों की प्राप्ति है। योजनाकाल में विकास दर में हुई प्रगति को निम्न तालिका में दर्शाया जा सकता है।

योजना	लक्ष्य (प्रतिशत)	वास्तविक प्राप्ति (प्रतिशत)
1. प्रथम योजना	2.1	3.6
2. द्वितीय योजना	4.5	4.0
3. तृतीय योजना	5.6	2.2
4. चतुर्थ योजना	5.7	3.3
5. पाँचवी योजना	4.4	5.2
6. छठवीं योजना	5.2	5.2
7. सातवीं योजना	5.0	5.0
8. आठवीं योजना	5.6	6.7
9. नौवीं योजना	6.5	5.4
10. दसवीं योजना	8.0	....

योजनाविधि में विकास दर के लक्ष्य एवं प्राप्ति

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम, पाँचवी, सातवीं एवं आठवीं योजना को छोड़कर अन्य सभी योजनाओं में विकास दर की प्राप्ति लक्ष्यों से पीछे रही हैं। छठी योजना में विकास दर पूर्णतः लक्ष्यों के बराबर रही।

2. **राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय (National Income and per Capita Income) –** देश में जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है, परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि सम्भव न हो सकी। 1950–51

से भारत की जनसंख्या में 2.5% वार्षिक से वृद्धि हुई है। 1950—51 व 1990—91 से मध्य वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में प्रतिवर्ष औसत दर लगभग 1.8% की वृद्धि रही। विभिन्न योजनाकाल में राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर निम्न प्रकार रही—

योजना	राष्ट्रीय आय (प्रतिशत)
1. प्रथम योजना	3.5% वार्षिक
2. द्वितीय योजना	4.0% वार्षिक
3. तृतीय योजना	2.5% वार्षिक
4. तीन वार्षिक योजनाएँ	4.1% वार्षिक
5. चतुर्थ योजना	3.4% वार्षिक
6. पाँचवी योजना	5.5% वार्षिक
7. छठवीं योजना	5.2% वार्षिक
8. सातवीं योजना	5.5% वार्षिक
9. आठवीं योजना	6.0% वार्षिक
10. नौवीं योजना	6.3% वार्षिक
11. दसवीं योजना	8.0% वार्षिक

योजनाविधि में भारत के क्षेत्रानुसार वितरण के आधार पर प्राथमिक क्षेत्र में राष्ट्रीय आय का भाग घटा तथा द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र में बढ़ा है।

3. कृषि में प्रगति (Progress in Agriculture)— कृषि क्षेत्र में विशेष उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। योजनावार कृषि उत्पादन का विवरण निम्न प्रकार है—

योजना	कृषि उत्पादन में वृद्धि दर (प्रतिशत)
1. प्रथम योजना	4.1
2. द्वितीय योजना	4.0
3. तृतीय योजना	(—)1.4
4. तीन वार्षिक योजनाएँ	6.2
5. चतुर्थ योजना	2.9
6. पाँचवी योजना	4.2
7. छठवीं योजना	4.3
8. सातवीं योजना	4.1
9. आठवीं योजना	4.5
10. नौवीं योजना	2.06
11. दसवीं योजना	3.9

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कृषि उत्पादन की दर में काफी उच्चावचन (Fluctuations) रहे है।

4. औद्योगिक उत्पादन में प्रगति (Progress in Industrial Production)— आर्थिक नियोजन के 55 वर्षों में बिजली, परिवहन एवं उद्योग के क्षेत्र में काफी विकास हुआ है। बिजली की क्षमता में 4 गुना, कोयले के उत्पादन में 3 गुना, तैयार इस्पात के उत्पादन में 4 गुना, कागज के उत्पादन में 72 गुना, सीमेन्ट के उत्पादन में 7 गुना वृद्धि हुई है। जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

योजनावधि में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि

ड्द्योग	इकाई	1950—51	1990—91	2004—05
1. तैयार इस्पात	मि० टन	1.04	15.0	21.0
2. सीमेन्ट	मि० टन	2.7	46.0	53.1
3. मशीनरी औजार	मि० रुपये	3.2	30.2	39.0
4. कागज	हजार टन	116.0	1,800.00	2,700.00
5. सूती वस्त्र	मि. वर्ग मीटर	3,401.00	12,000	19,000
6. चीनी	लाख टन	11.3	110	137
7. ऐल्मुमिनियम	हजार टन	4	504	631
8. वनस्पति	हजार टन	......	1,010	1310
9. नत्रजनीय उर्वरक	हजार टन	9	2,000	29000

ड्परोक्त तालिका से स्पष्ट हे कि देष के सभी महत्वपूर्ण उद्योगों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। योजनाओं के अनुसार औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की दर (Rate of Growth) को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया जा सकता है—

योजना	औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर (प्रतिशत)
1. प्रथम योजना	7.3
2. द्वितीय योजना	6.6
3. तृतीय योजना	9.0
4. तीन वार्षिक योजनाएँ	2.0
5. चतुर्थ योजना	4.7
6. पाँचवी योजना	5.9
7. छठी योजना	5.5
8. सातवीं योजना	8.5
9. आठवीं योजना	8.4
10. नौवीं योजना	8.3
11. दसवीं योजना	8.7

5.बचत एवं विनियोग में वृद्धि (Increase in Savings and Investment) – योजनावधि में देश में बचत एवं विनियोग की दरों में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। चालू मूल्यों पर सकल राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में सन् 1950–51 में सकल विनियोग और सकल बचत की दरें क्रमशः 10.2 और 10.4 थीं। जो सन् 1989–90 में क्रमषः 24.1 और 21.7 हो गयीं। वर्ष 2004–05 में 26.84 हो गई है।

6.परिवहन एवं संचार व्यवस्था (Transport and Comunication Arrangement) – परिवहन एवं संचार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। रेलवे लाइनों की लम्बाई 53,596 किलोमीटर और रेलवे द्वारा ढोये जाने वाले माल की मात्रा 93 मिलियन टन से बढ़कर लगभग 334.3 मिलियन टन हो गयी।

सड़क परिवहन में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। 1950–51 में पक्की सड़कें 1.57 लाख किलोमीटर थीं जो 1991–92 में बढ़कर 3.10 लाख किलोमीटर हो गयीं। इसी प्रकार कच्ची सड़कें इसी अवधि में 2.43 लाख किलोमीटर के स्थान पर 7.01 लाख किलोमीटर हो गयीं। तथा 2004–05 में इनकी कुल लम्बाई 33. 2 लाख किमी० हो गईं। राष्ट्रीय राजमार्गों की कुल लम्बाई 24,000 किलोमीटर थी। इस प्रकार पक्की सड़कों में दो गुना तथा कच्ची सड़को में तीन गुने से वृद्धि हुई।

जहाजरानी की टन क्षमता 1950–51 में 3.9 लाख G.R.T. थी जो 1990–91 में 6.03 लाख G.R.T. एवं 2004–05 में बढ़कर 58.2 G.R.T. हो गई। वायु परिवहन की स्थिति में भी पर्याप्त में भी पर्याप्य विकास हुआ। दो वायु निगमों की स्थापना हुई जो आन्तरिक एवं बाह्य क्षेत्रों में आवश्यक वायु सेवाएँ प्रदान करती हैं।

संचार व्यवस्था के अन्तर्गत भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। डाकखानों की हजारों शाखायें खोली गई और टेलीफोन, टेलीग्राफ, रेडियों–स्टेशन एवं प्रसारण केन्द्रों में पर्याप्त वृद्धि हुई वर्तमान में देश में 71 प्रारम्भिक केन्द्र, 3 सहायक केन्द्र तथा 2 विविध–भारती प्रसारण केन्द्र हैं। 1 अगस्त, 1965 को भारत में प्रथम टेलीवीजन कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया, जिसे उपग्रह शिक्षक टेलीविजन कहा जाता है।

बाकी मैटर लगना है

7. **शिक्षा (Education)–** योजना के 55 वर्षों की अवधि में शिक्षा के क्षेत्र में काफी वृद्धि हुई इस अवधि में बेसिक स्कूलों की संख्या 2,23,261 से बढ़कर 6,84,691 तथा विश्वविद्यालय और आसान संस्थाओं की संख्या 27 से बढ़कर 176 हो गई। देश में साक्षरता दर सन् 1951 में 16.7% थीं जो सन् 1991 में 52.11% हो गयी। वर्ष 2004–05 में बढ़कर 65.4% हो गई है। यह दर 2005–05 और अधिक बढ़कर 65.4% हो गई है।
8. **स्वास्थ्य सुविधाएँ (Health Facilities)–** योजना के 40 वर्षों की अवधि ा में देश में स्वास्थ्य एवं कल्याण कार्यों में उल्लेखनीय प्रगति हुई। 1950–51 में देश में अस्पतालों में पलंगों की संख्या 113 हजार थी जो सन् 2005 में 931 हजार हो गई। परिवार नियोजन केन्द्रों की संख्या 1960–61 में 1,650 थीं जो बढ़कर 22,000 हो गई। इस अवधि में रजिस्टर्ड डॉक्टरों की संख्या 61,8 हजार से बढ़कर 332 हजार हो गयी। देश में स्वास्थ्य एवं कल्याण सम्बन्धी अनेक कार्य किये गये तथा अनेक बीमारियों पर लगभग पूर्ण नियंत्रण पाने में सफलता प्राप्त की गई।
9. **विदेशी व्यापार में प्रगति (Progress in Foreign Trade)** – भारत ने अपनी आर्थिक प्रगति के साथ–साथ विदेशी व्यापार में प्रगति के उद्देश्य को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। सन् 1950–51 में भारत के निर्यात 600.64 करोड़ रुपये के थे, जो सन् 1989–90 में बढ़कर 27,681 करोड़ रुपये हो गये। देश में पूजीगत वस्तुओं और खाद्यान्नों के आयात के कारण उसको आवश्यकतानुसार नियन्त्रित नहीं कर पाये हैं। सन् 1950–51 में आयातों की राशि 650.21 करोड़ रूपये थी, जो सन् 1989–90 में 35,412

करोड़ रुपये हो जाने की आशा है। इसी अवधि में आयात भी 10.4% की दर से बढ़कर 2005–06 वर्ष में 2,39,990 करोड़ रुपये हो जाने का अनुमान है।

10. **बैंकिग क्षेत्र की प्रगति (Progress in Banking Sector)** – प्रथम योजनाविधि के प्रारम्भ में देश में बैंकिग क्षेत्र काफी अपर्याप्त और असन्तुलित था, लेकिन योजनावधि में और विशेष रूप से बैंक के राष्ट्रीयकरण के पश्चात् देश में बैंकिंग संरचना काफी व्यापक और सुदृढ़ हो गयी है। दिसम्बर सन् 1951 में देश में व्यापारिक बैंकों की शाखाओं की संख्या 2,647 थी, जो जून 2005 में बढ़कर 61,937 हो गई।

(II) आधुनिकीकरण (Modernisation)

आर्थिक नियोजन के सन्दर्भ में आधुनिकीकरण का आशय आर्थिक क्रियाओं के ढाँचे में विभिन्न प्रकार के संरचनात्मक एवं संस्थागत परिवर्तनों से है। इस दृष्टि से कुछ मुख्य उपलब्धियों निम्न प्रकार हैं–

1. **आर्थिक संरचना में परिवर्तन–** योजनाकाल में औद्योगिक संरचना में भी अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इसमें आधारभूत एवं पूंजीगत उद्योगो की स्थापना हुई है, सार्वजनिक उद्योगों में वृद्धि हुई हैं, उद्योगों का विविधीकरण हुआ है तथा उद्योगों में उत्पादन तकनीक में सुधार हुए हैं।

2. **कृषि का आधुनिकीकरण–** भारत एक कृषि प्रधान देश हैं, अतः कृषि संरचना में सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किये गये हैं, अतिरिक्त सिंचाई सुविधाओं का विस्तार हुआ है, रासायनिक खाद का प्रयोग बढ़ा है, नवीन और उच्च उत्पादकता वाले बीजों का प्रयोग किया गया है, नवीन यन्त्रों के प्रयोग को प्रोत्साहन मिला है तथा कृषि, वित्त एवं विपणन व्यवस्था में भी उल्लेखनीय सुधार हुए हैं।

3. **बैंकिंग संरचना में परिवर्तन–** बैंकों को अर्थव्यवस्था की रक्त नलिकाएँ कहा जाता है। अतः नियोजन काल में निरन्तर यह प्रयास किया गया है कि देश में बैंकिग व्यवस्था, सुव्यवस्थित, सुगठित और सुविस्तृत बन सके। इसके परिणमस्वरूप बैंकिग संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। ग्रामीण और बैंक रहित क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार हुआ है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई हैं, बैंक साख के वितरण में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं और बैंकिग सुविधाओं में गुणात्मक परिवर्तन हुआ

हैं।

(III) आत्म–निर्भरता (Self-Reliance)

भारत सरकार ने नियोजन के माध्यम से निरन्तर आत्म–निर्भरता करने पर जोर दिया है। इस दृष्टि से विदेशी सहायता पर निर्भरता कम करने के प्रयास किए गये हैं। योजनाकाल में घरेलू उत्पादन करने वाले उत्पादनों के विविधीकरण करने पर भी जोर दिया गया है, जिससे आयातों पर निर्भरता कम की जा सके।

(IV) सामाजिक न्याय (Social Justice)

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक न्याय की दृष्टि से दो पहलुओं पर विशेश ध्यान दिया गया है–समाज के निर्धतम् वर्ग के जीवन स्तर में सुधार किया जाय तथा सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं में कमी लाई जा सके। इस दृष्टि से विभिन्न प्रेरणात्मक एवं वैधानिक उपाय किये गये और उनसे निर्धन वर्ग के पक्ष में कुछ सुधार अवश्य हुआ है लेकिन उसकी गति काफी धीमी रही हैं।

नियोजन अवधि में उपलब्धियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन (A critical Evaluation of Progress during the Plan Period)

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से भारत ने विगत 55 वर्षों में निरन्तर प्रगति की है। योजनावधि में आधारभूत एवं भारी उद्योगों की स्थापना करके देश में औद्योगिक विकास का सुदृढ़ ढाँचा तैयार किया गया है। जनसंख्या वृद्धि के सम्बन्ध में परिवार नियोजन का व्यापक कार्यक्रम अपनाकर जनसंख्या पर नियन्त्रण लगाया गया है। यातायात के साधनों को विस्तृत किया गया है, शिक्षा का प्रसार हुआ है, समाज सुधार और कल्याण की अनेक योजनाएँ प्रारम्भ हुई हैं। उपरोक्त उपलब्धियों के होते हुए भी इन योजनाओं के कार्यान्वियन में कुछ कमियां एवं असफलताएँ रही हैं। इन असफलताओं को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है–

1. **प्रति व्यक्ति आय में धीमी प्रगति (Slow Progress in Per Capita Income)–** नियोजित अर्थव्यवस्था के बावजूद भी भारत में प्रति व्यक्ति आय में औसत वृद्धि की दर प्रथम योजना में 1.7% वार्षिक और दूसरी योजना में 1.9% वार्षिक रही, लेकिन तृतीय योजना में यह घटकर 0.9% हो गयी। पाँचवीं, छठवीं एवं सातवीं योजना में क्रमषः 2.6% 3.2% तथा 3.4% रही परन्तु अन्तर्राष्टीय तुलना की दृष्टि से भारत की प्रति व्यक्ति आय काफी कम है।

2. **क्षेत्रीय असन्तुलन (Regional Imbalance)–** प्रथम योजना से पूर्व जो क्षेत्र विकसित हुए थे, वे आज भी उसी स्थिति में हैं, जैसे–बम्बई, मद्रास एवं पश्चिम बंगाल। इसके विपरीत, जो राज्य पिछड़ी अवस्था में थे वे आज भी पिछड़े हुए है जैसे–उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा आदि।

3. **मूल्यों में वृद्धि (Rise in prices)–** नियोजन काल में मूल्यों पर नियन्त्रण नहीं रखा जा सका। 1961–62 में उपभोक्ता मूल्य 100 था जो 1975–76 में बढ़कर 306 व 2004–05 में 791 हो गया। इससे उपभोक्ताओं को हानि होने के साथ–साथ विकासात्मक कार्यक्रमों में भी वृद्धि हो जाने से भौतिक उपलब्धियाँ न्यून हो गयी और औद्योगिक वस्तुओं का लागत मूल्य बढ़ गया।

4. **दोषपूर्ण नियन्त्रण नीति (Defective Control Policy) –** योजना अवधि में नियन्त्रण की नीति दोषपूर्ण एवं एकांगी रही है। डॉ० गाडगिल के अनुसार– ''भारतीय योजनाओं में नीति सम्बन्धी ढाँचे का पूर्ण रूप से अभाव रहा है और विभिन्न क्षेत्र में जो नियन्त्रण और नियम लगे हुये हैं, वे परस्पर असम्बद्ध हैं।'' प्रत्येक नियन्त्रण एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति करता है और इसी दृष्टि से संचालित किया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि समग्र रूप से अर्थव्यवस्था लगभग एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था के रूप में कार्य करती रही है।

5. **बेरोजगारी में वृद्धि –** पंचवर्षीय योजनाओं में बेरोजगारी दूर करने पर पर्याप्त बल दिया गया, परन्तु यह घटने के स्थान पर बढ़ती ही गयीं। 1951 में भारत में बेरोजगारी की संख्या 3.3 मिलियन थी जो 1971 में बढ़कर 18.7 मिलियन व 1991 के अन्त में बढ़कर 40 मिलियन हो गयीं। वर्तमान समय (2006–07) में बेरोजगारों की संख्या 43.9 मिलियन पहुँच जाने की संभावना की गई है।

6. **लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफलता (Failure to Achieve targets)** – विभिन्न योजनाओं में निम्न कारणों से निर्धारित किये गये लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव न हो सकी–

(i) पर्याप्त जनसहयोग का अभाव, (ii) असन्तोषजनक औद्योगिक सम्बन्ध, (iii) प्रशासकीय एवं प्रबंधकीय योग्यता का अभाव, (iv) भ्रष्ट विनियोग व्यवस्था, (v) हीन बचत प्रयास, (vi) कारखानों में आवश्यक क्षमता का

अभाव एवं ऊंचे लक्ष्य, (vii) रख–रखाव में कमी, (viii) पूंजी निवेश में कमी, (ix) अक्षय लोक वृत्तीय नीति, (x) कारखानों की परिचालन सम्बन्धी समस्याएँ, (xi) देश में तकनीकी विकास पर बल न देना, (xii) निजी क्षेत्र में सामाजिक उत्तरदायित्व का अभाव,

7.9 सारांश (Summary)

आर्थिक नियोजन का विचार नया नहीं है। आधुनिक युग वास्तव में नियोजन का युग है। आज जीवन के हर क्षेत्र में सफलता बिना नियोजन के प्राप्त नहीं की जा सकती है। नियोजन को आर्थिक प्रगति का एक शक्तिशाली तंत्र माना गया है। उपलब्ध साधनों का विवेकपूर्ण ढंग से आवंटन करना ही नियोजन कहलाता है। आर्थिक नियोजन का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय हित में संसाधनों का अधिकतम उपयोग कर उत्पादन, आय, रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना हो जिससे देश का संतुलित विकास हो सके। आजकल पूँजीवादी, समाजवादी एवं मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले सभी देशों में आर्थिक नियोजन का सहारा लिया जाता है।

हमारे देश में 1950 में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये योजना आयोग का गठन किया गया। प्रधानमंत्री इस आयोग के अध्यक्ष होते है। योजना आयोग के कई विभाग है जो योजना के निर्माण क्रियान्वयन एवं पर्यवेक्षक का कार्य करते है। योजना आयोग को मदद करने के लिये अलग से कई समितियां एवं परिषद हैं। योजना आयोग की नियोजन प्रक्रिया काफी सुविचारित एवं जटिल है। 1951 से अब तक भारत में दस पंचवर्षीय योजनायें लागू की जा चुकी है। इस ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012) चल रही है।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के परिणाम स्वरूप देश की अर्थव्यवस्था में विकास दर, राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय, कृषि उत्पादन, शिक्षा स्वास्थ्य, विदेशी व्यापार, बैकिंग परिवहन आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। फिर भी जितना लक्ष्य किया गया उतना लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाया है। क्षेत्रीय असंतुलन, बेरोजगारी, मूल्य वृद्धि, आय की असमानता में वृद्धि आदि बिन्दुओं पर आर्थिक नियोजन की आलोचना की जाती रही है। अतः आर्थिक नियोजन में सुधार आवश्यकता है।

7.10 शब्दावली (Key words)

आर्थिक नियोजन (Economic Planning) : आवश्यक रूप से सामाजिक उद्देश्यों के अनुरूप साधनों का अधिकतम स्थान हेतु संगठित एवं उपयोग करने का मार्ग है।

योजना आयोग (Planning Commission) : एक स्वायत्त सलाहकारी संस्था जो देश में आर्थिक नियोजन का प्रारूप तैयार करने और स्वीकृति के बाद लागू करने का काम करती है।

राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council) : यह देश में नियोजन से सम्बन्धित नीति निर्धारण करने वाली एक उच्च स्तरीय संस्था है जो राज्यों एवं योजना आयोग के बीच सहयोग का कार्य करती है।

राष्ट्रीय नियोजन परिषद् (National Planning Council) : इस परिषद् का गठन प्रत्येक योजना के निर्माण के समय किया जाता है। इस परिषद् में वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, उद्योगपति, इंजीनियर तथा अन्य विशेषज्ञ सदस्य होते हैं।

विकास दर (Growth Rate) : अर्थव्यवस्था की प्रगति का महत्वपूर्ण मापदण्ड।

सामाजिक न्याय (Social Justice) : समाज के निर्धनतम वर्ग के जीवन स्तर में सुधार तथा आय एवं सम्पत्ति असमानता में कमी लाना।

2.11. अभ्यास के प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. आर्थिक नियोजन क्या है? आर्थिक नियोजन के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

What is Economic Planning? Discuss the Objectives of Economic Planning.

2. आर्थिक नियोजन की परिभाषा दीजिए। इसके मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

Define Economic Planning. What are its main objectives?

3. आर्थिक नियोजन से आप क्या समझते हैं? इसकी क्या विशेषताएँ है?

What do you mean by economic planning? What are its features?

4. भारत में आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया एवं नियोजन तंत्र के बारे में बताइये।

Discuss the Planning Process and Planning Machinery in India.

5. नियोजन की क्या आवश्यकता है? नियोजन का महत्व बताइए।

What is the need of Planning? Give the Importance of Planning.

6 ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना की प्रमुख विशेषताएं बताइये।

Discuss the main features of Eleventh Five Year Plan.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

7. नियोजन क्या है? नियोजन का महत्व स्पष्ट कीजिए।

What is Planning? Explain the Importance of planning.

8. आर्थिक नियोजन की परिभाषा कीजिए। एक विकासशील अर्थव्यवस्था में हमें इसकी क्यों आवश्यकता होती है?

Define Economic Planning. Why do we need it in a Developing Economy?

9. नियोजन काल में आर्थिक वृद्धि की प्रवृत्तियों की विवेचना कीजिए।

Examine the Trends of Economic Growth During the Planned Period.

10. 'नियोजन के समग्र प्रभाव' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write short note on Total Impact of Planning.

11. भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिये।

Critically Evaluate the various Five year Plans achievements in India.

इकाई–3 : आर्थिक सुधार (Economic Reforms)

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 आर्थिक सुधार की आवश्यकता

3.4 आर्थिक सुधार का स्वरूप और क्षेत्र

3.4.1 सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार (Reforms of Public Sector)

3.4.2 उदारीकरण (Liberalisation)

3.4.3 निजीकरण (Privatisation)

3.4.4 वैश्वीकरण (Globalisation)

3.5 आर्थिक सुधार का मूल्यांकन

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 अभ्यास के प्रश्न

3.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- आर्थिक सुधार की आवश्यकता को स्पष्ट कर सकें।
- आर्थिक सुधार के स्वरूप और क्षेत्र का वर्णन कर सकें।
- आर्थिक सुधार के कार्यान्वयन में प्रगति और उससे संबंधित समस्याओं के संबंध में बता सकें।
- आर्थिक सुधारों का मूल्यांकन कर सकें।

3.2 प्रस्तावना (Introduction)

सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करने की पहले की नीतियों ने सार्वजनिक क्षेत्र को अकुशल बना दिया था तथा इस क्षेत्र में बहुत अधिक हानि हो रही थी। लाइसेंस और नियंत्रण प्रणाली ने निजी क्षेत्र द्वारा निवेश पर रोक लगा दिया तथा इसके कारण विदेशी निवेशक भी हतोत्साहित हो रहे थे। अतः विकास

के पहले चार दशकों में अपनाई गई आर्थिक नीतियों के संबंध में फिर से विचार करने की आवश्यकता थी। इसी के फलस्वरूप सरकार ने आर्थिक सुधार की शुरूआत की। इस इकाई में आप आर्थिक सुधार के स्वरूप और उसके क्षेत्र के संबंध में पढ़ेगें। आर्थिक सुधार के कार्यान्वयन की प्रगति और समस्याओं के संबंध में अध्ययन किया जाएगा तथा इस नीति का विश्लेषण किया जाएगा।

3.3 आर्थिक सुधार की आवश्यकता (Need for Economic Reforms)

स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में शुरू की गई आर्थिक नीति में निम्नलिखित का प्रावधान था :

;पद्ध भारी और मूल उद्योगों की स्थापना में सार्वजनिक क्षेत्र की मुख्य भूमिका, ;पपद्ध जल विद्युत शक्ति परियोजनाओं, बांधों, सड़को और संचार के निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से सरकार की भूमिका का विस्तार, तथा (iii) स्कूलों, कालेजों, विश्वविद्यालयों, तकनीकी और इंजीनियरी संस्थानों के रूप में सामाजिक आधारभूत संरचनाओं के विकास में तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, अस्पतालों एवं डाक्टरों, नर्सों आदि को प्रशिक्षित करने के लिए चिकित्सा संस्थाओं की स्थापना में सरकार की भूमिका।

यद्यपि अर्थव्यवस्था का शेष क्षेत्र निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया गया था, फिर भी इस भाग में विनियमन और नियंत्रण की प्रणाली लागू की गई थी। इसके फलस्वरूप लाइसेंस परमिट राज की शुरूआत हुई। नौकरशाही एवं राजनीतिज्ञ लाइसेंस प्रणाली का दुरूपयोग करके धन कमाने लगे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्य के नेतृत्व में आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के फलस्वरूप भारी और मूल उद्योगों के रूप में औद्योगिक आधार का निर्माण हुआ। इसकी सहायता से सड़कों, रेलवे, संचार और जल–विद्युत कार्यो, और थर्मल पावर प्लांटों का निर्माण हुआ तथा शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रसार हुआ। साथ ही साथ कुछ समस्याएं भी सामने आई। ये समस्याएं निम्नलिखित थी :

1) अत्यधिक नियंत्रणों और लाइसेंस–नीति के कारण निजी क्षेत्र में निवेश के सम्बन्ध में बाधायें उत्पन्न हुई।
2) सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश तो बहुत बड़ी मात्रा में हो रहा था परन्तु उनसे आय बहुत ही कम होती थी। अकुशलता एवं नौकरशाही के नियमों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र की हालत खराब हो रही थी।
3) जो क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित थे उन सभी में इस क्षेत्र का

एकाधिकार था। इन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र को सार्वजनिक क्षेत्र के साथ प्रतियोगिता करने का अधिकार नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ सार्वजनिक क्षेत्र ने अपनी लागतों को कम करने की ओर ध्यान नहीं दिया।

4) एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम 1969 के कारण बड़े–बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठान बड़ी परियोजनाओं में बड़ी मात्रा में निजी निवेश के रूप में धन नहीं लगा सके।

5) लाइसेंस आदि से संबंधित जटिल नियमों–विनियमों के होने से विदेशी निवेशकर्ता भी हतोत्साहित हो गए।

उपर्युक्त कारणों से आर्थिक नीति में परिवर्तन की आवश्यकता हुई, जिससे एक ओर तो सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार हो सके और दूसरी ओर प्रतिबंधित क्षेत्रों को निजी क्षेत्र (भारतीय और विदेशी दोनो ही) के प्रवेश के लिए खोला जा सके। संवृद्धि और कुशलता में सुधार लाने के लिए विकास के प्रथम चार दशकों में अपनाई गई आर्थिक नीति के संबंध में पुनः विचार करने की आवश्यकता थी।

बोध प्रश्न क (Check Your Progress- A)

1. विकास के प्रथम चार दशकों में अपनाई गई आर्थिक नीति के तीन प्रमुख तत्वों को सूचीबद्ध कीजिए।

....

....

2. 1950–51 से 1984–85 की अवधि में अपनाई गई आर्थिक नीतियों से उत्पन्न हुई समस्याओं को संक्षेप में बताइये।

....

....

3.4 सरकार की वर्तमान आर्थिक सुधार नीति का स्वरूप एवं क्षेत्र (Nature & Scope of Govt's Present Economic Reforms Policy)

1. **कर सुधार (Tax Reforms)** सरकार करवंचना को रोकने व अधिक कर वसूल करने के उद्देश्य से करों में सुधार कर रही है जिनके अंतर्गत प्रो० चलैया समिति की रिपोर्ट के आधार पर प्रयत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों (Direct & Indirect Taxes) से सम्बन्धित

अनेक सिफरिशों को सरकार ने मानकर कार्यरूप में परिणत कर दिया है:

(i) व्यक्तिगत आयकर (Individual Income) की अधिकतम दर 30 प्रतिशत कर दी गई है।

(ii) दुकानदारो व छोटे व्यापारियों को निश्चित रकम के रूप में कर देने की सुविधा प्रदान की गई है।

(iii) आयात–निर्यात शुल्क के ढ़ाँचे को सरल बनाया है।

(iv) D.T.C. (Direct Tax Code) और GST (Goods and Services Tax) को लागू करना।

2. **आर्थिक क्षेत्र में सुधार (Reforms in Financial Sector)** सरकार ने आर्थिक क्षेत्र में सुधार के लिए निम्न कार्य किये है:

(i) बैंकों के लिए नवीन सिद्धान्त बनाये गये है जिससे कि उनके वार्षिक खाते सही स्थिति (real position) को बता सकें।

(ii) बैकों के लिए SLR की सीमा घटाई जा रही है।

(iii) सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को पूँजी बाजार से अपनी पूंजी एकत्रित करने की अनुमति प्रदान की गई है, लेकिन 51 प्रतिशत पूँजी सदा ही सरकार के पास रहेगी।

(iv) निजी क्षेत्र के बैंक अपना विकास, बिना राष्ट्रीयकरण के भय के कर सकते हैं।

(v) सेबी (SEBI) को वैधानिक अधिकार दे दिये गये हैं। पूँजी नियन्त्रक का कार्यालय बन्द कर दिया गया है। सेबी ने पूँजी बाजार का नियमित करने के लिए अनेक नियम उपनियम लागू किये हैं। 'राष्ट्रीय स्कन्ध विपणि' स्थापित किया जा चुका है।

3. **सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार (Reforms in Public Sector)–** सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) ने आशा के अनुरूप कार्य नहीं किया है। अधिकांश इकाइयाँ घाटे में चल रही है: अतः

(i) घाटे वाली इकाइयों को गैर–योजना ऋण नहीं दिये जायेंगे।

(ii) लाभ देने वाली सार्वजनिक इकाइयों को अपनी पूँजी का 49 प्रतिशत

तक निजी क्षेत्र को देने की अनुपति दी गई है।

4. **औद्योगिक नीति में सुधार (Reforms in Industrial Policy)–** आर्थिक सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत औद्योगिक नीति (Industrial Policy) में मूलभूत परिवर्तन किये गये हैं:

(i) औद्योगिक लाइसेन्स प्रणाली समाप्त कर दी गई है।

(ii) MRTP औद्योगिक गृहों को अब विनियोग व विस्तार के लिये अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है।

(iii) सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योगों की संख्या 17 से घटाकर 3 कर दी गई है।

5. **राजकोषीय घाटे को ठीक करना (Correction of Fiscal Imbalances)–** आर्थिक सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत राजकोषीय घाटा कम करने की बात कही गई है। यह घाटा 1990–1991 में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 6.6 प्रतिशत था। जो 2004–05 में 5.6 प्रतिशत रह गया है।

6. **विदेशी व्यापार एवं विनिमय दर नीतियाँ (Trade & Exchange Rate Policies)–** विगत वर्षों में विदेशी व्यापार एवं विनियम दर नीतियों पर कड़े सरकारी नियन्त्रण थे, परन्तु अब–

(i) आयात शुल्क जो काफी अधिक थे उन्हें कई स्तरों पर कम कर दिया गया है जैसे जुलाई 1991 में अधिकतम 150 प्रतिशत तक करना, फरवरी 1992 में 110 प्रतिशत, फरवरी 1993 में 85 प्रतिशत व मार्च 1995 में 50 प्रतिशत तक करना। वर्ष 2005–06 यह 20 से 40 प्रतिशत कर दिया गया है।

(ii) सोना व चादी के आयात का उदारीकरण करना।

(iii) रुपये की विनिमय दर विदेशी विनिमय बाजार में माँग व पूर्ति (Demand & Supply) के अनुसार निर्धारित करना।

7. **विदेशी विनियोग नीति (Foreign Investment Policy) –** देश के औद्योगिक विकास में विदेशी विनियोग नीति महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। नई औद्योगिक नीति की घोषणा से लेकर 2004–05 तक विदेशी विनियोजकों को 2,84,812 करोड़ रुपये विनियोजित करने की अनुमति दी जा चुकी है परन्तु वास्तविक विनियोग 1,29,828 करोड़ रुपयें का ही हुआ है जो कुल अनुमति का 45.6 प्रतिशत है। इसमें वे विदेश कम्पनियाँ

भी शामिल हैं जिनकों शत–प्रतिशत विदेशी विनियोग की अनुमति दी गई है।

3.4.1 सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार (Reforms of the Public Sector)

सार्वजनिक क्षेत्र के सुधार के अनेक उपाय किये गए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख उपाय निम्नलिखित हैः

(i) सार्वजनिक क्षेत्र को सामरिक और हाई टेक के उद्योगों एवं आरक्षित संरचनाओं तक सीमित रखा जाएगा। अब तक जो क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित रखे गए थे उनमें से कुछ को निजी क्षेत्र के लिए मुक्त कर दिया जाएगा।

(ii) सार्वजनिक क्षेत्र के जो उद्यम दीर्घकाल से रोगग्रस्त है, उनके संबंध में बोर्ड फार इन्डस्ट्रियल एंड फाइनेन्सियल रिकंस्ट्रक्शन (BIFR) की सलाह ली जाएगी। यह बोर्ड यदि उन्हें आजीवन क्षय (Non Viable) घोषित कर देता है तो उनका समापन कर दिया जायेगा। लेकिन यदि बोर्ड की राय है कि उनको पुनः जीवित करने की संभावना है तब उनके पुनर्जीवन/पुनर्वास योजना को कार्यन्वित किया जाएगा। इस प्रक्रिया में जिन श्रमिकों को काम से हटाया जायेगा उन्हें सामाजिक सुरक्षा तंत्र (Social Security Mechanism) के अधीन सहायता दी जाएगी।

(iii) श्रमिकों की कार्यकुशलता को बढ़ाने एवं कार्य के साथ उनके हित को जोड़ने के लिए उद्यम के शेयरों का एक भाग श्रमिकों को दिया जाएगा।

(iv) सर्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों के लिए संसाधनों को जुटाने की दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंध को अनुमति दी जाएगी कि वे म्युचुअल फंडो और अन्य वित्तीय संस्थाओं को अपने स्वामित्व का एक भाग देकर उनसे धन ले सकते हैं।

(v) सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंध को अधिक पेशेवर बनाया जाएगा तथा निर्णय लेने के संबंध में उन्हें अधिक स्वायत्तता प्रदान की जाएगी।

(vi) सर्वजनिक क्षेत्र की इकाइयां सरकार के साथ मेमोरेंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग (Mou) पर हस्ताक्षर करेंगी जिससे कि एक ओर तो वह स्वायत्त हो सकें ओर दूसरी ओर उत्तरदायी हो जाएं।

3.4.2 उदारीकरण (Liberalisation)

उदारीकरण से तात्पर्य उद्योग तथा व्यापार को अनावश्यक प्रतिबन्धों से मुक्त करना है ताकि उन्हें अधिक प्रतियोगी बनाया जा सके। दूसरे शब्दों में, उदारीकरण एक प्रक्रिया है जिसमें देश के शासन तन्त्र द्वारा राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु अपनाये जा रहे विभिन्न कदमों जैसे लाइसेंसिंग नियंत्रण, कोटा प्रणाली इत्यादि प्रशासकीय अवरोधों को कम किया जाता है। इससे आर्थिक व्यवस्था में सरकार की भूमिका क्रमशः कम होती जाती है।

उदारीकरण के उद्देश्य (Objectives of Liberalisation)– उदारीकरण के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

(1) व्यवसाय के क्षेत्र में सरकार व नौकरशाही के हस्तक्षेप को न्यूनतम करना,

(2) घरेलू उत्पादन प्रणाली में सुधार करके उत्पादन क्षमता में विकास करना,

(3) आर्थिक क्षेत्र में अनुसंधान के माध्यम से वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार लाना,

(4) देश की अर्थव्यवस्था में आमूल–चूल सुधार करके कृषि, उद्योग, परिवहन आदि के क्षेत्र में तीव्र विकास को सम्भव करना,

(5) प्रबन्धकीय दक्षता एवं निष्पादन में सुधार लाना,

(6) रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना,

(7) सार्वजनिक क्षेत्र के अनावश्यक एकाधिकार को समाप्त करना,

(8) अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में शामिल होना,

(9) सूचनाओं के आदान–प्रदान प्रणाली को प्रभावी बनाना,

(10) सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के चहुँमुखी विकास की दशा में कदम बढ़ाना।

उदारीकरण के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Liberalisation)

(1) विदेशी मुद्रा भण्डार में आश्चर्यजनक रूप से वृद्धि हुई है। जुलाई, 1991 में विदेशी मुद्रा भण्डार मात्र एक अरब डालर था, जो जुलाई, 2003 में बढ़कर 82,774 अरब डॉलर हो गया।

(2) कृषि, उद्योग आदि में उदार नीति अपनाने से विभिन्न सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर हुए हैं।

(3) भारत के निर्यातों में वृद्धि हुई है। जहाँ 1991–92 में कुल निर्यात 44,041 करोड़ रुपये के थे, वहाँ जनवरी, 2000 में ये बढ़कर 1,18,638 करोड़ रुपये के हो गये।

(4) प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग में वृद्धि तथा राजकोषीय घाटे में कमी हुई है।

(5) उदारीकरण से भारतीय उपभोक्ताओं को सस्ती, आकर्षक तथा टिकाऊ वस्तुओं को प्राप्त करने का अवसर मिल रहा है जिससे जनसाधारण के जीवन स्तर में सुधार हुआ है।

(6) उदरीकरण की नीति अपनाने से देश की अर्थव्यवस्था का विश्वव्यापीकरण दृष्टिगोचर हो रहा है।

बोध प्रश्न ख (Check your progress B)

1. उदारीकरण (Liberalisation) की नीति के मुख्य तत्व क्या है? संक्षेप में विवेचन कीजिए।

....

....

2. निजीकरण (privatisation) क्या है? निजीकरण के पक्ष में चार तर्क दीजिये।

....

....

3. खाली स्थानों को भरिये।

ii) सार्वजनिक क्षेत्र को ....हाई टेक और आवश्यक आध ारिक संरचना (infrastrutre) तक सीमित रखा जाएगा।

iii) सार्वजनिक क्षेत्र के जो उद्यम बहुत समय से .... हैं उनके संबंध में BIFR से सलाह ली जाएगी।

iv) निजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई के ....का हस्तांतरण निजी क्षेत्र को हो जाता है।

v) वैश्वीकरण का मुख्य उद्देश्य शेष विश्व के साथ भारत की अर्थव्यवस्था का ....करना है।

vi) विकसित देशों के अनुसार वैश्वीकरण की परिभाषा तीन घटकों तक सीमित है। ये घटक हैं..और............................ ।

उत्तर– बोध प्रश्न ख– प्रश्न–3 (i) सामरिक (ii) बीमार (iii) स्वामित्व (iv)

एकीकरण (v) मुक्त व्यापार, पूंजी एवं मुक्त प्रौद्योगिकी प्रवाह

3.4.3 निजीकरण (Privatlsation)-

व्यवसाय, सरकार तथा शैक्षणिक क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 'निजीकरण' शब्द ध्यान आकर्षित करता रहा है। 'निजीकरण' शब्द को खोजने का श्रेय पीटर एफ.ड्रकर (Peter F. Drucker) को जाता है, जिन्होंने इस शब्द का प्रयोग अपनी पुस्तक 'The Age of Discontinuity (1969) में किया। इसके दस वर्ष बाद जब श्रीमती माग्रेट थ्रैचर ब्रिटेन की प्रधानमंत्री बनीं तब उन्होंने निजीकरण को व्यवहारिक रूप दिया। इसके पश्चात् एक–एक करके अनेक देशों द्वारा निजीकरण को अपनाया गया।

संकुचित रूप में, निजीकरण से तात्पर्य है ऐसी औद्योगिक इकाईयों के स्वामित्व को निजी क्षेत्र में हस्तान्तरित कर देना जोकि अभी तक सरकारी स्वामित्व तथा नियंत्रण में थी। व्यापक अर्थ में, निजीकरण से अभिप्राय निजी उद्योगों के सम्बन्ध में सरकार द्वारा उदार औद्योगिक नीति अपनाने से है जिससे सरकार निजी उद्यमियों के विभिन्न आर्थिक क्रिया–कलापों पर न्यूनतम नियंत्रण तथा नियमन करती है। निजीकरण में सार्वजनिक क्षेत्र का हिस्सा निजी क्षेत्र की तुलना में कम किया जाता है।

निजीकरण के आधारभूत उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

(2) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के निष्पादन में सुधार करना ताकि करदाताओं पर पड़ने वाले वित्तीय भार को कम किया जा सके।

(3) निजी क्षेत्र के विनियोगों को प्रोत्साहित करना तथा सरकार हेतु आय में वृद्धि करना।

(4) सरकार पर पड़ने वाले प्रशासनिक व प्रबंधकीय भार को कम करना।

(5) निजीकरण का एक उद्देश्य निजी क्षेत्र को सामान्य जनता में लोकप्रिय बनाना भी है।

बाधायें (Obstacles) – निजीकरण के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधायें निम्नलिखित हैं:

(1) सरकार सामान्यतया अलाभकर सार्वजनिक इकाईयों को बेचना चाहती है, जिन्हें निजी क्षेत्र सरकार द्वारा माँगें जाने वाले मूल्य पर नहीं खरीदना चाहता है।

(2) तुलनात्मक रूप से अविकसित पूँजी बाजारों के कारण सरकारे शेयर निर्गमित

करने में कठिनाई महसूस करती है। दूसरी तरफ बड़े क्रेताओं को वित्त उपलब्ध कराने में भी सरकार को समस्या का सामना करना पड़ता है।

(3) सार्वजनिक उद्योग का स्वामित्व सम्बन्धी अधिकार निजी क्षेत्र को दिये जाने पर राजनैतिक विरोध का सामना करना पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त, उद्योग में कार्यरत कर्मचारी भी विरोध करते हैं क्योकि उन्हें अपने रोजगार के छिनने का भय रहता है।

निजीकरण के पक्ष में तर्क (Arguments In favour of Privatisation)

निजीकरण के पक्ष में विचार व्यक्त करने वालों का विश्वास है कि सार्वजनिक क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं का हल निजीकरण में है। वे निजीकरण के पक्ष में अग्रलिखित तर्क प्रस्तुत करते है:

(1) उत्तरदायित्व के निर्धारण में सरलता (Fixing the responsibility) – किसी कमी या दोष के लिए सार्वजनिक उद्योगों में किसी कर्मचारी या अधिकारी को उत्तरदायी या जवाब देह ठहराना मुश्किल होता है, लेकिन निजी क्षेत्र में उत्तरदायित्व का क्षेत्र स्पष्ट रूप से परिभाषित कर दिया जाता है। सार्वजनिक उद्योग में अगर उत्तरदायित्व निर्धारित कर भी दिया जाय तो विभिन्न दबावों तथा शक्तियों के कारण उनका प्रभावी क्रियान्वयन सम्भव नहीं हो पाता है।

(2) कुशलता तथा निष्पादन में वृद्धि (Improvement in efficiency and performance) – निजी क्षेत्र में प्रत्येक निर्णय 'लाभ–आधारित' होता है। कार्य तथा पुरस्कार में सीधा सम्बन्ध होने के कारण कुशलता तथा निष्पादन में सुधार के लिए निरंतर प्रयास किये जाते हैं।

(3) उपभोक्ताओं को अच्छी सेवायें (Better Servlces to the customers) – निजी क्षेत्र का अस्तित्व मुख्य रूप से उपभोक्ताओं के संतोष पर निर्भर करता है क्योंकि यह संतोष ही उपभोक्ताओं को पुनः क्रय करने हेतु प्रेरित करता है। लोक उद्योगों में सामान्यता उपभोक्ताओं की रूचि, आवश्यकताओं आदि की अवहेलना देखने को मिलती है। एक बार निजीकरण होने से लोक उद्योगों के दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन होने की सम्भावना व्यक्त की गयी है। इसके फलस्वरूप सेवाओं की गुणवत्ता में भारी सुधार होने की आशा है।

(4) निजी क्षेत्र में उपचारात्मक उपाय शीघ्र उठाना (Remedial measures are taken early in Private Sector) – किसी कमी या

दोष को दूर करने के सम्बन्ध में निजी क्षेत्र में तत्काल उपचारात्मक कदम उठाये जाते है। लोक क्षेत्र में ऐसे कदम उठाने के सम्बन्ध में निर्णय लेने में काफी समय निकल जाता है और समस्या विकराल रूप धारण कर लेती है और कभी–कभी उस दोष या कमी को दूर करना लगभग असम्भव हो जाता है।

(5) **आर्थिक समाजवाद (Economic Sociallsm) –** निजीकरण के द्वारा 'राज्य एकाधिकार' समाप्त होगा तथा नीति निर्धारण, मूल्य निर्धारण तथा विभिन्न निर्णयों की स्वतंत्रता के परिणामस्वरूप आर्थिक समाजवाद की दिशा में प्रगति होगी। ऐसी व्यवस्था में सरकार के साथ–साथ उद्यमियों, बाजार शक्तियों आदि का भी हस्तक्षेप होगा।

(6) **राजनैतिक हस्तक्षेप न होना (No Political Interference)–** रिजर्व बैंक के गर्वनर विमल जालान का सही कहना है कि सार्वजनिक क्षेत्र में राजनैतिक हस्तक्षेप की अवहेलना नहीं की जा सकती हैं जिसे उन उद्योगों की कार्यकुशलता में कमी आने का एक कारण कहा जा सकता है। ऐसी बात निजी क्षेत्र पर लागू नहीं होती है।

(7) **नयी प्रौद्योगिकी (New Technology)–** निजीकरण से देश में नये–नये उद्यमियों तथा साहसियों का प्रादुर्भाव होता है। वे नयी किस्मों की वस्तुओं को बाजार में लाने के लिए नयी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करते हैं।

(8) **उत्तराधिकार सम्बन्धित नियोजन (Succession related planning)–** अनेक लोक उद्योग अक्सर लम्बे समय तक 'मुखियाविहीन' (Headless), रहते हैं। इससे निर्णण लेने में विभिन्न आशंकाएँ बनी रहती हैं क्योंकि यह कोई नहीं जानता कि आने वाले मुखिया (प्रधान संचालक या जनरल मैनेजर) का क्या दृष्टिकोण होगा ऐसी परिस्थिति निजी क्षेत्र में उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि इसमें उत्तराधिकारी का निर्धारण जल्दी तथा समय से कर लिया जाता है।

(9) **लाभों का सृजन (Creation of Profits) –** निजीकरण से देश में पूँजी, कोष तथा लाभों का सृजन होता है। निजी क्षेत्र का मूल उद्देश्य लाभोपार्जन ही होता है। निजी क्षेत्र व्यवसाय में हुए विनियोग को बढ़ाने का निरंतर प्रयास करते हैं। इसके फलस्वरूप देश में आधिक्य तथा विनियोग हेतु कोष उपलब्ध रहते हैं।

3.4.4 वैश्वीकरण (Globalisation)

वैश्वीकरण का अर्थ भिन्न–भिन्न लोगों के लिए भिन्न–भिन्न होता है। विकासशील देशों के लिए देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने को वैश्वीकरण कहते हैं। साधारण शब्दों में, यह एक प्रक्रिया है जिसमें विश्व एकीकृत होकर एक विशाल बाजार में परिवर्तित हो जाता है। ऐसा होने के लिए समस्त व्यापारिक अवरोधों (Trade Barriers) को दूर करना आवश्यक है। वैश्वीकरण में राजनैतिक तथा भूगोलीय अवरोधक कोई अर्थ नहीं रखते हैं। वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषतायें निम्ननिखित हैः

1. व्यापार का तीव्र विकास होता है, विशेष तौर से बहुराष्ट्रीय निगमों (Multinational Corporations) का विस्तार होता है।
2. देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किया जाता है जिसमें राजनैतिक व भूगोलीय अवरोधक समाप्त हो जाते है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय लेन–देन अथवा कार्य कलापों में तेजी आती है।
4. अन्तर्राष्ट्रीय बाजार का प्रदुर्भाव होता है अर्थात् वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी, तकनीक तथा श्रम सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों का एकीकरण हो जाता है।

भारत में वैश्वीकरण को प्रेरित करने वाले घटक (Factors Fostering Globalisation in India)

(1) **राजनैतिक कारक (Political Cause)–** गत वर्षों में आये राजनैतिक उतार–चढ़ाव का वैश्वीकरण पर गहरा प्रभाव पड़ा। सोवियत संघ का विखण्डन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका का एकमात्र महाशक्ति के रूप में रह जाना आदि सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना रही। अमेरिका की करंसी 'डालर' में अन्तर्राष्ट्रीय बाजार संचालित किया जाने लगा जिससे वैश्वीकरण को प्रोत्साहन मिला।

(2) **तकनीकी प्रगति (Technological Progress)–** परिवहन, संम्प्रेषण तथा सूचना आदि के क्षेत्र में हुई तकनीकी क्रान्ति ने वैश्वीकरण के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कम्प्यूटर तथा सैटेलाइट के प्रयोग ने सम्पूर्ण संम्पेषण प्रणाली में आमूल चूल परिवर्तनकर दिये हैं। सम्पूर्ण विश्व एक छोटा–सा गाँव हो गया है जिसमें ई–मेल, मोबाइल फोन, पर्सनल कम्प्यूटर आदि के माध्यम से कुछ क्षणें में ही एक सूचना किसी भी दूसरे स्थान पर प्रेषित की जा सकती है। तकनीकी प्रगति ने कम लागत पर उच्च किस्म का उत्पादन करना सम्भव बनाया

है।

(3) **विकासशील देशों के अनुभव (Experiences of Developing Countries)–** विकासशील देशों वैश्वीकरण की नीति अपना कर अपनी अर्थव्यवस्था में काफी सुधाार किया। ताइवान, कोरिया, थाईलैण्ड, सिंगापुर, हाँगकाँग इत्यादि इसके उदाहरण है। इन देशों के सफल विश्वव्यापीकरण को भारत में प्रोत्साहित किया है।

(4) **उदारवादी नीतियाँ (Liberalised Policies)–** अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों ने 'व्यापार उदारीकरण' (Trade Liberalisation) की नीति अपनायी। इसके परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक लेन–देन पर लगे व्यापारिक अवरोधों को दूर कर दिया गया जिससे वैश्वीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला। इससे व्यापार तथा विदेशी निवेश क्षेत्र में उदारता का प्रादुर्भाव हुआ।

(5) **औद्योगिक संगठन की विशेषताएँ (Features of Industrial Organisation)–** औद्योगिक संगठन में उभरती नयी प्रवृत्तियों ने भी वैश्वीकरण को बढ़ावा दिया है। औद्योगिक संगठनों की लोचपूर्ण उत्पादन प्रणाली, तकनीकी प्रगति, संगठनीय विशेषताओं (मुख्यतया जापानी प्रबंध पर आध ाारित) ने राष्ट्रीय सीमाओं के पार आर्थिक गतिविधियाँ करने को प्रेरित किया है।

(6) **प्रतिस्पर्धा (Competition)–** पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता अन्य क्षेत्र (सार्वजनिक क्षेत्र) से प्रतिस्पर्धा होना है। इसी प्रतिस्पर्धा के कारण उद्यमी को विदेशों में नये बाजार खोजने की आवश्यकता होती है। विदेशी निगमों से प्रतिस्पर्धा के कारण ही घरेलू निगम भी विश्व परिप्रेक्ष्य में अपने को स्थापित करने लगे हैं।

(7) **अर्न्तसम्बन्धित एवं स्वतंत्र अर्थव्यवस्थायें (Interlinked and Independent Economics)–** आर्थिक कल्याण के संदर्भ में, वैश्वीकरण से तात्पर्य आर्थिक रूप से अन्तर्सम्बन्धित पर्यावरण से है। प्रत्येक राष्ट्र की सम्पन्नता में विश्व के अन्य राष्ट्रों का योगदान होता है अर्थात् कोई अकेला राष्ट्र बिना अन्य राष्ट्रों के सहयोग के प्रगति नहीं कर सकता है। भारत तथा अन्य विकासशील राष्ट्रों में विपरीत भुगतान संतुलन जैसी वित्तीय समस्याओं ने वैश्वीकरण को आवश्यक बना दिया है।

भारत में वैश्वीकरण की प्रक्रिया तेजी से आगे बढ़ रही है। इसके कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित है:

(1) बहुराष्ट्रीय निगमों (MNCs) ने बड़ी संख्या में भारत में प्रवेश किया है।

(2) 2200 की संख्या के आसपास भारतीय कम्पनियों ने ISO 9000 प्रमाण–पत्र प्राप्त किये हैं जो कि उच्च गुणवत्ता की गारण्टी हैं।

(3) भारतीय निगमों की गतिविधियाँ अमेरिकी ऋण बाजार में बढ़ी हैं।

(4) केवल तटकर में ही कमी नहीं की गयी है वरन् अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग (FDI) तथा विदेशी प्रौद्योगिकी के लिए भी खोल दिया गया है।

(5) गत कुछ वर्षों में व्यापार एवं निर्यात गहनता दोनों में वृद्धि हुई है। गत वर्ष की तुलना में 2002–03 में भारत का निर्यात 19 प्रतिशत बढ़ा है।

(6) देश में भारी मात्रा में विदेशी विनियोग हुआ है तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने देश में प्रवेश किया है।

3.5 आर्थिक सुधारों का मूल्यांकन (Assessment of Economic Reforms)

आर्थिक सुधारों का सूत्रपात्र बहुत उत्साह के साथ किया गया था। इसके अनेक लाभ हुए है परन्तु अनेक क्षेत्रों में सफलता नहीं मिल पाई है। नीचे इस नीति का मूल्यांकन किया जा रहा है।

प्रथम, अर्थव्यवस्था की सुवृद्धि में धीरे–धीरे सुधार हुआ और तीन वर्षों (1994–96 से 1996–97 तक) में संवृद्धि दर बढ़ाकर ळक्च का 7 प्रतिशत हो गई। संवृद्धि दर की वृद्धि के संबंध में यह रिकार्ड था।

द्वितीय, सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों ;च्ैन्द्ध को अब आर्थिक सुधारों के कारण निजीकरण की चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। अपने आस्तित्व को बचाने के लिए वे अपने कार्यों में सुधार लाने का प्रयास कर रहे है। 1995–96 वर्ष में केन्द्रीय सरकार के च्ै ने निवेशित पूंजी पर 16.1 प्रतिशत की दर से सकल आय अर्जित किया जो एक रिकार्ड दर थी। विनिवेश से 2005–06 49214 करोड़ रूपये प्राप्त हुआ।

तृतीय, मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति को रोकने में आर्थिक सुधार सफल रहे है। 1991–92 में यह 10 प्रतिशत से अधिक थी जबकि जनवरी 2007 में 6.11 प्रतिशत रही।

चौथा, औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक से पता चलता है कि इस क्षेत्र में समग्र संवृद्धि दर 1991–92 के 0.6 प्रतिशत से बढ़कर 1995–96 में 11.8 प्रतिशत हो गई, हालांकि 1996–97 में यह दर गिरकर 6.6 प्रतिशत हो गई। फिर 2006–07 में 8.2 प्रतिशत हो गई।

पांचवा, निर्यात की वृद्धि दर 1992–93 में 3.8ः (यू. एस. डालर में मापित) थी। 1995–96 तक यह दर बढ़कर 20.8ः हो गई। लेकिन वर्ष 1996–97 वर्ष में यह दर फिर घट कर 4.1ः हो गई। उसी प्रकार आयात में वृद्धि दर 1992–93 के 12.7ः से बढ़कर 1995–96 में 28.6ः हो गई थी लेकिन बाद में इसमें कमी हुई और 1996–97 में यह 5.1ः हो गई। 2005–06 में यह 23.4ः बढ़ा।

अंततः, विदेशी मुद्रा रिजर्व 1990–91 तक गिरकर 2.24 बिलियन यू. एस. डॉलर हो गया था। अप्रैल 2007 तक यह बढ़कर 2.00 बिलियन डॉलर हो गया। इससे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी है।

आर्थिक सुधारों के अंतर्गत उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के सुधार के कार्यक्रम आते हैं। यह नीति अल्पकालिक उद्देश्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित करती रही है जैसे कि भुगतान–संतुलन की बिगड़ती हुई स्थिति पर नियंत्रण, विदेशी मुद्रा रिजर्व का निर्माण, राजकोषीय घाटे को कम करना तथा मुद्रास्फीति पर नियंत्रण। लेकिन यह नीति गरीबी को कम करने, पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने, स्वावलंबन, धन की असमानता को दूर करने, अवसर की स्थापना का प्रावधान करने तथा सामाजिक न्याय स्थापित करने के दीर्घकालिक लक्ष्यों की ओर ध्यान नहीं दे पाई है। मुद्रास्फीति पर नियंत्रण और निजीकरण जैसे कुछ अल्पकालिक लक्ष्यों के संबंध में भी इस नीति को केवल आंशिक सफलता ही मिल पाई है।

आर्थिक सुधार में जिन प्रमुख क्षेत्रों की ओर पुनः ध्यान देना चाहिए वे निम्नलिखित है–

i) इसका कार्यक्षेत्र सीमित रहा है। मुख्यतः इसने अपना ध्यान बड़े कंपनी क्षेत्रों पर ही केन्द्रित किया है। इसके फलस्वरूप छोटे पैमाने के क्षेत्र और कृषि की उपेक्षा हुई है, जोकि रोजगार के मुख्य स्रोत हैं। अतः आवश्यक है कि समग्र आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाने तथा दीर्घकालिक दृष्टि से इसे और सफल करने के लिए छोटे पैमाने के क्षेत्र और कृषि क्षेत्र को मजबूत बनाया जाए।

ii) निजीकरण के क्षेत्र में मजदूर संघों की ओर से विरोध के कारण आर्थिक सुधार को कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई है। अतः उसने प्रतीकात्मक

निजीकरण का मार्ग अपनाया है। यह कार्य अत्यंत स्वस्थ सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के विनिवेश की प्रक्रिया द्वारा किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त विनिवेश से जो आय होती है उसका उपयोग अब तक केन्द्रीय सरकार के घाटे को पूरा करने के लिए किया जाता है। ऐसा करना उचित नहीं है।

iii) थोक कीमत सूचकांक में वृद्धि दर को तो आर्थिक सुधार नियंत्रित कर पाये है परन्तु वह उद्योगों में कार्य करने वाले श्रमिकों या कृषि मजदूरों के उपभोक्ता कीमत सूचकांक में होती हुई वृद्धि को नहीं रोक पाये है। 1991–92 से 1996–97 के बीच की अवधि में उपभोक्ता कीमत सूचकांक में औसत वृद्धि 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष हुई। इसमें आम जनता का कल्याण निहित है।

iv) आर्थिक सुधार दीर्घकालिक आधार पर राजकोषीय घाटे में कमी नहीं कर पाये है। गैर–योजना गत व्ययों पर नियंत्रण रखने में यह असफल रहा है, लेकिन राजकोषीय घाटे में कमी को दिखाने के लिए इसने योजनागत व्ययों (plan expenditure) में कटौती कर दी है। पांचवे वेतन आयोग और अब छठे वेतन आयोग की रिपोर्ट को कार्यान्वित करने के बाद गैर–योजनागत व्ययों (non-plan expenditure) का बहुत अधिक हो जाने की संभावना है परन्तु स्वेच्छा से आय प्रकट करने की योजना (voluntary disclosure of income scheme) द्वारा सरकार की आय बढ़ने की संभावना कम ही है।

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आर्थिक सुधारों ने सम्पन्न वर्ग के लोगों पर कर की अधिकतम दर का घटाकर 30ः करके उन्हें काफी रियायत दी है लेकिन कर छिपाने वालों को वह अपनी आय प्रकट करने के लिए प्रेरित नहीं कर पाई है।

v) आधारभूत संरचनाओं के निर्माण के लिए आर्थिक सुधार विदेशी निजी क्षेत्रों पर अधिक निर्भर रही है, लेकिन इस संबंध में यह असफल रहा। उदाहरणार्थ पिछले पांच वर्षों में विदेशी फर्मे इस देश की बिजली की पूर्ति में एक भी किलोवाट की वृद्धि नहीं कर पाई है। आठवीं योजना में बिजली के उत्पादन क्षमता में 30ए538 MW वृद्धि करने का लक्ष्य था लेकिन वास्तव में 16ए243 डॅ की ही वृद्धि हो पाई जो कि निर्धारित लक्ष्य से 46ः कम था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आर्थिक सुधार के आधार को अधिक व्यापक बनाने के लिए इसे पुनः दिशा देने की आवश्यकता है जिससे इसमें कृषि

और छोटे पैमाने के उद्योगों को भी शामिल किया जा सके। देश के निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र को बराबरी का दर्जा दिया जाना चाहिए, जिससे ये बिजली, दूरसंचार, सड़क आदि के क्षेत्रों में आधारभूत संरचना के निर्माण में योगदान कर सकें। इसी के महत्व को ध्यान में रखते हुए पूर्व प्रधान मंत्री श्री गुजराल ने कंफडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्री (CII) के सम्मेलन को 16 अगस्त 1997 को संबोधित करते हुए कहा था कि "11वीं सदी के पूंजीवाद के वे दिन समाप्त हो गए जब कोई भी विदेशी इस देश में आकर आय पर हावी हो सकता था। विदेशियों का हम स्वागत तो करते हैं परन्तु उन्हें इस इस बात की अनुमति नहीं दी जाएगी कि वे इस देश की कंपनियों को नष्ट कर दें या उन्हें अपने अधिकार में ले लें। उन्हें केवल उन्हीं क्षेत्रों में निवेश करने की अनुमति दी जाएगी, जिनमें हमें उनके सहयोग की आवश्यकता है। भारत के उद्योगों को सभी प्रकार का संरक्षण प्राप्त होगा तथा अनुचित प्रतियोगिता से उनकी रक्षा की जाएगी।

बोध प्रश्न ग (Check your progress C)

1. आर्थिक सुधार कार्यक्रम की पांच प्रमुख उपलब्धियों को बताइए।

   ....

   ....

2. आर्थिक सुधार की कमजोरी के पांच क्षेत्रों को सूचीबद्ध कीजिए।

   ....

   ....

3.6 सारांश (Summary)

विकास के प्रथम तीन दशकों में सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की नीतियों तथा लाइसेंस और नियंत्रण की प्रणाली के फलस्वरूप निजी क्षेत्र द्वारा निवेश पर प्रतिबंध लगा रहा। इसके फलस्वरूप अकुशल सार्वजनिक क्षेत्र का जन्म हुआ, जिनमें प्रति वर्ष हानि होती हुई। अत्यधिक नौकरशाही तथा लाइसेंस और नियंत्रण की प्रणाली के फलस्वरूप विदेशी निवेश का भी उत्साह भंग हो गया।

आर्थिक सुधार में चार प्रकार के परिवर्तनों पर जोर दिया गयाः (i) उदारीकरण, (ii) सार्वजनिक क्षेत्र में सुधार, (iii) निजीकरण, तथा (iv) वैश्वीकरण।

उदारीकरण ने निजी क्षेत्र को अपनी क्षमता बढ़ाने में, नये क्षेत्रों में प्रवेश करने में तथा नई वस्तुओं के उत्पादन में सहायता की है। सार्वजनिक क्षेत्र में

छंटनी तथा स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति की नीति द्वारा इस क्षेत्र में सुधार लाकर इसमें श्रमिकों के अति भार को कम किया जा सका है। बहुत समय से बीमार चल रही सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों (PSUs) को बन्द कर दिया गया। कुछ स्थितियों में उन्हें पुनः जीवित करने के उपाय किए गए। इन सबके फलस्वरूप PSUs के कार्य–निष्पादन में सुधार हुआ तथा वर्ष 1995–96 में कुछ निवेशित पूंजी पर 16% की दर से आय में सकल वृद्धि हुई जो वृद्धि का रिकार्ड थी। बजट घाटे को पूरा करने के लिए सरकार ने सबसे अधिक स्वस्थ PSUs का विनिवेश भी किया।

मजदूर संघों एवं वामपक्षी राजनैतिक दलों की ओर से कड़े विरोध के कारण निजीकरण के कार्यक्रम के ठोस परिणाम नहीं हो पाए हैं। नौकरशाही भी अप्रत्यक्ष रूप से निजीकरण का विरोध करती रही है। एक–एक करके PSUs का निजीकरण तो नहीं हो पा रहा है, लेकिन व्यापक रूप में अर्थव्यवस्था के निजीकरण की चल रही प्रक्रिया के फलस्वरूप निजी क्षेत्र को निवेश करने के संबंध में प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है।

आर्थिक सुधार अपना ध्यान अल्पकालिक लक्ष्यों को प्राप्त करने पर केन्द्रित करता रहा है, जैसे कि भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार लाना, विदेशी मुद्रा रिजर्व बनाना, मुद्रास्फीति का नियंत्रण एवं राजकोषीय घाटे को कम करना। बेरोजगारी और गरीबी को घटाने तथा सामाजिक और आर्थिक न्याय की व्यवस्था करने संबंधी दीर्घकालिक लक्ष्यों की उपेक्षा कर दी गई है।

भारतीय उद्योगों के लिए संरक्षणात्मक उपायों की व्यवस्था करके चयनात्मक वैश्वीकरण करने की आवश्यकता है जिससे संयुक्त क्षेत्र में प्रवेश के बाद विदेशी फर्मे भारतीय फर्मो को निगल न पाएं।

3.7 शब्दावली (Key words)

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment) : विदेशी निवेश का वह रूप जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होता है और इस प्रकार वह अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता को भी बढ़ाता है।

वैश्वीकरण (Globalisation) : इससे आशय अर्थव्यवस्था को शेष विश्व के लिए खोलने से होता है जिससे वस्तुओं, सेवाओं, प्रौद्योगिकी और निवेश का मुक्त रूप से प्रवाह हो सके।

उदारीकरण (Liberalisation) : इससे आशय है निजी क्षेत्र की स्वतंत्रता पर लगाए गए अनावश्यक प्रतिबंधों को हटाने की प्रक्रिया। इस प्रक्रिया के अंतर्गत आता है। अनावश्यक लाइसेंस, नियंत्रणों एवं विनियमों को हटाना जो नौकरशाही

और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करते है।

एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (MRTP) आयोग : वह आयोग जिसकी स्थापना का उद्देश्य है नए निवेशों के लिए आवेदनपत्रों की जांच करना तथा उन व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के आवेदन पत्रों को नामंजूर करना है जिनकी परिस्थिति MRTP अधिनियम (1969) द्वारा एवं समय–समय पर इस अधिनियम में किए गए संशोधनों द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक है।

पोर्ट फोलियो निवेश (Portfolio Investment) : विदेशी नागरिकों या विदेशी कंपनियों द्वारा ईक्विटी, स्टाकों, बांडों और डिबेंचरों के रूप में भारत में किया गया वित्तीय निवेश।

निजीकरण (Privatisation) : वह प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई के स्वामित्व का हस्तांतरण निजी क्षेत्र हो जाता है।

3.8 अभ्यास के प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. भारत में आर्थिक सुधार कार्यक्रमों की आवश्यकता एवं क्षेत्र के बारे में बताइये।

   Discuss the need and scope of economic reforms in India.

2. उदारीकरण के अर्थ एवं उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए। इसके गुण–दोषों का मूल्यांकन कीजिए।

   Explain the meaning and objectives of liberalisation. Evaluate its merits and demerits.

3. 'निजीकरण' को परिभाषित कीजिए। इसकी शक्तियाँ तथा कमियाँ क्या हैं?

   Define 'Privatisation'. What are its strengths and weaknesses?

4. निजीकरण से आप क्या समझते हैं ? भारत में निजीकरण पर एक लेख लिखिए।

   What do you understand by Privatisation? Write an essay on Privatisation in India.

5. वैश्वीकरण क्या है? भारत में वैश्वीकरण को प्रेरित करने वाले घटकों का वर्णन कीजिए।

   What is Globalisation? Discribe the factors fostering globalisation in India.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Question)

1. उदारीकरण के अर्थ एवं उद्देश्य बताइये।

   Describe the meaning and objectives of liberalisation.

2. उदारीकरण के पक्ष में विभिन्न तर्को का उल्लेख कीजिए।

   Write different arguments in favour of liberalisation.

3. निजीकरण के अर्थ एवं उद्देश्य को लिखिए।

   Write meaning and objectives of privatisation.

4. भारत में निजीकरण पर एक लेख लिखिए।

   Write an essay on privatisation in India.

इकाई–4 : औद्योगिक नीति (Industrial Policy)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 औद्योगिक नीति का आशय एवं महत्व

4.4 भारत में औद्योगिक नीति का विकास

4.4.1 औद्योगिक नीति 1948 की विशेषतायें

4.4.2 औद्योगिक नीति 1956 की विशेषतायें

4.4.3 औद्योगिक नीति 1991 की विशेषतायें एवं प्रावधान

4.4.4 औद्योगिक नीति 1991 में किये गये संशोधन

4.4 औद्योगिक नीति 1991 का मूल्यांकन

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 अभ्यास के प्रश्न

4.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेगे कि:

- औद्योगिक नीति का आशय उद्देश्य आदि और उसके महत्व को बता सकें,
- भारत में औद्योगिक नीति का विकास किस प्रकार हुआ। 1948, 1956 एवं वर्तमान 1991 की नीति की विशेषताओं के बारे में जान सके।
- वर्तमान उदारीकरण की नीति का मूल्यांकन कर सकें।

4.2 प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक नीति के अनेक पक्ष होते है जो देश में औद्योगिक निवेश और उत्पादन को प्रभावित करते है। सर्वप्रथम औद्योगिक लाइसेसिंग नीति हैं जो औद्योगिक उपक्रमों की स्थापना और उनके विकास को विनियमित करती है। द्वितीय आर्थिक शक्तियों एवं एकाधिकार के संकेन्द्रण पर नियंत्रण की नीति। तृतीय प्रौद्योगिकी,

पूँजीगत पदार्थों, उपकरणों एवं कच्चे माल के आयात–निर्यात सम्बन्धित नीति। अन्त में वित्तीय एवं राजकोषीय नीतियां जिनका सम्बन्ध औद्योगिक वित्त के प्रावधान, पूँजी बाजार, निवेश तथा उत्पादन प्रोत्साहन से होता है।

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको उस नीतिगत ढ़ाँचे से अवगत कराना है जिसके अन्तर्गत भारतीय अर्थव्यवस्था का औद्योगिक ढ़ाँचा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पिछले पचास वर्षों में विकसित हुआ। इस इकाई में आप 1948 की प्रथम औद्योगिक नीति से लेकर अब तक की (1991 की) औद्योगिक नीतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।

4.3 औद्योगिक नीति का अर्थ एवं महत्व (Meaning and Importance of Industrial Policy)

औद्योगिक नीति से अर्थ सरकार के उस चिन्तन (Philosophy) से है जिसके अन्तर्गत् औद्योगिक विकास का स्वरूप निश्चित किया जाता है तथा जिसको प्राप्त करने के लिए नियम व सिद्धान्तों को लागू किया जाता है। औद्योगिक नीति एक व्यापक धारणा है, जिसमें दो तत्वों का मिश्रण होता है। प्रथम, औद्योगिक विकास एवं संरचना के सम्बन्ध में सरकार का दृष्टिकोण अथवा दर्शन (Philosophy) क्या रहेगा ? दूसरे, इस दृष्टिकोण की प्राप्ति के लिये, औद्योगिक इकाइयों को नियन्त्रित एवं नियमित करने की दृष्टि से किन सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं, नियमों और नियमनों को अपनाया जायेगा ?

औद्योगिक नीति मे उन सभी सिद्धान्तों, नियमों व रीतियों का विवरण होता है जिन्हें उद्योगों के विकास के लिये अपनाया जाना है। यह नीति विशेष रूप से भावी उद्योगों के विकास, प्रबन्ध व स्थापना से सम्बन्धित होती हैं। इस नीति को बनाते समय देश का आर्थिक ढ़ाँचा, सामाजिक व्यवस्था, उपलब्ध प्राकृतिक व तकनीकी साधन व सरकारी चिन्तन का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है।

औद्योगिक नीति का महत्व (Importance of Industrial Policy) – किसी भी राष्ट्र के उचित एवं तीव्र औद्योगिक विकास के लिये सुनिश्चित, सुनियोजित एवं प्रेरणादायक औद्योगिकी नीति की आवश्यकता होती है, क्योंकि पूर्व घोषित औद्योगिक नीति के आधार पर ही कोई राष्ट्र अपने उद्योगों का आवश्यक मार्गदर्शन और निर्देशन कर सकता है। प्रत्येक राष्ट्र के औद्योगिक विकास के लिए औद्योगिक नीति किस प्रकार से महत्वपूर्ण होती है :

(i) वह देश के औद्योगिक विकास को सुनियोजित कर देश व अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करती है।

(ii) राष्ट्र को मार्गदर्शन व निर्देशन देती है।

(iii) सरकार को निश्चित कार्यक्रम बनाने में मदद करती है।

(iv) जनसाधारण को अपनी निश्चित जीविका का साधन बनाने में सहायता करती है।

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए औद्योगिक नीति बहुत प्रकार से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि यहाँ नियोजित अर्थव्यवस्था के माध्यम से औद्योगिक विकास हो रहा है। देश में प्रकृतिक साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं लेकिन उनका उचित विदोहन नहीं हो रहा है। यहाँ प्रतिव्यक्ति आय कम होने के कारण पूँजी निर्माण की दर भी कम है तथा उपलब्ध पूँजी सीमित मात्रा में है। अतः आवश्यक है कि उसका उचित प्रयोग किया जाए। देश का सन्तुलित विकास करने कि लिए संसाधनों को उचित दिशा में प्रवाहित करने कि लिए, उत्पादन बढ़ाने के लिए, वितरण की व्यवस्था सुधारने के लिए, एकाधिकार, संयोजन और अधिकार युक्त हितों को समाप्त करने अथवा नियन्त्रित करने के लिए कुछ गिने हुए व्यक्तियों के हाथ में धन अथवा आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण को रोकने के लिए, असमताएँ घटाने के लिए, बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए, विदेशों पर निर्भरता समाप्त करने कि लिए तथा देश को सुरक्षा की दृष्टि से मजबूत बनाने के लिए एक उपयुक्त एवं स्पष्ट औद्योगिक नीति की आवश्यकता होती है। वे क्षेत्र जहाँ व्यक्तिगत उद्यमी पहुँचने में समर्थ नहीं हैं, सार्वजनिक क्षेत्र में रखे जाएँ और सरकार उनका उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले। साथ ही यह भी आवश्यक है कि निजी क्षेत्र का उचित नियन्त्रण भी होना चाहिए जिससे कि विकास योजनाएँ ठीक प्रकार से चलती रहे।

4.4 भारत में औद्योगिक नीति का विकास (Progress of Industrial policy in India)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले भारत में किसी औद्योगिक नीति की घोषणा कभी नहीं की गई, क्योंकि भारत में ब्रिटिस सरकार का शासन था तथा उनकी नीति ब्रिटेन के हितों से प्रेरित थी और वह भारत में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन नहीं देना चाहती थी। द्वितीय महायुद्ध के अनुभवों के बाद सरकार ने देश में औद्योगिक नीति की आवश्यकता महसूस की जिसके फलस्रूप सन् 1944 में नियोजन तथा पुनर्निर्माण (Planning and Reconstruction) विभाग की स्थापना की गयी। इस विभाग के अध्यक्ष सर आर्देशीर दयाल द्वारा 21 अप्रैल 1945 को एक औद्योगिक नीति विवरण पत्र जारी किया गया लेकिन व्यवहार में उसको क्रियान्वित न किया

जा सका। ब्रिटिस सरकार ने भारत के औद्योगिक विकास के प्रति उदासीनता की नीति अपनाई और उनका सदैव यह प्रयास रहा कि भारत कच्चे माल का निर्यातक (Exporter) और निर्मित माल का आयातक (Importer) बना रहे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में तीव्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगिक नीति की घोषणा करना आवश्यक समझा गया। इसके लिए भारत सरकार ने दिसम्बर 1947 में एक 'औद्योगिक सम्मेलन' का अयोजन किया। इस सम्मेलन में यह निष्कर्ष निकला कि भारत सरकार को जल्दी ही एक स्पष्ट औद्योगिक नीति की घोषणा करनी चाहिए। औद्योगिक सम्मेलन की सिफारिश पर भारत सरकार द्वारा 6 अप्रैल, 1948 को तत्कालीन उद्योग एवं पूर्ति मन्त्री डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था के आधार पर तैयार की गयी प्रथम औद्योगिक नीति की घोषणा की गई।

4.4.1. औद्योगिक नीति, 1948 (Industrial Policy, 1948) –

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 6 अप्रैल, सन् 1948 को प्रथम औद्योगिक नीति की घोषणा की गई इस नीति में आगामी कुछ वर्षों तक विद्यमान औद्योगिक ईकाइयों का राष्ट्रीयकरण (Nationalization) न करने और सरकारी स्वामित्व में नई औद्योगिक इकाईयां स्थापित करने का प्रावधान किया गया। इस प्रकार प्रथम औद्योगिक नीति में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के साथ–साथ कार्य करने पर जोर दिया गया।

औद्योगिक नीति 1948 की विशेषताएँ

(Features of Industrial Policy 1948)

प्रथम औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है–

1. **उद्योगों का वर्गीकरण (Classification of Industries) –** इस नीति के अन्तर्गत उद्योगों को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया गयाः–

   (i) **पूर्णतया सरकारी क्षेत्र –** इस क्षेत्र में सुरक्षात्मक एवं राष्ट्रीय हित के लिए प्रमुख तीन उद्योग शस्त्र निर्माण और युद्ध सामग्री, परमाणु शक्ति के उत्पादन और नियंत्रण तथा रेल यातायात के स्वामित्व और प्रबन्ध को रखा गया एवं इसके प्रबन्ध को पूर्णतया केन्द्रीय सरकार के एकाधिकार क्षेत्र में रखा गया।

   (ii) **अधिकांश सरकारी क्षेत्र –** इस वर्ग में कोयला, लोहा एवं इस्पात, वायुयान निर्माण, पोत निर्माण, टेलीफोन, तार और बेतार यन्त्र निर्माण तथा खनिज तेल उद्योगों को शामिल किया गया। इन उद्योगों को आधारभूत उद्योगों की संज्ञा दी गयी। इन उद्योगों से

सम्बन्धित जो औद्योगिक इकाइयाँ वर्तमान में निजी क्षेत्र में हैं उन्हें अगले दस वर्षों तक निजी क्षेत्र में रहने दिया जायेगा परन्तु इनसे सम्बन्धित नई औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने का अधिकार पूर्णतया सरकारी क्षेत्र को दिया जायेगा।

(iii) **सरकार द्वारा नियमित क्षेत्र –** तीसरे वर्ग में राष्ट्रीय महत्व के कुछ आधारभूत उद्योगों एवं कुछ उपभोक्ता उद्योगों (जैसे सूती वस्त्र, सीमेन्ट, चीनी, कागज, रबर आदि) को शामिल किया गया। इन उद्योगों की संख्या 18 थी जिनके बारे में नियमन एवं नियंत्रण को केन्द्रीय सरकार आवश्यक समझती थी।?

(iv) **पूर्णतया निजी क्षेत्र–** चतुर्थ वर्ग में शेष सभी उद्योगों को रखा गया। इन उद्योगों पर निजी क्षेत्र का पूर्ण अधिकार होगा परन्तु इन पर सरकार का सामान्य नियंत्रण रहेगा।

2. **कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास (Development of Cottage and Small Scale Industries)–** इस नीति के अन्तर्गत सरकार ने लघु एवं कुटीर उद्योगों को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया। इनके विकास का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों को सौंपा गया और इनकी सहायता के लिए विभिन्न स्तरों पर विशेष संस्थाओं के निर्माण पर जोर दिया गया। इस नीति में यही भी बताया गया कि सरकार कुटीर एवं लघु उद्योगों व वृहत उद्योगों के बीच समन्वय स्थापित करेंगा।

3. **विदेशी पूंजी (Foreign Capital)–** इस नीति में तीव्र औद्योगीकरण के लिये तथा उच्च तकनीकी ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से विदेशी पूँजी को आवश्यक समझा गया। इसलिए सरकार ने इस नीति के अन्तर्गत विदेशी पूँजी के प्रति उदारतापूर्वक रुख अपनाया, परन्तु सरकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि विदेशी उपक्रम में पदों का शीघ्रता से भारतीयकरण कर दिया जायेगा।

4. **प्रशुल्क एवं कर नीति (Tariff and Tax policy)–** इस नीति के अन्तर्गत सरकार की प्रशुल्क नीति अनावश्यक विदेशी स्पर्द्धा को रोकने की होगी जिससे कि उपभोक्ता पर अनुचित भार डाले बिना विदेशी साधनों का उपयोग किया जा सके। पूँजीगत विनियोग करने, बचत में वृद्धि करने एवं कुछ व्यक्तियों के हाथों में सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण रोकने के लिए कर–प्रणाली में आवश्यक सुधार किया जायेगा।

5. **श्रमिकों के हितो की सुरक्षा (Security of Interest of Labourers)–** इस नीति के अन्तर्गत औद्योगीकरण को गति देने तथा उत्पादकता में वृद्धि

करने के लिए श्रम व प्रबन्ध के मध्य मधुर सम्बन्धों के महत्वों पर बल दिया गया जिससे कि श्रम शक्ति का पूर्ण व कुशलतम उपयोग किया जा सके। इसके लिए इस नीति के अन्तर्गत श्रमिकों के लिए अभिप्रेरणा एवं कल्याणात्मक कार्यक्रमों को चलाने तथा प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग बातों पर भी जोर दिया गया।

4.4.2. औद्योगिक नीति, 1956 (Industrial Policy, 1956)

भारत की प्रथम औद्योगिक नीति 1948 के पश्चात् देश में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिनके कारण एक नयी औद्योगिक नीति की आवश्यकता महसूस होने लगी। नवीन औद्योगिक नीति की आवश्यकता के सम्बन्ध मे तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने संसद में कहा था कि – "प्रथम औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद इन आठ वर्षों में भारत में काफी औद्योगिक विकास तथा परिवर्तन हुए हैं। भारत का नया संविधान बना, जिसके अन्तर्गत मौलिक अधिकार (Fundamental Rights) और राज्य के प्रति निर्देशक सिद्धान्त घोषित किये गये हैं। प्रथम योजना पूर्ण हो चुकी है और सामाजिक तथा आर्थिक नीति का प्रमुख उद्देश्य समाजवादी समाज की स्थापना करना मान लिया गया है, अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन सभी बातों तथा आदर्शों के प्रति बिम्बित करते हुये एक नई औद्योगिक नीति की घोषणा की जाए। अतः भारत की नवीन औद्योगिक नीति की घोषणा 30 अप्रैल, 1956 को की गयी।

औद्योगिक नीति, 1956 के उद्देश्य (Objectives of the Industrial Policy 1956)– औद्योगिक नीति, 1956 प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैः

1. औद्योगीकरण की गति में तीव्र वृद्धि करना।
2. देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए बड़े उद्योगों का विकास एवं विस्तार करना,
3. सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करना,
4. कुटीर एवं लघु उद्योगों का विस्तार कराना,
5. एकाधिकार एवं आर्थिक सत्ता के संकेन्द्रण को रोकना,
6. रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध करना,
7. आय तथा धन के वितरण की असमानताओं को कम करना,
8. श्रमिकों के कार्य करने की दशाओं में सुधार करना,
9. औद्योगिक सन्तुलन स्थापित करना,

10. श्रम, प्रबन्ध एवं पूँजी के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करना।

औद्योगिक नीति, 1956 की मुख्य विषेषताएँ (Main Features of the Industrial Policy 1956)

इस नीति का प्रमुख विषेषताएँ निम्नलिखित हैः

1. **उद्योगो का वर्गीकरण (Classification of the Industries)–** इस नीति में उद्योंगों को तीन वर्गों में विभाजित किया गयाः
   - (i) वे उद्योग, जिनके निर्माण का पूर्ण उत्तदायित्व राज्य पर होगा,
   - (ii) वे उद्योग, जिनकी नवीन झाकाइयों की स्थापना साधारणतः सरकार करेगी,, लेकिन निजी क्षेत्र से यह आशा की जायेगी कि वह इस प्रकार के उद्योगों के विकास में सहयोग दे,
   - (iii) शेष सभी उद्योग जिनकी स्थापना और विकास सामान्यतः निजी क्षेत्र के अधीन होगा।

   इस नीति में उद्योगों का वर्गीकरण निम्न तीन अनुसूचियों में किया गया हैः

   - (अ) **अनुसूची 'क' –** इनमें 17 उद्योगों को सम्मिलित किया गया है, जिसके भावी विकास का सम्पूर्ण दायित्व सरकार पर होगा। इस अनुसूची में सम्मिलित किये गये उद्योग इस प्रकार हैं – अस्त्र–शस्त्र और सैन्य सामग्री,, अणु शक्ति, लौह एवं इस्पात, भारी ढलाई, भारी मशीनें, बिजली का सामान, कोयला, खनिज तेल, लौह धातु तथा ताँबा, मैगजीन, हीरे व सोने की खानें, सीसा एवं जस्ता आदि खनिज पदार्थ, विमान निर्माण, वायु परिवहन, रेल परिवहन, टेलीफोन, तार और रेडियो उपकरण, विद्युत शक्ति का जनन और उसका वितरण। उपरोक्त समस्त उद्योग पूर्णतया सरकार के अधिकार क्षेत्र में रहेंगे।
   - (ब) **अनुसूची 'ख' –** इस वर्ग में वे उद्योग रखे गये हैं जिनके विकास में सरकार उत्तरोत्तर आधिक भाग लेगी। अतः सरकार इनकी नई इकाइयों की स्थापना स्वयं करेगी लेकिन निजी क्षेत्र से भी आशा की गई कि वह भी इसमें सहयोग देगा। इस वर्ग में 12 उद्योग शामिल किये – अन्य खनिज, एल्मुनियम एवं अन्य अलौह धातुएँ, मशीन औजार, लौह मिश्रित धातु, औजारी इस्पात, रसायन उद्योग, औषधियां, उर्वरक, कृतिम रबर, कोयले से बनने

वाले कार्बनिक रसायन, रासायनिक घोल, सड़क परिवहन एवं समुद्री परिवहन। इस वर्ग को मिश्रित क्षेत्र की संज्ञा दी जा सकती है।

   - (स) **अनुसूची 'ग' –** इस वर्ग में शेष समस्त उद्योगों को रखा गया है तथा जिनके विकास व स्थापना का कार्य निजी और सहकारी क्षेत्र पर छोड़ दिया गया, परन्तु इनके सम्बन्ध में सरकारी नियन्त्रण एवं नियमन की व्यवस्था की गई इस वर्ग को निजी क्षेत्र (Private Sector) की संज्ञा दी जा सकती है।

2. **लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास (Development of Small and Cottage Industries)–** लघु व कुटीर उद्योग को इस औद्योगिक नीति मे भी महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया। लघु एवं कुटीर उद्योग से रोजगार के अवसर बढ़ने, आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण होने तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने की पूर्ण सम्भावना होती है इसलिए सरकार ने इस नीति मे बड़े पैमाने के उत्पादन की मात्रा सीमित करके और उनके प्रति विभेदात्मक (Discriminatory) कर प्रणाली अपनाकर तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रत्यक्ष सहायता देकर लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन दिया।

3. **निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग (Mutual Co-operation between Public and Private Sectors) –** इस नीति के अन्तर्गत सरकार ने यह स्पष्ट किया कि निजी और सार्वजनिक क्षेत्र पूर्णतः अलग–अलग नहीं हैं बल्कि वे एक–दूसरे के सहयोगी हैं।

4. **निजी क्षेत्र के प्रति न्यायपूर्ण एवं भेदभाव रहित व्यवहार (Non-Discriminatory Attitude towards Private Sector)–** इस नीति के अन्तर्गत सरकार ने स्पष्ट किया कि निजी क्षेत्र के विकास में सहायता देने की दृष्टि से सरकार पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों के अनुसार विद्युत परिवहन तथा अन्य सेवाओं और राजकीय उपायों से उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देगी, परन्तु निजी क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों को सामाजिक और आर्थिक नीतियों के अनुरूप कार्य करना होगा।

5. **सन्तुलित औद्योगिक विकास (Balanced Industrial Development)–** इस नीति में यह स्पष्ट किया गया कि सरकार उद्योग एवं कृषि का सन्तुलित एवं समन्वित विकास करके और प्रादेशिक विषमताओं को समाप्त करके सम्पूर्ण देश के निवासियों को उच्च जीवन स्तर उपलब्ध कराने का प्रयास करेगी।

6. **तकनीकी एवं प्रबन्धकीय सेवाएँ (Technical and Managerial Services)–** इस नीति में इस बात को स्वीकार किया गया कि औद्योगिक विकास का कार्यक्रम चलाने लिए तकनीकी एवं प्रबन्धकीय कर्मचारियों की माँग बढ़ जायेगी जिसके लिए सरकारी एवं निजी दोनों प्रकार के उद्योगों में प्रशिक्षण सुविधाएँ देने की व्यवस्था की जायेगी तथा व्यावसायिक प्रबन्ध प्रशिक्षण सुविधाओं का विश्वविद्यालयों व अन्य संस्थाओं में विस्तार किया जायेगा। अतः देश में प्रबन्धकीय और तकनीकी कैडर (Managerial and Technical Cadre) की स्थापना की जायेगी।

7. **औद्योगिक सम्बन्ध एवं श्रम कल्याण (Industrial Relation and Labour Welfare)–** इस नीति में औद्योगिक सम्बन्धों को अच्छे बनाए रखने एवं श्रमिकों को आवश्यक सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन देने पर जोर दिया गया। कार्य–दशाओं में सुधार तथा उत्पादकता पर जोर दिया गया। इसके अतिरिक्त इस नीति में उद्योगों के संचालन में संयुक्त परामर्श को प्रोत्साहित करने को भी कहा गया और औद्योगिक शान्ति को बनाए रखने पर भी जोर दिया गया।

बोध प्रश्न अ (Check Your Progress A)

1. औद्योगिक नीति 1948 की प्रमुख विशेषताओं को बताइये।

....

....

2. औद्योगिक नीति 1956 में उद्योगों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया।

....

....

4.4.3. औद्योगिक नीति, 1991 (Indsutrial Policy, 1991)–

औद्योगिक नीति, 1991 की घोषणा 24 जुलाई, 1991 में की गई।

उद्देश्य (Objectives) – इस नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्न लिखित हैः

1. सुदृढ़ नीति संरचना (Sound Policy Framework)
2. लघु उद्योगों का विकास (Development of Small Scale Industies)
3. आत्म–निर्भरता (Self-Reliance)

4. एकाधिकार की समाप्ति (Abolition of Monopoly)
5. श्रमिकों के हितो का संरक्षण (Protection of Interest of Labourers)
6. विदेशी विनियोग (Foreign Investment)
7. सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका (Role of Public Sector)

औद्योगिक नीति, 1991 के विशेष प्रावधान (Special Provisions of Industrial Policy, 1991)– इस नीति के प्रमुख विशेष प्रावधान इस प्रकार हैंः–

1. **उदार औद्योगिक नीति (Liberalised Industrial Policy)–** इस नीति के द्वारा 18 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों के लिए लाइसेंसिंग व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। इन 18 उद्योगों की दशा में लाइसेंसिंग व्यवस्था को अनिवार्य रखा गया है। इन उद्योगों में कोयला, पेट्रोलियम, चीनी, चमड़ा, मोटर कारें, बसें, कागज तथा अखबारी कागज, रक्षा उपकरण, औषधि इत्यादि शामिल हैं। जिन उद्योगों के लिए लाइसेंसिग व्यवस्था को अनिवार्य रखा गया है उनके कारणों में सुरक्षा एवं सामरिक नीति, सामाजिक कारण, वनों की सुरक्षा, पर्यावरण समस्याएँ, हानिकारक वस्तुओं का उत्पादन तथा धनी लोगों के उपयोग की वस्तुएँ मुख्य हैं।

2. **सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका (Role of Public Sector)–** सरकार ने लोक उपक्रमों के प्रति नवीन दृष्टिकोण अपनाने की घोषणा की है। इसके अन्तर्गत ऐसे लोक उपक्रमों को अधिक सहायता प्रदान की जायेगी, जो औद्योगिक अर्थव्यवस्था के संचालन के लिए आवश्यक है। इन उपक्रमों को अधिक से अधिक विकासोन्मुख और तकनीकी दृष्टि से गतिशील बनाया जायेगा। जो उपक्रम वर्तमान में ठीक नहीं चल पा रहे, लेकिन पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं, उन्हें पुनः संगठित किया जायेगा। भविष्य में लोक उपक्रमों के विकास की दृष्टि से प्राथमिकता वाले क्षेत्र निम्न प्रकार होंगे– (i) आवश्यक आधारभूत संरचना से सम्बन्धित वस्तुएँ और सेवाएँ, (ii) तेल खनिज संसाधनों का निष्कर्षण, (iii) ऐसे क्षेत्र में तकनीकी विकास एवं निर्माणी क्षमता का निर्माण जो दीर्घकाल में उत्पादों का निर्माण जहाँ सामरिक घटक महत्वपूर्ण हैं, जैसे–सुरक्षा उपकरण।

इस नीति के अन्तर्गत सार्वजनिक उद्योगों की संख्या घटाकर केवल 8 कर दी गई है जो कि इस प्रकार है–

(i) अस्त्र एवं गोला–बारूद तथा रक्षा साज–सामान, रक्षा वायुयान और युद्धपोत

से सम्बन्धित मदें, (ii) परमाणु शक्ति (iii) कोयला और लिग्नाइट, (iv) खनिज तेल, (v) लौह मैंगनीज तथा क्रोम, अयस्कों, जिप्सम, गंधक, स्वर्ण और हीरे का खनन, (vi) ताँबां, सीसा, जस्ता, टिन मोलिडिब्नम और विलफ्राम का खनन, (vii) परमाणु शक्ति के उपयोग के खनिज, तथा (viii) रेल परिवहन।

3. **एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम में संशोधन (Amendment in MRTP Act)–** इस नीति में यह घोषणा की गई ही कि बड़ी कम्पनियों और औद्योगिक घरानों पर एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार अधिनियम के अन्तर्गत पूँजी सीमा समाप्त कर दी जायेगी। इसके फलस्परूप बड़े औद्योगिक घरानों और कम्पनियों को नये उपक्रम लगाने, किसी उद्योग की उत्पादन क्षमता बढ़ाने, कम्पनियों का विलीनीकरण करने, उनका स्वामित्व लेने अथवा कुछ परिस्थितियों मे संचालकों की नियुक्ति करने, उनका स्वामित्व लेने अथवा कुछ परिस्थितियों में संचालकों की नियुक्ति करने के लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व स्वीकृति नहीं लेनी होगी। सरकार भविष्य में इस अधिनियम के माध्यम से एकाधिकारी, प्रतिबन्धात्मक तथा अनुचित औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करने पर अधिक महत्व देगी।

4. **स्थानीयकरण नीति (Locational Policy)–** इस नीति के अनुसार जिन उद्योगों के लिए लाइसेंस लेना अनिवार्य नहीं होगा, उन्हें छोड़कर दस लाख से कम जनसंख्या वाले नगरों में किसी भी उद्योग के लिए औद्योगिक अनुमति की जरूरत नहीं होगी। दस लाख से अधिक आबादी वाले नगरों के मामलों में इलक्ट्रानिक्स और किसी तरह के अन्य गैर–प्रदूषणकारी उद्योगों को छोड़कर सभी इकाइयाँ नगर की सीमा से 25 किलोमीटर के बाहर लगेंगी।

5. **विदेशी से पूँजीगत साज–सामान का आयात (Import of Capital Equipments from Foreign Countries)–** विदेशी पूँजी के विनियोग वाली इकाइयों पर पुर्जे, कच्चे माल और तकनीकी जानकारी के आयात के मामले में सामान्य नियम लागू होंगे लेकिन रिजर्व बैंक विदेशी में भेजे गये लाभांश पर नजर रखेगा, जिससे बाहर भेजी गयी विदेशी मुद्रा और उस उपक्रम की निर्यात की आय के मध्य सन्तुलन बना रहे। नयी नीति के अन्तर्गत अनुसूची III में शामिल प्राथमिकता वाले उद्योगों को छोड़कर अन्य मामलों में विदेशी अंश पूँजी की पूर्व स्वीकृति लेनी होगी।

6. **व्यापारिक कम्पनियों में विदेशी अंश पूँजी (Foreign Equity in Trading Companies)–** इस नीति के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय माल की पहुँच बनाने की दृष्टि से निर्यात करने वाली व्यापारिक कम्पनियों में भी 50 प्रतिशत तक विदेशी पूँजी के विनियोग की अनुमति दी जायेगी लेकिन इस प्रकार की कम्पनियों पर देश की सामान्य आयात–निर्यात नीति ही लागू होगी।

7. **विद्यमान इकाइयों का विस्तार (Expansion of Existing Units)–** इस नीति में विद्यमान औद्योगिक इकाइयों को नयी विस्तृत पट्टी (Broad Banding) की सुविधा दी गई है जिसके अन्तर्गत बिना अतिरिक्त विनियोग के वे किसी भी वस्तु का उत्पादन कर सकते हैं। विद्यमान इकाइयों का पर्याप्त विस्तार भी लाइसेंसिग से मुक्त रहेगा।

8. **लोक उपक्रमों की कार्य प्रणाली (Working of Public Enterprises)–** इस नीति के अनुसार लगातार वित्तीय संकट में रहने वाले लोक उपक्रमों की जाँच औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड (Board for Industrial and Financial Reconstruction) अथवा किसी प्रकार का कोई अन्य विशेष संस्थान करेगा। छंटनी किये गये कर्मचारियों के पुनर्वास के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना बनाई जायेगी। लोक उपक्रमों की कार्य प्रणाली सुधारने के लिए सरकार बोर्ड के साथ सहमति समझौतों (Memorandum of Understanding) पर हस्ताक्षर करेगी और दोनों पक्ष इस सहमति के प्रति उत्तरदायी होंगे। सरकार की तरफ से सहमति वार्ता में भाग लेने वाले लोगों का तकनीकी स्तर बढ़ाया जायेगा।

4.4.4. औद्योगिक नीति 1991 में किये गये परिवर्तन (Changes in Industrial Policy, 1991)

सरकार ने औद्योगिक नीति 1991 के घोषित होने के पश्चात भी औद्योगिक उपलब्धियों को मजबूत करने, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अधिक प्रतिस्पर्धी बनाने की प्रक्रिया को गति देने, घरेलू तथा विदेशी प्रतिस्पर्धा को बढ़ाने पर जोर देने आदि के लिए औद्योगिक नीति 1991 में समय–समय पर परिवर्तन एवं संशोधन किया जा रहा है। इस औद्योगिक नीति में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तनों या सुधारों का विवरण निम्नलिखित है–

1. **औद्योगिक अनुज्ञापन में ढील (Relaxation in Industrial licensing)–** औद्योगिक नीति, 1991 जब घोषित हुई थी, तो उस समय 18 प्रमुख उद्योगों को अनुज्ञापन लेना आवश्यक था जिसमें 14 अप्रैल 1993 से उद्योगों (मोटरकार,

खालें, चमड़ा व रेफ्रिजरेटर उद्योग) को अनुज्ञापन से मुक्त कर दिया गया। तत्पश्चात् 1997 में केन्द्र सरकार ने उदारीकरण की दिशा में कदम बढ़ाते हुए 5 अन्य उद्योगों को अनुज्ञापन से मुक्त कर दिया। इसके तीन वर्ष पश्चात पुनः 4 और उद्योगों को अनिवार्य अनुज्ञापन से मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार औद्योगिक नीति, 1991 में घोषित 18 प्रकार के उद्योगों के अनुज्ञापन को घटाकर वर्तमान में 5 प्रकार के उद्योगों को ही अनिवार्य लेने की आवश्यकता है।

वे उद्योग जिनको अब अनुज्ञापन लेना अनिवार्य है–

(i) एल्कोहलिक पेयों का अवसान व इनसे शराब बनाना,

(ii) तम्बाकू के सिगार व सिगरेट तथा विनिर्मित तम्बाकू के अन्य विकल्प,

(iii) इलेक्ट्रानिक एयरोस्पेस व सुरक्षा उपकरण,

(iv) औद्योगिक विस्फोटक–डिटोनेटिव, फ्यूज, सेफ्टीफ्यूज, गन पाउडर, नाइट्रोसूल्यूलोज तथा माचिस सहित औद्योगिक विस्फोटक सामग्री,

(v) खतरनाक रसायन

2. **सरकारी क्षेत्रों के लिए आरक्षित उद्योगों में कमी (Reduction in Industries reserved for government sector) –** औद्योगिक नीति, 1991 में सरकारी क्षेत्र के लिए 17 आरक्षित उद्योगों को रखने का प्रावधान किया गया था, परन्तु उदारीकरण के लागू होने के पश्चात इसमें कमी की गयी। वर्तमान समय में ऐसे सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या घटकर केवल 3 ही रह गयी है। ये उद्योग है– (i) परमाणु ऊर्जा (ii) रेलवे परिवहन (iii) परमाणु ऊर्जा खनिज (15 मार्च, 1995 को जारी अधिसूचना सं. 50 212(E) के परिशिष्ट में दर्शाये गये पदार्थ हाल ही के वर्षों में इन उद्योगों में भी कुछ कार्यों के सम्पादन के लिए निजी क्षेत्र को अनुमति प्रदान की गयी है।

3. **एम. आर. टी. पी. अधिनियम, के स्थान पर प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 (Competition Act-2002 in lieu of MRTP Act)–** भारतीय अर्थव्यवस्था में घरेलू तथा विदेशी कम्पनियों के मध्य स्वस्थ एवं सकारात्मक प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करने तथा उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए एम. आर. टी. पी. अधिनियम के स्थान पर प्रतिस्पर्धा अधिनियम बनाने का निर्णय विजयराघवन समिति की सिफरिषों के आधार पर सरकार ने

लिया। इस सन्दर्भ में संसद द्वारा वर्ष 2002 में प्रतिस्पर्धा विधेयक को पारित किया गया तथा 14 जनवरी 2003 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित होने के बाद इसी तिथि से यह अधिनियम अस्तित्व में आ गया। इस अधिनियम का गठन एक नियामक आयोग के रूप में किया गया।

4. **विदेशी निवेश नीति का उदारीकरण (Liberalisation of Foreingn Investment Policy)–** सरकार ने विदेशी निवेश के सम्बन्ध में निम्नलिखित नीतिगत उपाय किये हैं–

(i) औद्योगिक नीति 1991 में देश उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों के 34 उद्योगों में विदेशी पूँजी निवेश की सीमा 51 प्रतिशत तक किया गया था, परन्तु बाद में इन उद्योगों की संख्या बड़ाकर 48 कर दी गयी। खनन क्रियाओं से सम्बन्ध रखने वाले तीन उद्योगों में विदेशी निवेश की सीमा 50 प्रतिशत तथा अन्य उद्योगों में विदेशी निवेश की सीमा को 74 प्रतिशत तक करने की अनुमति सरकार ने प्रदान की है।

(ii) गैर–स्वीकृत कम्पनियों में विदेशी संस्थागत निवेशक एक कम्पनी की पूँजी में अब 10 प्रतिशत तक निवेश कर सकते हैं। नयी औद्योगिक नीति में निवेश की सीमा 5 प्रतिशत ही थी।

(iii) विदेशी पूँजी निवेश के लिए मशीनरी के नयी होने की शर्त को हटा दिया गया है।

(iv) भारतीय मूल के विदेशी नागरिकों को अब भारतीय रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना आवासीय सम्पत्ति अधिगृहीत करने की अनुमति दी दे गयी है।

(v) जिन कम्पनियों का कार्य कम से कम 3 वर्ष तक संतोषजनक रहा है, वे अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी बाजार में यूरो निर्गमन के जरिये विदेशी पूँजी जुटा सकती हैं।

(vi) 20 सितम्बर 2001 को सरकार द्वारा घोषणा की गयी कि विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा पोर्टफोलियो निवेश की सामान्य 24 प्रतिशत की सीमा के स्थान पर 49 प्रतिशत तक निवेश किया जा सकता हैं।

(vii) निजी क्षेत्र में कार्यरत बैंकों में विदेशी पूँजी निवेश की सीमा 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दिया गया है।

(viii) तेल शोधन के क्षेत्र में अभी तक केवल 26 प्रतिशत तक ही विदेशी पूँजी निवेश (FDI) की अनुमति थी, जिसे सरकारी तेल कम्पनियों की रिफाइनरियों को छोड़कर शेष पर 100 प्रतिशत विदेशी पूँजी निवेश की अनुमति प्रदान कर दी गयी।

(ix) पेट्रोलियम पदार्थों के विपणन के क्षेत्र में 74 प्रतिशत की विदेशी पूँजी निवेश की सीमा को बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया। बशर्तें 5 साल के अन्दर इस निवेश में से 26 प्रतिशत भारतीय सहयोगी या आम निवेशकों को बेचा जाय।

(x) तेल की खोज क्षेत्र में गैर–कम्पनी वाले संयुक्त उद्यमों में 60 प्रतिशत तथा कम्पनी बनाकर काम करने वाले संयुक्त उद्यमों में 100 प्रतिशत (पहले यह 51 प्रतिशत थी) तक विदेशी पूँजी निवेश कर दिया गया।

(xi) विदेशी निवेश सम्वर्द्धन बोर्ड (Foreign Investment Promotion Board) का 18 फरवरी 2003 को पुनर्गठन करके इसे वित्त मन्त्रालय के आर्थिक कार्य विभाग को हस्तान्तरित किया गया। बोर्ड के पुर्गठन के अन्तर्गत सरकार ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सम्बन्धी प्रक्रिया को उदार बनाया है, जिसमें निवासी द्वारा अनिवासी के अंशों (Shares) का हस्तातरण ECB का इक्वटी में परिवर्तन तथा अंशों के नये निर्गमन के द्वारा विदेशी पूँजी भागीदारी में बढ़ोत्तरी आदि को सरकारी औपचारिकता के स्थान पर स्वतः मन्जूरी का प्रस्ताव के साथ–साथ कुछ शर्तों के आधार पर विदेशी निवेश तकनीकी सहयोग के नये प्रस्तावों का अब स्वतः मंजूरी के अन्तर्गत प्रस्तुत करने की अनुमति होगी।

(xii) विद्युत व्यापार एवं उसकी प्रक्रिया, काफी एवं रबड़ के भण्डारण आदि के स्वचालित मार्ग में 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति,

(xiii) एकल ब्राण्ड के खुदरा व्यापार में सरकार की अनुमति लेकर 51 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति।

(xiv) कृषि एवं सम्बन्धित व नियन्त्रित शर्तों एवं सेवाओं के अन्तर्गत स्वचालित मार्ग के माध्यम से सेवाओं (जैसे – पुष्प कृषि, बागवानी, बीजों का विकास, पशुपालन, मत्स्य पालन, सब्जियों एवं खुम्बी की खेती) शत प्रतिशत तक प्रत्यक्ष निवेश अनुमति।

(xv) 13 मार्च 2008 को सरकार ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफ.डी.आई) के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण दिशा–निर्देश जारी किये हैं–

- क्रेडिट सूचना कम्पनियों के मामले में 49 प्रतिशत तक एफ. डी. आई.।
- उपज विपणि में 26 प्रतिशत तक एफ. डी. आई. तथा 23 प्रतिशत तक एफ. आई. आई. की छूट परन्तु कोई व्यक्तिगत निवेशक 5 प्रतिशत से अधिक का हिस्सेदार नहीं हो सकता।
- औद्योगिक पार्कों की सीमा निर्धारण करने वाले प्रावधानों की समाप्ति।
- गैर–अनुसूचित एयरलाइन्स, चार्टर्ड एयरलाइन्स तथा कार्गो, उड्डयन प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना एवं विकास से सम्बन्धित क्रियाओं में 100 प्रतिशत तक एफ.डी.आई.।
- सार्वजनिक क्षेत्र की रिफाइनरी में 49 प्रतिशत तक एफ. डी. आई. की अनुमति।

(xvi) केन्द्र सरकार ने 13 मार्च 2008 के 1553.26 करोड़ रुपये के 18 प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के प्रस्तावों को अपनी स्वीकृति प्रदान की।

5. **सरकारी खनिज उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोलना (Govt. owned mines & minerals Industry open for pvt. sector)–** औद्योगिक नीति 1991 में 13 खनिज उद्योगों को सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित रखने का प्रावधान किया गया था। परन्तु आधुनिकीकरण एवं उदारीकरण के दौर प्रारम्भ होने के पश्चात् 26 मार्च 1993 को इन उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए पूर्णतया खोल दिया गया।

6. **उत्पाद एवं आयात शुल्कों में कमी (Reduction in Excise and Import Duty)–** 1991 की औद्योगिक नीति में उत्पाद एवं आयात शुल्कों को सरल एवं तार्किक बनाने का प्रयास किया गया था, परन्तु इसके पश्चात भी पूँजीगत वस्तुओं पर उत्पादक शुल्कों को और युक्तिसंगत बनाया गया है। पूँजी सम्बन्धी लागतों को कम करने के लिए तथा निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए आयात एवं उत्पाद शुल्कों में और भी कटौती की गयी है।

7. **पूँजी लाभ पर कर में कमी (Reduction in Capital Gain Tax)–** पूँजी बाजार में विदेशी निवेश स्तरों में वृद्धि व प्रोत्साहित करने के लिए

विदेशी संस्थागत निवेशकों के लिए अल्पकालीन पूँजी लाभों पर 30 प्रतिशत की रियायती कर की दर आरम्भ की गयी है।

8. **दूरसंचार में उदार निवेश तथा नीति में परिवर्तन (Liberal Investment in Telecommunication and changes in policy)–** नयी औद्योगिक नीति में आधार भूत दूरसंचार सेवा के क्षेत्र में 24 प्रतिशत विदेशी निवेश की व्यवस्था की गयी थी। परन्तु उदारीकरण के पश्चात् इसके विकास एवं विस्तार की आवश्यकता को देखते हुए सरकार 2000–01 के बजट में 40 प्रतिशत की विदेशी निवेश की सीमा बढ़ा दी है। इसके पश्चात 2004–05 के बजट के आधारभूत दूर संचार सेवा के क्षेत्र में 74 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति प्रदान की गयी है। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल द्वारा 26 मार्च, 1999 को अनुमोदित नयी दूरसंचार नीति (New Telecommunication Policy-NTP-99) की घोषणा नीति का स्थान ले लिया है। नई नीति के अन्तर्गत सन 2002 तक 'माँग पर फोन (Telephone on Demand) उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था। देश में टेलीफोन उपलब्धता को 2005 तक 7 प्रति हजार जनसंख्या तथा 2010 तक 15 प्रति हजार जनसंख्या तक लाने का लक्ष्य रखा गया है।

सरकार ने 13 अगस्त 2000 से प्राइवेट आपरेटरों के लिए उनकी संख्या पर बिना किसी प्रतिबन्ध राष्ट्रीय लम्बी दूरी की सेवा 15 जनवरी 2002 से खोल दिया।

बुनियादी फोन सेवा प्रदान करने वाली कम्पनियों की संख्या का निर्धारण दूरसंचार नियमन प्राधिकरण (TRAI) द्वारा किया जायेगा। केन्द्र सरकार ने तेज गति की इंटरनेट सेवा सम्बन्धी नीति (Broad Band Policy) की घोषणा 14 अक्टूबर 2004 को कर दी, जिसका उद्देश्य तीव्र गति से इंटरनेट प्रदान करते हुए अधिक से अधिक लोगों को इंटरनेट से जोड़ना है। 2 नवम्बर 2000 से 'डायरेक्ट टू होम' (DTH) सेवा प्रदान की गयी है, जिसके माध्यम से दूर दराज गाँवो में भी सस्ते एवं छोटे से उपकरण के माध्यम से बिना मासिक शुल्क के 100 से अधिक चैनलों को देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त संचार विभाग ने टेलीफोन सेवा उपलब्ध कराने के लिए 5 मार्च 2008 को आवंटन पूरा होने के बाद कुल 126 नये लाइसेंस जारी किये हैं।

9. **उपक्रम पूँजी निधियों को छूट (Rebate on Enterprises Capital Fund)–** नयी औद्योगिक नीति में नये उपक्रम कम्पनी में अपनी संग्रहित राशि का 5 प्रतिशत तक निवेश कर सकते हैं, परन्तु बाद में इस सीमा

में वृद्धि करके 10 प्रतिशत कर दिया गया।

10. **बीमा व्यवसाय में निजी कम्पनियों को अनुमति (Insurance Business Allowed for Pvt. Companies)–** नयी औद्योगिक नीति के बीमा व्यवसाय के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया था कि यह व्यवसाय केवल सरकारी क्षेत्र के लिए ही आरक्षित रहेगा परन्तु अक्टूबर 2000 में इसमें परिवर्तन किया गया तथा बीमा नियामक विकास प्राधिकरण (IRDA) ने प्रारम्भ में निजी क्षेत्र की तीन कम्पनियों को बीमा व्यवसाय प्रारम्भ करने का अनुज्ञापन प्रदान कर दिया इन तीन कम्पनियों में जीवन बीमा के क्षेत्र में एच. डी. एफ. सी. स्टैण्डर्ड लाइफ इंश्योरेन्स कम्पनी लि. (HDFC Standard Life Insurance Company Ltd.) तथा साधारण बीमा के क्षेत्र में 'रिलायंस जनरल इंश्योरेन्स कम्पनी लि. (Reliance General Insurance Co Ltd.) व रायल सुन्दरम एलायस इंश्योरेन्स कम्पनी लि. Royal Sundaram Insurance company Ltd. को अनुज्ञापन प्रदान किये। जून 2008 तक निजी क्षेत्र की कुल 19 जीवन बीमा कम्पनियों तथा 13 सामान्य बीमा कम्पनियों को बीमा व्यवसाय करने हेतु लाइसेंस प्रदान किया गया है।

11. **रक्षा सम्बन्धी उत्पादन में निजी क्षेत्र के प्रवेश की अनुमति (Entry of private sector allowed for defence related production)–** नयी औद्योगिक नीति में रक्षा सम्बन्धी उत्पादन का कार्य केवल सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा करने का प्रावधान था। परन्तु केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल के 9 मई 2001 को लिए गये एक निर्णय के अनुसार केन्द्र सरकार ने सुरक्षा सम्बन्धी 26 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति होगी परन्तु सुरक्षा सम्बन्धी उत्पादन करने के लिए निजी क्षेत्र की कम्पनी को रक्षा मन्त्रालय से लाइसेंस लेना अनिवार्य होगा। रक्षा सम्बन्धी किन–किन उत्पादों के उत्पादन हेतु निजी क्षेत्र को अनुमति दी जानी है, इसका निर्णय रक्षा मन्त्रालय के अधीन है।

12. **लघु उद्योगों की नीति में परिवर्तन (Changes in Policy of Small Scale Industries)-** नयी औद्योगिक नीति में लघु उद्योगों के निवेश की सीमा को एक करोड़ रु. करने का प्रावधान किया गया था परन्तु फरवरी 1997 में इसमें परिवर्तन करके 3 करोड़ रु. की सीमा निर्धारित कर दी गयी तथा लघु उद्योगों की माँग पर पुनः फरवरी 1997 में इस सीमा को घटाकर एक करोड़ रु. कर दिया गया। लघु एवं मध्यम उपक्रम विकास विधेयक 2005 के अनुसार लघु उद्योगों में निवेश की सीमा बढ़ाकर 5

करोड़ रु. कर दिया गया है।

लघु उद्योग क्षेत्र के अन्तर्गत निर्मित की जाने वाली आरक्षित वस्तुओं की संख्या 836 थी, जिसमें समय समय पर कमी किया जाता रहा, जो वर्तमान में केवल 35 वस्तुएँ ही आरक्षित वर्ग में रह गयी हैं, जिनमें 5 वस्तुएँ खाद्य पदार्थ व उससे सम्बन्धित, एक वस्तु लकड़ी के उत्पाद, 5 वस्तुएँ प्लास्टिक उत्पाद, 3 वस्तुएँ आर्गेनिक रसायन, दवाएँ व दवाओं के सहायक, 7 अन्य रसायन व रासायनिक उत्पाद, एक सीसा व शीशा युक्त, 10 वस्तुएँ मैकेनिकल इन्जीनियरिंग तथा 2 वस्तुएँ बिजली की मशीनें, एप्लायंस तथा उपकरण से सम्बन्धित हैं।

13. **फिल्म एवं मनोरंजन को उद्योग का दर्जा (Film and entertainment given in industry status)–** फिल्म व मनोरंजन क्षेत्र के विकास को सहायता करने के लिए सरकार ने अक्टूबर 2000 में फिल्मों सहित मनोरंजन क्षेत्र को भारतीय औद्योगिक विकास बैंक अधिनियम, 1954 के अन्तर्गत उद्योग बीमा कराने तथा करों में विवेकीकरण करने में सुविधा हो जायेगी।

14. **अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन या संशोधन (Other main changes of amendments)**– नयी औद्योगिक नीति 1991 के घोषित होने के पश्चात् कुछ अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन, उपायों या संशोधनों का विवरण निम्नलिखित है–

- विदेशी निवेश संवर्द्धन को प्रोत्साहन देने के लिए विदेशी निवेश संवर्द्धन परिषद् गठन तथा विदेशी निवेश संवर्द्धन मण्डल का पुनर्गठन।
- सेवाकर को बढ़ाकर 12 प्रतिशत किया गया।
- कम्पनियों की रुग्णता (sickness) का पता लगाने के लिए दिसम्बर 1993 में रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष उपबन्ध) अधिनियम, 1985 मे संषोधन।
- गैर–वित्तीय कम्पनियों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की 100 प्रतिशत अनुमति।
- निर्यात ऋण पुनर्वित सीमाओं में वृद्धि।
- वाणिज्यिक क्षेत्र को पर्याप्त साख उपलब्ध कराने के लिए नकद आरक्षित अनुपात (CRR) तथा सांविधिक नकदी अनुपात (SLR) में समय–समय पर परिवर्तन।
- थोक दवाओं के लिए औद्योगिक लाइसेंस की समाप्ति।
- सभी वस्तुओं वर सेनवैट 16 प्रतिशत से घटाकर 14 प्रतिशत करना।

बोध प्रश्न ब (Check Your Progress B)

1. औद्योगिक लाइसेन्स प्रणाली के सम्बन्ध में नई औद्योगिक नीति 1991 में क्या प्रावधान है?

   ....

   ....

2. विदेशी विनियोग के सम्बन्ध में औद्योगिक नीति 1991 के क्या प्रावधान है?

   ....

   ....

4.5 औद्योगिक नीति, 1991 का मूल्यांकन (An Evaluation of Industrial Policy 1991)

तत्कालीन प्रधनमन्त्री श्री पी. वी. नरसिंहराव ने इस नीति को उदार नीति बताते हुए अगस्त, 1991 को राज्य सभा में कहा था कि–

"The new liberalised industrial policy has been framed to bring, efficiency, growth, technological up-gradation and to help the indian industry to compete in the world market."

सरकार ने औद्योगिक नीति, 1991 को एक खुली औद्योगिक नीति की संज्ञा दी है। इसमें अनेक आधारभूत परिवर्तन किये गये हैं। औद्योगिक लाइसेंसिंग, रजिस्ट्रेशन व्यवस्था तथा एकाधिकार अधिनियम का अधिकांश भाग समाप्त कर दिया गया है। विदेशी पूँजी के पर्याप्त स्वागत की नीति अपनाई गई है, लोक उपक्रमों की भूमिका को पुनः परिभाषित किया गया तथा औद्योगिक स्थानीयकरण की नीति को पुनः तय किया गया है।

उपरोक्त विशेषताओं के बावजूद कुछ आलोचकों का विचार है कि बड़ी कम्पनियों और औद्योगिक घरानों के विस्तार, विलीनीकरण एवं अधिग्रहण की जाँच व्यवस्था को समाप्त करके सरकार ने आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण को रोकने के संदर्भ में उचित नहीं किया है। कुछ आलोचकों का विचार है कि विदेशी पूँजी एवं तकनीक के स्वागतपूर्ण आगमन से घरेलू उद्योगों के विकास पर विपरीत प्रभाव भी पड़ सकता है।

संक्षेप में औद्योगिक नीति, 1991 के लिए यह कहा जा सकता है कि यदि विदेशी पूँजी एवं तकनीक के आगमन पर सावधानीपूर्ण निगरानी रखी जाए तो यह नीति भारतीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था (Indian Industrial Economy) को

आधुनिक, कुशल गुणवत्ता प्रधान और विश्व बाजार में प्रतियोगी बनाने में महत्वपूर्ण प्रयास सिद्ध हो सकती है।

4.6 सारांश (Summary)

इस इकाई में औद्योगिक नीति ढ़ाचे में समय–समय पर हुये परिवर्तनों की चर्चा की गई। स्वनतंत्रता प्राप्ति के बाद पहला ऐसा प्रयास 1948 में किया गया लेकिन एक सुविचारित एवं सुनिर्धारित नीति के रूप में 1956 में औद्योगिक संकल्प की घोषणा की गई। इस नीति का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के प्रभावशाली क्षेत्रों (Commanding heights of economy) को राज्य के हाथों में देना था। निजी क्षेत्र की भूमिका सहायक रूप में मानी गई। लेकिन नई औद्योगिक नीति (New Industrial Policy) 1991 के चलते इस सम्बन्ध में काफी परिवर्तन आया। इस नई नीति के अर्न्तगत निजी पूँजी एवं उद्यमियों को मुख्य भूमिका दी गई तथा सरकार की भूमिका इनके सहायक रूप में मानी गई। इस नीति के अनुसार अर्थव्यस्था के निजी करण के लिए लगातार प्रयास किये जा रहे है। लेकिन निजीकरण के साथ–साथ आवश्यक है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की पुनः संरचना की जाये। इस पुनः संरचना के फलस्वरूप ये उपक्रम उदारीकरण, निजीकरण आदि वैश्वीकरण (Liberalisations, Privatisation and Globalisation) की चुनौतियों का सामना अच्छी तरह से कर सकेगें।

4.7 शब्दावली (Key words)

एकाधिकारी व्यापारिक व्यवहार (Monopolistic Trade Practices) : वे व्यापारिक व्यवहार जिनके फलस्वरूप प्रतियोगिता में रूकावट या विरुपता आती है।

अवरोधक व्यापारिक व्यवहार (Restrictive Trade Practices) : वे व्यापारिक व्यवहार जिनके फलस्वरूप उपभोक्ताओं पर अनुचित लागतों या प्रतिबंधों का भार पड़ता है।

अनुचित व्यापारिक व्यवहार (Unfair Trade Practices) : वे व्यापारिक व्यवहार जिनके फलस्वरूप उपभोक्ताओं को क्षति या हानि होती है।

उदारीकरण (Liberalisation) : वह नीति जिसके अधीन उद्योगां पर लगाए गए विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों या प्रतिबन्धों को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

संरक्षण (Protection) : वह नीति जिसके अंतर्गत टैरिफ रोधों या गैर–टैरिफ रोधों को बढ़ाकर विदेशी प्रतियोगियों के खिलाफ देश के उत्पादकों को संरक्षण दिया जाता है।

वाणिज्य नीति (Commercial Policy) : अपने विदेशी व्यापार और भुगतान के संचालन या उसके विनियमन के लिए किसी देश द्वारा बनाए गए नियम।

4.8 अभ्यास के प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. भारत की औद्योगिक नीति के विकास के संबंध में बताइये।

   Discuss the progress of Industrial policy in India.

2. औद्योगिक नीति क्या है ? औद्योगिक नीति 1956 की मुख्य विशेषताओं का विवेचन कीजिए।

   What is an Industrial policy ? Discuss the main feature of Industrial policy 1956.

3. 'नई औद्योगिक नीति पहले की औद्योगिक नीतियों से बिल्कुल ही भिन्न कदम है।' इस कथन के संबंध में टिप्पणी कीजिए।

   New Industrial policy in entirely different from previous Industrial policies, Discuss.

4. स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत सरकार की औद्योगिक नीति–मुख्य प्रवृत्तियों की संक्षेप में विवेचना कीजिए।

   Briefly explain the main trends in the Industrial Policy of the Government of India since the independence.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

5. 1956 की औद्योगिक नीति की उपलब्धियों तथा असफलताओं पर प्रकाश डालिये।

   Point out the achievements and failures of the Industrial Policy 1956.

6. 1991 की औद्योगिक नीति में कुछ मुख्य परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।

   Discuss the major changes in Indusrial Policy 1991.

7. '1991 की औद्योगिक नीति' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

   Write short note on Industrial policy of 1991

8. औद्योगिक नीति, 1991 के उद्देश्यों एवं विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

   Discuss the objectives and charcteristics of Industrial policy 1991.

इकाई–5 : प्रतियोगिता नीति (Competition Ploicy)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 प्रतियोगिता नीति की आवश्यकता
5.4 प्रतियोगिता नीति एवं अधिनियम–आशय, प्रकृति एवं क्षेत्र
5.5 प्रतियोगिता नीति एवं अधिनियम कमेटी की सिफारिशे
5.6 प्रतियोगिता अधिनियम 2002 एवं संशोधित अधिनियम 2007 के प्रमुख प्रावधान
5.7 एम.आर.टी.पी. अधिनियम एवं प्रतियोगिता अधिनियम में अन्तर
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 अभ्यास के प्रश्न

6.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान सकेंगे कि :

- प्रतियोगिता नीति की आवश्यकता क्यों महसूस की गई
- प्रतियोगिता नीति से क्या आशय है।
- प्रतियोगिता नीति एवं प्रतियोगिता अधिनियम के प्रमुख प्रावधान क्या है।
- वर्तमान समय में प्रतियोगिता नीति का महत्व एवं अन्य देशों में इससे सम्बन्धित क्या प्रावधान है।
- एम.आर.टी.पी. अधिनियम एवं प्रतियोगिता अधिनियम में क्या अन्तर है?

5.2 प्रस्तावना (Introduction)

वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में व्यवसाय में बढ़ती हुई तीव्र प्रतियोगिता ने प्रतियोगिता नीति एवं अधिनियम के महत्व को और बढ़ा दिया है, क्योंकि उदरीकरण ने प्रतिस्पर्धी शक्तियों को बढ़ा दिया ऐसी स्थिति में बिना सुरक्षा के उपायो के अनुचित प्रतिस्पर्धा के बढ़ने के ज्यादा अवसर

उत्पन्न हो रहे है। एक शक्तिशाली प्रतियोगी छोटी इकाईयों को अनुचित तरीके से, विलय एवं अधिग्रहण से प्रतिस्पर्धा को प्रभावित कर रहे हैं।

1991 मे अपनाई गई नयी आर्थिक नीति को ध्यान रखते हुए यह महसूस किया गया कि वर्तमान उदारीकृत एवं विश्वव्यापी प्रतियोगिता वाली बाजारों में एम० आर० टी० पी० एक्ट अपनी प्रांसगिकता खो चुका है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने एस० वी० एस० राघवन की अध्यक्षता में पूरे मामले के गहन अध्ययन हेतु एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की। राघवन कमेटी ने मई 2000 में सरकार के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट में प्रतियोगिता नीति के लिये प्रतियोगिता अधिनियम अपनाने और एम० आर० टी० पी० अधिनियम को समाप्त करने का सुझाव दिया।

समिति की संस्तुति एवं देशी–विदेशी कम्पनियों में स्वास्थ्य प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करने तथा उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिये 'एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यवहार आयोग' (MRTP commission) के स्थान पर 'भारतीय प्रतियोगिता आयोग' (Competition Commission of India) का गठन केन्द्रीय सरकार ने किया। इसके लिये प्रतियोगिता अधिनियम 2002 पारित हुआ। उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में एम० आर० टी० पी० एक्ट 1969 अप्रांसगिक हो गया, वहीं प्रतिस्पर्धा व्यवसाय की आत्मा बन गयी है।

5.3 प्रतियोगिता नीति की आवश्यकता : (Need for Competition Policy)

भारतीय अर्थव्यवस्था की शक्ति को बढ़ाने के लिये, भारतीय व्यवसायियों को विश्व स्तर का प्रतियोगी बनाने, आन्तरिक बाजार में उपभोक्ता उन्मुखी एवं उपभोक्ता हितकारी वातावरण बनाने के लिये जिस 'संजीवनी' का सुझाव दिया जाता है वह है 'प्रतिस्पर्धा'। प्रतिस्पर्धा को वर्तमान व्यवसाय के लिये 'वियाग्रा' माना जाता है। एक सशक्त (Efficient) बाजार व्यवस्था के लिये 'प्रतिस्पर्धा' आधार है।

आर्थिक सुधारों के इस युग के पूर्व प्रतिस्पर्धा पर कई प्रकार की 'रूकावटें' थीं : (i) विनियोग की बाधायें (लाइसेन्सिग) (ii) आर्थिक शक्ति को प्राप्त करने की बाधा (एम० आर० टी० पी०) (iii) लोक उद्यमों के लिये आरक्षण के कारण अनेक क्षेत्रों में एकाधिकार लघु उद्योगों को उत्पाद सम्बन्धी आरक्षण विदेशी व्यापार में प्रतिबन्ध तथा उच्च प्रशुल्क विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर प्रतिबन्ध लोक–उद्यमो एवं

लघु उद्योगों को सरकारी खरीद में वरीयता। इन सभी प्रतिबन्धात्मक एवं संरक्षणात्मक उपायों को अब उदार बनाया जा रहा है।

वर्तमान संक्रमण के समय एक महत्वपूर्ण प्रश्न प्रतिस्पर्धा को बनाये रखने एवं उसकी ठीक व्यवस्था बनाये रखने करने का है जिससे उदारीकरण का अधिकतम लाभ मिल सके। प्रतिस्पर्धा नीति एवं कानून राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय प्रतियोगिता से मिलने वाले लाभों एवं राष्ट्रीय कल्याण के लिये आवश्यक है।

5.4 प्रतियोगिता नीति एवं अधिनियम–आशय प्रकृति एवं क्षेत्र : (Competation Policy & Law, Meening Nature & Scope)

वास्तव में प्रतियोगिता नीति से आशय सरकार की उस नीति से है जो उचित एवं स्वास्थ्य प्रतियोगिता को बनाये रखने के लिये ऐसे कारकों एवं शक्तियों को रोकती या हटाती है। जो प्रतियोगिता को नुकसान पहुचाती है। प्रतियोगिता नीति/अधिनियम का मुख्य उद्देश्य प्रतियोगिता को बनाये रखने के लिए अर्थव्यवस्था में संसाधनों का इस प्रकार आवंटन करना है जिससे उपभोक्ता को सबसे उपयुक्त गुणवत्ता, न्यूनतम मूल्य तथा पर्याप्त मात्रा में वस्तुएं एवं सेवायें मिल सके। कार्य कुशलता बढ़ाने के अलावा प्रतियोगिता अधिनियम के कुछ अन्य उद्देश्य भी होतें है जैसे आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण पर रोक लगाना, राष्ट्रीय उद्योगो में प्रतियोगिता को बढ़ावा देना, नवकरण (Innovations) को बढ़ावा देना, लघु एवं मध्यम आकार के उद्योगो को मदद करना एवं क्षेत्रीय एकीकरण को प्रोत्साहित करना।

प्रतियोगिता नीति प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार पर रोक लगाने के अतिरिक्त ऐसी बाजार संरचना पर भी रोक लगाता है जो प्रतियोगिता को बहुत सीमित करते है। कार्य कुशलता बढ़ाने एवं उपभोक्ता कल्याण को अधिकतम करने तथा संसाधन आवंटन को सर्वथा उपयुक्त बनाने के लिये अन्य आर्थिक नीतियों में भी परिवर्तन को आवश्यकता पड़ती है जैसे विदेशी व्यापार नीति विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीति, बौद्धिक सम्पदा अधिकार नीति, वित्त बाजार एवं निजीकरण की नीति आदि। इस प्रकार प्रतियोगिता नीति एवं अधिनियम के कई लाभ हो सकते है जैसे मजबूत बाजार शक्तियाँ कम लागत एवं मूल्य, एवं उपभोक्ता कल्याण आदि जिससे देश में एक मजबूत अर्थिक वातावरण एवं संस्कृति तथा सिद्धान्त का निर्माण भी होता है।

बोध प्रश्न : अ (Check Your Progress : A)

1. प्रतियोगिता नीति/कानून की आवश्यकता कारण बताइये।

....

....

2. प्रतियोगिता नीति का क्या आशय है।

....

....

5.5 प्रतियोगिता नीति एवं अधिनियम कमेटी की सिफारिशें

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगिता को बढ़ाना देने से सम्बन्धित घटनाक्रम को देखते हुये राघवन कमेटी ने मई 2000 में जो रिपोर्ट एवं संस्तुतियां की उसे सरकार ने स्वीकार कर लिया। कमेटी की रिपोर्ट की मुख्य बातें इस प्रकार थीः–

कमेटी का यह मानना था कि प्रतियोगिता नीति का लाभ तभी मिल सकता है जब कुछ पूर्व आवश्यक बातें पूरी हो सके। कुछ समिष्टि आर्थिक नीतियाँ जो प्रतियोगिता नीति को बढ़ावा या बाधा पहुँचाती हैं, वे हैं :

- औद्योगिक नीति;
- लघु उद्योगों के लिये आरक्षण नीति;
- निजीकरण एवं नियमन सम्बन्धी सुधार;
- व्यापार नीति जिसमें, तटकर, कोटा, सब्सिडी एवं एन्टी डम्पिंग कार्यवाही शामिल है।
- सरकार की एकाधिकारी नीति;
- श्रम नीति आदि

उपर्युक्त नीतियों के सम्बन्ध में कमेटी द्वारा कई प्रमुख सुझाव दिये गये वे संक्षेप में इस प्रकार हैं :

- उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम 1951 की आवश्यकता स्थान निर्धारण– शहरी क्षेत्रों के सन्दर्भ में, पर्यावरण संरक्षण एवं राष्ट्रीय ऐतिहासिक कलाकृतियों की सुरक्षा को छोड़कर नहीं रह गयी है।
- लघु उद्योगों के लिये आरक्षण नहीं होना चाहिए विशेष रूप से जिन्हें सरकार ने ओपेन जनरल लाइसेन्स (OGL) के तहत आयात की अनुमति दी है। इसी प्रकार हैण्डलूम एवं लघु उद्योग केन्द्र के लिए आरक्षण को धीरे–धीरे समाप्त किया जाय। इस क्षेत्र को सस्ता वित्त उपलब्ध करा

कर उन्हें प्रतियोगी बनाया जाय। लघु उद्योगो की विनियोग सीमा को बढ़ाया जाये।

- आर्थिक सुधारों को और तेज किया जाय ताकि प्रतियोगिता नीति को और बढ़ावा मिल सके।
- सभी व्यापार नीतियों को और अधिक खुला (Open) बिना भेदभावकारी एवं नियमबद्ध बनाया जाय। उन्हें प्रतियोगिता सिद्धान्तो के अनुकूल बनाया जाय। वस्तुओं के देश के अन्दर आवगमन पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाय।
- सुरक्षा एवं सेना से सम्बन्धित उद्योगों को छोड़कर बाकी सरकारी उद्योगों में अधिकतम विनिवेश किया जाय विशेष रूप से ऐसे सभी लोक उद्यम जहां पर सरकार का एकाधिकार है। सरकारी उद्यमों को यदि कुछ विभेदकारी लाभ मिल रहा है तो उसे समाप्त किया जाय एवं निजी उद्योगों मे एकाधिकार न उत्पन्न होने पाये इस बात का ध्यान रखा जाय।
- औद्यागिक विवाद अधिनियम 1947 में इस प्रकार संशोधन किया जाय कि बीमार एवं घाटे पर चल रही इकाइयाँ अपने उत्तरदायित्व से बंधे होने कारण वैधानिक तरीके से बाहर हो सके।
- बी० आई० एफ० आर० जैसी एजेन्सी को समाप्त करने की आवश्यकता है। एस० आई० सी० ए० (SICA) के प्रावधानों को हटा दिया जाय।
- डब्लू० टी० ओ० से सम्बन्धित विभेदकारी प्रावधानों एवं सिद्धान्तों को न्यायोचित बनाने की आवश्यकता है।
- अर्बन लैण्ड सीलिंग एक्ट को समाप्त कर दिया जाना चाहिए।
- प्रतियोगिता के साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार करने वाले लम्बवत एवं शीर्षवत (Horizontal and vertical) समझौतों को प्रतियोगिता अधिनियम के अन्तर्गत लाया जाय।
- डामिनेन्स (Dominance) को प्रतियोगिता अधिनियम में ठीक ढंग से परिभाषित करने की आवश्यकता है जिससे कि एक डामिनेन्ट फर्म उपभोक्ताओं के हितो को नुकसान न पहुचा सके।
- अंक अथवा संख्या के हिसाब से कोई सीमा निर्धारित की जाय।
- लगत से कम कीमत निर्धारित करके बाजार के अन्य प्रतियोगियो को प्रतिस्पर्धा से बाहर करने की किसी डामिनेन्ट फर्म की कार्यवाही को पूरी तरह प्रतिस्पर्धा के विरूद्ध माना जाय।
- किसी विलय होने वाली फर्म की सम्पत्ति सीमा 500 करोड़ रूपये एवं जिस समूह में विलय हो रही है उसकी सम्पत्ति सीमा 2000 करोड़ रूपये

थोक मूल्य सूचकांक के आधार पर निर्धारित की जाय।

- कमेटी ने राज्य एकाधिकारी, नियामक संस्थाओं, सरकारी खरीद, विदेशी कम्पनी एवं पेशेवर फर्मों को भी प्रतियोगिता अधिनियम के अन्तर्गत रखने का सुझाव दिया।
- प्रतियोगिता अधिनियम सभी प्रकार के उपभोक्ताओं को इस अधिनियम में शामिल करेगा जो वस्तुओं एवं सेवाओं को क्रय करते है, क्रय का उद्देश्य चाहे जो भी हो नियामक संस्थाओं के सभी निर्णय का परीक्षण प्रतियोगिता आयोग एवं प्रतियोगिता अधिनियम के अन्तर्गत किया जायेगा। यदि वस्तुओं एवं सेवाओं की गुणवत्ता एवं सुरक्षा मानक इस प्रकार निर्धारित किये गये जिससे कि बाजार में प्रतियोगियों के प्रवेश पर रोक लगता है तो ऐसे कार्य को प्रतियोगिता नीति के अर्न्तगत निषिद्ध माना जायेगा।
- एक नया कानून 'भारतीय प्रतिस्पर्धा अधिनियम' लागू किया जा सकता है।
- एम. आर. टी. पी. अधिनियम और एम. आर. टी. पी. आयोग को समाप्त किया जा सकता है।
- प्रतियोगिता कानून प्राधिकरण के अन्तर्गत भारतीय प्रतियोगिता आयोग को स्थापित किया जा सकता है जो भारत में प्रतियोगिता अधिनियम को लागू करेगा और प्रतियोगिता से सम्बन्धित मामलों को सुनेगा और इस प्रकार प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करने की भूमिका भी निभायेगा।

5.6 प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के प्रमुख प्रावधान

वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के दौर में यह महसूस किया गया कि एम. आर. टी. पी. एक्ट 1969 कुछ मामलों में पुराना साबित हो रहा है। अब एकाधिकार को रोकने के बजाय प्रतियोगिता को प्रोत्साहित करने की ओर ध्यान देना चाहिये इसलिये सरकार ने 14 जनवरी 2003 को सरकारी गजट में नये कानून के रूप में प्रतियोगिता अधिनियम 2002 को प्रकाशित किया जो एम. आर. टी. पी. अधिनियम 1969 का स्थान लेगा और भारतीय बाजार में स्वस्थ्य प्रतियोगिता को प्रोत्साहित एवं नियमित करेगा। यह अधिनियम राघवन कमेटी की सिफारिशों के आधार पर सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया है।

अधिनियम के उद्देश्य (Objectives of the Act)

प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के प्रमुख उद्देश्य हैं :

1. एक आयोग की स्थापना करना जो प्रतियोगिता को रोकने से सम्बन्धित कार्यवाही को रोकने का कार्य करेगा।
2. भारतीय बाजारों में प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देना।
3. उपभोक्ताओं के हितों की सुरक्षा करना।
4. भारतीय बाजार में व्यवसायिओं की स्वतंत्रता को बनाये रखना।.
5. भारतीय प्रतियोगिता आयोग के माध्यम से प्रतियोगिता के ऋणात्मक पहलुओं को रोकना।
6. एक प्रतियोगिता फण्ड की स्थापना करना।

प्रतियोगिता अधिनियम की विशेषतायें (Features of Competition Act, 2002)

यह अधिनियम मुख्यतया निम्नलिखित मुद्दों को कवर करता है :–

1. प्रतियोगिता के समझौतो का निषेध (Probibition of Anti Competitive Agreements)

अधिनियम की धारा 3 प्रतियोगिता को रोकने के किसी भी समझौते का निषेध करती है। धारा 3(1) के अनुसार यदि कोई फर्म, या फर्मों का एसोसिएसन, व्यक्ति या व्यक्तियों का एसोसिएसन वस्तु या सेवा के उत्पादन, वितरण, सप्लाई, स्टोरेज, प्राप्ति या नियंत्रण का कोई समझौता करता है जो भारत के अन्दर प्रतियोगिता को बुरी तरह प्रभावित करती है तो ऐसे समझौते धारा 3(2) के अनुसार व्यर्थ होगे।

2. प्रभावकारी स्थिति के दुरूपयोग पर रोक (Probibition of Abuse of Dominent Position)

प्रतियोगिता अधिनियम की धारा 4(1) के अनुसार कोई भी उपक्रम अपनी प्रभावकारी स्थिति का दुरूपयोग नहीं करेगा। प्रभावकारी स्थिति पर कोई रोक नहीं है। प्रभावकारी स्थिति वह है जब कोई उपक्रम इतना शक्तिशाली हो कि बाजार, उपभोक्ता या प्रतियोगिता को अपने पक्ष में कर सकता हो।

3. संयोजनों का नियमन (Regulation of Combination) :-

प्रतियोगिता अधिनियम 2002 की धारा 5 संयोजन के बारे में बताती है, जबकि धारा 6 संयोजन का नियमन करने से सम्बन्धित है। अधिनियम के प्रावध ान के अनुसार भारत में कोई भी उपक्रम यदि ऐसा संयोजन करता है जो

प्रतियोगिता को प्रभावित करता है या करेगा तो व्यर्थ होगा। संयोजन के अर्न्तगत उपक्रमों का सम्पत्ति का सविलयन, (merger and amalgamation) भी शामिल किया जाता है।

संयोजनों की अधिकतम सीमा जो निर्धारित की गई है और जिसके ऊपर के संयोजन व्यर्थ होगे इस प्रकार है :

(अ) भारत में कार्यरत ऐसे उपक्रम जिनकी सम्पत्ति 1000 करोड रूपये और कुल वार्षिक टर्नओवर 3000 करोड रूपये हो।

(ब) विश्व स्तर के उपक्रम जिसकी सम्पत्ति 500 मिलियन डालर और वार्षिक टर्न ओवर 1500 मिलियन डालर हो।

(स) भारत में कम्पनियों का ग्रुप जिनकी सम्पत्ति 4000 करोड रूपये और वार्षिक टर्नओवर 12,000 करोड रूपये हो।

(द) विश्व स्तर पर कम्पनियों का ग्रुप जिनकी सम्पत्ति 2 बिलियन डालर और वार्षिक टर्नओवर 6 बिलियन डालर हो।

4. भारत का प्रतियोगिता आयोग (Competitive Commission of India) :-

अधिनियम में भारत का प्रतियोगिता आयोग के गठन का भी प्रावधान है। जिसका विवरण इस प्रकार है।

(i) धारा 7(1) के अनुसार भारत सरकार एक नोटिफिकेशन के माध्यम से भारत के प्रतियोगिता आयोग का गठन करेगी।

(ii) धारा 7(2) के अनुसार यह आयोग एक संवैधानिक कारपोरेट बॉडी की तरह होगा जिसकी एक कामन सील होगी एवं इसका अनवरत् अस्तित्व होगा। यह आयोग अपने लिये चल–अचल सम्पत्ति खरीद सकता है, रख सकता है। यह अपने नाम से मुकदमा भी चला एवं इस पर चलाया भी जा सकता है।

(iii) धारा 7(3) के अनुसार केन्द्र सरकार आयोग के मुख्य कार्यालय का स्थान निर्धारित करेगी।

(iv) धारा 7(4) के अनुसार आयोग अपने कार्यालय विभिन्न स्थानों पर स्वयं स्थापित करेगा।

(v) धारा 8 के अनुसार आयोग का एक चेयरमैन होगा और अधिकतम 10 तथा न्यूनतम 2 सदस्य केन्द्र सरकार नियुक्त करेगी।

(vi) धारा 9 के अनुसार भारत सरकार आयोग के चेयरमैन एवं सदस्यों की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायधीश, वित्तमंत्री, कानून मंत्री एवं रिजर्व बैंक के गर्वनर की सलाह से करेगी।

(vii) धारा 10 के अनुसार आयोग के चेयरमैन एवं सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष होगा वे पुनः भी नियुक्त किये जा सकते हैं।

(viii) धारा 11(1) के अनुसार आयोग के चेयरमैन अथवा सदस्य भारत सरकार को लिखित सूचना देकर अपने पद से त्याग पत्र भी दे सकते हैं।

प्रतियोगिता (संशोधन) अधिनियम 2007 (Competition (Amendment), Bill, 2007)-

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा (CCI) के गठन पर रोक लगाने के कारण प्रतियोगिता अधिनियम, 2002 का कार्यान्वयन रूक गया। मार्च 2006 में सरकार ने प्रतियोगिता (संशोधन) विधेयक पेश किया जिसे संसद की एक समिति को सौंप दिया गया। इस समिति के सुझावों के आधार में प्रतियोगिता (संशोधन) विधेयक, 2007 संसद में पेश किया गया। यह विधेयक अगस्त–सितम्बर 2007 में पारित हुआ। इस विधेयक में यह कहा गया कि भारतीय प्रतियोगिता आयोग (CCI) अंततः एकाधिकारिक और प्रतिबन्धित व्यापार व्यवहार आयोग (MRTPC) का स्थान लेगा। विचाराधीन मामलों के निपटान के लिए CCI के गठन के दो वर्ष बाद तक भी MRTPC काम करता रहेगा जिसके बाद उसे समाप्त कर दिया जाएगा। प्रतियोगिता (संशोधन) विधेयक, 2007 की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :–

1. सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि सरकार का किसी विशेषज्ञ संगठन (expert body) की स्थापना करनी है। तो दो अलग–अलग संगठनों की स्थापना करना अधिक उचित होगा– एक संगठन का उद्देश्य परामर्श तथा नियमन संबंधी कामकाज देखना हो (CCI) तथा दूसरे का उद्देश्य झगड़ों के निपटान के लिए अधिनिर्णय लेना हो (प्रतियोगिता अपील न्यायाधिकरण या (Competition Appelliate Tribunal) इसलिए प्रतियोगिता (संशोधन) विधेयक 2007 में CCI एवं CAT दोनों के गठन की व्यवस्था है। CCI विशेषज्ञों का संगठन होगा जो बाजार का नियमन करने का काम करेगा ताकि देश में गैर–प्रतिस्पर्धी गतिविधियों पर रोक लगाई जा सके। नियंत्रक के रूप में इस संगठन के पास सलाहकारी तथा वकालती शक्तियां भी होगी। इसके सदस्यों की संख्या चार होगी। और इसके अध्यक्ष या तो सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश होंगे या उनके द्वारा मनोनीत कोई व्यक्ति। CCI एक अर्ध न्यायियक (quasi-judicial) संगठन होगा। इसका अध्यक्ष कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो या तो सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रह चुका है या जो किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश हैं। वह CCI द्वारा जारी निर्देशों के विरूद्ध अपील

सुनेगा।

2. नए कानून में विलयन और अधिग्रहण (mergers and acquistions) को और पारदर्शी बनाने का प्रयास किया गया है। कंपनियों के लिए यह आवश्यक होगा कि वे CCI को इस प्रकार के समझौतों की जानकारी 30 दिन के अन्दर उपलब्ध कराएं। यदि वे ऐसा नहीं करती तो उन्हें दण्डित किया जा सकता है।

3. यदि कंपनियों के बीच किसी समझौते से उत्पादक संघ (या Cartel) बनता है तो उन्हें भारी जुर्माना देना होगा जिसकी राशि उनके द्वारा कमाई गई लाभ की राशि से तीन गुना तक हो सकती है। इस धारा का उद्देश्य यह है कि निगम नकली रूप से (वह अवांछित रूप से) बाजार पर प्रभुत्व न जमा सकें।

4. नए कानून में CCI को यह शक्ति दी गई है कि यदि कोई व्यक्ति लगातार उसके निर्देशों का उल्लंघन करता जाता है तो उस पर 25 करोड रूपए का जुर्माना या तीन महीने की कैद (या दोनों) लगाई जा सकती है यदि मुख्य मैट्रोपोलियन मैजिस्ट्रेट (Chief Metropolitan Magistrate) इसे ठीक समझे।

5. जहाँ पहले संयोजन (Combination) बनाने वाले उद्यम के लिए वैकल्पिक था कि वह इसकी जानकारी CCI को दे या न दे वहाँ नए कानून में जानकारी उपलब्ध कराना अनिवार्य कर दिया गया है यदि विलय के बाद नए संगठन की सकल बिक्री 3,000 करोड़ रूपए से अधिक हो या उसकी परिसंपत्ति 1,000 करोड़ रूपए से अधिक हो (यदि कोई विदेशी कंपनी घरेलू कंपनी का अधिग्रहण करती है तो कुल बिक्री तथा परिसंपत्ति सीमा 1.5 बिलियन डालर तथा 500 मिलियन डालर होगी)। वस्तुतः इस तरह का संगठन, सूचना देने के 210 दिन बाद तक या कमीशन द्वारा अनुमोदन प्राप्त होने तक (दोनों में जो भी पहले हो) कंपनी नहीं माना जाएगी।

आलोचकों के अनुसार, 210 दिन की अवधि बहुत ज्यादा है जिसके परिणामस्वरूप विलयन एवं अधिग्रहण के मामले में अत्यधिक देरी होगी। इस देरी से अनिश्चितता का वातावरण बनेगा और विलयन एवं अधिग्रहण की बड़ी योजनाएं हतोत्साहित होंगी। यद्यपि CCI जैसे संगठन अन्य देशों में भी हैं तथापि उनके निर्णय की समय–सीमा केवल 25–35 दिन है। केवल जब विलय एवं अधिग्रहण के संभावित परिणामों पर गंभीर शंकाएं सामने आती हैं तभी समय–सीमा 90–180

दिन तक निश्चित की जाती है।

बोध प्रश्न : ब (Check Your Progress : B)

1. राघवन कमेटी की मुख्य सिफारिशें क्या है?

....

....

2. प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के प्रमुख उद्देश्यों को बताइये।

....

....

5.7 एम.आर.टी.पी. अधिनियम 1969 एवं प्रतियोगिता अधिनियम 2002 में अन्तर (Difference between MRTP Act 1969 and Competition Act 2002)

क्रम	आधार	एम.आर.टी.पी. अधिनियम 1969	प्रतियोगिता अधिनियम 2002
1.	उद्देश्य	इस अधिनियम का उद्देश्य आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण को नियंत्रित करना था	इस अधिनियम का उद्देश्य स्वतंत्र एवं निष्पक्ष प्रतियोगिता को सुनिश्चित करना है।
2.	आयोग का गठन	एम.आर.टी.पी. आयोग का गठन किया गया।	भारतीय प्रतियोगिता आयोग का गठन किया जायेगा।
3.	न्यायिक अधिकार	एम.आर.टी.पी. आयोग को कोई न्यायिक अधिकार नहीं है।	भारतीय प्रतियोगिता आयोग को न्यायिक अधिकार प्राप्त होगा।
4.	समझौतों का पंजीकरण	समझौतों का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य है।	समझौतों का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य नहीं है।
5.	विशेष कोष की स्थापना	इस अधिनियम में किसी फण्ड की स्थापना का प्रावधान नहीं है।	प्रतियोगिता अधिनियम में एक फण्ड की स्थापना की जायेगी।
6.	विलय एवं अधिग्रहण	इस अधिनियम में विलय एवं अधिग्रहण की अनुमति नहीं है।	इस अधिनियम में विलय एवं अधिग्रहण अनुमति है लेकिन इसका प्रभाव भारत में प्रतियोगिता पर अनुचित न हो।
7.	अनुचितव्यापार व्यवहार	अनुचित व्यापार व्यवहार इस अधिनियम में शामिल है।	इस अधिनियम में अनुचित व्यापार व्यवहार शामिल नहीं है।
8.	संयोजन का नियमन	इस अधिनियम में संयोजन के सम्बन्ध में कोई नियमन नहीं है।	इस अधिनियम में एक सीमा के ऊपर संयोजन का नियमन है।
9.	लोचशीलता	यह अधिनियम कठोर एवं बेलोचशील है।	यह अधिनियम लोचशील है।
10.	दण्ड	इस अधिनियम में किसी प्रकार का दण्ड नहीं है।	इस अधिनियम में दण्ड की व्यवस्था है।
11.	स्वायत्तता	इस अधिनियम में प्रशासनिक एवं वित्तीय स्वायत्तता नाममात्र की है।	इस अधिनियम में अपेक्षाकृत अधिक स्वायत्तता है।

बोध प्रश्न : स (Check Your Progress : C)

1. प्रतियोगिता अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों को संक्षेप में बताइये।

....

....

2. प्रतियोगिता आयोग क्या है?

....

....

3. एम.आर.टी.पी. अधिनियम एवं प्रतियोगिता अधिनियम में अन्तर बताइये।

....

....

5.8 सारांश (Summary)

भारत में आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के बाद से निजी क्षेत्र का सरकार पर लगातार दबाव था कि एम.आर.टी.पी. अधिनियम को समाप्त कर दिया जाय। उनका तर्क था कि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण (Liberlisation and Golbalisation) के नये वातावरण में एम.आर.टी.पी. जैसे प्रतिबन्धात्मक कानूनों का कोई औचित्य नहीं रह गया है तथा अब आवश्यकता इस बात की है इस नये वातावरण में भारतीय उद्यमों की क्षमता बढ़ायी जाय ताकि वे विदेशी उद्यमों के मुकाबले में प्रतियोगिता कर सके। केन्द्र सरकार ने इन्हीं बातों को ध्यान रखकर एक उच्च स्तरीय राघवन कमेटी का गठन किया जिसने मई 2000 में अपनी रिपोर्ट सरकार को दी। रिपोर्ट की रिफारिशों के आधार पर सरकार ने एम.आर. टी.पी. अधिनियम के स्थान पर एक नया प्रतियोगिता अधिनियम 2002 को दिसम्बर में संसद में पारित कराया।

प्रतियोगिता अधिनियम 2002 का मुख्य उद्देश्य हैः (1) प्रतियोगिता विरोधी समझौतों पर रोक (Probibition Anti Complitive Agreements), (2) प्रभावी शक्ति के दुरूपयोग पर रोक (Probibition of Asause of dominat position) तथा (3) संयोजनों का नियमन (Regulation of Combinations) अधिनियम की धारा 3

में प्रतियोगिता विरोधी समझौतों का विवरण दिया गया है धारा 4 में 'प्रभावी शक्ति' के दुरूपयोग के बारे में प्रावधान है। धारा 5 व 6 में संयोजन एवं ऐसे संयोजन के बारे में प्रावधान है जिससे प्रतियोगिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की आशंका है।

भारतीय प्रतियोगिता आयोग के गठन के बारे में अधिनियम की धारा 7 में प्रावधान है। धारा 8 इस आयोग के उद्देश्य के बारे में बताती है। इस आयोग का एक चेयरमैन तथा अधिकतम दस सदस्य होंगे जिनकी नियुक्ति पांच वर्ष के लिये होगी। केन्द्र सरकार सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, रिजर्व बैंक के गवर्नर, वित्तमंत्री एवं कानून मंत्री की सलाह से इनकी नियुक्ति करेगी।

प्रतियोगिता अधिनियम में एक प्रतियोगिता कोष बनाने का भी प्रावधान है। जिससे आयोग का खर्च चलता है।

प्रतियोगिता अधिनियम में वर्ष 2007 में कई संशोधन किये गये और इस प्रकार प्रतियोगिता (संशोधन) अधिनियम 2007 अब इसका नया नाम होगा।

प्रतियोगिता अधिनियम 2002 उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के नये वातावरण के अनुरूप है। 'इसकी मूल भावना यह है कि बड़ा होना अपने आप में कोई बुरी बात नहीं है, परन्तु प्रतियोगिता में बाधा डालना या उपभोक्ताओं के हितों का हनन करना बुरी बात है।' राघवन कमेटी के सदस्य एस चक्रवर्ती के अनुसार ''अब आकार कोई मुद्दा नहीं है वह मुद्दा तभी बन सकता है यदि वह उपभोक्ताओं के हितों का हनन करता हैं।'' एम.आर.टी.पी. अधिनियम में जहां 'प्रभावी शक्ति' पर रोक लगाने की व्यवस्था थी वहां 'प्रतियोगिता अधिनियम 2002 में 'प्रभावी शक्ति के दुरूपयोग' पर रोक लगाने की व्यवस्था है। इस प्रकार प्रतियोगिता अधिनियम 2002 में 'प्रभावी शक्ति' पर रोक नहीं है, प्रभावी शक्ति के दुरूपयोग पर रोक है।

वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के नये वातावरण का ही प्रभाव है कि विश्व में 1995 में केवल 35 देशों ने प्रतियोगिता नीति/अधिनियम लागू किये थे वहीं 2005 तक 106 देशों ने अपने देशों में नयी/संशोधित प्रतियोगिता नीति/ अधिनियम लागू किये हैं।

वास्तव में भारत की प्रतियोगिता नीति/अधिनियम संयुक्त राज्य अमरीका के हार्ट स्काट रोडिनो एक्ट (HSR Act) की तर्ज पर विशेष रूप से विलय एवं अधिग्रहण (M & A) पर लागू होता है।

5.9 शब्दावली (Key Words)

एम.आर.टी.पी. एक्ट 1969– एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम एकाधिकार जांच आयोग 1965 की सिफारिशों के आधार पर देश में औद्योगिक संकेन्द्रण की बढ़ती प्रवृत्तियों पर नियंत्रण पाने के दृष्टिकोण से लागू किया गया था।

प्रभावी उपक्रम– प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के अनुसार प्रभावी उपक्रम वे उपक्रम है जो अपनी स्थिति से सम्बन्धित बाजार, उपभोक्ता एवं अपने प्रतियोगियों को प्रभावित कर सकता है।

प्रतियोगिता विरूद्ध समझौते– प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के अनुसार कोई उपक्रम या उपक्रमों का समूह या कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह यदि किसी वस्तु एवं सेवा के उत्पादन, वितरण, सप्लाई, अधिग्रहण अथवा नियंत्रण के द्वारा प्रतियोगिता को प्रभावित करने के समझौते करता है तो इसे प्रतियोगिता विरूद्ध समझौते कहते है।

प्रतियोगिता फण्ड– प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के अर्न्तगत स्थापित किया जाने वाला स्पेशल फण्ड जिसका इस्तेमाल प्रतियोगिता आयोग अपने खर्चों को पूरा करने के लिये लेगा।

भारत का प्रतियोगिता आयोग– यह अधिनियम की धारा 7 एवं 8 के अर्न्तगत स्थापित किया जायेगा जो एम.आर.टी.पी. आयोग का स्थान लेगा इस आयोग का उद्देश्य भारत में प्रतियोगिता में बाधक गतिविधियों को समाप्त करना है।

5.10 अभ्यास के प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. भारत में प्रतियोगिता नीति की आवश्यकता एवं महत्व को समझाइये।

   Discuss the need and importance of competition policy in India.

2. प्रतियोगिता अधिनियम 2002 के प्रमुख प्रावधानों को बताइये।

   Discuss the main provisions of Competition Act, 2002.

3. भारत का प्रतियोगिता आयोग क्या है? इसके उद्देश्य एवं कार्यों को बताइये।

   What is Competition Commision of India? Discuss its objectives and functions.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

4. एम.आर.टी.पी. अधिनियम एवं प्रतियोगिता अधिनियम में अन्तर बताइये।

   Differentiate between MRTP Act and Competition Act.

5. प्रतियोगिता अधिनियम में 2007 में हुये मुख्य संशोधनों को बताइये।

   Discuss the main Amendments of 2007 in Competition Act.

6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये :

   Write Short Note On :

A. Dominant Enterprise	अ. प्रभावी उपक्रम
B. Anti Competitive Agreements	ब. प्रतियोगिता विरोधी समझौते
C. Prohibition of Abuse of Dominat Position	स. प्रभावी शक्ति के दुरूपयोग पर रोक
D. Regulation of Combination	द. संयोजनों का नियमन
E. Merger and Aquisition	य. विलय एवं अधिग्रहण
F. Competition Fund	र. प्रतियोगिता फण्ड

इकाई–6 : मौद्रिक नीति (Monetary policy)

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 मौद्रिक नीति का आशय एवं परिभाषा
6.4 मौद्रिक नीति के उद्देश्य
6.5 मौद्रिक नीति के उपकरण
6.6 मौद्रिक नीति की सीमायें
6.7 नयी मौद्रिक नीति 2008–2009
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 अभ्यास के प्रश्न

6.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप यह जान सकेंगे कि :

- मौद्रिक नीति क्या होती है?
- मौद्रिक नीति के उद्देश्य क्या है?
- मौद्रिक नीति के उपकरण क्या है?
- मौद्रिक नीति के सीमायें क्या है?
- भारत की वर्तमान मौद्रिक नीति क्या है?

6.2 प्रस्तावना (Introduction)

मौद्रिक नीति सरकार एवं केन्द्रीय बैंक द्वारा सोच समझकर उपयोग में लायी गई मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि या कमी लाने की शक्ति है। यह शक्ति सरकार की आर्थिक नीति के उद्देश्यों की विस्तृत रूपरेखा को ध्यान में रखकर निवेश, आय व रोजगार को प्रभावित करने और कीमतों में स्थिरता लाने के लिये प्रयोग की जाती है। हमारे देश में रिजर्व बैंक यह कार्य करता है। दूसरे शब्दों में मौद्रिक नीति का आशय एक ऐसी आर्थिक नीति से है, जिसके द्वारा मुद्रा के मूल्य में स्थायित्व हेतु मुद्रा व साख की पूर्ति का नियमन किया जाता है।

6.3 मौद्रिक नीति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Monetary Policy)

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए मुद्रा पर उपयुक्त नियन्त्रण रखना अति आवश्यक होता है। मुद्रा से सम्बन्धित समस्त नीतियों को हम 'मौद्रिक नीति' की संज्ञा देते हैं। किसी देश के सरकारी अथवा केन्द्रीय बैंक द्वारा अर्थव्यवस्था में विशेष आर्थिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुद्रा की मात्रा के प्रसार तथा संकुचन के प्रबन्ध को मौद्रिक नीति कहा जाता है।

मौद्रिक नीति को विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है–

केन्ट के अनुसार (Kent)– ''मौद्रिक नीति का आशय एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुद्रा चलन के विस्तार एवं संकुचन की व्यवस्था करने से है।''[1]

पाल इंजिंग (Poul Einzing) – के मतानुसार, ''मौद्रिक नीति के अन्तर्गत वे सभी मौद्रिक निर्णय तथा उपाय आते हैं, जिनका उद्देश्य मौद्रिक प्रणाली को प्रभावित करना होता है।''[2]

हैरी जी. जानसन (Harry G. Johnson)– के शब्दो में, ''मौद्रिक नीति का आशय उस नीति से है, जिसके द्वारा केन्द्रीय बैंक सामान्य आर्थिक नीति के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मुद्रा की पूर्ति को नियंन्त्रित करता है।''[3]

पी. डी हजेला (P.D. Hajela)– के कथनानुसार, ''मौद्रित नीति से अभिप्राय उन नियमों से है, जिनसे किसी देश की सरकार तथा केन्द्रीय बैंक उस देश को आर्थिक नीति के सामान्य उद्देश्यों को पूरा करते हैं।''[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर एक उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं ''मौद्रिक नीति एक ऐसी नीति है जिसके अर्न्तगत सरकार या केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था के अर्न्तगत मुद्रा को इस प्रकार नियंत्रित करते हैं कि आर्थिक नीतियों का उद्देश्य पूरा हो सके।

6.4 मौद्रिक नीति के उद्देश्य (Objective Of Monetary Policy)

जैसा कि परिभाषाओं से स्पष्ट है, मौद्रिक नीति को किन्हीं विशेष उद्देश्यों को प्राप्त करने कि लिए निर्धारित किया जाता है। प्रायः ये उद्देश्य उस देश की अपनी समस्याओं के अनुसार होंगे। साथ ही कुछ उद्देश्य सभी देशों के लिए

1 "Monetary Policy means a system of expansion and contraction of currency for a certain objective," **-Kent**

2 Monetary Policy includes all those monetary decisions and methods which aim to affect the monetary system." **–Poul Einzing. Monetory Policy P 50.**

3 Harry. G. Johnson, Monetary Theory and Policy, American Economic Review, 1962

4 Monetary Policy is the name given to the principle whereby the government and the central bank of a country fulfil the general objectives of the country's economic policy." **–P.D. Hajela**

समान रूप से लागू होते हैं। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि मौद्रिक नीति और राजकोषीय नीति का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। मौद्रिक नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं–

1. **कीमतों में स्थायित्व–** कीमतों के अत्याधिक उतार–चढ़ाव के कारण मुद्रा प्रसार तथा मुद्रा संकुचन की स्थिति पैदा हो जाती है। एक सीमा से अधिक उतार–चढ़ावों के कारण देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि मुद्रा प्रसार अधिक होता है, तो यह बढ़ते–बढ़ते अनियन्त्रित हो जाता है। इसे समाज में निश्चित आय वर्ग के लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं यह एक आर्थिक बुराई हैं। अतः मौद्रिक नीति को प्रभावपूर्ण बनाकर उसे कीमतों के उतार–चढ़ाव को रोकने की दिशा की ओर प्रेरित किया जा सकता है।

2. **रोजगार में वृद्धि–** मौद्रिक नीति को रोजगारपरक बनाकर देश में बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है। कीन्स ने इस पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। कीन्स के अनुसार मौद्रिक नीति का महत्वपूर्ण उद्देश्य रोजगार के स्तर को ऊँचा उठाना होना चाहिए। मौद्रिक नीति के द्वारा बचत और विनियोग में साम्य स्थापित करते हुए रोजगार के स्तर को अधिकतम किया जा सकता है।

3. **आर्थिक विकास–** आर्थिक विकास मे आने वाले गतिरोध को दूर करने के लिए भी मौद्रिक नीति की सहायता ली जाती है। इसमें कीमतों के उतार–चढ़ाव को रोककर, बचतों को बढ़ाकर तथा विनियोग में वृद्धि करके आर्थिक विकास को बढ़ाया जाता है। उपयुक्त मौद्रिक नीति में इन प्रयासों को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है, जिसके कारण आर्थिक विकास गतिमान होता है।

4. **विनिमय दर में स्थायित्व–** जब दुनिया में स्वर्णमान चलन में था तब स्वर्णमान में स्वचालकता का गुण होने के कारण विनिमय दर में स्थायित्व रहता था। स्वर्णमान के पतन के बाद विनिमय दर में स्थायित्व की समस्या पैदा हो गयी थी। विनिमय दरें पूर्णतया स्थिर नहीं रखी जा सकती हैं। परन्तु उनकी निरन्तर अस्थिरता भी अनेक प्रकार की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ पैदा कर देती है। वर्तमान समय के प्रतिबन्धित मुद्रामान के युग में विनिमय दरों में उचित स्थिरता बनाये रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा–कोष (IMF) की स्थापना की गयी। विनिमय दर से स्थायित्व की समस्या अल्पविकसित देशों के सामने सबसे अधिक होती है। इन देशों के निर्यात कम व आयात अधिक होते हैं। इन देशों में विदेशी पूँजी का आभाव रहता हैं अतः आर्थिक विकास की समस्या पैदा हो जाती है। इन देशों की अर्थव्यवस्था विदेशी व्यापार पर निर्भर करती है। अतः मौद्रिक नीति के माध्यम से विनिमय दर की बार–बार घट–बढ़ को रोका जा सकता

है।

5. **बचत और विनियोग में साम्य–** मौद्रिक नीति का यह उद्देश्य कि वह अपने देश में बचत व विनियोग के बीच में साम्य स्थापित कर सके। यदि बचतें बढ़ती हैं और विनियोग को नहीं बढ़ाया गया तो रोजगार व आय स्तर राष्ट्रीय आय में इसका बुरा प्रभाव होगा। बचतों को बढ़ाया जाय और उन्हें विनियोग की ओर प्रोत्साहित करना आवश्यक है।
6. **विकास के लिए साधनों को जुटाना–** जो देश आर्थिक दृष्टि से काफी पिछड़े हुए होते हैं, वहाँ आर्थिक विकास के लिए साधनों की कमी होती है। मौद्रिक नीति के द्वारा आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त संसाध ानों को जुटाया जा सकता है। उचित मौद्रिक नीति अपनाकर आवश्यकतानुसार मुद्रा और साख की पूर्ति को बढ़ाया जा सकता है।
7. **मुद्रा की मांग व पूर्ति में सामंजस्य स्थापित करना –** मुद्रा की मांग और पूर्ति में सामंजस्य स्थापित करना मौद्रिक नीति का मुख्य उद्देश्य होता है। जब कभी मुद्रा की मांग उसकी पूर्ति से अधिक हो जाती है, तो आार्थिक अस्थिरता पैदा हो जाती है। इसके विपरीत यदि मुद्रा की पूर्ति उसकी मांग से अधिक होती है, तो इसके भी परिणाम अच्छे नहीं होते हैं। दोनों ही दशाओं में साम्य लाने की दृष्टि से मौद्रिक नीति सफलतापूर्वक कार्य करती है।

बोध प्रश्न क (Check Your Progress A)

1. मौद्रिक नीति के उद्देश्य बताइये।

....

....

2. मौद्रिक नीति के उपकरणों के नाम बताइये।

....

....

6.5 मौद्रिक नीति के उपकरण (Instruments of Monetary Policy)

भारत में मौद्रिक नीति को आर्थिक नीति का सहायक माना जाता है। यही कारण है कि भारत में मौद्रिक नीति के उद्देश्य आर्थिक नीति से भिन्न नहीं होते हैं, बल्कि एक अभिन्न अंग के रूप में होते हैं। भारत में मौद्रिक नीति का संचालन भारतीय रिजर्व बैंक (केन्द्रीय बैंक या बैंको का बैंक) द्वारा किया जाता है। इस प्रकार भारतीय रिजर्व बैंक ही देश का मौद्रिक अधिकारी होता है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नियन्त्रित मुद्रा विस्तार की नीति (Controlled Monetary

Expansion Policy) अपनायी जाती है। इसके अर्न्तगत दो बातें निहित होती हैं।

- जब अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव पुनः प्रकट होता है, तो किसी भी समय तरलता अथवा मुद्रा की पूर्ति अत्यधिक बढ़ने से रोकना, तथा
- उत्पादन को बढ़ाने तथा प्रोत्साहन देने के लिए नियमित साख का प्रवाह करना, जिससे आर्थिक वृद्धि की गति को तीव्र करने के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों जैसे–कृषि, उद्योग एवं सेवा की आवष्यकता क पूर्ति सुनिश्चित हो सके।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वर्ष में दो बार अप्रैल एवं अक्टूबर में मौद्रिक एवं ऋण नीति घोषित की जाती है। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक मध्यावधि त्रैमासिक समीक्षा भी करती रहती है।

साख नियन्त्रण की विधियाँ (Methods of cerdit control)

मैद्रिक नीति केन्द्रीय बैंक द्वारा अपनाये गये साख नियन्त्रण सम्बन्धी उपायों से सम्बन्ध रखती है। साख नियन्त्रण दो प्रकार के होते हैं–

(i) मात्रात्मक या परिमाणात्मक (Quantitative) या अप्रत्यक्ष साख नियन्त्रण

(ii) गुणात्मक (Qualitative) या प्रत्यक्ष साख नियन्त्रण

भारतीय रिजर्व बैंक, मौद्रिक नीति के अन्तर्गत साख नियन्त्रण निम्नलिखित विधियों के माध्यम से करता है–

(i) मात्रात्मक या परिमाणात्मक विधि (Quantitative Method)

बैंक दर (Bank rate)

नकद आरक्षित अनुपात (Cash reserve ratio-CRR)

खुले बाजार की क्रियाएँ (Open market operations)˜

तरल कोषानुपात में परिवर्तन (Changes in liquid fund ratio)

रेपो दर (Repo rate)

रिवर्स रेपो दर (Reserve repo rate)

वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory liquidity ratio-SLR)

नकद तरलता अनुपात (Cash liquidity ratio-CLR)

(ii) गुणात्मक विधि (Qualitative method)

चयनित साख नियन्त्रण (Selective cerdit control)

विभिन्न ब्याज दरें तथा कटौती दरें (Various interest rate and deduction rate)

अन्तर्निधारण (Intra-determination)

साख का समभाजन (Rationing of credit)

प्रचार (Publicity)

प्रसार (Propoganda)

प्रत्यक्ष कार्यवाही (Direct action)

I. मात्रात्मक या परिमाणात्मक साख नियन्त्रण (Quantitative credit control)

अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में समान रूप से साख के नियन्त्रण अथवा फैलाव के लिए उठाया गया कदम परिमाणात्मक नियन्त्रण कहलाता है। उदाहरण के लिए, यदि बैंक दर में कमी या वृद्धि की जाय तो इसका प्रभाव अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण क्षेत्रों पर पड़ेगा।

परिमाणात्मक साख नियन्त्रण की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **बैंक दर (Bank rate)–** बैंक दर वह दर है, जिस पर केन्द्रीय बैंक अपने सदस्य बैंकों को ऋण प्रदान करता है अथवा उनके प्रथम श्रेणी (विनिमय विपत्रों) के बिलों की पुनर्कटौती करता है। कुछ देशों में इसे 'कटौती दर' भी कहा जाता है। बैंक दर में परिवर्तन के द्वारा अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। यदि बैंक दर बढ़ाया जाता है तो व्यावसायिक बैंकों को केन्द्रीय बैंक से प्राप्त होने वाली ऋण मंहगा पड़ता है, परिणामस्वरूप व्यापारिक बैंक भी अपने ग्राहकों को मँहगा ऋण देंगे, जिससे व्यापारी या ग्राहक बैंक से ऋण कम लेंगे। अतः अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा अपने आप कम हो जायेगी। इसके विपरीत बैंक दर कम करने से साख की मात्रा में वृद्धि होगी।

बैंक दर में परिवर्तन का प्रभाव (Effect of changes in bank rate)

(i) बैंक दर में परिवर्तन द्वारा साख की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है। यदि बैंक दर बढ़ा दिया जाता है तो अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा कम हो जाती है तथा इसके विपरीत यदि बैंक दर घटा दिया जाता है तो अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।

(ii) साख की मात्रा में परिवर्तन होने से वस्तुओं एवं सेवाओं का मूल्य भी प्रभावित होता है। बैंक दर में वृद्धि करने से साख की मात्रा में कमी हो जाती है, परिणामस्वरूप वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य बढ़ जाते हैं। इसके विपरीत बैंक दर कम करने से साख की मात्रा में वृद्धि हो जाती है, जिससे वस्तुओं एवं सेवाओं के मूल्य कम हो जाते हैं।

(iii) बैंक दर में परिवर्तन द्वारा विदेशी पूँजी के विनियोग की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है। बैंक दर में वृद्धि होने से पूँजी पर लाभ या ब्याज की मात्रा

बढ़ने से विदेशी पूँजी का आगमन बढ़ जाता है। इसके विपरीत ब्याज दर कम करने से विदेशी पूँजी हतोत्साहित होती है।

(iv) विदेशी पूँजी के आवागमन के फलस्वरूप तथा बैंक दर द्वारा साख की मात्रा में परिवर्तन होने से उत्पादन एवं आयात निर्यात में परिवर्तन के कारण देश की मुद्रा विनिमय दर भी परिवर्तित हो जाती है।

(v) बैंक दर में परिवर्तन होने से देश की चलन में मुद्रा भी प्रभावित होती है। यदि बैंक दर बढ़ा दिया जाता है, तो साख की मात्रा कम हो जाती है तथा चलन में मुद्रा की मात्रा कम हो जाती है। इसके विपरीत बैंक दर घटाने से साख की मात्रा में वृद्धि होती है तथा मुद्रा की चलन की मात्रा में भी वृद्धि होती है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा समय–समय पर बैंक दर में परिवर्तन का विवरण निम्न सारणी द्वारा स्पष्ट है–

भारत में बैंक दर

वर्ष	बैंक दर (% में)	वर्ष	बैंक दर (% में)
1935	3	1974	9.0
1951	3.5	1981	10.0
1957	4.0	1991	11.0
1963	4.5	1994	12.0
1964	5.0	1998	9.0
1965	6.0	2001	6.5
1968	5.0	2002	6.25
1971	6.0	2003	6.0
1973	7.0	से अब तक	

2. **नगद आरक्षित अनुपात (Cash reserve ratio-CRR) –** सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंको को अपनी समग्र जमाओं का एक निश्चित प्रतिशत भारतीय रिजर्व बैंक के पास अनिवार्यतः रखना पड़ता है, जिसे 'नकद आरक्षित अनुपात' कहा जाता है। यह विधि साख नियन्त्रण की अति महत्वपूर्ण एवं नवीनतम विधि है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम 1935 में अमेरिका द्वारा किया गया था। यह विधि वहाँ अधिक उपयुक्त होती है, जहाँ पर मुद्रा बाजार अविकसित होते हैं। केन्द्रीय बैंक को नकद आरक्षित अनुपात में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने का अधिकार होता है।

देश में जब साख की मात्रा को कम करना होता है, तो भारतीय रिजर्व

बैंक नकद आरक्षित अनुपात को बढ़ा देता है, इस अनुपात के बढ़ने से बैंको को अधिक नकद कोष रिजर्व बैंक के पास रखने पड़ते हैं तथा स्वयं उनके पास नकद की मात्रा कम हो जाती है। इस प्रकार इन बैंको के साख निर्माण की मात्रा कम हो जाती है, जिससे ये ग्राहकों को मँहगा एवं कम साख प्रदान करते हैं। इसके विपरीत नकद आरक्षित अनुपात में कमी होने से बैंकों को नकद कोष कम रखना पड़ता है जिससे साख निर्माण की मात्रा में वृद्धि होती है।

भारत में वैधानिक नकद कोष अनुपात (C.R.R) 3 से 15 प्रतिशत के बीच हो सकता है। जनवरी 2007 मे भारतीय बैंक अधिनियम 1934 में संशोधन करके उसे अधिकार दे दिया गया कि वह CCR की न्यूनतम सीमा 3 प्रतिशत तथा अधिकतम 15 प्रतिशत की सीमा को चाहे तो समाप्त कर सकता है।

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना से अब तक विभिन्न समयों में नकद कोष अनुपात निम्न प्रकार रहा–

भारत में नकद कोष अनुपात

वर्ष	नकद कोष अनुपात (% में)	वर्ष	नकद कोष अनुपात (% में)
1935	5	1994	14
1973	7	1996	13
1974	5	1999	10
1981	7	2001	5.5
1983	8.5	2002	4.75
1987	9.5	2003	4.50
1989	15	2006	7.5

3. **खुले बाजार की क्रियाएँ (Open market operations)–** जब केन्द्रीय बैंक यह समझता है कि व्यावसायिक बैंकों के पास नकद कोष अधिक है तथा उनका प्रयोग साख निर्माण के लिए किया जा रहा है (जिस कारण मँहगाई बढ़ रही होती है) तो साख निर्माण की मात्रा को कम करने के लिए केन्द्रीय बैंक सरकारी प्रतिभूतियों का विक्रय करना प्रारम्भ कर देता है, जिसे व्यावसायिक बैंकों द्वारा क्रय कर लिया जाता है। इस प्रकार इन व्यावसायिक बैंकों का नगद कोष कम होकर केन्द्रीय बैंक के पास पहुँच जाता है। व्यावसायिक बैंकों का नकद इसके विपरीत जब बैंक यह समझता है कि देश में साख की मात्रा कम (साख संकुचन) है तो वह इन बेची गयी प्रतिभूतियों को क्रय करना शुरू कर देता है। इन प्रतिभूतियों के क्रय के कारण अधिक प्रतिभूतियाँ केन्द्रीय बैंक के

पास आ जाती हैं तथा कोष व्यावसायिक बैंकों के पास पहुँच जाता है। इस प्रकार बैंकों के पास अतिरिक्त कोष आ जाने से इनकी साख सृजन क्षमता में वृद्धि हो जाती है, जिससे ये बैंक ग्राहकों को अधिक साख उपलब्ध कराने में समर्थ होते हैं एवं इस प्रकार का विस्तार सम्भव होता है।

4. **वैधानिक तरलता अनुपात (Stautory liquidity ratio-SLR)–** केन्द्रीय बैंक के निर्देषानुसार प्रत्येक व्यापारिक बैंक को अपने कुल दायित्यों का एक निश्चित प्रतिशत भाग तरल (नकद एवं प्रतिभूतियाँ) के रूप में अपने पास रखना होता है। इसका प्रभाव यह होता है कि उस सीमा तक व्यापारिक बैंकों की साख सृजन शक्ति कम हो जाती है, साख की मात्रा कम करने के लिए केन्द्रीय बैंक इस अनुपात को बढ़ा देता है तथा साख की मात्रा में वृद्धि करने के लिए इस अनुपात को कम कर देता है। केन्द्रीय बैंक द्वारा निर्धारित वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) की दर विभिन्न समयों में निम्न प्रकार रही है–

वैधानिक तरलता अनुपात (SLR)

वर्ष	दर (% में)	वर्ष	दर (% में)
1935	25	1985	37
1972	30	1990	38
1973	32	1993	37.25
1979	34	1994	34.75
1981	35	1997	25.00
1984	36	2008	25.00

5. **पुनर्खरीद विकल्प दर या रेपो रेट (Re-purchasing option rate or Repo rate) –** यह अल्पकालीन तरलता उपलब्ध कराने की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत केवल एक वर्ष तक के लिए ऋण प्राप्त किया जा सकता है। जब वाणिज्यिक बैंक अपनी प्रतिभूतियाँ भारतीय रिजर्व बैंक को इस शर्त पर विक्रय करते हैं, कि रिजर्व बैंक इन प्रतिभूतियों को अल्पकाल में पुनः खरीद लेगा, तो रिजर्व बैंक को इस देय ब्याज की दर 'रेपो रेट' कहलाती है। दूसरे शब्दों में, रेपो दर वह मौद्रिक दर है, जिस पर भारतीय रिजर्व बैंक बैंकिंग क्षेत्र में फण्ड या तरलता (प्रतिभूतियाँ) निकालने के लिए किसी समझौते के अन्तर्गत प्रतिभूतियों को बेचता है कि भविष्य में पुनः उसे क्रय कर लेगा।

जब भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति का उद्देश्य साख का संकुचन करना होता है, तो वह रेपो दर को कम कर देता है, ताकि रिजर्व बैंक अधिक प्रतिभूतियाँ बेचकर चलन की मुद्रा की मात्रा को अपने पास खींच सके। इसके विपरीत जब मौद्रिक नीति का उद्देश्य साख का प्रसार करना होता है, तो रेपो दर बढ़ा दी जाती है, क्योंकि ऐसी स्थिति में खरीदी गयी प्रतिभूतियाँ पर ब्याज महँगा (अधिक) पड़ने लगता है। परिणामस्वरूप क्रय की गयी प्रतिभूतियाँ रिजर्व बैंक के पास विक्रय के लिए तेजी से आने लगती हैं। इस विक्रय के पश्चात विक्रय की सम्पूर्ण राशि देश की चलन की मुद्रा में शामिल होकर मुद्रा प्रसार का काम करती है।

6. **रिवर्स रेपो रेट (Reverse repo rate)–** यह भारतीय रिजर्व बैंक एवं व्यापारिक बैंको के मध्य सम्पन्न समझौता है। भारतीय रिजर्व बैंक प्रतिभूतियाँ बेचकर वाणिज्यिक बैंकों से संसाधन प्राप्त करता है तथा भविष्य में उन प्रतिभूतियों को पुनः वापस क्रय करने का समझौता भी करता है। इस समझौते के अन्तर्गत देय (due) ब्याज की दर 'रिवर्स रेपो दर' कहलाती है।

रिवर्स रेपो रेट को बढ़ाने से साख का विस्तार होता है, क्योंकि व्यापारिक बैंको को अधिक ब्याज प्राप्त होता है, जिससे वे प्रतिभूतियों को बेचकर अधिक मुद्रा अर्जित करते हैं एवं अपनी साख क्षमता में वृद्धि करते हैं। इसके विपरीत रिवर्स रेपो दर घटाने से साख संकुचन की स्थिति उत्पन्न होती है।

7. **नकद तरलता अनुपात (Cash liquidity ratio) –** समस्त वाणिज्यिक बैंकों को अपनी समग्र जमा का एक निश्चित प्रतिशत नकद के रूप में भारतीय रिजर्व बैंक के पास अनिवार्य रूप से रखना पड़ता है। अतः कुल जमा पर रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित तरलता का प्रतिशत ही नकद तरलता अनुपात कहलाता है।

रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति के आधार पर इस अनुपात का निर्धारण किया जाता है। यदि देश में साख का प्रसार करना होता है तो इस 'नकद तरलता अनुपात' में कमी कर दी जाती है। ऐसा करने से व्यापारिक बैंकों को पूर्व की अपेक्षा कम तरल सम्पत्तियों को भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखना पड़ता है तथा अधिक राशि साख के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है। इसके विपरीत यदि साख का संकुचन करना होता है, तो रिजर्व बैंक नकद तरलता अनुपात में वृद्धि कर देता है, इस वृद्धि के परिणामस्वरूप बैंकों को अपनी जमा का पहले की अपेक्षा अधिक नकद भारतीय रिजर्व बैंक के पास रखना पड़ता है तथा कम साख उपलब्ध हो पाता है। कम साख मिलने पर ये व्यापारिक बैंक भी ग्राहकों

को कम मात्रा में साख प्रदान करते हैं। इस प्रकार बैंकों से कम साख प्राप्त होने के कारण लोगों की क्रय शक्ति में कमी आती है, जिससे मुद्रा स्फीति बढ़ने नहीं पाती है।

II. गुणात्मक या प्रत्यक्ष साख नियन्त्रण (Qualitative or direct credit control)

साख नियन्त्रण के ऐसे उपाय, जो किसी निश्चित क्षेत्र को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने के उद्देश्य से किये जाते हैं, गुणात्मक साख नियन्त्रण कहलाता है। यह उपाय तब कारगर एवं महत्वपूर्ण होता है जब देश के भीतर कुछ क्षेत्रों को अधिक एवं कुछ क्षेत्रों को कम ऋण देना हित में होता है। गुणात्मक साख नियन्त्रण के मुख्य उद्देष्य निम्न हैं–

(i) अर्थव्यवस्था के किसी एक या कुछ क्षेत्र को प्रभावित करना,

(ii) देश में साख की उत्पादक एवं अनुत्पादक आवश्यकताओं में अन्तर करना,

(iii) निर्यात को प्रोत्साहित एवं आयात को हतोत्साहित करना,

(iv) लाभकारी क्षेत्र (उत्पादक) को अधिक ऋण तथा अलाभकारी (उपभोक्ता वस्तुओं) को कम ऋण देना।

गुणात्मक साख नियन्त्रण की विधियाँ (Qualitative or direct credit control)

गुणात्मक साख नियन्त्रण की प्रमुख विधियाँ या तरीके निम्नलिखित हैं–

1. **चयनित साख नियन्त्रण (Selective credit control)–** जब देश का केन्द्रीय बैंक (भारत में रिजर्व बैंक आफ इण्डिया) यह अनुभव करता है, कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए एक समान साख नियन्त्रण नीति को अपनाना उचित नहीं होगा, बल्कि कुछ क्षेत्रों में उदार साख नीति तथा अन्य क्षेत्रों में कम उदार या कठोर साख नीति उपयुक्त होगी, तो ऐसी अलग–अलग व्यवस्था ही चयनात्मक साख नियन्त्रण कहलाती है। इस नीति के अन्तर्गत अपनायी जाने वाली प्रमुख साख नियन्त्रण की विधियाँ निम्न हैं–

   (i) **विभिन्न कटौती दरें (Various discount rates)–** इस विधि के अन्तर्गत देश का केन्द्रीय बैंक भिन्न–भिन्न प्रकार के विनिमय विपत्रों (bills of exchange) के लिए विभिन्न या अलग–अलग कटौती दर निर्धारित करता है। इससे अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों को तो सुगम एवं सस्ता साख उपलब्ध हो जाता है, जबकि अन्य क्षेत्रों को कठिन शर्तों पर महँगा साख उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए, यदि कृषि क्षेत्र को विकास के लिए अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक प्रोत्साहन देना हो तो कृषि विपत्रों तथा कृषि निर्यात विपत्रों के लिए कम

कटौती दरें निश्चित की जाती है।

(ii) **नकद कोषों में रियायत (Concession in cash funds)**– इस उपाय के अन्तर्गत किसी विशेष क्षेत्र में निवेश करने वाले बैंकों को एक निश्चित राशि तक 'नकद कोष' रखने की छूट दी जाती है। परिणाम स्वरूप इन विशेष क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहन मिलता है।

(iii) **पूर्वानुमति द्वारा ऋण देना (Loan provided by pre-order)**– कभी–कभी देश का केन्द्रीय बैंक, अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों में साख विस्तार को सीमित करने के उद्देश्य से, व्यापारिक बैंको पर यह नियन्त्रण लगा देता है कि एक निश्चित राशि से अधिक मात्रा में ऋण देने पर उसकी (केन्द्रीय बैंक की) अनुमति लेना अनिवार्य होगा। ऐसी दशा मे केन्द्रीय बैंक ऋण की आवश्यकता एवं साख विस्तार के प्रभाव को ध्यान में रखकर निश्चित सीमा से अधिक की राशि का निर्धारण करता है।

(iv) **ऋणों पर प्रतिबन्ध (Restriction on loans)**– देश का केन्द्रीय बैंक यदि कुछ वस्तुओं की प्रतिभूतियों पर उपलब्ध साख की सुविधा पर रोक लगाना चाहता है, तो वह ऐसे ऋणों पर प्रति–बन्ध लगा देता है। उदाहरण के लिए, देश में खाद्यान्न की कीमतों में वृद्धि को रोकने के लिए रिजर्व बैंक द्वारा व्यापारिक बैंकों को यह आदेश दिया जा सकता है कि वे अनाज संग्रह हेतु व्यापारियों को ऋण न दे।

(v) **उपभोक्ता साख का नियमन (Regulation of consumer's credit)**– इस प्रकार के साख नियमन का आशय टिकाऊ व मूल्यवान वस्तुओं की खरीद हेतु दिये जाने वाले साख नियन्त्रण से है। वर्तमान में कई देशों में मोटरकार, टेलीविजन, मोटरसाइकिल, फ्रिज आदि टिकाऊ वस्तुएँ उधार या किश्तों के आधार पर बेची जाती हैं। अर्थव्यवस्था में तेजी के दिनों में उपभोक्ता साख का संकुचन किया जाता है, जबकि मन्दी के दिनों में इसका विस्तार किया जाता है। इस उपाय के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक द्वारा उपभोक्ता साख पर कुछ नियन्त्रण लगा दिये जाते हैं। इसमें साख की कुल राशि या मात्रा का निर्धारण, किश्तों की संख्या, भुगतान अवधि का निर्धारण आदि उपाय मुख्य रूप से किये जाते हैं।

(vi) **आयात पूर्व जमा (Deposit before import)**– साख नियन्त्रण का यह उपाय देश में आयात को कम करने या हतोत्साहित करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस उपाय के अन्तर्गत आयातकर्ता को आयात लाइसेंस देते समय ही आयात मूल्य का एक निश्चित

प्रतिशत केन्द्रीय बैंक के पास जमा कराना पड़ता है। साख के विस्तार की दशा में इस आयात के लिए जमा राशि में कमी कर दी जाती है, जिससे आयात में वृद्धि होती है, इसके विपरीत साख संकुचन करने के लिए केन्द्रीय बैंक जमा राशि में वृद्धि कर देता है।

(vii) **ऋणों की सीमान्त आवश्यकताओं में परिवर्तन (Changes in marginal needs of loans)**– इसके द्वारा कुछ विशेष उद्देश्यों के लिए दी जाने वाली साख की राशि को नियन्त्रित किया जाता है। प्रायः बैंक उपयुक्त जमानत (security) के आधार पर ऋण प्रदान करते हैं। बैंक जमानत के रूप में रखे गये माल की वर्तमान कीमत से कुछ कम राशि का ऋण देते हैं, जितनी कम राशि का ऋण दिया जाता है, उसे सीमान्त आवश्यकता कहते हैं।

जब किसी वस्तु विशेष के लिए साख का संकुचन करना होता है, तो देश का केन्द्रीय बैंक उस वस्तु की सीमान्त आवश्यकता को बढ़ा देता है। परिणामस्वरूप बैंक जमानत पर पहले की तुलना में कम मात्रा में ऋण दे पाते हैं। इसके विपरीत जब साख का विस्तार करना होता है तो केन्द्रीय बैंक उसकी सीमान्त आवश्यकता को कम कर देता है, जिससे बैंकों द्वारा अधिक मात्रा में ऋण दिया जाता है।

2. साख का समभाजन (Rationing of credit)– अन्तिम ऋणदाता के रूप में देश का केन्द्रीय बैंक अन्य बैंकों की साख–निर्माण क्षमता को सीमित करने के लिए साख का समभाजन भी कर सकता है। यह कई विधियों या उपायों या उपायों द्वारा की जा सकती है। जैसे –

(i) किसी बैंक या कुछ बैंकों की पुनर्कटौती (Rediscounting) की सुविधा को समाप्त कर देना अथवा बैंको के लिए साख के अभ्यंश (quota) निश्चित कर देना,

(ii) विभिन्न बैंको द्वारा विभिन्न व्यवसायों को दिये जाने वाले ऋणों की सीमा अथवा अभ्यंश निश्चित कर देना इत्यादि।

अतः केन्द्रीय बैंक साख का विस्तार करना चाहता है, तो पुनर्कटौती को लागू या बहाल कर दिया जाता है तथा विभिन्न व्यवसायों को दिये जाने वाले ऋणों की सीमा में वृद्धि कर दी जाती है। इसके विपरीत साख संकुचन के लिए पुनर्कटौती की सुविधा को समाप्त कर देना या ऋणों की सीमा को कम कर दिया जाता है।

3. नैतिक प्रभाव (Moral persuasion)– देश की मौद्रिक नीति का नियमन एवं नियन्त्रण करने के कारण देश के केन्द्रीय बैंक का वाणिज्यिक बैंकों पर पर्याप्त प्रभाव रहता है। इसलिए केन्द्रीय बैंक कभी–कभी अन्य बैंकों

को सलाह देकर तथा उन पर नैतिक दबाव डालकर उन्हें अपनी साख नीति का स्वेच्छापूर्वक पालन करने के लिए प्रेरित करता है। इस उपाय के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक द्वारा अन्य बैंको पर मनोवैज्ञानिक दबाव डाला जाता है। नैतिक प्रभाव की नीति की सफलता मुख्य रूप से निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है–

(i) देश के केन्द्रीय बैंक का 'मुद्रा बाजार' पर पूर्ण एवं पर्याप्त नियन्त्रण होना चाहिए तथा

(ii) केन्द्रीय बैंक तथा अन्य बैंकों के मध्य सहयोग एवं सद्भावना होनी चाहिए।

भारत में नैतिक प्रभाव साख नियन्त्रण के लिए प्रभावशाली कदम माना जाता है, क्योंकि नैतिक प्रभाव की रीति की सफलता के लिए आवश्यक बातों पर यहाँ केन्द्रीय बैंक का अधिकार एवं अन्य बैंकों के साथ समन्वय है।

4. **प्रचार (Publicity)**– वर्तमान समय में केन्द्रीय बैंक साख नियन्त्रण के लिए विज्ञापन तथा प्रचार का भी सहारा लेता है। यह नियमित रूप से देश में मुद्रा बाजार की स्थिति, बैंकिंग व साख सम्बन्धी समस्याओं, उद्योग व्यापार एवं व्यवसाय, विदेशी व्यापार आदि के सम्बन्ध में अपनी मासिक या वार्षिक पत्र–पत्रिकाओं में आवश्यक आँकड़े एवं विवरण प्रकाशित करता रहता है। इसके अतिरिक्त देश के केन्द्रीय बैंक के अधिकारीगण, पत्रकार सम्मेलन, बैंकों की विचार गोष्ठी आदि में बैंक की मुद्रा व साख नीति पर प्रकाश डालते हैं। आधुनिक समय में 'प्रचार' की विधि द्वारा अधिक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

5. **प्रत्यक्ष कार्यवाही (Direct action)**– केन्द्रीय बैंक साख नियन्त्रण सम्बन्धी किये गये उपायों के लिए दिये गये निर्देशों का ठीक ढंग से पालन न करने वाले बैंकों के विरुद्ध प्रत्यक्ष या सीधी कार्यवाही कर सकता है। प्रत्यक्ष कार्यवाही के अन्तर्गत निम्न उपायों को शामिल किया जाता है–

(i) बैंकों को पुनर्कटौती की सुविधा बन्द कर देना,

(ii) पुनर्कटौती की शर्तों में परिवर्तन करना,

(iii) ऋण देने से मना कर देना,

(iv) बैंकों पर मौद्रिक दण्ड लगाना इत्यादि।

केन्द्रीय बैंक उपरोक्त प्रत्यक्ष कार्यवाही करने से पहले सामान्यतया सम्बन्धित बैंकों को नोटिस या चेतावनी देता है। व्यावहारिक रूप में साख नियन्त्रण की अनेक व्यवस्थाओं के कारण प्रत्यक्ष कार्यवाही की आवश्यकता पड़ने की सम्भावना न्यूनतम ही रहती है।

बोध प्रश्न ख (Check Your Progress B)

सही विकल्प चुनिये–

1. मौद्रिक नीति का संचालन करता है–

   क. वित्त मंत्री   ख. वाणिज्य बैंक   ग. केन्द्रीय बैंक   घ. भारत सरकार

2. बैंक दर वह ब्याज की दर है जो भारतीय रिजर्व बैंक इसको ऋण देने पर वसूल करता है–

   क. भारत सरकार   ख. वाणिज्य बैंक   ग. कृषि क्षेत्र   घ. औद्योगिक क्षेत्र

3. मौद्रिक नीति का उद्देश्य इसको नियंत्रित करता है–

   क. मुद्रा की आपूर्ति   ख. ऋण की उपलब्धता

   ग. विदेशी विनियम का प्रवाह   घ. उपरोक्त सभी

4. निम्न में से एक मौद्रिक नीति का उपकरण नहीं है

   क. नैतिक अभिप्रेरण   ख. मार्जिन सम्बन्धी आवश्यकतायें

   ग. खुले बाजार की क्रियायें   घ. घाटे की वित्त व्यवस्था

उत्तर बोध प्रश्न : 1. ग, 2. ख, 3. घ, 4. घ

6.6 मौद्रिक नीति की सीमाएँ (Limitations Of Monetary Policy)

मैद्रिक नीति की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं, जिन्हे नीचे दिया जा रहा है–

1. **मंदी के समय मौद्रिक नीति का प्रभावी न होना** – प्रायः यह देखने में आया है कि मौद्रिक नीति मुद्रा स्फीति में तो प्रभावी होती है, परन्तु मन्दी को दूर करने में यह उतनी सहायक नहीं होती है, अतः मौद्रिक नीति का प्रभाव एकपक्षीय है।

2. **सही जानकारी न होनेपर हानिकारक प्रभाव –** कब और किन परिस्थितियों में मौद्रिक नीति का उपयोग किया जाय जब तक इस बात की जानकारी नहीं हो जाती है, तब तक मौद्रिक नीति में किया जाने वाला परिवर्तन हानिकारक हो सकता है, जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मौद्रिक नीति का उपयोग किया गया था, उसके वांछित लाभ प्राप्त नहीं होगे।

3. **मौद्रिक नीति का प्रभावपूर्ण न होना –** चाहने पर भी मौद्रिक नीति

प्रभावपूर्ण नहीं हो सकती है। मौद्रिक नीति एक अप्रत्यक्ष उपाय है। यदि इसे दृढ़ता के साथ अपनाया जाता तो आर्थिक विकास अवरुद्ध हो जायेगा। यदि इसे कोमलतापूर्वक अपनाया गया तो आय और मांग के स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

4. **ब्याज–दरों में बार–बार परिवर्तन न होना –** मौद्रिक नीति का प्रमुख अस्त्र ब्याज–दर में परिवर्तन करना है, परन्तु बार–बार ब्याज–दरों में परिवर्तन सम्भव नहीं है। अतः मौद्रिक नीति निष्प्रभावी हो जाती है।

5. **अकेले मौद्रिक उपाय सफल नहीं हो सकते हैं –** रेडक्लिफ (Radcliffe) समिति इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि ''एक अर्थव्यवस्था पर, जबकि बाह्य एवं आन्तरिक दबाव पड़ रहे हों, तो एक उचित प्रकार का सन्तुलन बनाये रखने के लिए अकेले मौद्रिक उपायों पर निर्भर नहीं किया जा सकता है। मौद्रिक उपायों से सहायता मिल सकती है, बस इतना ही है।''

6.7 नयी मौद्रिक नीति 2008–09 (New Monetary Policy, 2008-09)

समान्यतया देश की मौद्रिक नीति की घोषणा भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा वर्ष में दो बार अप्रैल एवं नवम्बर में की जाती है। मौद्रिक नीति की समीक्षा प्रायः तिमाही की जाती है। रिजर्व बैंक आवश्यकता पड़ने पर मुद्रा स्फीति को नियंत्रण करने के लिए विभिन्न प्रकार की बैंकिंग दरों को घटा एवं बढ़ा सकती है।

इस मौद्रिक नीति के प्रमुख प्रावधान निम्नवत है–

(i) नगद आरक्षित अनुपात (CCR) को 8 प्रतिशत से बढ़ाकर 8. 25 प्रतिशत कर दिया गया, जिसे 24 मई 2008 से लागू किया गया,

(ii) 'रेपो दर', 'रिवर्स रेपो दर' तथा 'बैंक दर' में कोई बदलाव नहीं अर्थात् ये पूर्ववत क्रमशः 7.75 प्रतिशत, 7.00 प्रतिशत व 6.00 प्रतिशत के स्तर पर ही रहेंगे,

(iii) वर्ष 2008–09 में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) 8 से 8.5 प्रतिशत के बीच रहेगी,

(iv) वर्ष 2008–09 में मुद्रा स्फीति औसतन 5.5 प्रतिशत रखने का प्रयास होगा,

(v) मुद्रा–स्फीति को 4 से 4.5 प्रतिशत के बीच लाने का लक्ष्य,

(vi) मुद्रा–स्फीति के लिए मध्यावधि लक्ष्य लगभग 3 प्रतिशत,

(vii) बैंकिंग जमाओं में लगभग 17 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी,

(viii) अनुसूचित बैंकों द्वारा प्रदत्त सस्ती गृह ऋण (Home Loan) की सीमा बढ़ाकर 30 लाख रुपये,

(ix) एक करोड़ रुपये व उससे अधिक की राशि की ई–पेमेंट व्यवस्था,

(x) गैर–खाद्य ऋण 20 प्रतिशत रहने का अनुमान,

(xi) एक्सचेजों में करेंसी वायदा कारोबार की अनुमति,

(xii) देशी तेल रिफाइनरियों के मूल्य रिस्क पर हेजिंग।

इस मौद्रिक नीति में नकद आरिक्षित अनुपात में वृद्धि की गयी है, जिसका उद्देश्य अर्थव्यवस्था में नकदी की कमी या मुद्रा की आपूर्ति कम करना है। इस नीति में सरकार ने बैंक दर में कोई वृद्धि न करके आर्थिक विकास को प्रभावित होने से बचाने का प्रयास किया है।

6.8 सारांश (Summary)

देश की समष्टि आर्थिक नीतियों में मौद्रिक नीति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में मौद्रिक नीति मुद्रा आपूर्ति को नियंत्रण में रखकर और इसके माध्यम से अर्थव्यवस्था की साख और निवेश दशाओं पर पूरा नियंत्रण रखती है। मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य देश में मुद्रा आपूर्ति के नियंत्रण से ब्याज, साख, निवेश, कीमतों, विदेशी मुद्रा के प्रवाह, रोजगार स्तर, आर्थिक विकास को प्रभावित करना है। मौद्रिक नीति किसी भी देश की अर्थव्यवस्था के लिये अपना विशेष महत्व रखती है। यह नीति देश का केन्द्रीय बैंक बनाता है और वाणिज्य बैकों के माध्यम से अमल में लाती है। भारत में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया देश का केन्द्रीय बैंक है। मुद्रा की आपूर्ति ब्याज दर आदि को प्रभावित करने के लिये भारतीय रिजर्व बैंक निम्न पांच उपकरणों पर निर्भर रहता है। यह हैः CRR एवं SLR बैंक रेट या डिस्काउन्ट रेट, खुले बाजार की क्रियायें, गुणात्मक या चयनात्मक साख नियंत्रण एवं नैतिक अभिप्रेरा आदि। समय–समय पर केन्द्रीय बैंक इन दरों में परिवर्तन करके मुद्रा एवं साख की आपूर्ति पर नियंत्रण रखती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि मौद्रिक नीति मुद्रा प्राधिकारियों द्वारा सोच–समझकर उपयोग में लाई गयी मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि या कमी लाने की शक्ति है।

6.9 शब्दावली (Key Words)

समष्टि नीति (Macro Policy) : सरकार की राष्ट्रीय स्तर की नीति जिसका प्रभाव

पूरे देश में समान रूप से पड़ता है।

मौद्रिक नीति (Monetory Policy) : मुद्रा आपूर्ति पर प्रभाव डालने हेतु मुद्रा प्राधिकारियों द्वारा सोच–समझकर कर लिये गये निर्णय।

नकद आरक्षित अनुपात (CRR) : जमाओं का वह प्रतिशत जो वाणिज्यिक बैंक केन्द्रीय बैंक के पास रखता है।

बैंक दर (Bank Rate) : वह ब्याज दर जो वाणिज्यिक बैंकों को उधार देने पर केन्द्रीय बैंक वसूल करता है।

सांविधिक नकद अनुपात (SLR) : यह वाणिज्यिक बैंक अपने पास अनिवार्य रूप से नकद में अपने पास रखते है।

केन्द्रीय बैंक (Centrol Bank) : केन्द्रीय बैंक वाणिज्यिक बैंकों का एक पर्यवेक्षी बैंक **(Supervisory)** बैंक होता है। भारत में Reserve Bank of India केन्द्रीय बैंक है।

मौद्रिक नीति के उपकरण (Tools of Monetry Policy) : मुद्रा एवं साख की आपूर्ति पर नियंत्रण रखने के उपाय जो केन्द्रीय बैंक वाणिज्यिक बैंकों के माध्यम से अमल में लाती है।

6.9 अभ्यास के प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. मौद्रिक नीति से आप क्या समझते हैं? मौद्रिक नीति के प्रमुख उद्देश्य एवं विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

   What do you enderstand by monetary policy. Explain the main objects and characteristics of monetary policy.

2. भारतीय रिजर्व बैंक की साख–नियंत्रण की विधि को विस्तारपूर्वक समझाइये।

   Explain in detail cerdit control policy of Reserve Bank of India.

3. सक्षिप्त टिप्पणी लिखिये (Write short note)

   (a) खुले बाजार की क्रियायें (Open market operations)

   (b) वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory liquidity ratio)

   (c) वर्तमान मौद्रिक नीति (Persent monetary policy)

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Question)

1. मौद्रिक नीति से आप क्या समझते हैं ?

   What do you understand by monetary policy

2. मौद्रिक नीति से प्रमुख उद्देश्य क्या होते हैं ?

   What are the main objects of monetary policy

3. साख नियन्त्रण की मात्रात्मक विधि को स्पष्ट कीजिए।

   Explain the quantitative method of credit control.

4. साख नियंत्रण की गुणात्मक विधि से आप क्या समझते हैं ?

   What do you understand by qualitative method of cerdit control ?

5. बैंक दर से आप क्या समझते हैं ? इसमें परिवर्तन का क्या प्रभाव होता है ?

   What do you understand by bank rate ? What are the effects of its changes ?

6. चयनात्मक साख नियंत्रण की विभिन्न विधियाँ समझाइये।

   Explain the various method of selective credit control ?

7. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए (Write short note)

   a) पुनर्खरीद विकल्प दर या रेपो रेट (Repo rate)

   b) नकद तरलता अनुपात (CLR)

इकाई–7 : राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 राजकोषीय नीति अवधारणा एवं अर्थ

7.4 राजकोषीय नीति के उद्देश्य

7.5 राजकोषीय नीति का महत्व

7.6 राजकोषीय नीति की सीमायें

7.7 राजकोषीय नीति के उपकरण

7.8 भारत की राजकोषीय नीति

7.8.1 भारत की राजकोषीय नीति के दोष

7.8.2 भारत की राजकोषीय नीति में सुधार के उपाय

7.9 सारांश

7.10 शब्दावली

7.11 अभ्यास के प्रश्न

7.1 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- राजकोषीय नीति का अर्थ समझा सके,
- राजकोषीय नीति का उद्देश्य बता सके।
- राजकोषीय नीति के महत्व को समझा सकें।
- राजकोषीय नीति के उपकरणों के बारे में बता सके।
- भारत में राजकोषीय नीति के दोषों को बता सके।
- भारत की राजकोषीय नीति में सुधार के उपाय बता सके।

7.2 प्रस्तावना (Introduction)

राष्ट्रीय स्तर पर सोच समझ कर ऐसे उपाय करना जो अर्थव्यवस्था और उसके क्षेत्रों की कार्यकारी प्रणाली और विकास पर प्रभाव डालते है। ऐसे उपाय या नीति का निर्धारण सरकार करती है। सरकार द्वारा नियंत्रित संस्थाये इसको अमल में लाती है। पिछली इकाई में अपने मौद्रिक नीति के बारे में पढ़ा। मौद्रिक

नीति मुद्रा की आपूर्ति पर नियन्त्रण रखकर अर्थव्यवस्था की साख और निवेश दशाओं पर नियंत्रण रखती है।

वास्तव में राजकोषीय नीति सरकार की आय और व्यय नीति है। सरकार को देश का प्रशासन चलाने, जनता और व्यवसाय को सुविधायें प्रदान करने, विकास कार्यों आदि के लिये पैसे की आवश्यकता है सरकार की आय का प्रमुख साधन है। सरकार किस–किस प्रकार के कर लगाती है इसका अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है। सरकारी व्यय का लोगों के जीवन स्तर, व्यावसायिक वातावरण विभिन्न क्षेत्रों के विकास आदि पर प्रभाव पड़ता है। राजकोषीय नीति की झलक सरकारी बजट में मिलती है।

7.3 राजकोषीय नीति : अवधारणा एवं अर्थ (Fiscal Policy : Concept and Meaning)

राजकोषीय नीति के अभिप्राय, साधारणतया, सरकार की आय, व्यय तथा ऋण से सम्बन्धित नीतियों से लगाया जाता है। प्रो० आर्थर स्मिथीज ने राजकोषीय नीति को परिभाषित करते हुए लिखा है कि– ''राजकोषीय नीति वह नीति है जिसमें सरकार अपने व्यय तथा आगम के कार्यक्रम को राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर वांछित प्रभाव डालने और अवांछित प्रभावों को रोकने के लिए प्रयुक्त करती है। इस सम्बन्ध में **श्रीमती हिक्स** (Mrs. Hicks) का कहना है कि ''राजकोषीय नीति का सम्बन्ध उस पद्धति से है जिसमें लोक–वित्त के विभिन्न अंग अपने प्राथमिक कत्तव्यों को पूरा करने के लिए सामूहिक रूप से आर्थिक नीति के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार, अर्थव्यवस्था में सर्वोच्च उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राजकोषीय नीति व्यय, ऋण, कर, आय, हीनार्थ प्रबन्धन आदि की समुचित व्यवस्था बनाये रखती है, जैसे–आर्थिक विकास, कीमत में स्थिरता, रोजगार, करारोपण, सार्वजनिक आय–व्यय, सार्वजनिक ऋण आदि। इन सबकी व्यवस्था राजकोषीय नीति में की जाती है। राजकोषीय नीति के आधार पर सरकार करारोपण करती है। वह यह देखती है कि देश में लोगों की करदान क्षमता बढ़ रही है अथवा घट रही है। इन सब बातों का अनुमान लगाकर ही सरकार करों का निर्धारण करती है। व्यय नीति में भी वे निर्णय शामिल किये जाते हैं जिनका अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता है। ऋण नीति का सम्बन्ध व्यक्तियों के ऋणों के माध्यम से क्रय शक्ति को प्राप्त करने से होता है। सरकारी ऋण–प्रबन्ध नीति का सम्बन्ध ब्याज चुकाने तथा ऋणों का भुगतान करने से होता है। राजकोषीय नीति आय, व्यय व ऋण के द्वारा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करती है। स्मरण रहे, राजकोषीय नीति और वित्तीय नीति में अन्तर होता है। राजकोषीय नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप से चार बातों को सम्मिलित किया जाता है:

सरकार की करारोपण नीति (Taxation Policy),

सरकार की व्यय नीति (Expenditure Policy),

सरकार की ऋण नीति (Public Debt Policy),

सरकार की बजट नीति (Budgetary Policy),

7.4 राजकोषीय नीति के उद्देश्य (Objectives of Fiscal Policy)

किसी भी देश की राजकोषीय नीति का मुख्य उद्देश्य सैद्धान्तिक रूप से, क्रियात्मक वित्त प्रबन्धन (Functional Finance Managemnat) तथा कार्यशील वित्त प्रबन्धन की व्यवस्था करना है। दूसरे शब्दों में आर्थिक विकास के लिए आवश्यक एवं पर्याप्त मात्रा में धन की व्यवस्था करना राजकोषीय नीति का मुख्य कार्य है। यद्यपि राजकोषीय नीति के उद्देश्य किसी राष्ट्र विकास के लिए उसकी परिस्थितियों, विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं और विकास की अवस्था के आधार पर निर्धारित किये जाते है फिर भी सामान्य दृष्टि से अल्प–विकसित एवं विकासशील देशों की राजकोषीय नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित कहे जा सकते हैं :

1. **पूंजी निर्माण (Capital Formation)–** अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय के कम होने के कारण बचतें बहुत कम होती हैं जिसके फलस्वरूप विनियोग हेतु आवश्यक पूंजी का अभाव बना रहता है। निम्न आय, अल्प बचतें, कम विनियोग और निम्न उत्पादकता के कारण निर्धनता के दुष्चक्र (Vicious Circle of Poverty) जन्म लेने लगते है, जिनको तोड़ना राजकोषीय नीति का प्रमुख उद्देश्य माना जाता है। चूंकि इन देशों में आय के स्तर को देखते हुए, उपभोग की प्रवृत्ति (Propensity to Consume) अधिक होती है इसलिए राजकोषीय नीति के अन्तर्गत करारोपण द्वारा चालू उपभोग को कम करके, बचत में वृद्धि करने के प्रयत्न किए जाते हैं, ताकि पूंजी निर्माण के लिए आवश्यक धनराशि प्राप्त हो सके। प्रो. रागनर नर्कसे का मत है कि–''अल्प–विकसित देशों मे करारोपण नीति का उद्देश्य राष्ट्रीय आय में उसी अनुपात में वृद्धि करना है जो पूंजी निर्माण में लगाया जाता है।''

   यदि अल्प–विकसित देशों में अनावश्यक उपभोग पर करारोपण द्वारा वांछित रोक न लगायी जाए तो इसके कुछ घातक परिणाम हो सकते है, जैसे–

   (i) देश में पूंजी निर्माण का कार्य या तो अवरुद्ध बना रहेगा अथवा अत्यन्त मन्द गति से होगा,

   (ii) आर्थिक विकास के फलस्वरूप होने वाली आय वृद्धि पूर्णतया उपभोग कर ली जायेगी,

   (iii) देश की मुद्रा स्फीतिक दशाएँ उत्पन्न होने लगेंगी।

2. **राष्ट्रीय आय में वृद्धि (Increase in National Income)** पूंजी निर्माण के अलावा राजकोषीय नीति का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना है। यद्यपि राष्ट्रीय आय वृद्धि और राजकोषीय नीति का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है तथा राजकोषीय नीति परोक्ष रूप से, राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए सहायक सिद्ध हो सकती है। इस दृष्टि से राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सदैव इस बात का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि–

   (अ) करारोपण द्वारा प्राप्त बचतों का तत्काल विनियोग किया जाएगा

   (ब) सार्वजनिक व्यय और सार्वजनिक ऋणों की अधिकांश मात्रा नव–निर्माण व विकास कार्यों की ओर गतिशील की जाए,

   (स) देश में निजी उद्यमकर्ताओं को कर छूट द्वारा अथवा वित्तीय सहायता प्रदान करके, विनियोग करने के लिए प्रेरित किया जाए।

   यह ठीक है कि अल्प–विकसित देशों में नव–प्रवर्तन और उद्यमियों का अभाव होता है। परन्तु प्रो. स्पैंगलर का मत है कि– यह नीति ''ऐसे बहुत से साहसियों की कमी को पूरा कर सकती है।'' यदि राजकोषीय नीति का निर्धारण उपर्युक्त उपायों की दृष्टि में रखकर किया जाए तो निश्चित है कि इसमें विनियोजन कार्य को प्रोत्साहन मिलेगा जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।

3. **आय व धन वितरण की विषमताओं को कम करना (To Minimise the Inequalities of Income and Wealth) –** आय व धन के वितरण की समानता बनाए रखना आर्थिक विकास का केवल लक्ष्य ही नहीं वरन् एक पूर्व आवश्यकता भी है। अतः सरकार को चाहिए कि अपनी राजकोषीय नीति का निर्माण इस प्रकार से करे कि धन वितरण की विषमताएँ देश में कम से कम हो सकें। इस दृष्टि से राजकोषीय नीति के अन्तर्गत निम्न उपायों को समिलित किया जा सकता है:–

(i) धनी वर्ग पर प्रगतिशील कर (Progressvie Taxes) लगाए जाएँ जिससे कि सरकार को अतिरिक्त रूप से आय प्राप्त हो सके पर करों की मात्रा कम रखी जाए।

(ii) निर्धन अथवा अल्प आय वर्ग कर करों की मात्रा कम रखी जाए।

(iii) विलासिता की वस्तुओं पर भारी मात्रा में कर लगाकर, उन पर किये जाने व्यय को विनियोगिक क्षेत्रों की ओर हस्तान्तरित किया जाए।

(iv) सरकार को अपना अधिकांश व्यय सामाजिक सेवाओं अथवा विशेष रूप से उन मदों पर करना चाहिए जिनसे निर्धनों को अधिक लाभ

पहुंचता हो।

(v) राजकोषीय नीति का ढाँचा इस प्रकार होना चाहिए कि अनुपार्जित आय (Unearned Income) पर यथाचित रोक लगायी जा सके और विकास के लिए आय (Economic Surplus) की उपलब्धि हो सके।

अधिकांश प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था कि धन वितरण की विषमताएँ पूंजी निर्माण व आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। इसका कारण इन लोगों की दृष्टि में बचत सदैव धनी वर्ग द्वारा की जाती है। आज इस मान्यता के विपरीत प्रो. ड्यूनबरी के विचारों के आधार पर अब यह सिद्ध किया जा चुका है कि धन की असमानताओं की अपेक्षा, धन के समान वितरण होने पर, बचतों के प्राप्त होने की सम्भावना अधिक होती है। इसी प्रकार के कुछ अन्य लोगों द्वारा यह तर्क भी प्रस्तुत किया जाता है कि अल्प विकसित देशों में राजकोषीय नीति का उद्देश्य आर्थिक विषमताओं को कम करने के स्थान पर उत्पादन में वृद्धि करना होना चाहिए। यह धारणा भी निर्मूल व निराधार है। देश के आर्थिक विकास हेतु धन वितरण की विषमताओं का कम किया जाना अत्यावश्यक है।

4. **मुद्रा स्फीतिक दशाओं पर नियंत्रण लगाना (To Check Inflationary Conditions and Pressure)–** अल्प–विकसित देशों में विकास की आवश्यकताओं को देखते हुए पूंजी का सर्वथा अभाव होता है। प्रायः देखने में आता है कि धन की इस कमी को सम्बन्धित सरकारें हीनार्थ प्रबन्धन के अन्तर्गत नोट छाप कर पूरा करती है। जिससे मुद्रा स्फीतिक दशाएँ उत्पन्न होने लगती हैं। बढ़ती हुई कीमतें, न केवल समाज के लिए कष्टप्रद हैं बल्कि विकास की लागत में भी अनावश्यक वृद्धि कर देती हैं। इस दृष्टि से राजकोषीय नीति का महत्वपूर्ण कार्य 'प्रभावपूर्ण माँग' (Effective Demand) को कम करके मुद्रा प्रसार पर रोक लगाना है। मुद्रा प्रसारिक दबावों को नियन्त्रित करने के लिए आवश्यक है कि–

(अ) जनता की अतिरिक्त क्रय शक्ति को करों, अनिवार्य बचतों एवं सार्वजनिक ऋणों आदि को द्वारा कम किया जाए।

(ब) कुछ विशेष प्रकार के मुद्रा स्फीति विरोधी कर (Anti Inflationary Taxes) जैसे अधिलाभ कर (Super Tax) उपहार कर, व्यय कर, विशेष उत्पादन कर तथा विलासिता की वस्तुओं पर कर आदि लगाए जाने चाहिए।

(स) प्रत्यक्ष करों के अतिरिक्त तरल सम्पत्तियों, कैश बैलेन्सेज व पूँजीगत सम्पत्तियों पर भी कर लगाये लाने चाहिए।

(द) करारोपण नीति का आधार प्रगतिशील होना चाहिए।

(य) कर नीति ऐसी होनी चाहिए कि ऐच्छिक बचतों को प्रोत्साहित

कर सके और अतिरिक्त क्रय शक्ति को नियन्त्रित कर सके।

कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि यदि राजकोषीय नीति द्वारा प्रभाव पूर्ण माँग को कम करके, मुद्रा प्रसार पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रयत्न किया गया तो इससे उत्पादन व विनियोग की प्रेरणाएँ समाप्त हो जायेंगी । जिसके फलस्वरूप आर्थिक विकास का कार्य अवरुद्ध होने लगेगा। वास्तव में ऐसा सोचना भ्रमपूर्ण होगा क्योंकि प्रभावपूर्ण माँग को कम करने का अभिप्राय अनावश्यक उपभोग को कम करना है।

5. **रोजगार से सुअवसरों में वृद्धि करना (To Incease Emploment Opportunities) –** राजकोषीय नीति के विभिन्न उद्देश्यों में एक उद्देश्य अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति को बनाए रखना है। प्रो. लुइस का मत है कि देश में उपलब्ध जनशक्ति (Manpower) को पूर्ण रोजगार दिलायें, बिना आर्थिक विकास का लक्ष्य अधूरा है। यह काम सरकार का है कि वह अपनी मौद्रिक व राजकोषीय नीति के अन्तर्गत एक ऐसा वातावरण तैयार करे कि जिसमें सभी लोगों को यथाशक्ति कार्य करने का सुअवसर उपलब्ध हो सके। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार–''मानवीय हितों को देखते हुए केन्द्रीय सरकार का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह उन लोगों को, जो काम करने के योग्य तथा काम करने के इच्छुक है, उपयोगी ढंग की रोजगार दशाएँ उपलब्ध कराए।''

7.5 राजकोषीय नीति का महत्व (Importance Of Fiscal Policy) –

राजकोषीय नीति में समय–समय पर परिवर्तन होते आये हैं। प्राचीन काल में यह माना जाता था कि राजकोषीय नीति केवल संकट काल में ही सहायक हो सकती है। सामान्य परिस्थितियों में इसका कोई महत्व नहीं है। समय के बीतने के साथ–साथ अर्थव्यवस्था का स्वरूप परिवर्तित होने लगा। मुद्रा का अविष्कार, औद्योगिकीकरण, आर्थिक प्रणालियों का जन्म, जनसंख्या की वृद्धि, व्यापार–चक्रों का आना, बेरोजगारी का बढ़ना, विकास व्यय व युद्ध व्ययें में वृद्धि, मंदीकाल आदि अनेक समस्याओं ने विश्व की अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर दिया था। इन सब समस्याओं के समाधान के लिए यह आवश्यक हो गया था कि राज्य की आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि की जाय। अब राज्य की आर्थिक क्रियाओं में निरन्तर वृद्धि होने लगी है। अतः इन समस्याओं के समाधान के लिए राजकोषीय नीति की आवश्यकता होने लगी।

1930 की विश्वव्यापी मन्दी को दूर करने की समस्या के लिए प्रो. कीन्स ने राजकोषीय नीति की सहायता लेकर इस बात को प्रामाणिकता के साथ सिद्ध कर दिया था कि बेरोजगारी और मंदी जैसी समस्याओं को हल किया जा सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देश की अर्थव्यवस्था के संचालन में राजकोषीय नीति का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान समय में तो बिना इसके काम नहीं चल

सकता है। कार्यात्मक वित्त के रूप में राजकोषीय नीति का महत्वपूर्ण स्थान है।

मन्दी काल में राजकोषीय नीति (Fiscal policy and depression) – मन्दी काल में राजकोषीय नीति का उद्देश्य उपभोग–प्रवृत्ति में वृद्धि करने के उपाय करना तथा सार्वजनिक व्यय अथवा निवेशों में वृद्धि करना होगा, यदि सरकार द्वारा सार्वजनिक व्यय बढ़ा दिया गया, तो निजी उद्योगों तथा व्यापार–वाणिज्य में स्फूर्ति आ जायेगी, जब निजी विनियोग में विस्तार होता है, तो सरकारी व्यय में कमी कर दी जाती है जिससे आर्थिक क्रिया में कोई शिथिलता नहीं आती है। इस प्रकार रोजगार में वृद्धि होगी तथा आय बढ़ेगी तो उपभोग स्वतः ही बढ़ जायेगा।

मन्दी के समय कर की दरों में कमी करना लाभदायक होता है, परन्तु व्यावहारिक रूप से कर की दरों में कमी करना आसान काम नहीं है। अतः उचित यह है कि सरकार अपना व्यय बढ़ाये, परन्तु कर न बढ़ाये जायें। जब सरकार द्वारा किया गया व्यय करों से प्राप्त होने वाली आय से अधिक होता है, तो घाटे का बजट बनाया जाता है। घाटे की पूर्ति जनता से ऋण लेकर की जाती है। इससे निष्क्रिय नकद कोषों का उपयोग होता है और निजी खर्चों में कोई कमी नहीं आती है। यदि ऋण बैंको से लिया जाता है, तो अधिक साख का सृजन होता है। इसका भार किसी पर नहीं पड़ता है और अर्थव्यवस्था को लाभ होता है। सड़कों, रेलों, स्कूलों, नदी–घाटी योजनाओं आदि पर व्यय करके दीर्घकालीन लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। घाटे की वित्त व्यवस्था मन्दी काल में रोजगार बढ़ाने का प्रभावपूर्ण तरीका है। ध्यान रहे कि हीनार्थ प्रबन्ध का उपयोग आवश्यकता से अधिक न हो।

मुद्रा स्फीति काल में राजकोषीय नीति (Fiscal policy inflation) – स्फीति काल में मुद्रा का चलन अधिक होता है, परन्तु मुद्रा की क्रय–षक्ति में कमी हो जाती है। इस स्थिति को नियन्त्रित करने के लिए व्यय को नियन्त्रित करना आवश्यक है। यदि मुद्रा स्फीति युद्ध अथवा प्राकृतिक प्रकोपों अथवा आर्थिक विकास के कारण हो रही है, तो व्ययों में कमी करना कठिन हो जाता है।

सरकारी व्ययों में कमी न होने से करों में वृद्धि करके मुद्रा स्फीति को रोका जा सकता है। करों का निर्धारण इस प्रकार से किया जाये कि लोगों की उपभोग प्रवृत्ति में कमी की जा सके। दूसरी ओर बचतों को प्रोत्साहित करने की योजना भी बनायी जानी चाहिए। लोगों के आय प्रवाह को रोका जाना चाहिए। सरकार को आकर्षक ब्याज–दरों की सहायता से लोगो की तरलता पसन्दी को कम करना चाहिए।

7.6 राजकोषीय नीति की सीमाएँ (Limitations of Fiscal Policy)

राजकोषीय नीति की कुछ सीमाएँ निम्नलिखित है–

1. करारोपण की प्रक्रिया में यकायक परिवर्तन करना आसान काम नहीं होता है। करों में वृद्धि करने से जनआक्रोश भड़क सकता है और सरकार करों को कम नहीं करना चाहती है।
2. समयानुसार सरकारी व्ययों में परिवर्तन करना कठिन काम है, क्योंकि सार्वजनिक योजनाओं को जल्दी–जल्दी बदला नहीं जा सकता है।
3. सरकारी व्यय प्रायः निजी व्यय का ही स्थान ले पाता है, सार्वजनिक व्यय का जितना अधिक विस्तार होता जाता हैं, निजी व्यय कम होता जाता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार स्वयं उद्योग–धन्धों का संचालन करने लगे, तो निजी विनियोग कम हो जायेगा। अतः यह कहना कि सार्वजनिक व निजी व्यय में वृद्धि करके राजकोषीय नीति को प्रभावी किया जा सकता है, गलत होगा।
4. राजकोषीय नीति स्फीति की स्थिति को नियन्त्रित करने में सफल नहीं हो पाती है, मंदी–काल में भी राजकोषीय नीति द्वारा रोजगार बढ़ाने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ सामने आती हैं।
5. राजकोषीय नीति पर राजनीतिक दबाव होता है, क्योंकि राजस्व तथा व्यय से सम्बन्धित सभी परिवर्तनों के लिए संसद की स्वीकृत लेनी होती है।

उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति के सम्मिलित प्रयासों से अर्थव्यवस्था सही दिशा दी जा सकती है।

7.7 राजकोषीय नीति के उपकरण (Tools of Fical Policy)

राजकोषीय नीति के प्रमुख उपकरण अथवा भाग निम्नलिखित है–

1. **करारोपण अथवा सार्वजनिक आय–** आर्थिक विकास का आधार कर नीति तथा सरकार की आय होती है। अतः करारोपण करदान क्षमता के आधार पर किया जाना उचित है। करारोपण इस प्रकार से किया जाय कि उसका बुरा प्रभाव काम करने की इच्छा व योग्यता पर न पड़े, साथ ही सरकार को आय भी प्राप्त हो सके।
2. **सार्वजनिक व्यय–** राजकोषीय नीति का यह महत्वपूर्ण उपकरण है, सार्वजनिक व्यय का उद्देश्य लोक कल्याण होना चाहिए। सार्वजनिक व्यय उत्पादक होना चाहिए जिससे आधारभूत ढाँचे को व्यवस्थित किया जा सके। सार्वजनिक व्यय इस प्रकार से किया जाय कि इसका बुरा प्रभाव काम करने की

इच्छा व योग्यता पर नहीं पड़े। देश की आवश्यकता के अनुरूप ही सार्वजनिक व्यय होना चहिए। उदाहरण के लिए, शिक्षा, स्वास्थ्य, विद्युत, सिंचाई, यातायात, श्रम कल्याण, बीमा सुरक्षा, वृद्धावस्था पेंशन, बाल विकास आदि कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया जाना अर्थव्यवस्था के विकास में सहायक होगा। यदि सार्वजनिक व्यय गैर–विकास के कार्यक्रमों में किया जाता है, तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।

3. **सार्वजनिक ऋण नीति –** राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सार्वजनिक ऋणों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये ऋण आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के होते है। एक विकासशील देश साधनों की कमी के कारण अपना समुचित विकास नहीं कर पाता है फलतः उसे ऋण लेकर अपनी अर्थव्यवस्था का संचालन करना होता है। यदि ऋणों का उपयोग सोच–समझ कर किया जाता है, तो इसका लाभ देश को मिलता है। अविवेकपूर्ण ऋण से मूलधन व ब्याज की अदायगी की समस्या पैदा हो जाती है।

4. **बजटीय नीति –** राजकोषीय नीति का यह महत्वपूर्ण विभाग है, बजट वर्षभर का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। इसमें आय व व्यय का हिसाब होता है। बजट सरकार का मार्गदर्शक होता है। इसमें करों, शुल्कों तथा घाटे की पूर्ति की व्यवस्था तथा व्ययों का विवरण होता है। वर्तमान में बजटों का महत्व नहीं रह गया है। प्रत्येक सरकार जनहित में आय से अधिक व्यय करके समाज व देश में अपनी प्रसिद्धि व साख को बनाना चाहती है। अतः आज घाटे के बजटों का चलन है, परन्तु प्रत्येक सरकार लगातार असामान्य घाटे के बजट को नहीं बनाना चाहती है, क्योंकि एक सीमा के बाद घाटे का बजट देश की अर्थव्यवस्था को चौपट कर देता है।

बोध प्रश्न अ (Check Your Progress)

1. राजकोषीय नीति के उद्देश्य बताइये।

....

....

2. राजकोषीय नीति के उपकरण क्या है?

....

....

3. केन्द्रीय सरकार के बजट में राजकोषीय घाटे की अवधारणा को बताइये।

....

....

7.8 भारतीय की राजकोषीय नीति (Fiscal policy of India)

भारत की राजकोषीय नीति के प्रमुख अंग वे हैं जिनकी चर्चा ऊपर की गयी है। आगे विस्तार से भारत के सन्दर्भ में इन अंगो की व्याख्या की गयी है। यहाँ राजकोषीय नीति का जो आधार स्तम्भ बजट है उसके बारे में जानकारी देना आवश्यक है।

बजट (Budget) – देश के वित्त मन्त्री द्वारा साल भर का जो लेखा भारत की संसद में स्वीकृति के लिए रखा जाता है उसे बजट कहा जाता है। इसमें विशेष रूप से आय–व्यय का लेखा होता है जिसे हम वार्षिक आर्थिक विवरण भी कहते है।

बजट के भाग (Parts of the Budget) – भारत सरकार के बजट को दो भागों में बाटा गया है–

1. राजस्व बजट तथा, 2. पूँजीगत बजट

1. **राजस्व बजट (Revenue Budget) –** राजस्व बजट में

(i) राजस्व आय अथवा प्राप्तियों का तथा (ii) राजस्व व्यय का विवरण होता है।

संक्षेप में इन दोनों की व्याख्या आगे दी जा रही है–

(i) **राजस्व आय (Revenue Receipts) –** राजस्व आय अथवा राजस्व प्राप्तियों (Revenue Receipts) के अन्तर्गत उस आय को रखा जाता है जिसका सम्बन्ध उसी वित्तीय वर्ष से होता है। इसे चालू खाता, नाम से भी जाना जाता है। इस खाते में आय के उन स्त्रोतों को शामिल किया जाता है जिनके बदले में कोई भुगतान नहीं करना होता है, जैसे करों द्वारा प्राप्त आय, सार्वजनिक उपक्रमों के द्वारा अर्जित लाभ सरकारी उधारों पर प्राप्त ब्याज तथा गैर–कर आय। राजस्व प्राप्तियों से सरकार की देयताओं में किसी प्रकार से वृद्धि नहीं होती है। राजस्व प्राप्तियों के दो भाग है, कर आगम व गैर–कर आगम।

(ii) **राजस्व व्यय (Revenue Expenditure) –** राजस्व व्यय को दो भागों में बाँटा गया है–

(अ) गैर–विकासात्मक व्यय।

(ब) विकासात्मक व्यय।

(अ) **गैर–विकासात्मक व्यय –** इसके अन्तर्गत प्रमुख व्यय हैं, जैसे–सरकारी सेवाओं पर होने वाला व्यय। उदाहरण के लिए–प्रतिरक्षा व्यय, प्रशासनिक सेवाओं पर व्यय, आर्थिक सेवाओं पर व्यय तथा

सामाजिक तथा सामुदायिक सेवाओं पर व्यय, ब्याज अदायगी, अनुदान व सब्सिडी आदि पर व्यय।

(ब) **विकासात्मक व्यय** – इसके अन्तर्गत प्रमुख व्यय हैं, जैसे–सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाओं पर व्यय, सामान्य आर्थिक सेवाओं पर व्यय, कृषि, उद्योग, खनिज, उर्वरक सब्सिडी, विद्युत, सिचाई, लोक निर्माण, परिवहन तथा राज्यों का सांविधिक अनुदान आदि।

2. **पूँजी बजट (Capital Budget)** – पूँजीगत बजट के दो भाग हैं– (i) पूँजीगत व्यय तथा (ii) पूँजीगत प्राप्तियाँ। नीचे दोनों की संक्षिप्त व्याख्या दी जा रही है–

(i) **पूँजीगत व्यय (Capital Expenditure)** – पूँजीगत व्यय तो चालू वर्ष में होते हैं, परन्तु इनका लाभ भविष्य में मिलता है। इसके अन्तर्गत प्रमुख प्रमुख रूप से– अस्पताल के भवनों का निर्माण, डाक्टर तथा नर्सों की नियुक्ति, दवाएँ, वेतन आदि आते हैं।

(ii) **पूँजीगत प्राप्तियाँ – (Capital Receipts)** – इसके अन्तर्गत आय के उन समस्त स्त्रोतों को रखा जाता है, जिनका हमें बदले में भुगतान करना आवश्यक होता है। लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि भुगतान उसी वित्तीय वर्ष में न होकर आगामी किसी वित्तीय वर्ष में किये जाते हैं। इसके अन्तर्गत, निबल घरेलू ऋण, निबल विदेशी ऋण, ऋण वापसी, लोक लेखा प्राप्तियाँ आदि आते हैं।

भारत की राजकोषीय नीति के दोष (Drawbacks Of Indian Fiscal Policy)

भारत की राजकोषीय नीति में निम्नलिखित दोष देखे गये हैं–

1. **लोचता का अभाव** – राजकोषीय नीति का लोचपूर्ण न होना इस बात के लिए कहा जाता है कि हमारे देश की कर प्रणाली को जितना लोचदार होना चाहिए था वह इतनी लोचदार नहीं है। बार–बार कर प्रणाली में सुधार के लिए अनेक समितियों का गठन भी किया गया, परन्तु इनसे भी बहुत बड़ा फायदा नहीं हुआ। भारत सरकार को करों से जितनी आय प्राप्त होनी चाहिए थी वह उसे प्राप्त नहीं हो सकी है।

2. **अव्यावहारिक कर प्रणाली** – भारत की कर प्रणाली परम्परागत है। इसमें परिवर्तन तो किये जाते रहे हैं, परन्तु अभी भी हम इसे वैज्ञानिक स्वरूप नहीं दे पाये हैं।

3. **घाटे की वित्त व्यवस्था** – देश के प्रत्येक बजट में घाटे की वित्त व्यवस्था को अपनाया जाता रहा है। इसमें नियन्त्रण का

न लगाया जाना वित्तीय कुप्रबन्ध का द्योतक है। लगातार घाटे के बजटों के बनाये जाने के कारण कीमतों में वृद्धि व मुद्रा प्रसार की समस्या बनी हुई है।

4. **बचतों का कम होना** – भारत में आज की बचत दर जीडीपी की 23.4 प्रतिशत है जबकि सिंगापुर में 49.9 प्रतिशत, मलेशिया में 4.7 प्रतिशत, व चीन में 39 प्रतिशत है। बचतों के कम होने के कारण पूँजी के निर्माण में भी कमी होती है। हमारे देश की राजकोषीय नीति बचतों को प्रोत्साहित करने में सफल नहीं हो पायी है।

5. **प्रशासनिक व्ययों में वृद्धि** – देश में प्रशासनिक व्ययों में भारी वृद्धि होती आयी है। आन्तरिक एवं बाह्य सुरक्षा सम्बन्धी व्यय तो करने ही होते हैं, उन्हें रोका नहीं जा सकता हैं परन्तु प्रशासनिक व्ययों में कुछ व्यय ऐसे हैं जिन्हें हम अपव्यय कह सकते हैं। व्ययों को नियन्त्रित करने के अनेक प्रयत्न किये जाते रहे हैं, परन्तु अपव्ययों को रोका नहीं जा सका है। अनुत्पादक व्ययों का देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

6. **विदेशी ऋणों में वृद्धि** – सार्वजनिक व्ययों में लगातार वृद्धि और आन्तरिक साधनों में कमी के कारण देश को विदेशी ऋणों पर निर्भर रहना पड़ा है। आज भी देश, विदेशी ऋणों की देनदारी में बुरी तरह से फँस चुका है। प्रतिवर्ष बहुत बड़ी राशि ब्याज के भुगतान में व्यय करनी पड़ती है। अतः राजकोषीय नीति को इसमें भी सफलता नहीं मिली है।

उपर्यक्त दोषों के कारण भारत की राजकोषीय नीति अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो पा रही है।

7.8.1 राजकोषीय नीति में सुधार के उपाय (Suggestions For Improvement in Fiscal Policy)

भारत की राजकोषीय नीति में सुधार के लिए निम्नलिखित कुछ सुझाव दिये जा सकते हैं–

1. काले धन के कारण देश में दोहरी अर्थव्यवस्था की लगातार वृद्धि हो रही है। इससे देश को भारी क्षति का सामना करना पड़ रहा है। अतः इसे रोकने के उपाय खोजे जायें।
2. प्रत्यक्ष करों की दर में वृद्धि की जाय, साथ ही परोक्ष करों का विस्तार किया जाय।
3. गैर–योजनागत व्ययों में कमी की जानी चाहिए।

4. सार्वजनिक उपक्रमों की व्यवस्था में सुधार लाया जाय।

5. विदेशी ऋणों पर निर्भरता को कम किया जाना चाहिए।

6. बढ़ते हुए राजस्व घाटे को कम किया जाय।

7. राजकोषीय घाटा उस वर्ष की अनुमानित जीडीपी के 2 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

8. राजकोषीय नीति व मौद्रिक नीति में आपसी तालमेल बैठाया जाय।

7.9 सारांश (Summary)

राजकोषीय नीति से अभिप्राय कुछ निश्चित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए अपने व्यय और करों के बारे में सोच समझकर लिये गये निर्णयों से है। राजकोषीय नीति के मुख्य उद्देश्य देश में आर्थिक संवृद्धि लाभ, रोजगार के अवसर पैदा करना, कीमतों में स्थिरता सुनिश्चित करना, आय की असमानतायें कम करना, विदेशी व्यापार आदि विदेशी विनिमय पर नियंत्रण रखना है। राजकोषीय नीति के उपकरण है करारोपण, सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण, बजट आदि भारत में राजकोषीय नीति के बहुत लाभदायक परिणाम नहीं आये है। इसलिये राजकोषीय नीति में सुधार के उपायों की आवश्यकता है।

7.10 शब्दावली (Key words)

बजट (Budget) : देश के वित्तमंत्री द्वारा साल भर का जो लेखा भारत की संसद में स्वीकृति के लिए रखा जाता है।

सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure) : लोक कल्याण के लिये सरकार द्वारा जो व्यय किया जाता है जैसे शिक्षा, स्वास्थ, विद्युत, सिंचाई, यातायात, जन कल्याण आदि पर व्यय

सार्वजनिक आय (Public revenue) : सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के कर लगाकर जैसे आयकर सम्पत्तिकर, सीमा शुल्क एक्साइज, आदि से आय होती है। उसे सार्वजनिक आय कहते है।

बजटीय घाटा (Budgetary Deficit) : सरकार द्वारा आय ओह व्यय का जो लेखा तैयार किया जाता है यदि उसमें आय कम श्रम व्यय ज्यादा होता है तो इसे बजटीय घाटा करते है।

घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing) : जब बजट में आय से अधिक व्यय का प्रावधान किया जाता है तो इसे पूरा करने के तरीके को घाटे की वित्त व्यवस्था कहते है।

7.11 अभ्यास के प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. राजकोषीय नीति से आप क्या समझते है ? राजकोषीय नीति के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिये।

   What do you understand by fical policy? Explain the objectives of fiscal policy.

2. भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करने में राजकोषीय नीति के महत्व को समझाइये।

   Discusss the importance of Fiscal Policy in accelerating the economic development of developing country like India.

3. राजकोषीय नीति की आर्थिक स्थिरता तथा पूर्व रोजगार को लाने तथा बनाये रखने में भूमिका का मूल्यांकन कीजिये।

   Evalate the role of fiscal policy in bringing about and maintaing economic stability and full employment.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Question)

4. राजकोषीय नीति की सीमायें बताइये।

   State the limitations of Fical policy.

5. राजकोषीय नीति के उपकरण क्या हैं ?

   What are the tools of Fical Policy ?

6. भारतीय राजकोषीय नीति में सुधार के उपाय बताइये।

   Discuss the suggestions for improvement in Fiscal Policy of India.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

M.COM-02

व्यावसायिक पर्यावरण

(Business Environment)

खण्ड

3

वैधानिक रूपरेखा (Legal Framework)

इकाई - 1 5

मूल्य वितरण नियंत्रण

(Price and Distribution Control)

इकाई - 2 23

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

(Consmer Protection Act 1986)

इकाई - 3 39

भारतीय पूंजी बाजार

(Indian Capital Market)

इकाई - 4 56

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000

(Information Technology Act 2000)

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव — **कुलपति - अध्यक्ष**

डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल — वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक

श्री एम0 एल0 कनौजिया — कुलसचिव - सचिव

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एस0 ए0 अंसारी — निदेशक, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 आर0 बी0 श्रीवास्तव — एसो0 प्रोफेसर, फिरोज गाँधी राजकीय महाविद्यालय, रायबरेली

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से श्री एम0 एल0 कनौजिया, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2010

मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खण्ड-3 परिचय

किसी भी व्यवसाय में उससे सम्बन्धित उत्पादों एवं सीमाओं के मूल्य, उपभोक्ताओं की संतुष्टि एवं उपभोक्ता संतुष्टि से सम्बन्धित नियमों एवं अधिनियमों, पूंजी बाजार की संरचना एवं उसको प्रभावित करने वाले कारकों आदि की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

मूल्य का तात्पर्य केवल मौद्रिक रूप से आवश्यक नहीं है वरन उपभोक्ता के लिए वस्तु की उपयोगिता एवं बाजार में उपस्थित अन्य प्रतिस्पर्धियों की रणनीतियों के लिहाज से भी आवश्यक होता है। जिसकी व्याख्या विस्तृत रूप से इकाई 1 में मूल्य वितरण नियन्त्रण के अन्तर्गत की गयी है। इसी प्रकार उपभोक्ताओं का विक्रेताओं के द्वारा कोई शोषण न हो पाए इसलिए सरकार के द्वारा विभिन्न उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम बनाए गए हैं जिसका उल्लेख इस खण्ड की दूसरी इकाई में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के तहत उपभोक्ता के विभिन्न हितों की चर्चा की गयी है।

आज के युग में जैसे-जैसे कम्पनियों की साझेदारी बढ़ती है तथा वैश्विक व्यापार का प्रचलन बढ़ा है वैसे-वैसे आम आदमी की भी पहुँच पूँजी बाजार तक बढ़ी तथा उसकी रूचि निजी कम्पनियों में निवेश में बढ़ी है। पूँजी बाजार में आधुनिक रूप से समझाने के लिए इस इकाई में विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है।

इसी प्रकार सूचना औद्योगिकी के बढ़ते प्रयोग के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए चतुर्थ इकाई में विस्तृत चर्चा की गयी है।

इकाई 1 : मूल्य एवं वितरण नियंत्रण

इकाई रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 मूल्य का अर्थ
1.3 मूल्य सिद्धान्त
1.4 मूल्य के प्रकार
1.5 मूल्य तंत्र तथा बाजार तंत्र
1.6 मूल्य वृद्धि : मुद्रा स्फीति
1.7 भारत के मूल्य नियंत्रण
1.8 सार्वजनिक वितरण प्रणाली
1.9 सरकारी अनुदान
1.10 सारांश
1.11 संदर्भ ग्रन्थ
1.12 बोध प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न का वर्णन कर सकेंगे :

- मूल्य का अर्थ
- मुद्रा स्फीति का अर्थ
- भारत में मूल्य नियंत्रण के उपाय
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली
- सरकारी अनुदान का अर्थ व इसके प्रकार।

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में मूल्य का अर्थ, इसके प्रकार, मूल्य सिद्धान्त, मूल्य नियन्त्रण के विभिन्न उपायों, मुद्रास्फीति का अर्थ व मुद्रा स्फीति में वृद्धि के कारणों को जानेंगे।

साथ ही मूल्य नियंत्रण के विभिन्न उपायों को समझेंगे। इस इकाई द्वारा आपकों यह भी ज्ञात होगा कि भारत सरकार ने मूल्य को नियंत्रित करने के लिये सार्वजनिक वितरण प्रणाली को लागू किया व सरकारी अनुदानों को उपलब्ध कराया।

1.2 मूल्य का अर्थ (Meaning of Price)

किसी वस्तु या साधन की कीमत से तात्पर्य यह है कि उस वस्तु या सेवा को प्राप्त करने के लिए क्या भुगतान करना होता है? सामान्यतः यह भुगतान मुद्रा के रूप में किया जाता है। अतः कीमत मुद्रा की वह मात्रा है जिसका भुगतान वस्तु या सेवा की एक इकाई के विनिमय के बदले में किया जाता है। यह निरपेक्ष कीमत (Absolute Price) है, लेकिन भुगतान के रूप में नहीं भी हो सकता है। सापेक्ष कीमत (Relative Price) को अन्य वस्तु की मात्रा के रूप में व्यक्त किया जाता है, जिसे बदले में देना पड़ता है। यदि सभी कीमतों में एक ही दर पर वृद्धि हो तो निरपेक्ष कीमतें (Absolute Prices) बढ़ेंगी, किन्तु सापेक्ष कीमतें अपरिवर्तित होंगी।

1.3 मूल्य सिद्धान्त (Price Theory)

मूल्य सिद्धान्त का सम्बन्ध स्वतन्त्र बाजार व्यवस्था की कीमतों के विश्लेषण से है। बाजार की मुख्य बात क्रेताओं और विक्रेताओं के आचरण का विश्लेषण करना है। अतः बाजार का विश्लेषण निम्न तीन उप-सिद्धान्तों के अन्तर्गत किया जाता है।, यथा

(i) क्रेताओं के आचरण का सिद्धान्त, अर्थात् मांग का सिद्धान्त;

(ii) विक्रेताओं के आचरण का सिद्धान्त पूर्ति का सिद्धान्त; तथा

(iii) बाजार के आचरण का सिद्धान्त जहाँ विभिन्न बाजारों - पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकारी, प्रतिस्पर्द्धा, अल्पाधिकार, एकाधिकार - में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की अन्तः क्रियाओं द्वारा कीमतों का निर्धारण होता है। इसे व्यक्तिगत कीमतों के निर्धारण का सिद्धान्त भी कहा जाता है।

व्यक्तिगत कीमतों के निर्धारण के अतिरिक्त कीमत सिद्धान्त सामान्य कीमत स्तर (General Price Level or Aggregate Price Level) में परिवर्तन तथा साधनों के आवंटन के सिद्धान्तों का भी विश्लेषण करता है।

1.4 मूल्य के प्रकार (Types of Price)

परिवर्तनशील मूल्य (Flexible Price)- जिस बाजार में पूर्ति तथा मांग में परिवर्तन के अनुसार कीमतों में परिवर्तन होता है, उन्हें परिवर्तनशील कीमत कहा जाता है है।

स्थिर कीमत (Fixed Price)- जिस बाजार में पूर्ति तथा मांग में परिवर्तन के अनुसार कीमतों में परिवर्तन नहीं होता वह स्थिर कीमत है।

संचालित कीमत (Administered Price)- संचालित कीमतें वे हैं जिनका निर्धारण सचेतन रूप में किसी एक निर्णय लेने वाली बॉडी जैसे-एकाधिकारी फर्म, कार्टेल, सरकारी एजेन्सी आदि द्वारा किया जाता है, न कि बाजार-शक्तिओं की स्वतन्त्र क्रियाओं के द्वारा। संचालित कीमत की सम्भावना वहां अधिक होती है जहाँ कोई वस्तु एकाधिकारी फर्म द्वारा या सरकारी संस्था के द्वारा बेची जाती है। पूर्ण प्रतियोगिता में फर्मों के लिए कीमत दी हुई होती है (Firms are price-takers) और इन्हीं कीमतों के अनुसार वे परिमाण का समायोजन करते हैं। बाजार की अन्य स्थितियों में फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न (Perfect substitutes) नहीं होती है। ऐसी अवस्था में कीमत निर्धारित करने में प्रत्येक फर्म को कुछ स्वतन्त्र अधिकार हासिल होता है। ऐसी परिस्थितियों में अर्थशास्त्रियों का कहना है कि फर्म कीमत संचालित (Administer) करते हैं तथा वे कीमत-निर्धारक (Price makers) होते हैं। अतः संचालित कीमत वह कीमत है जिसका निर्धारण व्यक्तिगत फर्म के चेतन निर्णय द्वारा होता है, गैर-वैयक्तिक बाजार शक्तियों द्वारा नहीं।

1.5 मूल्य व्यवस्था तथा बाजार तन्त्र (Price System And Market Mechanism)

कीमत व्यवस्था से तात्पर्य साधनों के आवंटन की उस व्यवस्था से है जो कीमतों की स्वतन्त्र गतिविधि पर आधारित है। उस अर्थव्यवस्था में जहाँ बाजार को बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के क्रिया करने दिया जाता है, वहाँ लाखों-करोड़ों क्रेताओं तथा विक्रेताओं के निर्णय को समन्वित करना तथा उनमें आपसी तालमेल बनाने का काम कीमतों में परिवर्तन के द्वारा होता है। कीमत एक स्वचालित संकेत की तरह काम करते हुए करोड़ों व्यक्तिगत निर्णय लेने वाली इकाइयों को समन्वित (Co-ordinate) करती है। इस भूमिका के माध्यम से कीमत व्यवस्था एक ऐसा उपकरण (Mecha-

nism) प्रदान करती है जो मांग तथा पूर्ति में परिवर्तन द्वारा साधनों की आवंटन-सम्बन्धी कार्यक्षमता को प्रभावित करती है। इसलिए इस व्यवस्था को कीमत तन्त्र भी कहा जाता है।

बाजार को एक तन्त्र के रूप में देखना चाहिए जिसके उपयोग से क्रेता एवं विक्रेता किसी वस्तु या सेवा की मात्रा तथा कीमतों को निर्धारित करते हैं तथा वस्तुओं एवं सेवाओं का विनियम करते हैं। बाजार अर्थव्यवस्था (Market Economy) बाजारों तथा कीमतों के माध्यम से लोगों, क्रियाओं एवं व्यवसायों को समन्वित करने का एक विस्तृत एवं जटिल यन्त्र है। यह एक संचार साधन है जो करोड़ों-अरबों भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की जानकारियों एवं क्रियाओं को इकट्ठा करता है। केन्द्रीय जानकारी या गणना के बिना ही बाजार उत्पादन एवं वितरण की समस्या, जिसका सम्बन्ध करोड़ों अनजान चरों (Variables) तथा सम्बन्धों से होता है, का समाधान करता है। किसी ने बाजार की रूपरेखा तैयार नहीं की है, फिर भी यह सुचारू ढंग से कार्य करता है।

बाजार व्यवस्था में प्रत्येक वस्तु की कीमत होती है। कीमतें उन शर्तों का प्रतिनिधित्व करती हैं जिन पर लोग तथा फर्म स्वेच्छा से विभिन्न वस्तुओं का विनिमय करते हैं।

कीमतें उपभोक्ताओं तथा उत्पादनकर्ताओं के लिए संकेत (Signal) का भी काम करती हैं। कीमतों में वृद्धि होने पर उपभोक्ता कम वस्तुएँ खरीदतें हैं तथा उत्पादकों को उत्पत्ति बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। कीमतों के घटने पर उपभोक्ताओं को अधिक खरीद करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है तथा उत्पादनकर्ता को उत्पत्ति कम की प्रेरणा। कीमतें बाजार तन्त्र का साम्य चक्र (Balance Wheel) हैं।

वर्ष 2004-05 में यदि हम कीमतों की गतिविधियों का अध्ययन करें तो देखते हैं कि इस दौरान स्फीति की वृद्धि दर तेज हो गई और फरवरी 5 को स्फीति की दर गत वर्ष की तुलना में 7.33 प्रतिशत हो गई। इसमें देश का आर्थिक संतुलन बिगड़ गया। इसके मुख्य कारण हैं- कुछ इलाकों में वर्षा की कमी और अन्य कुछ में बाढ़ की स्थिति और तेल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमत 49 डालर प्रति बैरल तक बढ़ जाना जिससे मजबूर होकर सरकार तेल की कीमतों पेट्रोल और डीजल की बढ़ाने के लिये मजबूर हो गई। चूंकि तेल की कुल मांग का 10 प्रतिशत आयात किया जाता है, इस

कारण देश की अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव पड़ेगा।

1.6 मुद्रा स्फीति का अर्थ (Meaning of Inflation)

भारत में मूल्य नियंत्रण के विभिन्न उपायों के बावजूद भी वस्तुओं के मूल्यों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। सरकार ने वितरण प्रणाली, सरकारी रियायतें (Rebates)जैसे मूल्य नियंत्रण के अनेक उपाय किये हैं किन्तु आर्थिक उदारीकरण, भूमण्डलीकरण आदि के द्वारा भारत में सामान्य मूल्य-स्तर में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है जिसके परिणास्वरूप मुद्रा के मूल्य में कमी आना स्वाभाविक है। इस स्थिति को मुद्रा स्फीति कहा जाता है।

मुद्रास्फीति का अर्थ है सामान्य कीमत स्तर में लगातार वृद्धि तथा मुद्रा की कीमत में लगातार ह्रास, सामान्यतः मुद्रास्फीति के कारणों की व्याख्या दो दृष्टिकोणों से की जाती है। लागत पक्ष से तथा मांग पक्ष से।

मांग पक्ष से मुद्रास्फीति की व्याख्या को मांग प्रेरित (Demand - Pull) मुद्रास्फीति कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि का कारण है विद्यमान कीमतों पर उपलब्ध पूर्ति की तुलना में वस्तुओं और सेवाओं की मांग का अधिक होना। इस मुद्रा स्फीति की विवेचना अक्सर स्फीतिक अन्तराल (Inflationary Gap) के रूप में की जाती है।

मुद्रास्फीति की दूसरी व्याख्या लागत पक्ष से की जाती है। लागत में वृद्धि सामान्य कीमत स्तर को ऊपर की ओर ले जा सकती है, इसलिए इसे लागत मुद्रास्फीति (Cost inflation) या लागत प्रेरित मुद्रास्फीति (Cost-Push inflation) कहा जाता है। लागत में वृद्धि के कई कारण हो सकते हैं, जैसे उत्पादकता में वृद्धि की तुलना में मजदूरी में अधिक वृद्धि, एकाधिकारी या अल्पाधिकारी द्वारा लाभ में वृद्धि के लिए कीमतों में वृद्धि, कर में वृद्धि के कारण लागत में वृद्धि आदि।

मूल्य की स्फीतिकारी वृद्धि के कारण -

- ♦ जनसंख्या का बढ़ता हुआ आकार,
- ♦ अन्तर्वर्ती और पूंजी वस्तु क्षेत्र में विनियोग की ऊंची दर,
- ♦ बढ़ता हुआ सरकारी व्यय
- ♦ न्यूज वित्त प्रबन्ध,

- ♦ मुद्रा पूर्ति में वृद्धि
- ♦ काले धन की क्रियाशीलता।

1.7 भारत में मूल्य नियंत्रण (Price Control in India)

सरकार मूल्यों को नियन्त्रित करने के उपाय कर रही है। स्थिति को स्थिर रखने तथा सट्टेबाजों को दुर्लभता की स्थिति का दुरूपयोग करने से रोकने के लिए व्यापक उपाय अपनाए गए। चूंकि मूल्य वृद्धि की समस्या मूल आवश्यकताओं की वस्तुओं के पूर्ति में कमी तथा मुद्रा पूर्ति (Money supply) और बैंक ऋण में तीव्र वृद्धि का परिणाम थी, अतः मुद्रा-संभरण का वस्तुओं का मूल्य नियत करने और उसके वितरण से सम्बन्धित विभिन्न उपायों का प्रयोग किया गया है।

मांग की व्यवस्था (Demand Management) - 1973-74 के पश्चात् कीमत-नीति का बल मांग को सीमित करने वाले राजकोषीय (Fiscal) एवं मौद्रिक उपायों पर रहा है। परन्तु संघीय एवं राज्यीय सरकारें दोनों ही अपने व्यय को नियंत्रित करने में विफल रहीं।

(1) राजकोषीय उपाय (Fiscal Measures) - जुलाई 1974 में भारत सरकार ने तीन अध्यादेश जारी करके उपभोक्ताओं के हाथ में व्यय-योग्य मौद्रिक आय (Disposable money incomes) को कम करने का प्रयास किया। अतिरिक्त वेतन (अनिवार्य जमा) अध्यादेश (1974) के आधीन मजदूरी में सभी प्रकार की वृद्धि एक वर्ष के लिए रोक दी गई। जनवरी 1984 में भारत सरकार ने सार्वजनिक व्यय को कम करने के एकमुश्त कार्यक्रम की घोषणा की जिसके आधीन सरकारी क्षेत्र में नयी भर्ती पर रोक लगा दी गई और सरकारी क्षेत्र में किए जाने वाले बहुत से व्यर्थ - व्यय को काट दिया गया। किन्तु व्यवहार में सरकार करदाताओं के पैसे को बड़ी लापरवाही से खर्च कर रही है और इसके परिणामस्वरूप कीमतों में वृद्धि को रोकने की अपेक्षा इनमें तेजी से वृद्धि हुई है।

1990-91 के पश्चात् सरकार ने यह महसूस किया कि राजकोषीय घाटे को कम करना चाहिए ताकि स्फीति नियन्त्रित की जा सके। 1991-92 के बजट में पहला कदम उठाया गया और बजट घाटे को जो 1990-91 में सकल घरेलू उत्पाद का 8.4 प्रतिशत था, कम करके 1991-92 में 6.2 प्रतिशत और 1992-93 में कम करके

4.9 प्रतिशत पर लाया गया। इसके पश्चात् सरकार राजकोषीय घाटे को कम करने में विफल हुई और यह सकल घरेलू उत्पाद के 7 प्रतिशत के इर्द-गिर्द रहा। किन्तु सरकार ने तदर्थ राजकोषीय पत्रों (Adhoc treasury bills) जारी कर रिजर्व बैंक द्वारा उधार प्राप्त करने की सीमा 6,000 करोड़ रूपये कर दी और इस प्रकार नयी करेन्सी जारी करने की प्रवृत्ति कम कर दी।

इन उपायों के साथ मौद्रिक उपायों की सहायता से सरकार मुद्रा-संभरण की मात्रा कम करके 1995-96 के पश्चात् स्फीतिकारी दबाव को कम कर पायी है।

(2) मौद्रिक उपाय – भारतीय रिजर्व बैंकों की मौद्रिक नीति सामान्य और चयनात्मक साख नियन्त्रण उपायों (Selective credit control measures) को लागू करने की रही है। इसका मुख्य लक्षण वाणिज्य बैंकों के साख-सृजन और लागत को प्रभावित करना था ताकि बैंक साख विस्तार के कारण वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि न हो। रिजर्व बैंक ने चयनात्मक साख नियन्त्रण पर ही विशेष बल दिया है ताकि सट्टापूर्ण जमाखोरी (Speculative hoarding) को (खासतौर पर खाद्यान्नों, रूई, तिलहनों, तेल, चीनी और सूत्री वस्त्र) निरुत्साहित किया जा सके।

अस्सी और नब्बे के दशक के दौरान भारत सरकार की मौद्रिक नीति अनिवार्यतः अत्यधिक तरलता (Liquidity) को रोकने की रही है। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा गया कि उत्पादक एवं प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाए। मुद्रा एवं साख के विस्तार पर कड़ा नियन्त्रण करने के उद्देश्य से सितम्बर 1981 में नकद आरक्षण अनुपात (Cash reserve ratio) 6 प्रतिशत से बढ़ाकर धीरे-धीरे 15 प्रतिशत के अधिकतम स्तर पर कर दिया गया। इन उपायों के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त तरलता (Liqidity) को समेटा गया और इसके फलस्वरूप मौद्रिक एवं साख विस्तार मर्यादित हो गया। अतः रिजर्व बैंक ने ऐसी मौद्रिक नीति अपनायी जिससे मुद्रा संभरण की वृद्धि मन्द हो जाए और अर्थव्यवस्था में तरलता की मात्रा कम की जा सके।

सामान्यतया, भारतीय रिजर्व बैंक अपनी मौद्रिक नीति का प्रयोग उत्पादन में वृद्धि और सामान्य कीमत स्तर के नियंत्रण के बीच संतुलन बनाने के लिए करता है। सामान्यता, भारतीय रिजर्व बैंक नकद आरक्षण अनुपात (Cash Reserve Ratio), वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liqudity Ratio) और खुले बाजार की

क्रियाओं द्वारा व्यापारिक प्रतिसार (Recession) के समय बैंक साख और व्यापार - क्रिया का विस्तार करता है परन्तु स्फीति के समय रिजर्व बैंक, बैंक साख का संकुचन करता है और व्यापार एवं सट्टेबाजी की क्रियाओं पर रोक लगाता है।

पूर्ति प्रबन्धन (Supply Management) – पूर्ति प्रबन्धन का सम्बन्ध पूर्ति की मात्रा और इसकी वितरण प्रणाली से होता है। वस्तुओं के स्तर पर सरकार ने चावल, गेहूं, चीनी, गुड़ आदि जनोपयोगी वस्तुओं के मूल्य नियंत्रित करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार ने निम्न उपाय किये हैं-

(I) अधिकतम मूल्य नियत करना – जमाखोरी और सट्टेबाजी (Hoarding and Speculation) की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करने के लिए सरकार ने राज्य सरकारों (State Government) से खाद्यान्न के थोक और फुटकर मूल्य नियत करने को कहा। इसके अतिरिक्त सरकार कृषि कीमत आयोग की सिफारिशों के आधार पर मुख्य फसलों की वसूली के न्यूनतम मूल्य भी नियत करती है। साथ ही अन्य महत्वपूर्ण वस्तुओं, अर्थात् कपड़ा, चीनी, वनस्पति आदि की कीमतें भी नियन्त्रित की गई।

(II) द्वैध कीमत प्रणाली – सरकार ने चीनी, सीमेंट और कागज जैसा वस्तुओं के लिए द्वैध कीमत-प्रणाली (Dual pricing system) लागू की ताकि कमजोर वर्गों को इन वस्तुओं की एक निश्चित मात्रा नियन्त्रित कीमतों पर उपलब्ध कराई जा सके। अन्य वर्ग इन वस्तुओं को खुले बाजार में ऊंची कीमत पर क्रय कर सकते हैं। द्वैध कीमत प्रणाली अपने उद्देश्य में विफल रही, इससे बाजार में भ्रम पैदा हुआ और कीमत की गतिविधि में खलबली पैदा हो गई।

(III) खाद्यान्नों के पूर्ति में वृद्धि – सरकार खाद्यान्नों की कमी के वर्षों में खाद्यान्न आयात द्वारा इनके संभरण को बढ़ाने का प्रयास करती है। 1970-80 और 1980-90 के दशक के दौरान केन्द्र सरकार ने हरित क्रांति की सफलता का लाभ उठाया और खाद्यान्नों के संकट-निरोधक स्टॉक (Buffer stockes) कायम किए। एक समय पर तो यह स्टॉक बढ़कर जुलाई 2002 में 630 लाख टन हो गया। सरकार का दृढ़ - विश्वास था कि यदि वसूली की मात्रा बढ़ा दी जाए, तो इसके फलस्वरूप जमाखोरों तथा सट्टेबाजों की असामाजिक क्रियाओं के प्रभाव को कम करने में सहायता

मिल सकेगी। ऐसा होने पर ही कीमतों में वृद्धि को रोका जा सकता है। सरकार ने बफर-स्टाक कम करने के लिए खाद्यान्नों का निर्यात किया और अप्रैल 2004 तक इसे घटा कर 200 लाख टन कर दिया।

(IV) तिलहनों और दालों की समस्या - हाल ही के वर्षो में खाद्य, तेलों, दालों, चाय और चीनी की कीमत में वृद्धि के कारण सामान्य कीमत-स्तर में वृद्धि हुई। सरकार ने देश में तिलहनों के उत्पादन बढ़ाने के लिए मध्यम एवं दीर्घकालीन योजनाएँ तैयार की हैं। सरकार ने मूंगफली, सोयाबीन एवं सूर्यमुखी की ऊंची आलम्बन कीमतें (Support prices) भी घोषित की हैं। सोयाबीन और सूर्यमुखी की फसलों को बढ़ाने से देश में खाद्य तेलों के उत्पादन में अधिक वृद्धि संभव है। अल्पकाल में सरकार खाद्य-तेलों के आयात का सहारा लेती रही है, चाहे अब यह बात विदित हो गई है कि आयात से यह जरूरी नहीं है कि देशीय उपभोक्ताओं के लिए कीमतें कम हो जाएं।

इस सम्बन्ध में हमें सरकार द्वारा अन्य सभी कृषि पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए किए गए उपायों को भी दृष्टि में रखना होगा।

(V) सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) - सरकार की नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत बनाना था। इस उद्देश्य ने सरकार ने उचित मूल्य की दुकानों (Fair price shops) का जाल बिछा दिया। इसकी कुल संख्या 4 लाख हो गई और ये 50 करोड़ जनसंख्या को खाद्यान्न और चीनी का वितरण करती है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली से दो लाभ प्राप्त होते हैं- प्रथम, इससे कीमतों को नीचे स्तर पर रखने में सहायता मिलती है, और द्वितीय ये निम्न आय वर्गों को अपेक्षाकृत कम कीमतों पर अनिवार्य वस्तुएँ उपलब्ध कराती थी। सरकारी वितरण प्रणाली का मुख्य दोष यह है कि सरकार ने इनका प्रयोग आन्तरिक उपाय के रूप में किया और जब कभी आन्तरिक उत्पादन में गिरावट आ जाती है या कीमतें बढ़ जाती तो इसका महत्व समझ आता है। इस प्रणाली को और मजबूत बनाया गया है और इसका विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में किया गया है।

(VI) निजी व्यापार पर नियन्त्रण (Control on Private Trade) - मूल्यों की रोकथाम और खाद्यान्न की जमाखोरी तथा सट्टेबाजी का अन्त करने के

उद्देश्य से सरकार ने अनेक राज्यों में खाद्यान्न व्यापारी संघों से भी सहायता ली जो स्वेच्छा से अपनी क्रियाओं को नियन्त्रित तथा व्यापार-आचरण को सुधारने को तत्पर थे। मुनाफे की सीमा निर्धारित करके व्यापारियों की मुनाफाखोरी को रोकने का प्रयत्न किया गया है। व्यापारियों तथा उत्पादकों द्वारा बिना घोषणा किए एक निश्चित सीमा से अधिक खाद्यान्न रखने पर रोक लगा दी गई। भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India) बड़े पैमाने पर अतिरेक-क्षेत्र में क्रय करके न्यूनतम-ग्रस्त क्षेत्रों में खाद्यान्न बेच रहा है। सितम्बर 1977 के अन्त में, दालें एवं खाद्य-तेल (भण्डार नियन्त्रण) आदेश जारी किया गया जिसके आधीन अनिवार्य वस्तु नियन्त्रण कानून की धाराओं के अनुसार थोक एवं परचून विक्रेताओं के लिए स्टॉक की अधिकतम सीमा तय की गई। इसका उद्देश्य व्यापारियों में मुनाफाखोरी को कम करना था।

(VII) अन्य प्रासंगिक उपाय - पिछले दो वर्षो में सरकार ने स्फीति के नियन्त्रण के लिए निम्नलिखित उपाय किए हैं-

(a) चीनी, दालों आदि के आयात के लिए खुले सामान्य लाइसेंस (Open General Licence) के अधीन आयात की नीति।

(b) केन्द्र सरकार के बजट में व्यापार और टैरिफ नीतियों द्वारा यह सुनिश्चित करना कि औद्योगिक पदार्थों की घरेलू कीमतें प्रतियोगी बनी रहें।

(c) बहुत -सी मदों पर उत्पाद-शुल्क (Excise duty) में कटौती द्वारा औद्योगिक पुनरूत्थान की रफ्तार को तेज कर औद्योगिक वृद्धि को बढ़ावा देना।

भारत की साधारण जनता के लिए बढ़ती हुई स्फीति पिछले कई वर्षों से सबसे महत्वपूर्ण समस्या बनी हुई है। स्फीति पर वर्तमान संदर्भ में काबू पाने के लिए एक ओर राजकोषीय घाटे को कम करना होगा और दूसरी ओर मौद्रिक विस्तार पर नियंत्रण करना होगा। इन मूल उपायों के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि औद्योगिक उत्पादन का पुनरूत्थान एवं विस्तार हो और इस प्रकार खाद्यान्नों एवं अन्य अनिवार्य वस्तुओं जैसे तेल और चीनी के संभरण का प्रबन्ध किया जा सकता है। इन नीतियों की प्रभावी क्रिया पर स्फीति-नियंत्रण की सफलता निर्भर करती है।

1.8 सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली विश्व में सबसे बड़ा वितरण तन्त्र है। 1960-70

के दशक में खाद्य दुर्बलता के समय उपभोक्ता के लिए एक कीमत आलम्बन कार्यक्रम (Price support programme) के द्वारा कीमत स्थिरीकरण (Price stabilisation) के उपकरण के रूप में सार्वजनिक वितरण प्रणाली कार्य करने लगी और निजी व्यापारियों के विरुद्ध एक प्रतिशक्ति के रूप में उभरी क्योंकि व्यापारी दुर्लभता की स्थिति का लाभ उठाते हुये अपने लाभ को अधिकाधिक करने का प्रयास करते थे। इसका मूल उद्देश्य अनिवार्य वस्तुओं (Essential Commodities) जैसे-चावल गेहूँ, चीनी, खाद्य तेल, मिट्टी का तेल आदि को राशन की दुकानों, उचित मूल्य की दुकानों और नियन्त्रित कीमत की दुकानों द्वारा सस्ती कीमत पर उपलब्ध कराकर कीमत स्थिरीकरण व आय हस्तान्तरण करना है।

परन्तु सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन अनाज के क्रय में गिरावट आने का मुख्य कारण निर्गमन कीमत (Issues Price) में असामान्य वृद्धि है। निर्गमन कीमत (Issue Price) में वृद्धि के परिणामस्वरूप उचित कीमत की दुकान (Fair Price Shop) में अनाज की कीमत और बाजार की कीमत में अन्तर कम हो गया। इसके अतिरिक्त, उपभोक्ता को Fair Price Shop पर जो भी किस्म हो, स्वीकार करनी पड़ती थी, परन्तु खुले बाजार में खरीदते समय उपभोक्ता अनाज की किस्म का चुनाव कर सकता था। इन दोनों कारणों के परिणामस्वरूप उपभोक्ता सार्वजनिक वितरण प्रणाली की अपेक्षा खुले बाजार की ओर चले गये।

1.9 भारत में सरकारी अनुदान (Government Subsidies in India)

अनुदान का अनुमान एक मानकीकृत वर्गीकरण के अधार पर तीन श्रेणियों में किया गया है - (i) सार्वजनिक वस्तुएँ, (ii) सर्वहितकारी वस्तुएँ, (Merit Goods) और (iii) गैर-सर्वहितकारी वस्तुएँ (Non-merit goods)।

(i) सार्वजनिक वस्तुएँ (Public Goods) - सार्वजनिक वस्तुओं के सर्वोत्तम उदाहरण राष्ट्रीय रक्षा, पुलिस एवं सामान्य प्रशासन है चूंकि ये सेवाएँ सभी को उपलब्ध होती हैं, इनमें आपसी द्वेष या किसी व्यक्ति को इनके लाभ से वंचित करने का कोई कारण नहीं है। चूंकि ये सेवाएं सभी नागरिकों को उपलब्ध होती हैं, वे किसी को भी इनके लाभ से बाहर नहीं रखतीं। अतः इन वस्तुओं की कीमत निर्धारित नहीं की जा सकती और इस कारण इन्हें अनुदान के परिकलन में शामिल

नहीं किया जाता।

(ii) सर्वहितकारी वस्तुएँ (Merit Goods) - दूसरी श्रेणी की वस्तुओं को सर्वहितकारी वस्तुएँ (Merit Goods) कहते हैं। इन वस्तुओं/सेवाओं के उदाहरण हैं, संक्रामक रोगों (Infectious deseases) के विरुद्ध टीका, पर्यावरण संरक्षण और शिक्षा एवं एक न्यूनतम स्तर तक- सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा। इन वस्तुओं/सेंवाओं के परिणामस्वरूप सामाजिक लाभ, इनके वैयक्तिक उपभोक्ताओं को प्राप्त लाभ के जोड़ से कहीं अधिक होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन वस्तुओं में बहिर्वर्ती लाभ का अंश (Element of externality) विद्यमान होता है जोकि समग्र समाज को लाभ पहुँचाता है। सर्वहितकारी वस्तुओं के अन्य उदाहरण हैं- सड़कें एवं पुल, बाढ़ नियंत्रण, कृषि, अन्तरिक्ष, अणुशक्ति आदि सम्बन्धी अनुसंधान। इन वस्तुओं से प्राप्त होने वाले बहिर्वर्ती लाभ (Externalities) के कारण ये आर्थिक रूप से न्यायोचित माने जाते हैं।

सर्वहितकारी वस्तुओं पर अनुदान को उपलब्ध कराने और उन्हें जारी रखने के बारे में सर्वसम्मति प्राप्त है क्योंकि इनसे बहिर्वर्ती लाभों के रूप में समाज को कहीं अधिक लाभ प्राप्त होता है।

(iii) गैर सर्वहितकारी वस्तुएँ (Non-merit Goods) - तीसरी श्रेणी की वस्तुएं गैर-सर्वहितकारी वस्तुएं (Non-merit goods) हैं जिनके लाभ उपभोक्ताओं को प्राप्त होते हैं। इन वस्तुओं अथवा सेवाओं को उपलब्ध कराने की लागत समाज को अधिक होती है परन्तु इनकी कीमत उपभोक्ताओं के लिए अपेक्षाकृत कम रखी जाती है। इस प्रकार के अनुदान से उपभोक्ता को कई प्रकार के लाभ दिये जाते हैं -

(a) **नकद अनुदान (Cash Subsidy) -** उपभोक्ताओं को खाद्य या उर्वरक सरकार द्वारा इन वस्तुओं की प्राप्ति में अदा की गयी कीमत से अपेक्षाकृत कम कीमत पर उपलब्ध कराना।

(b) **ब्याज या ऋण सम्बन्धी अनुदान (Interest or Loan subsidies) -** इनका सम्बन्ध ऐसे ऋणों से है जो प्रचलित बाजार दर (Market rate) से कम दर पर दिए जाते हैं। इनमें लघु-उद्योगों को रियायती ऋण, या प्राथमिकता क्षेत्र (Priority sector) में व्यक्ति को टैक्सी, आटो-रिक्शा या किसी छोटे उद्यम के लिए मशीनरी

तथा उपकरण खरीदने के लिए दिए जाते हैं।

(iii) **कर - अनुदान (Tax-Subsidies) -** चिकित्सा व्यय पर कर-छूट (Tax exemption) बकाया करों के संग्रहण को स्थगित करने के रूप में दिये जाते हैं।

(iv) **वस्तु एवं सेवा सम्बन्धी अनुदान (In-kind subsidies) -** ये अनुदान सरकारी डिस्पेन्सरी के माध्यम से मुफ्त चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था करने, शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों को सहायता-उपकरण खरीदने से सम्बन्धित है।

(v) **वसूली अनुदान (Procurement Subsidies) -** इनका एक अच्छा उदाहरण एक निश्चित कीमत पर खाद्यान्नों की वसूली से है जो प्रचलित बाजार कीमत से ऊँची होती है।

(vi) **विनियामक (Regulatory Subsidies) -** इनका उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उत्पन्न वस्तुओं की कीमत को लागत की अपेक्षा नीचे स्तर पर निर्धारित करना है। इनका उद्देश्य उद्योग को आदान उपलब्ध कराना या उपभोक्ताओं के कुछ वर्गों की सहायता करना है। इनके उदाहरण उद्योग को इस्पात, कोयला या अन्य खनिज उपलब्ध कराने के रूप में है या किसानों को लागत की अपेक्षा कम दर पर बिजली मुहैया कराना है।

गैर-सर्वहितकारी वस्तुओं पर अनुदानों को उपलब्ध कराने की तीव्र आलोचना हुई है। क्योंकि इनके लाभ तो व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं परन्तु इनकी लागत समाज को सहन करनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त, इच्छित लाभ प्राप्त कर्ताओं की अपेक्षा समाज के अधिक सम्पन्न वर्गों द्वारा ये अनुदान हथिया लिए जाते हैं। उदाहरणार्थ, यह आरोप लगाया जाता है कि किसानों को ऊर्जा के रूप में सस्ती बिजली का अधिकतर लाभ समृद्ध एवं सम्पन्न किसानों द्वारा उठाया जाता है। इसी प्रकार, खाद्यान्न या अन्य अनिवार्य वस्तुओं के सार्वजनिक वितरण की सर्वव्यापक योजना का लाभ भी समृद्ध वर्गों द्वारा हथिया लिया जाता है।

इन तीन वर्गों की विवेचना करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला गया है कि : (i) सार्वजनिक वस्तुओं जैसे प्रतिरक्षा, सामान्य प्रशासन कीमत तन्त्र (Price

Mechanism) के अधीन ढाले नहीं जा सकते और परिणामतः इस वर्ग पर अनुदान प्रासंगिक नहीं है।

(ii) सर्वहितकारी वस्तुओं में अन्य के साथ शामिल हैं प्राथमिक शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, मलजल एवं सफाई की व्यवस्था, बहुत कल्याणकारी योजनाएं, मिट्टी एवं जल-संरक्षण, कृषि अनुसंधान, बाढ़ नियंत्रण एवं लोक समस्याओं का समाधान, सड़कें एवं पुल और वैज्ञानिक अनुसंधान। सर्वहितकारी वस्तुओं के लिए अनुदान कराने का पक्ष आर्थिक दृष्टि से सबसे मजबूत है।

(iii) शेष सबको गैर-हितकारी वस्तुओं अथवा सेवाओं के वर्ग में डाला जाता है। कुछ परिचित अनुदान में खाद्यान्न, उर्वरक और शिक्षा (जो प्राथमिक स्तर के ऊपर हैं) इस वर्ग में शामिल किये जाते हैं। खाद्यान्नों और उर्वरकों में बहिर्वर्ती लाभ (Externality) सीमित है। इनके संदर्भ में, आर्थिक रूप से न्यायोचित के लिए भारी बहिर्वर्ती लाभ की अपेक्षा किसी अन्य कारणतत्व में ढूंढनी पड़ती है जैसे सामाजिक और समता (Equity) उद्देश्यों के रूप में। प्राथमिक शिक्षा के ऊपर शिक्षा भी इसी कारण सर्वहितकारी वस्तुओं के क्षेत्र से बाहर रखी जाती है।

खाद्य-अनुदान (Food Subsidy) - भारत में खाद्य अनुदान के तीन अंग हैं- (i) किसानों को समर्थन कीमतों (Support Prices) द्वारा प्राप्त अनुदान, (ii) सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा उपभोक्ताओं को दिए गए अनुदान, और (iii) भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India-FCI) को बफर स्टॉक खरीदने और उसे संभालने के लिए दिए गए अनुदान। निर्गम कीमत को अपेक्षाकृत अधिक दर से बढ़ाने का उद्देश्य किसानों को साहाय्य प्रदान करना है ताकि वे खाद्यान्नों के उत्पादन को एक सुविधाजनक स्तर तक बनाए रख सकें।

वर्ष 2004 में केन्द्रीय अनुदान पर सरकार ने रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें रिपोर्ट निम्नलिखित नीति सुधारों का सुधाव दिया गया है-

1. निमन समर्थन कीमत में सभी नकद लागतें और परिवार-श्रम (Family labour) के आरोपित (Imputed value) को शामिल किया जाए।

2. प्रत्येक बुवाई के मौसम के पहले, खाद्य वसूली के लक्ष्य मानदण्डों के

आधार पर निर्धारित करने चाहिए और इनमें त्रुटि की सीमा का 10 प्रतिशत जोड़ लेना चाहिए। भारतीय खाद्य निगम को अपनी खरीद सम्बन्धी क्रियाएं लक्ष्यों की प्राप्ति के पश्चात् बन्द कर देनी चाहिए।

3. फार्म-आय-बीमा प्रोग्राम की भांति जो एक प्रायोगिक प्रोग्राम (Pilot Programme) के रूप में ही चालू किया गया, एक कीमत-बीमा प्रणाली (Price Insurance System) के रूप में विकसित करना चाहिए।

4. भारतीय खाद्य निगम को अपने कीमत-समर्थन प्रोग्राम में और अधिक राज्यों को भी शामिल करना चाहिए।

5. कुशलता को बढ़ावा देने के लिए, भारतीय खाद्य निगम को प्राप्त अनुदान का आधार आदर्श इकाई लागत और वास्तव में खरीदी गयी मात्रा होनी चाहिए, न कि वास्तविक लागत के आधार पर अनुदान प्रदान किया जाए।

6. सार्वजनिक वितरण प्रणाली की पहुँच को बढ़ाने और रिसाव (Leak-ages) को कम करने के लिए, गरीबों के लिए खाद्य-कूपन (Food Goupon) प्रणाली चालू करनी चाहिए। गरीबी रेखा के ऊपर एवं गरीबी-रेखा के नीचे परिवारों के लिए एक समान सार्वजनिक वितरण प्रणाली सम्बन्धित कीमत निश्चित करनी होगी। परन्तु गरीब लोग खाद्यान्नों का क्रय अंशतः कूपनों द्वारा और अंशतः भुगतान द्वारा कर सकते हैं। चूंकि गरीब एक ही बार में अपनी मासिक जरूरत के लिए खाद्यान्न खरीद नहीं सकते, इसलिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के क्रय केवल साप्ताहिक आधार पर कर देना चाहिए।

ये सभी उपाय नेक इरादों से प्रेरित हैं। प्ररन्तु मुख्य समस्या इनके कार्यान्वयन की है। एक ओर तो यह सुझाव दिया जा रहा है कि वसूली का विस्तार और अधिक राज्यों तक किया जाना चाहिए और दूसरी ओर खाद्य-वसूली क्रियाओं को कृषि-मौसम के आरम्भ में निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति तक सीमित करने का सुझाव दिया जा रहा है। इन परस्पर-विरोधी सुझावों को लागू करना अव्यवहारिक जान पड़ता है। यह कहीं बेहतर होता यदि भारतीय खाद्य निगम द्वारा खाद्यान्न-वसूली की वर्तमान प्रणाली जारी रखी जाती और सरकार न्यूनतम समर्थन कीमत को कृषि-श्रमिकों के उपभोक्ता सूचकांक में वृद्धि से अधिक बढ़ाने से इन्कार करती। साथ ही सरकार भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में पड़े अतिरिक्त खाद्यान्नों का इस्तेमाल रोजगार गारंटी प्रोग्राम

(Employment Cuarantee Programme) के विस्तार के लिए करती ताकि सभी बेरोजगारों को रोजगार गारन्टी कानून के अधीन रोजगार मुहैया कराया जाता। मजदूरी का भुगतान नकदी के रूप में और कुछ खाद्यान्नों के रूप में किया जाता है। यह खाद्य-साहाय्य को रोजगार में परिवर्तित करने का अधिक व्यवहार्य ढंग था। सरकार इस प्रकार किसानों तथा ग्राम क्षेत्रों में रहने वाले बेरोजगारों अर्थात् भूमिहीन मजदूरों, सीमान्त किसानों तथा अन्य अर्ध-साक्षर व्यक्तियों की सद्भावना प्राप्त कर सकती थी।

उर्वरक अनुदान (Fertilizers Subsidy) - सरकार द्वारा प्रतिधारण कीमत योजना में सुधार करने का गंभीर प्रयास किया गया है ताकि उर्वरक अनुदान को युक्तियुक्त बनाया जाए। सरकार ने फासफोरस और पोटाश उर्वरकों के आयात पर से नियंत्रण हटा लिया और उनके आयात पर एक सर्वसम्मान-दर (Flat Rate) उपलब्ध कराने का निश्चय किया। परन्तु यूरिया का आयात सीमित ही रहा और इसका सरकार द्वारा ही आयात किया गया। सन् 2000 में व्यय-सुधार आयोग की सिफारिश के आधार पर एक सामूहिक-रियायती-दर योजना चालू की गयी। व्यय-सुधार आयोग ने सिफारिश की कि इकाई-आधारित प्रतिधारण कीमत योजना को छःवर्षों की अवधि के दौरान विभिन्न चरणों में हटा दिया जाएगा।

रिपोर्ट का सुझाव है कि उर्वरक साहाय्य को किसानों एवं उद्योग दोनों को कम करने की जरूरत है। अल्पकाल में भले ही अनुदान जारी रखा जाए परन्तु दीर्घकाल में ऐसे देशों में जहाँ प्राकृतिक गैस प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, प्लान्ट स्थापित करने के विकल्प पर विचार करना चाहिए। दूसरे, नियमित समय-अवधि के अन्तराल पर यूरिया की फार्म-गेट कीमत (Farm-gate price) बढ़ानी चाहिए। रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि उर्वरकों का प्रयोग तकनीकी एवं गैर-कीमत कारणतत्वों (Non-price factors) पर अधिक निर्भर करता है, न कि केवल कीमत पर। इन कारणतत्वों में शामिल हैं, सिंचाई सुविधाएँ, फसल-ढाँचा, उपजाऊ किस्म के बीजों का फैलाव, प्रभावी उर्वरक वितरण एवं ऋण की उपलब्धि। अतः रिपोर्ट का विचार है कि यूरिया की कीमत में वृद्धि का उत्पादन कम करने के रूप में असर नहीं होगा। इसमें उर्वरकों के प्रयोग बढ़ाने के लिए सार्वजनिक निवेश को बढ़ाने की सिफारिश की गयी है। इसके अतिरिक्त,यूरिया की वृद्धि के फलस्वरूप नाइट्रोजन, फासफेट और पोटाश उर्वरकों के संतुलित प्रयोग के रूप में सद्प्रभाव पड़ेगा।

पेट्रोलियम अनुदान (Petroleum Subsidy) - पेट्रोलियम अनुदान के दो मुख्य अंग हैं- (क) घरेलू प्रयोग के लिए मिट्टी के तेल पर अनुदान और (ख) एल0पी0जी0 अनुदान जो पेट्रोलियम की अन्तर्राष्ट्रीय कीमत और जिस कीमत पर यह उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराया जाता है, में अन्तर के बराबर होता है। नीति सम्बन्धी विकल्पों की चर्चा करते हुए रिपोर्ट ने उल्लेख किया है, ''एल0पी0जी0 अनुदान शहरी क्षेत्रों में उच्च वर्गों को मुख्यतः लाभ पहुँचाता है और इस प्रकार यह प्रतिभागी है।'' अतः विश्वभर में पेट्रोलियम की कीमतों में वृद्धि के परिणामस्वरूप अपना अनुदान बिल कम करने के लिए सरकार द्वारा एल0पी0जी0 की कीमतों में वृद्धि करना औचित्यपूर्ण है। ''मिट्टी के तेल के सम्बन्ध में, प्रति व्यक्ति आधार पर, शहरी क्षेत्रों को अपेक्षाकृत अधिक अनुदान प्राप्त होता है। प्रक्रिया क्षेत्रों में अनुदानित मिट्टी के तेल की सीमित उपलब्धि इसके प्रयोग को खाना पकाने की अपेक्षा प्रकाश के लिए करने की ओर बाध्य करती है। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण क्षेत्रों में मिट्टी के तेल पर अनुदान प्रतिभागी है क्योंकि निम्न आय वर्गों की अपेक्षा उच्च आय वर्गों को अनुदानित मिट्टी का तेल अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। मिट्टी के तेल पर अनुदान का दुष्प्रयोग भी होता है क्योंकि मिट्टी के तेल की पूर्ति का लगभग आधा भाग अन्य प्रयोगों में इस्तेमाल किया जाता है और यह इच्छित वर्गों तक पहुँचता ही नहीं।'' इन अनुदान को गरीबों के लिए लक्षित करने की दृष्टि से रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया है कि केवल गरीब राशन-कार्ड धारकों को कूपन जारी करने चाहिए ताकि उन्हें किसी फुटकर विक्रेता से मिट्टी का तेल अनुदान कीमत पर खरीदने का अधिकार प्राप्त हो जाए।

1.10 सारांश

कीमत मुद्रा की वह मात्रा है जिसका भुगतान वस्तु या सेवा की एक इकाई के विनिमय के बदले में किया जाता है। बाजार का विश्लेषण तीन उप-सिद्धान्तों के अन्तर्गत किया जाता है- क्रेताओं के आचरण का सिद्धान्त, विक्रेताओं के आचरण का सिद्धान्त तथा बाजार के आचरण का सिद्धान्त।

मुद्रास्फीति का अर्थ है सामान्य कीमत स्तर में लगातार वृद्धि तथा मुद्रा की कीमत में लगातार ह्रास। सामान्यतः मुद्रास्फीति के कारणों की व्याख्या दो पक्षों लागत पक्ष से तथा मांग पक्ष द्वारा की जाती है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली विश्व में सबसे बड़ा वितरण तन्त्र है। 1960-70 के दशक के खाद्य दुर्बलता के समय उपभोक्ता के लिए एक कीमत आलम्बन कार्यक्रम (Price support programme) के द्वारा कीमत स्थिरीकरण (Price stabilisation) के उपकरण के रूप में सार्वजनिक वितरण प्रणाली कार्य करने लगी और निजी व्यापारियों के विरुद्ध एवं प्रतिशक्ति के रूप में उभरी क्योंकि व्यापारी दुर्लभता की स्थिति का लाभ उठाते हुए अपने लाभ को अधिकाधिक करने का प्रयास करते थे। इसका मूल उद्देश्य अनिवार्य वस्तुओं (Essential Commodities) जैसे-चावल, गेहूँ, चीनी, खाद्य तेल, मिट्टी का तेल आदि को राशन की दुकानों, उचित मूल्य की दुकानों और नियंत्रित कीमत की दुकानों द्वारा सस्ती कीमत पर उपलब्ध कराकर कीमत स्थिरीकरण व आय हस्तान्तरण करना है।

अनुदान का अनुमान एक मानकीकृत वर्गीकरण के आधार पर तीन श्रेणियों में किया गया है- (i) सार्वजनिक वस्तुएं, (ii) सर्वहितकारी वस्तुएं (Merit Goods) और (iii) गैर-सर्वहितकारी वस्तुएं (Non-merit goods)। भारत सरकार द्वारा खाद्य, उर्वरक एवं पेट्रोलियम आदि पदार्थों पर सरकारी अनुदान दिये जा रहे हैं।

1.11 संदर्भ सूची

1. भारतीय अर्थव्यवस्था - रुद्रदत्त, के0पी0एन0 सुन्दरम्
2. व्यवसाय पर्यावरण - डॉ0 एस0 के सिंह
3. विकास एवं पर्यावरणीय अर्थशास्त्र - वी0सी0 सिन्हा
4. उच्चतर आर्थिक सिद्धान्त - एच0 एल0 आहूजा
5. India's Economic Development Since 1947 - Uma Kapila

1.12 बोध प्रश्न -

1. मूल्य का अर्थ बताइये।
2. मूल्य व्यवस्था तथा बाजार तंत्र को बताइये।
3. मुद्रा स्फीति क्या है? मूल्य वृद्धि के क्या कारण हैं?
4. भारत में कीमत नियंत्रण के लिये क्या उपाय किये गये हैं ?

इकाई 2 : उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

इकाई रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का उद्देश्य एवं लक्ष्य

2.3 उपभोक्ता अधिकार

2.4 महत्वपूर्ण परिभाषाएँ

2.5 उपभोक्ता संरक्षण परिषदें

2.6 शिकायत दायर करने की विधि

2.7 उपभोक्ता विवाद प्रतितोष अभिकरण-जिलामंच, राज्य आयोग एवं राष्ट्रीय आयोग

2.8 सारांश

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.10 स्वपरख प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न का वर्णन कर सकेंगे :

- उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का उद्देश्य,
- उपभोक्ता के अधिकार,
- उपभोक्ता विवादों के निपटान के लिये विभिन्न मंचों/आयोगों के क्षेत्राधिकार,
- शिकायतकर्ता को मिलने वाली राहतें।

2.1 प्रस्तावना

सम्पूर्ण विश्व में तेजी से हो रहे सामाजिक विकास, यांत्रिक व मशीनी उपकरणों की दिनों-दिन वृद्धि एवं भौतिकवाद से उत्तरोत्तर प्रेरित जीवन शैली ने उपभोक्तावाद को जन्म दिया। वस्तु स्थिति यह बन गई है कि आज उपभोक्तावाद, व्यापार एवं जीवनशैली से जुड़े एक क्रान्तिकारी परिवर्तन के रूप में हमारे सामने हैं।

बढ़ते हुये उपभोक्तावाद के साथ-साथ उपभोक्ताओं की समस्यायें, वितरकों, एवं उत्पादकों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर ऐसी अवधारणा उत्पन्न हो गई जिसके रहते उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान किये जाने की महती आवश्यकता प्रतीत हुई। इस इकाई में आप उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का उद्देश्य, लक्ष्य उपभोक्ता अधिकार, उपभोक्ता संरक्षण, परिषदों तथा उपभोक्ता फोरम व आयोगों का अध्ययन करेंगे। आपको इस इकाई में फोरम/आयोगों में परिवाद दाखिल करने की विधि तथा उपभोक्ता को मिलने वाली राहतों के बारे में भी बताया जायेगा।

उपभोक्ता संरक्षण किसी एक क्षेत्र या देश तक सीमित नहीं रहा अपितु विश्व स्तर पर इसे स्वीकृति मिली है। विभिन्न देशों में उपभोक्ताओं के अधिकारों के संरक्षण हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक एवं सामाजिक काउंसिल ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 27 मई 1983 में विस्तृत सुझावों के साथ यह मत व्यक्त किया था कि ''सरकारों द्वारा उत्पादकों, उपभोक्तागण एवं उन्हें प्रदान की जाने वाली सुविधाओं के सम्बन्ध में समुचित कानूनी प्राविधान निर्मित कर उपभोक्ताओं को होने वाली असुविधा को समाप्त किया जाय। साथ ही उपभोक्ता प्रशिक्षण, उपभोक्ताओं को आवश्यक सूचनायें प्रदान करने और उनके शोषण को समाप्त करने के लिये प्रभावी प्राविधान निर्मित किये जाय।''

वर्ष 1986 से पूर्व भारत वर्ष में उपभोक्ता सम्बन्धी विवादों के निस्तारण हेतु विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत कार्यवाहियाँ की जाती थीं और उपभोक्ता के अधिकारों के संरक्षण हेतु विभिन्न अधिनियमों में अर्थदण्ड व कारावास जैसी व्यवस्थाओं के साथ-साथ हर्जाना प्रदान करने के अनेक प्राविधान प्रतिपादित थे, जैसे-भारतीय दण्ड संहिता 1860, भारतीय संविदा अधिनियम 1872, अनिष्टकारी मादक द्रव्य अधिनियम 1930, माल विक्रय अधिनियम 1930, औषधि एवं प्रसाधन अधिनियम 1940 भारतीय मानक संस्था (प्रमाणिक चिन्ह) अधिनियम 1952, खाद्य अपमिश्रण निवारण, अधिनियम 1954 आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955, व्यापार एवं व्यापारिक चिन्ह अधिनियम 1958, एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम 1969, बाट एवं माप मानक अधिनियम 1976, औषधि नियन्त्रण अधिनियम 1950 आदि।

अत्यधिक तेजी से उपभोक्तावाद के विकास को दृष्टिगत रखते हुए तथा उपभोक्ताओं को व्यापारिक कुव्यवहारों से सरकारी संरक्षण प्रदान किये जाने हेतु एक पृथक अधिनियम की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतःउपभोक्ता संरक्षण अधिनियम

(The Consumer Protection Act, 1986) वर्ष 1986 के अधिनियम संख्या 68 के रूप में 24 दिसम्बर 1986 को बना तथा दिनांक 15 अप्रैल 1987 से प्रभाव में आया।

प्रारम्भ में विक्रय विधि का सिद्धान्त था ''क्रेता सावधान रहें'' परन्तु विक्रय विधि दर्शन और उपभोक्ता संरक्षण के प्रकाश में इस सिद्धान्त का स्थान ''विक्रेता सावधान रहें'' ने ले लिया है। उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 अपकृत्य विधि के एक सहायक अंग के रूप में उपभोक्तागण, उत्पादकों व सेवाओं को नियंत्रित करने हेतु निर्मित किया गया है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 को 4 अध्यायों में विभक्त किया गया है। जिसके-

अध्याय - 1 में अधिनियम की धारा 1 से 3 तक

अध्याय - 2 में अधिनियम की धारा 4 से 8ख तक

अध्याय - 3 में अधिनियम की धारा 9 से 27क तक

अध्याय - 4 में अधिनियम की धारा 28 से 31 तक की व्याख्या की गयी है।

अधिनियम की धारा 30 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके केन्द्र सरकार द्वारा ''उपभोक्ता संरक्षण नियमावली'' 1987 को बनाया गया है जो समय-समय पर संशोधित होती रहती है तथा राज्य स्तर पर अधिनियम की धारा 30 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश उपभोक्ता संरक्षण नियमावली, 1987 लागू किया है।

2.2 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का उद्देश्य एवं लक्ष्य-

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों की श्रेष्ठ व्यवस्था करना तथा उसके लिए उपभोक्ता के विवादों तथा उससे सम्बन्धित मामलों को तय करने के लिए उपभोक्ता परिषदों एवं अन्य प्राधिकरणों की स्थापना की व्यवस्था करना है। इन बातों के साथ-साथ यह अधिनियम उपभोक्ता के अधिकारों का सम्प्रवर्तन करना एवं संरक्षण देना चाहता है। जैसे -

- जीवन और सम्पत्ति के लिए परिसंकटमय माल और सेवाओं के विपणन के

विरुद्ध संरक्षण का अधिकार,

- माल या सेवाओं जैसी स्थिति हो, की मात्रा, शक्ति, शुद्धता मानक और मूल्य के बारे में, सूचित किये जाने का अधिकार, जिससे कि अनुचित व्यापारिक व्यवहार से उपभोक्ता को संरक्षण दिया जा सके,
- जहाँ भी सम्भव हो वहाँ प्रतिस्पधी मूल्यों पर विभिन्न किस्मों के माल और सेवायें सुलभ कराने का आश्वासन दिये जाने का अधिकार
- सुने जाने का और यह आश्वसन दिये जाने का अधिकार कि उपभोक्ताओं के हितों पर समुचित पीठों में सम्यक् रूप से विचार किया जाय,
- अनुचित व्यापारिक व्यवहार या अवरोधक व्यापारिक व्यवहार या उपभोक्ताओं के अनैतिक शोषण के विरुद्ध अनुतोष प्राप्त करने का अधिकार और
- उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार।

अपने इन्हीं उद्देश्यों का सम्प्रवर्तन एवं संरक्षण किये जाने हेतु इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय, राज्य एवं जिला स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदों का गठन किया गया है।

अधिनियम के लक्ष्य - उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 में सन् 1993 एवं 2002 में व्यापक संशोधन किये गये हैं। इसके प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित हैं-

- अधिनियम का कार्यक्षेत्र व्यापक बनाना, ताकि उपभोक्तागण सामूहिक रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से प्रतिबन्धित व्यापार व्यवहार से सम्बन्धित अपनी शिकायत प्रस्तुत कर सकें।
- स्वतः रोजगार में संलग्न उपभोक्ताओं द्वारा अपने व्यापार के लिये क्रय की गई वस्तुओं के दूषित पाये जाने पर उपर्युक्त संस्था के समक्ष शिकायत प्रस्तुत किया जाना।
- गृह निर्माण से सम्बन्धित सेवाओं को सम्मिलित करना।
- इसमें सम्मिलित विभिन्न एजेन्सी के लिये न्यायिक सदस्यों के चयन के लिये प्राविधान उपलब्ध कराना।
- जिला मंच, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग के मौद्रिक अधिकारों में वृद्धि करना।

- जिला मंच, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग के मौद्रिक अधिकारों में वृद्धि करना।
- शिकायतें सुनने वाली एजेन्सियों के अधिकार में वृद्धि करना।
- गलत/मिथ्या शिकायतें करने वालों के विरुद्ध दण्डात्मक प्रावधान करना। एक वर्ष की समय सीमा के अन्दर प्रस्तुत की गई शिकायतों के लिये प्रावधान करना।

2.3 उपभोक्ता अधिकार -

''**विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस**'' प्रतिवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय उपभोक्ता आन्दोलन के परस्पर सम्बन्धों को मनाने और एकता प्रदर्शित करने का दिन है। यह संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जॉन एफ0 कैनेडी द्वारा 15 मार्च, 1962 को चार मूलभूत उपभोक्ता अधिकारों के बारे में की गई ऐतिहासिक घोषणा की याद में मनाया जाता है।

उस घोषणा के फलस्वरूप सरकारों और संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अन्ततः इस बात पर बल दिया गया कि सभी नागरिकों के उनकी आय या सामाजिक स्थिति पर विचार किये बिना उपभोक्ता के रूप में कुछ मूलभूत अधिकार है। भारत सरकार ने इसी के अनुरूप उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम सन् 1986 में पारित किया, जिसमें उपभोक्ता को निर्मलिखित मूलभूत अधिकार प्रदान किये गये :-

1– **सुरक्षा का अधिकार -** उपभोक्ता का प्रथम अधिकार सुरक्षा का अधिकार है। उसे ऐसी वस्तुओं एवं सेवाओं से सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है जिनसे उसके शरीर एवं सम्पत्ति को हानि उत्पन्न हो सकती है। उसे किसी भी वस्तु या सेवा से चोट लगने या बीमार होने या क्षति होने या किसी भी व्यक्ति के अविवेकपूर्ण आचरण से क्षति होने के विरुद्ध सुरक्षा पाने का अधिकार है। उपभोक्ता इस अधिकार के द्वारा खराब एवं दुष्प्रभावी खाद्य वस्तुओं, नकली दवाओं, घटिया यंत्रों एवं उपकरणों तथा बाजार में उपलब्ध घटिया, नकली, जाली सभी वस्तुओं में होने वाली धन, स्वास्थ्य एवं शरीर की हानि से सुरक्षा प्राप्त कर सकता है।

2- **चुनाव या पसन्द का अधिकार -** उपभोक्ता अपने इस अधिकार के

अन्तर्गत विभिन्न निर्माताओं द्वारा निर्मित विभिन्न ब्राण्ड, किस्म, गुण, रूप, रंग, आकार तथा मूल्य की वस्तुओं में से किसी भी वस्तु का चुनाव करने को स्वतन्त्र होगा।

3- **सूचना पाने का अधिकार -** उपभोक्ता को वे सभी आवश्यक सूचनायें भी प्राप्त करने का अधिकार होता है जिनके आधार पर यह वस्तु या सेवा खरीदने का निर्णय कर सके। यह सूचनायें वस्तु की किस्म, मात्रा, शुद्धता, प्रमाप, मूल्य आदि से सम्बन्ध में हो सकती है। इन सूचनाओं को प्राप्त करके कोई भी उपभोक्ता व्यवसायी के अनुचित व्यापारिक व्यवहारों से भी सुरक्षा प्राप्त कर सकता है।

4- **सुनवाई या कहने का अधिकार -** उपभोक्ता को अपने हितों को प्रभावित करने वाली सभी बातों को उपयुक्त मंचों के समक्ष प्रस्तुत करने का अधिकार है। वे अपने इस अधिकार का उपयोग करके व्यवसायी एवं सरकार को अपने हितों के अनुरूप निर्णय लेने तथा नीतियाँ बनने के लिए बाध्य कर सकते हैं। सुनवाई का अधिकार ही वह अधिकार है, जिसके द्वारा वह अपनी शिकायत को व्यक्त कर सकता है तथा अपने अन्य उपभोक्ता अधिकारों की रक्षा कर सकता है।

5- **उपचार का अधिकार -** यह अधिकार उपभोक्ता को यह आश्वासन प्रदान करता है कि क्रय की गई वस्तु या सेवा उचित एवं संतोषजनक ढंग से उपयोग में नहीं लाई जा सकेगी तो उसकी उसे उचित क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होगा। उपभोक्ता के इस अधिकार की रक्षा के लिये सरकार कानूनी व्यवस्था करती है। भारत के उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत इस प्रकार की व्यवस्था की गई है।

6- **उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार -** इस अधिकार के उपभोक्ता को उन सब बातों की शिक्षा या जानकारी प्राप्त करने का अधिकार होता है जो एक उपभोक्ता के लिए आवश्यक होती है। शिक्षा, उपभोक्ता की जागरुकता की आधारभूत आवश्यकता है, जबकि सूचना किसी क्रय की जाने वाली वस्तु या सेवा के सम्बन्ध में जानकारी है।

7- **मूल्य या प्रतिफल का अधिकार -** उपभोक्ता यह अपेक्षा करने का अधिकार

भी रखता है कि उसे उसके द्वारा चुकाये गये धन का पूरा मूल्य मिल सकेगा। उसे व्यवसायी द्वारा विक्रय के दौरान या विज्ञापन के किये गये वायदों तथा जगाई गई आशाओं को पूरा करवाने का अधिकार होता है।

संसद द्वारा पारित इस अधिनियम पर भारत के राष्ट्रपति ने दिनांक 24 दिसम्बर, 1986 को हस्ताक्षर किये और यह कानून उसी दिन से पूरे भारत में लागू माना गया। इसी परिप्रेक्ष्य में 24 दिसम्बर को ''राष्ट्रीय उपभोक्ता दिवस'' मनाने का निर्णय भारत सरकार द्वारा लिया गया। जिसमें यह दर्शाया जाता है कि उपभोक्ता के अधिकारों को मान्यता प्रदान करना और उसकी रक्षा कराना सामाजिक और आर्थिक प्रगति का महत्वपूर्ण और गरिमामय परिचायक है। उपभोक्ताओं को शोषण से बचाने के लिए एवं उन्हें अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने के लिये उपभोक्ता अधिकारों का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार करके उपभोक्ता को जागरूकता करना चाहिये।

2.4 अधिनियम की धारा 2 के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाओं का अध्ययन -

उपभोक्ता (Consumer) अधिनियम में उपभोक्ता को दो वर्गों में विभाजित करते हुये परिभाषित किया गया है-

माल का उपभोक्ता - माल का उपभोक्ता से आशय ऐसे व्यक्ति से है जिसने प्रतिफल के बदले किसी माल को खरीदा हो, जिसका भुगतान कर दिया गया हो अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो अथवा आंशिक भुगतान कर दिया हो एवं आंशिक भुगतान करने का वचन दिया हो अथवा किसी प्रणाली के अधीन भुगतान स्थगित कर दिया हो।

सेवा का उपभोक्ता - सेवा उपभोक्ता जो प्रतिफल के बदले किन्ही ऐसी सेवाओं को किराये पर लेता है जिनका भुगतान कर दिया हो अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो अथवा आंशिक भुगतान एवं आंशिक वचन दिया हो अथवा किसी प्रणाली के अधीन भुगतान स्थगित कर दिया हो। इसके अतिरिक्त, इसमें ऐसी सेवाओं से लाभ उठाने वाले व्यक्ति को भी सम्मिलित करते हैं जिसने सेवाओं का लाभ किसी ऐसे व्यक्ति के अनुमोदन पर उठाया हो जिसने उक्त सेवाओं को प्रतिफल से बदले किराये पर लिया हो जिनका

भुगतान कर दिया हो अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो अथवा आंशिक भुगतान एवं आंशिक वचन दिया हो अथवा किसी प्रणाली के अधीन भुगतान स्थगित कर दिया हो।

अधिनियम में दी गई परिभाषा के विश्लेषण से इस प्रकार स्पष्ट है कि उपभोक्ता से आशय-

- ऐसे व्यक्ति से है जो माल को प्रतिफल के फलस्वरूप निजी उपयोग के लिये खरीदता है अथवा,
- ऐसे व्यक्ति से है जो माल का उपयोग क्रेता की अनुमति से करता है अथवा
- ऐसे व्यक्ति से है जो माल का क्रय अथवा सेवा का क्रय या सेवा को किराये पर प्रतिफल के बदले प्राप्त करता है, अथवा
- ऐसे माल या सेवा का प्रतिफल दे चुका है अथवा देने का वचन देता है,
- जो प्रतिफल के फलस्वरूप माल को किराये पर लेता है अथवा 'सेवायें' लेता है अथवा,
- ऐसा व्यक्ति जो किराये पर लेने वाले व्यक्ति की अनुमति से सेवाओं का उपयोग करता है अथवा
- ऐसे व्यक्ति जो स्थगित भुगतान अथवा विलम्बित भुगतान विधि अथवा किस्त विधि के अन्तर्गत भुगतान करने का वचन देता है।

परिवाद (Complaint) - परिवाद या शिकायत का अर्थ है लिखित में शिकायतकर्ता द्वारा लगाया गया कोई आरोप कि -

- व्यापारी द्वारा अनुचित व्यापार व्यवहार या प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अपनाया गया है, जिसके परिणामस्वरूप शिकायतकर्ता को कोई हानि या क्षति उठानी पड़ी हो,
- उसके द्वारा खरीदा गये माल या सेवा में एक या अधिक दोष हैं,
- व्यापारी ने माल के लिये निर्धारित से अधिक मूल्य वसूल किया है। जहाँ मूल्य निर्धारित है या किसी कानून द्वारा चलन में है या उक्त माल पर छपा है या ऐसे माल के पैकेज पर मुद्रित है।

- वह माल जो प्रयोग करते समय जीवन तथा सुरक्षा के लिए खतरा बन सकता है तथा उसे जनता को प्रचलित कानूनों की अवहेलना करके बेचा जा रहा है जिसके लिये व्यापारी को ऐसे माल की विषय वस्तु, तरीके तथा प्रयोग, के बारे में सम्बन्धित सचना प्रकाशित करनी चाहिये थी, के विरुद्ध इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई सहायता पाने के इरादे से।

वर्ष 1993 तथा 2002 में संशोधनों द्वारा परिवाद की परिभाषा में व्यापक सुधार किया गया जिसके अनुसार किसी ''अनुचित व्यापार प्रथा' अथवा अवरोधक व्यापार प्रथा'' अथवा अवरोधक व्यापार प्रथा से किसी उपभोक्ता को हुई हानि के लिये भी परिवाद किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जिस माल को क्रय करने या सेवा को किराये पर लेने का अनुबन्ध (Agreement) किया गया है उसकी त्रुटि या कमी के सम्बन्ध में भी अब परिवाद दाखिल किया जा सकता है।

परिवाद (Complainant)/शिकायतकर्ता - परिवादी का तात्पर्य है -

- कोई उपभोक्ता या
- कोई स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठन जो कम्पनी अधिनियम 1656 या उस समय पर प्रचलित किसी अन्य विधान के अन्तर्गत पंजीकृत हो; अथवा
- केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, जो कोई परिवाद योजित करता है।
- वर्ष 1993 के संशोधन द्वारा एक या एक से अधिक उपभओक्ताओं, जहाँ उन सभी उपभोक्ताओं का एक जैसा हित हो, भी परिवादी की परिभाषा में सम्मिलित किये गये हैं।
- उपभोक्ता संरक्षण संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा उपभोक्ता की मृत्यु हो जाने की दशा में उसके विधिक उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि को भी परिवादी की परिभाषा में सम्मिलित कर लिया गया है।

माल (Goods) - माल से आशय उस माल से है जिसे वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 के अन्तर्गत इस प्रकार परिभाषित किया गया है- माल से आशय प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति (Movable Property) से है जिसमें अभियोग के योग्य एवं मुद्रा तो सम्मिलित नहीं होती किन्तु स्कन्ध अंश, खड़ी फसलें, घास तथा वस्तुयें जो भूमि से जुड़ी हों और जिनको विक्रय के पहले अथवा विक्रय के अनुबन्ध के अन्तर्गत अलग करने

का ठहराव कर लिया गया हो, सम्मिलित हैं। इस प्रकार अधिकांश उपभोक्ता उत्पाद इस परिभाषा की सीमा में आ जाते हैं।

सेवा (Service) - सेवा का अर्थ किसी भी प्रकार की सेवा से हैं जो उसके सम्भावित प्रयोगकर्ता को प्रदान की जाती है। इसके अन्तर्गत बैंकिंग, वित्त, बीमा, परिवहन, माल तैयार करने, विद्युत अथवा अन्य शक्ति की आपूर्ति, भोजन या रहने का अस्थाई स्थान या दोनों, आवास निर्माण, मनोरंजन अन्य सूचनाओं एवं समाचारों के प्रसारण के सम्बन्ध में सुविधाओं को सम्मिलित किया गया है। परन्तु इसके अन्तर्गत निःशुल्क (free of charge) या व्यक्तिगत सेवा संविदा (Contract of Personal Service) के अधीन दी गई सेवायें नहीं आयेंगी।

कमी-''कमी'' से ऐसे कार्य की क्वालिटी, प्रकृति और रीति में जिसे तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन बनाये रखना अपेक्षित है या जिसका किसी सेवा के संबंध में किसी संविदा के अनुसरण में या अन्यथा किसी व्यक्ति द्वारा पालन किये जाने का वचनबद्ध किया गया है, कोई दोष अपूर्णता, कमी या अपर्याप्तता अभिप्रेत है।

व्यापारी - किसी माल के संबंध में व्यापारी (Trader) कौन होगा इसे उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 2(1)(थ) में परिभाषित किया गया है। धारा 2(1)(थ) निम्न प्रकार है-

किसी माल के संबंध में ''व्यापारी'' से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है जो विक्रयार्थ किसी माल का विक्रय या वितरण करता है और इसके अन्तर्गत उसका विनिर्माता भी है जिसको ऐसे माल का विक्रय या वितरण पैकेज के रूप में किया जाता है। वहाँ इसके अन्तर्गत इसका पैकर भी है।

विनिर्माता - उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 2(1)(ञ) में विनिर्माता (Manufacturer) की परिभाषा दी गयी है। विनिर्माता (Manufacturer) से तात्पर्य उस व्यक्ति से है-

1. जो कोई माल या उसके भागों को बनाता है या विनिर्मित करता है,
2. जो पूरे उत्पाद या उसके किसी भाग का न विनिर्माता और न निर्माता ही बल्कि इस लक्ष्य के कारण, कि वह भागों का समंजन करके अन्तिम उत्पाद बना रहा है, वह अन्तिम उत्पाद का विनिर्माता होने का दावा करता है।

3. जो माल पर अपना चिन्ह लगाता है या लगवाता है जिससे कि वह यह दावा कर सके कि उनका विर्निमाण उसके द्वारा किया गया है यद्यपि वास्तव में किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा विनिर्मित किए गए हैं।

उपरोक्त परिभाषा के अनुसार विनिर्माता (Manufacturer) से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो किसी माल का उत्पादन करता है या सामंजस्य करता है और इसमें वे सभी शामिल हैं जो अपने व्यापारिक नाम प्रश्नगत माल पर भी लगाते हैं, लेकिन जो व्यक्ति वितरण के लिये माल अपने शाखा कार्यालय को भेजते हैं तो वे शाखा कार्यालय विनिर्माता ही माने जायेंगे।

2.5 उपभोक्ता संरक्षण परिषद् (Consumer Protection Councils)

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत केन्द्र एवं राज्य स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण परिषदों का गठन किया गया था लेकिन उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम, 2002 के अन्तर्गत अब जिला स्तर में भी उपभोक्ता संरक्षण परिषद् के गठन का प्रावधान किया गया है जो कि निम्नलिखित है-

केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् (Central Consumer Proetction Concil)- केन्द्रीय परिषद् समस्त देश के उपभोक्ताओं के अधिकार का संवर्धन व संरक्षण करेगी। जिसके अन्तर्गत उपभोक्ताओं को शिक्षा प्रदान किये जाने, अनुचित व्यापारिक व्यवधान हटाने, उपभोक्ताओं की सुनवाई, उपभोक्ताओं के अनुचित शोषण के प्रति प्रतितोष और उचित मूल्य पर उचित प्रतितोष दिलाने जैसे उद्देश्य शामिल हैं।

राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद् (State Consumer Proetction Concil)- राज्य परिषद् का उद्देश्य राज्य के भीतर उपभोक्ताओं के अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण करना होता है।

जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद् (District Consumer Proetction Concil)- प्रत्येक जिला परिषद् का उद्देश्य जिले के भीतर उपभोक्ता अधिकारों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना है।

2.6 शिकायत दायर करने की विधि

अधिनियम के तहत शिकायत दायर करने का तरीका अत्यन्त सरल है, यथा-

- शिकायतकर्ता अथवा उसका प्राधिकृत अभिकर्ता व्यक्तिगत रूप से जिला फोरम, राज्य आयोग अथवा राष्ट्रीय आयोग के समक्ष निर्धारित शुल्क जमा करके शिकायत दायर कर सकते हैं।
- फोरम या आयोग को शिकायत डाक द्वारा भी भेजी जा सकती है।
- शिकायत में निम्नलिखित सूचनायें स्पष्ट रूप से होनी चाहिए-
  - (i) शिकायतकर्ता का नाम, ब्यौरा तथा पता
  - (ii) विरोधी पक्षकार का अथवा पक्षकारों (जैसी भी स्थिति हो) का जहाँ तक उन्हें मालूम किया जा सके, नाम, ब्यौरा और पता।
  - (iii) शिकायत से सम्बन्धित तथ्य और शिकायत कब और कहाँ पैदा हुई।
  - (iv) शिकायत में लगाये गये आरोपों के समर्थन में दस्तावेज, यदि कोई है, तथा वह राहत जो शिकायतकर्ता चाहता है।
- शिकायत पर शिकायतकर्ता अथवा उसके प्राधिकृत अभिकर्ता के हस्ताक्षर होने चाहिये।
- शिकायत, कार्यवाही का कारण (Cause of action) पैदा होने की तिथि से 2 वर्षों के भीतर दायर की जानी चाहिए।

2.7 उपभोक्ता विवाद प्रतितोष अभिकरण-जिलामंच, राज्य आयोग एवं राष्ट्रीय आयोग (Consumer Disputes Redressal Agencies-District Forum, State Commision & National Commission)

उपभोक्ताओं विवादों के शीघ्र निस्तारण हेतु अधिनियम की धारा 9 के अन्तर्गत त्रिस्तरीय न्यायिक तन्त्र की व्यवस्था की गई है, जिसमें माल या सेवाओं में कमी होने पर विवाद लिखित रूप में निर्धारित शुल्क जमा करके वाद दायर किया जा सकता है। वे न्यायिक तन्त्र हैं -

1. जिला मंच (District Forum)
2. राज्य आयोग (State Commission)
3. राष्ट्रीय आयोग (National Commission)

क्र.सं.	वाद दायर करने का स्थान	माल या सेवा का मूल्य	संदेय फीस की राशि
	जिला फोरम		
1.		एक लाख रुपये तक के उन परिवादों के लिये जो गरीबी रेखा के नीचे हैं और अन्त्योदय अन्न योजना के कार्य धारक हैं के लिये -	निल
2.		एक लाख रु0 तक के उन परिवादियों हेतु जो गरीबी रेखा से ऊपर हैं और अन्त्योदय अन्न योजना के कार्डधारक नहीं हैं, के लिये-	100.00
3.		एक लाख रुपये से ऊपर परन्तु पांच लाख रु0 तक।	200.00
4.		पांच लाख रुपये से ऊपर परन्तु दस लाख रू0 तक।	400.00
5.		दस लाख रुपये से ऊपर परन्तु बीस लाख रु0 तक	500.00
	राज्य आयोग		
6.		बीस लाख रुपये से ऊपर परन्तु पचास लाख रुपये तक	2000.00
7.		पचास लाख रुपये से ऊपर परन्तु एक करोड़ रुपये तक	4000.00
	राष्ट्रीय आयोग		
9.		एक करोड़ रुपये से अधिक	5000.00

इस प्रकार एक पीड़ित उपभोक्ता वस्तु या सेवा के मूल्य के आधार पर निर्धारित फोरम या आयोग में निर्धारित फीस देकर त्वरित न्याय पाने का अधिकारी है।

जिला फोरम, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग से सम्बन्धित कुछ सामान्य प्रावधान (Some Common Provisions Regarding Distt. Forum, State Commission And National Commission)-

1. **परिवाद दाखिल करने की समयावधि (Limitation of Filing the Complaint) -** जिला फोरम, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग में कोई भी परिवाद, परिवाद को योजित करने के लिए उत्पन्न हुए कारण (cause of action) से दो साल के अन्दर दाखिल किया जा सकता है। उक्त समयावधि व्यतीत हो जाने पर परिवाद दाखिल हो सकता है यदि विलम्ब के पर्याप्त कारण हों।

2. **आदेश का प्रवर्तन (Enforcement of the Orders) -** यदि किसी व्यक्ति द्वारा जिला फोरम राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग द्वारा दिए गए अन्तरिम का अनुपालन नहीं किया जा रहा है तो उस व्यक्ति की सम्पत्ति को कुर्क (**Attach**) करने का आदेश जिला फोरम या राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग, जैसी भी स्थिति हो, द्वारा दिया जा सकता है।

यदि सम्पत्ति कुर्क किए जाने की तिथि से तीन माह की अवधि के अन्त तक अन्तरिम आदेश का अनुपालन नहीं किया जाता है तो कुर्क सम्पत्ति को बेच दिया जाएगा और उसकी आय में से जिला फोरम, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग, जैसी भी स्थिति हो, परिवादी को उचित क्षतिपूर्ति देने का आदेश दे सकता है और यदि कुछ रकम शेष बचती है तो उसे अधिकृत व्यक्ति को भुगतान कर दिया जाएगा।

जिला फोरम, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग द्वारा पारित आदेश के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को कोई रकम प्राप्त होती है तो वह व्यक्ति, जिला फोरम या राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग, जैसी भी स्थिति हो, के समक्ष इस सम्बन्ध में आवेदन प्रस्तुत कर सकता है। इसके पश्चात् अभिकरण द्वारा जिले के कलेक्टर को कथित रकम वसूल करने के लिए प्रमाण-पत्र निर्गत किया जा सकता है और कलेक्टर (जिलाधीश) उसी तरीके से रकम वसूल करेगा जैसे वह भू-राजस्व की बकाया रकम प्राप्त करता है।

3. **परिवाद का खारिज होना (Dismissal of Complaint) -** जिला फोरम, राज्य आयोग अथवा राष्ट्रीय आयोग द्वारा कोई परिवाद तुच्छ (Firvolous) या तंग करने वाला (Vexatious) पाए जाने की दशा में परिवाद खारिज हो जाएगा और परिवादी द्वारा विरोधी पक्षकार को दस हजार रुपये तक का हर्जाना दिए जाने का आदेश पारित होगा।

4. **दण्ड (Penalities) -** जिला फोरम, राज्य आयोग अथवा राष्ट्रीय आयोग द्वारा विरोधी पक्षकार या परिवादी के विरुद्ध पारित आदेशों का उनके द्वारा पालन करने में असफल रहने या उन्हें मानने से इन्कार कर देने की दशा में उन्हें कम-से-कम एक माह तथा अधिकतम तीन वर्ष तक का कारावास होगा या कम-से-कम दो हजार रुपये तथा अधिकतम दस हजार रुपये तक का जुर्माना होगा या उपरोक्त दोनों होंगे।

5. **आदेश अविधिमान्य नहीं होगा (Order will not Invalidate) -** जिला फोरम, राज्य आयोग अथवा राष्ट्रीय आयोग द्वारा पारित कोई आदेश इस आधार पर कि सदस्यों में से कोई पद रिक्त है या सदस्यों के गठन में कोई दोष है, अविधिमान्य नहीं होगा।

6. **''सद्भाव में की गई कार्यवाही'' के अन्तर्गत बचाव (Protection of Action taken in good faith) -** जिला फोरम, राज्य आयोग अथवा राष्ट्रीय आयोग के सदस्यों या उनके निर्देशों के अधीन कार्य करने वाले किसी अधिकारी या व्यक्ति के विरुद्ध कोई वाद, आपराधिक मुकदमा या अन्य कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकेगी जबकि -

   (क) कोई कार्य उपरोक्त तीनों मंचों (Agencies) में से पारित किसी आदेश का पालन करने के लिए किया गया हो या

   (ख) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, या उक्त अधिनियम के अन्तर्गत बने किसी नियम अथवा आदेश के अधीन किसा गया कार्य 'सद्भाव में की गई कार्यवाही' हो।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम निःसन्देह समाज के प्रति एक बेहतर कानून है जो उपभोक्तावाद पर आधारित है। वह उपभोक्ताओं को प्रतिदिन की समस्याओं से लड़ने के लिये सक्षम बनाता है जिससे भविष्य के आन्दोलनों के लिये नया नैतिक आधार प्रस्तुत किया जा सके।

2.8 सारांश

इस इकाई में उपभोक्ता जागरुकता हेतु उपभोक्ता अधिकारों का वर्णन किया गया है तथा बताया गया है कि उपभोक्ता हितों के पालन हेतु एक निवारण मशीनरी

की स्थापना भी की गयी है। इस इकाई में इस बात का भी समावेश किया गया है कि अधिनियम में सम्पूर्ण देश में विशिष्ट उपभोक्ता न्यायालयों के रूप में अर्द्धन्यायिक मशीनरियों की स्थापना की जायेगी ताकि पीड़ित उपभोक्ता को यह सुविधा रहेगी कि उसे शिकायत करने के लिऐ कहीं दूर जाने से बचाया जा सके एवं उसकी शिकायत की सुनवाई व निर्णय भी जल्द से जल्द किया जा सके। उपभोक्ता के हितों का संरक्षण प्रदान करने हेतु एवं उनके द्वारा दायर किये गये विवादों के शीघ्र निबटारे हेतु प्रत्येक जिले में एक उपभोक्ता फोरम, राज्य स्तर पर प्रत्येक राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेश में एक राज्य आयोग तथा इसके अतिरिक्त दिल्ली में एक राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गई है। इसके साथ ही एक त्रिस्तरीय न्यायिक मशीनरी के अधिकार क्षेत्र की परिधि को भी परिभाषित किया गया है।

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. निगमीय सन्नियम एवं सचिवीय पद्धति-डॉ0 आर0एल0नौलखा
2. सहकारिता - डॉ0 बी0एस0 माथुर
3. सरकार एवं व्यवसायिक पर्यावरण-फ्रांसिस चेरूनिलम, डॉ0 फ्रैंक कैरल सिंह
4. उपभोक्ता संरक्षण दिग्दर्शन- डॉ0 बसन्ती लाल बावेल
5. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम - रामकृष्ण मिश्र
6. उपभोक्ता जागरण (पत्रिका) - भारत सरकार उपभोक्ता मामले एवं सार्वजनिक वितरण मंत्रालय।

2.10 स्वपरख प्रश्न

1. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के क्या उद्देश्य हैं?
2. उपभोक्ता अधिकारों की विवेचना कीजिए।
3. उपभोक्ता विवादों को दाखिल करने की प्रक्रिया बताइये।
4. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत परिवाद दाखिल करने के लिये निर्धारित शुल्क की राशि विभिन्न फोरमों में क्या है?

इकाई 3 : भारतीय पूंजी बाजार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 पूंजी बाजार का अर्थ

3.3 भारतीय पूंजी बाजार के प्रकार

 3.3.1 प्राथमिक पूंजी बाजार

 3.3.2 द्वितीयक पूंजी बाजार

3.4 स्टॉक एक्सचेन्ज, स्टॉक एक्सचेन्ज के कार्य

3.5 भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी), संगठन संरचना, कार्य

3.6 भारतीय पूंजी बाजार का कार्यकरण

3.7 पूंजी बाजार में सुधार

3.8 भारतीय पूंजी बाजार के दोष एवं सुधार के सुझाव

3.9 सारांश

3.10 संदर्भ ग्रन्थ

3.11 स्वपरख प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न का वर्णन कर सकेंगे :

- पूंजी बाजार,
- प्राथमिक व द्वितीयक पूंजी बाजार
- स्टॉक एक्सचेंज के कार्य,
- भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (सेबी), सेबी के कार्य,
- भारतीय पूंजी बाजार का कार्यकरण।

3.1 प्रस्तावना

पूंजी बाजार भारतीय वित्तीय प्रणाली का महत्वपूर्ण खण्ड हैं। यह कम्पनियों

या उद्योगों को उपलब्ध ऐसा बाजार है जो उनकी दीर्घावधि निधियों की जरूरतों को पूरा करता है। यह नियियाँ उधार लेने और देने की सभी सुविधाओं और संस्थागत व्यवस्थाओं से सम्बन्धित है। इस इकाई में आप प्राथमिक बाजार, द्वितीयक बाजार का अध्ययन करेंगे तथा स्टॉक एक्सचेंज के बारे में जानेंगे। आपको भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड, इसके कार्यों, इसकी संरचना तथा प्रबन्ध के बारे में बताया जायेगा साथ ही भारतीय पूंजी बाजार में व्याप्त दोष एवं इनको दूर करने के उपायों के बारे में भी सुझाव दिया जायेगा।

3.3 पूंजी बाजार का अर्थ

पूंजी बाजार से आशय उस बाजार से हैं-

- ♦ जो दीर्घकालीन ऋणों में लेन-देन करता है।
- ♦ वह उद्योगों को कार्यशील पूंजी उपलब्ध कराता है।
- ♦ यह केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों को मध्यम अवधि एवं दीर्घकालीन अवधि के ऋणों के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करता है।
- ♦ पूंजी बाजार, कम्पनी के साधारण स्कंध, अंश एवं ऋणपत्र तथा सरकारी बाण्ड एवं प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय भी करता है।
- ♦ पूंजी बाजार स्टॉक एक्सचेंज के माध्यम से व्यवहार करता है, (स्टॉक एक्सचेन्ज एक ऐसा बाजार है जो अंशों, स्कंधों, प्रतिभूतियों व ऋणपत्रों एवं बाण्डों के क्रय-विक्रय की सुविधा प्रदान करता है।)
- ♦ पूंजी बाजार में केवल पुरानी प्रतिभूतियों एवं अंशों का ही क्रय-विक्रय नहीं होता बल्कि यह नये अंशों का प्रतिभूतियों का भी बाजार है।
- ♦ पूंजी बाजार ऐसी संस्थाओं का समूह है जिनके माध्यम से मध्यम एवं दीर्घकालीन अवधि के कोषों की व्यवस्था की जाती है। जो व्यक्तियों, व्यवसायों एवं केन्द्र, राज्य व स्थानीय सरकारों को उपलब्ध कराये जाते हैं।

इस प्रकार पूंजी बाजार राष्ट्र के पूंजी निर्माण और विकास में सहायता करता है। पूंजी बाजार बचतकर्ता और निवेशकों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करता है। अपनी पूरी आय खर्च न करने वाले बचतकर्ताओं (विधियों के ऋणदाता) को Surplus Unit (अतिरेक इकाई) और निवेशकों (निधि के ऋणी) को (हीन इकाई)

Deficit Unit कहते हैं तथा पूँजी बाजार Surplus Unit व Deficit Unit में संचारण तन्त्र (Unit) होता है। पूंजी बाजार बचतकर्ताओं को ब्याज या लाभांश के रूप में प्रोत्साहन देते हैं और निवेशकों को निधियाँ हस्तान्तरित करते हैं। इस प्रकार पूंजी निर्माण होता है।

3.4 भारतीय पूंजी बाजार के प्रकार

भारतीय पूंजी बाजार निम्न भागों में विभक्त है-

उत्कृष्ट बाजार (Gilt-edged Market) - यह सरकारी प्रतिभूतियों का बाजार है। केन्द्र और राज्य सरकारें तथा स्थानीय निकाय अपनी दीर्घकालीन बॉण्ड अथवा प्रतिभूतियाँ संस्थाओं को बेचते हैं। इन बाण्ड्स व प्रतिभूतियों का रिजर्व बैंक का समर्थन प्राप्त होता है। इन बॉण्ड्स की ब्याज दर कम्पनियों द्वारा जारी बॉण्ड्स की दर से कम होती है, फिर भी इन बाण्ड की ओर निवेशक अधिक आकर्षित होते हैं क्योंकि आयकर और धनकर में इन बाँण्डों पर विभिन्न प्रकार के कर प्रोत्साहन एवं छूट मिलती है। ऐसे बॉण्ड औद्योगिक प्रतिभूतियों की अपेक्षा कम जोखिमपूर्ण, अधिक सुरक्षित और अधिक तरल होते हैं।

औद्योगिक प्रतिभूति बाजार (Industrial Security Market) - यह बाजार वाणिज्यिक, वित्तीय और औद्योगिक कम्पनियों के विभिन्न नये और पुराने अंश तथा ऋणपत्र का व्यापार करता है। यह बाजार निम्न दो भागों में विभक्त है-

1. प्राथमिक बाजार (Primary or New Issue Market)
2. द्वितीयक बाजार (Secondary or Old Issue Market or Stock Market or Share Market)

3.3.1 प्राथमिक बाजार या नव निर्गमन बाजार (Primary Market, Initial Public Offering IPO Market)

- ऐसा बाजार जहाँ प्रतिभूतियाँ (जिसमें अंश, ऋणपत्र आदि को शामिल किया जाता है) पहली बार विक्रय या क्रय की जाती है- नव निर्गमन बाजार कहा जाता है।
- किसी कम्पनी द्वारा, साधारण अंश या परिवर्तनीय प्रतिभूतियों का, ऐसा प्रथम सार्वजनिक प्रस्ताव, जिसके बाद कम्पनी के अंश को Stock Exchange

में सूचीबद्ध किया जाता है। प्राथमिक सार्वजनिक प्रस्ताव (Initial Public Offer) कहा जाता है।

- प्राथमिक पूँजी बाजार (Public Ltd.) कम्पनियों द्वारा नव निर्गमन (New Issue) लाने के लिए होता है।
- इसके अन्तर्गत अंश, पूर्णतया परिवर्तनीय ऋणपत्र, अपरिवर्तनीय ऋणपत्र, अंश और ऋणपत्र के अधिमान निर्गमन तथा सममूल्य या प्रीमियम पर सीधे ही जनसाधारण के लिए होते हैं।
- कम्पनियों द्वारा, प्राथमिक बाजार में, निजी स्थापन (Private Placement) द्वारा भी पूंजी जुटाई जाती है, जिससे उसे औद्योगिक समूह के सगे-सम्बन्धियों, मित्रों और अंशधारियों के विशिष्ट निवेशक समूह को अंश की बिक्री की जाती है।
- मर्चेण्ट बैंकर रजिस्ट्रार, निर्गमन सलाहकार आदि प्राथमिक बाजार के कुछ मध्यस्थ हैं।

3.3.2 द्वितीयक बाजार /स्टॉक मार्केट/शेयर बाजार/पुराना निर्गमन बाजार (Secondary Market/Stock Market/Share Market/Old Issue Market)

- यह वह बाजार है जो स्टॉक एक्सचेंज में अंश और ऋणपत्र का व्यापार करता है। इस बाजार को स्कंध बाजार भी कहा जाता है। जहाँ दलालों, म्युचुअल फण्ड, यू0टी0आई0, जी0सी0आई0 जैसी गैर-बैंकिंग वित्तीय कम्पनियों द्वारा विभिन्न अंश और ऋणपत्र का खुले तौर पर व्यापार किया जाता है।
- यह वर्तमान कम्पनियों की प्रतिभूतियों की खरीद और बिक्री का बाजार है।
- इसके तहत प्रतिभूतियों का लेनदेन-प्राथमिक बाजार में जनता को पहले इनकी पेशकश करने और शेयर बाजार में सूचीबद्ध करने के बाद ही किया जाता है।
- यह एक संवेदी बैरौमीटर है, और विभिन्न प्रतिभूतियों के मूल्यों में उतार-चढ़ाव के माध्यम से अर्थव्यवस्था की प्रवृत्तियों को परिलक्षित करता है।
- शेयर बाजार में सूचीबद्धता शेयर धारकों को शेयर की कीमतों में उच्चावचन की कारगर ढंग से निगरानी करने में समर्थ बनाती है जिससे उन्हें इस संबंध

में विवेकपूर्ण निर्णय लेने में मदद मिलती है कि क्या वे अपनी धारिताओं को बनाये रखें या बेच दें या आगे और भी संचित कर लें।

- जब कोई व्यक्ति एक बार कम्पनी द्वारा निर्गमित अंश को खरीद लेता है, तब साधारणतया कम्पनी वह अंश वापस नहीं खरीद सकती। यह अंश बाजार में कोई अन्य व्यक्ति खरीद सकता है। इस प्रकार के लेन-देन अथवा क्रय-विक्रय को हम द्वितीयक (स्टॉक) बाजार का नाम देते हैं।
- अर्थव्यवस्था में द्वितीयक बाजार की भूमिका भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। द्वितीयक बाजार की गतिविधियों का प्राथमिक बाजार की गतिविधियों पर अत्याधिक प्रभाव पड़ता है। एक तरल तथा पारदर्शी द्वितीयक बाजार निवेशकों के लिये एक निकास मार्ग (Exit Root) का प्रावधान करने के लिए महत्वपूर्ण हैं। सेबी ने द्वितीयक बाजार के मध्यस्थों तथा Stock Exchange को अपने नियामक कार्य-क्षेत्र के अन्तर्गत कर लिया है तथा इसने द्वितीयक बाजार के पद्धतिपूर्ण जोखिम को कम करने के लिये बहुत से उपाय किये हैं।

मान्यता प्राप्त स्टाँक एक्सचेंज - भारत में 22 मान्यता प्राप्त स्टॉक एक्सचेंज हैं। ये विभिन्न समयों में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न कानूनों के अन्तर्गत स्थापित किये गये थे पर अब सभी एक ही कानून जो कि प्रतिभूति अनुबन्ध (नियमन) अधिनियम 1956 के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त हैं।

Recognised Stock Exchange In India

S.N.	Exchange	State (City)	S.N.	Exchange	State (City)
1.	अहमदाबाद	गुजरात	12	गुवाहाटी	असम
2.	बंगलौर	कर्नाटक	13.	हैदराबाद	आन्ध्रप्रदेश
3.	भुवनेश्वर	उड़ीसा	14.	मध्य प्रदेश	मध्यप्रदेश (इन्दौर)
4.	कोलकाता	पं0 बंगाल	15.	जयपुर	राजस्थान
5.	कानपुर	उत्तर प्रदेश	16.	मगध	बिहार (पटना)
6.	लुधियाना	पंजाब	17.	मुम्बई	महाराष्ट्र
7.	मद्रास	तमिलनाडु	18.	National Stock Exc.	महाराष्ट्र (मुम्बई)
8.	मंगलौर	केरल	19.	पुणे	महाराष्ट्र

9.	कोचीन	केरल	20.	सौराष्ट्र (कच्छ)	गुजरात (राजकोट)
10.	कोयम्बटूर	तमिलनाडु	21.	बड़ोदरा (बड़ौदा)	गुजरात
11.	दिल्ली	दिल्ली	22.	OTCEL (Over the Counter Exchange of India)	महाराष्ट्र (मुम्बई)

3.4 स्टॉक एक्सचेंज (Stock Exchange)

स्टॉक एक्सचेंज वह बाजार है जहाँ प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय निश्चित नियमों के अनुसार, पहले से पंजीकृत प्रतिभूतियों में ही होता है। स्टॉक एक्सचेंज स्वयं अपने लिये प्रतिभूतियाँ न क्रय करता है और न बेचता है। वह केवल क्रय-विक्रय की क्रियाओं को नियमित करने में सहायता करता है। यह वह स्थान है जहाँ पर क्रेता व विक्रेता परस्पर मिलते हैं। सामान्य भाषा में इन्हीं बाजारों को अंशपत्र बाजार (Share Market) सट्टा बाजार, स्टॉक एक्सचेंज, स्कंध बाजार भी कहते हैं।

स्टॉक एक्सचेंज के कार्य (Function of Stock Exchange) -एक स्कंध विनिमय का न्यायसंगत कार्य है। इस बाजार और सेवा को इस प्रकार संगठित करना है कि जनता के विस्तृत हित तथा क्रेता व विक्रेता के हितों को ध्यान में रखते हुए प्रतिभूतियों का विपणन सफलतापूर्वक लगातार होता रहे। इन कार्यों के अतिरिक्त स्कंध विनिमय के निम्नलिखित आर्थिक कार्य हैं-

1. **पूँजी रचना -** स्टॉक एक्सचेंज पर प्रतिभूतियों के मूल्य सम्बन्धी सूचनाओं का प्रकाशन जन साधारण को बचत करने के लिये प्रोत्साहित करता है तथा जिनके पास बचत होती है उन्हें अपनी बचत को प्रतिभूतियों में लगाने के लिये प्रेरित करता है। इसका प्रवाह यह होता है कि पूंजी की रचना होती है। इस प्रकार स्टॉक एक्सचेंज का प्रथम कार्य पूंजी की रचना है।
2. **पूंजी की तरलता एवं गतिशीलता -** स्कंध विनिमयों का दूसरा आर्थिक कार्य एक ओर जहाँ पूंजी को तरलता प्रदान करना है वहीं दूसरी ओर गतिशीलता लाना है। स्टॉक एक्सचेंज पर प्रतिभूतियों की खरीद व बिक्री किसी भी समय की जा सकती है, इससे प्रतिभूतियों में तरलता आ जाती है

अर्थात् विनियोजक किसी भी समय पूंजी को वापस प्राप्त कर सकता है। यदि कोई प्रतिभूति कम लाभप्रद है तो उसको बेचकर अन्य अधिक लाभप्रद प्रतिभूति खरीदी जा सकती है। इस प्रकार प्रतिभूतियों में गतिशीलता आ जाती है।

3. **तैयार एवं निरन्तर बाजार -** स्टॉक एक्सचेंज का तीसरा कार्य तैयार एवं निरन्तर बाजार उपलब्ध करना है। इन बाजारों में हर समय क्रेता एवं विक्रेता पाये जाते हैं जिससे बाजार में निरन्तरता बनी रहती है।

4. **मूल्य निर्धारण -** मूल्य निर्धारण स्कन्ध विनिमयों का चौथा कार्य है। स्टॉक एक्सचेंज पर प्रतिभूतियों के मूल्यों का निर्धारण आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय आदि जैसे विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखकर होता है। जिससे इनके उचित मूल्य निर्धारित होते हैं।

5. **व्यवहार में सुरक्षा -** स्टॉक एक्सचेंज निश्चित नियमों के अन्तर्गत कार्य करते हैं जिससे जाली प्रतिभूतियों में क्रय-विक्रय का भय कम ही रहता है, साथ ही क्रय-विक्रय का ढंग एवं कमीशन भी निश्चित होता है, जिससे विनियोक्ता में विश्वास पैदा होता है। यदि कोई सदस्य स्टॉक एक्सचेंज के नियमों का पालन नहीं करता है तो उसको दण्डित किया जाता है। इस प्रकार विनिमय विनियोजक को सुरक्षा प्रदान करता है।

6. **अभिसूचित कम्पनियों (Listed Companies) के बारे में पूर्ण जानकारी -** स्टॉक एक्सचेंज का छठा कार्य यह है कि अभिसूचित कम्पनियों के बारे में आर्थिक सूचनायें एकत्रित कर उनका प्रकाशन करे जिससे कि सदस्यों को उसकी जानकारी मिल सके।

इन कार्यों के अतिरिक्त-सदस्यों द्वारा सुविधापूर्ण सौदे कराने के लिए विनिमय कक्ष व अन्य सुविधायें उपलब्ध कराना, सदस्यों में उच्च व्यापारिक सम्मान व सत्यनिष्ठा बनाये रखना एवं व्यवसाय के उच्च तथा न्यायोचित सिद्धान्तों को बढ़ावा देना एवं उनका प्रतिपादन करना भी स्टॉक एक्सचेंज के कार्य हैं।

उपरोक्त कार्यों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्टॉक एक्सचेंज विश्व का एक बड़ा बाजार है तथा एक राष्ट्र की राजनीतिक एवं वित्तीय दशाओं का स्नायु केन्द्र है तथा उसकी सम्पन्नता एवं विपन्नता का मापदण्ड है।

3.5 भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (Securities And Exchange Board of India)-

पूंजी बाजार में निवेशकों के विश्वास को अर्जित करने एवं बनाये रखने के लिये निवेशकों के संरक्षण, प्रतिभूति बाजार का संवर्द्धन एवं विकास तथा प्रतिभूति बाजार के नियमन व नियन्त्रण की आवश्यकता महसूस की गई। इसी उद्देश्य से एक प्रशासनिक संस्था के रूप में भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) की स्थापना की गई। जनवरी 1992 में एक अध्यादेश के द्वारा इस संस्था को वैधानिकता प्रदान की गई तथा फरवरी 1992 में SEBI को वैधानिक स्वरूप में गठित किया गया। अप्रैल 1992 में भारतीय संसद द्वारा सेबी अधिनियम पारित किया गया और सेबी का कार्य एक अलग कानून के अन्तर्गत संचालित होने लगा जिससे सेबी को और अधिक व्यापक कानूनी अधिकार प्राप्त हो गये और इसका कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया। सेबी अधिनियम, 1992 के अनुसार ''सेबी एक निगमित संस्था है जिसका अविच्छिन्न उत्तराधिकार होता है। इसको अपने नाम में वाद करने, चल-अचल सम्पत्ति ग्रहण करने, धारण करने तथा निपटान करने का अधिकार होता है। सेबी पर वाद भी किया जा सकता है।''

सेबी का मुख्य कार्यालय मुम्बई में स्थित है। वर्तमान मे इसके क्षेत्रीय कार्यालय कोलकाता, दिल्ली एवं चेन्नई में हैं। इसके साथ ही सेबी को भारत के विभिन्न स्थानों पर आवश्यकतानुसार कार्यालयों की स्थापना का अधिकार है।

सेबी का प्रबन्ध - सेबी के प्रबन्ध के लिए निम्नलिखित सदस्यों की नियुक्ति अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत की जाती है-

(i) एक अध्यक्ष

(ii) 2 सदस्य उन अधिकारियों में से जो केन्द्र सरकार के वित्त मंत्रालय के कार्यों का संचालन व नियंत्रण करते हैं

(iii) भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नामित एक सदस्य

(iv) केन्द्र सरकार द्वारा नामित दो अन्य सदस्य

इन सदस्यों का कार्यकाल केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित किया जाता है।

सेबी की संगठन संरचना - सेबी ने अपने क्रिया-कलाप को उचित रूप से

निष्पादित करने के लिए एक संगठन संरचना तैयार की है। इसके अन्तर्गत सेबी के 7 विभाग निर्धारित किये गये हैं-

1. प्राथमिक बाजार (Primary Market)
2. निर्गमन प्रबन्ध एवं मध्यस्थ (Issuing Management & Intermediaries)
3. सहायक बाजार प्रशासन (Secondary Market Administration)
4. स्कन्ध विनिमय प्रबन्ध (Stock Exchange Management)
5. संस्थागत निवेश, अधिग्रहण, शोध एवं प्रकाशन (Institutional Investment, Acquisition, Research and Publication)
6. विधि (Law)
7. अन्वेषण (Investigation)

सेबी के कार्य (Functions of SEBI) -

1. प्रतिभूति बाजार के विकास एवं निगमन हेतु व्यापक कानून तैयार करना।
2. प्रतिभूति बाजार के विकास तथा नियमन सम्बन्धी कार्य करना एवं केन्द्रीय सरकार को उचित परामर्श देना।
3. केन्द्रीय सरकार द्वारा सौंपे गये प्रतिभूति बाजार के विकास एवं नियमन सम्बन्धी कार्यों का निष्पादन करना।
4. निवेशकों की सुरक्षा सम्बन्धी कार्य करना एवं इस सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार को परामर्श देना।
5. प्रतिभूति बाजार के मध्यस्थों एवं निवेशकों को शिक्षण का उचित परामर्श देना।
6. प्रतिभूतियों में होने वाले आन्तरिक व्यापार को रोकना।
7. प्रतिभूति बाजार में कपटपूर्ण एवं अनुचित व्यापार व्यवहारों को रोकना।
8. प्रतिभूति बाजार के मध्यस्थों का पंजीयन एवं नियमन करना, इन

मध्यस्थों में स्टॉक दलाल, उपदलाल, अंश हस्तान्तरण एजेण्ट, निर्गमन रजिस्ट्रार, निर्गमन के बैंकर, ऋणपत्र प्रन्यासी, अभिगोपक, मर्चेण्ट बैंक एवं निवेश परामर्शदाता आदि सम्मिलित हैं।

9. स्कन्ध बाजारों, मध्यस्थों आदि से सूचनायें मांगना, उनका निरीक्षण करना,जाँच-पड़ताल करना एवं उनका अंकेक्षण करना।
10. स्वयं नियमित संगठनों को प्रोत्साहित करना।
11. केन्द्रीय सरकार के समक्ष वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना आदि।

3.6 भारतीय पूंजी-बाजार का कार्यकरण (Working Of Indian Capital Market)-

भारत उन थोड़े विकासशील राष्ट्रों में से एक है जहाँ शीघ्रातिशीघ्र 1875 में बम्बई स्टॉक एक्सचेंज ने कार्य करना शुरू कर दिया। यहाँ पोर्ट ट्रस्ट म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन द्वारा जारी सरकारी प्रतिभूतियों और बांडों आदि का व्यापार किया जाता था। 1947 में विभाजन के समय भारतीय क्षेत्र में बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, अहमदाबाद, दिल्ली, कानपुर, हैदराबाद और बंगलौर में स्टाक एक्सचेंज थे। ये सरकारी प्रतिभूतियों के अतिरिक्त टाटा आयरन एवं स्टील कम्पनी जैसी भारतीय कम्पनियों और ब्रिटिश मैनेजिंग एजेंसी हाउसेस के साधारण और अधिमान शेयरों का लेन-देन करते थे। 1990 के शुरू में भारत पूंजी-बाजार द्वारा कम्पनी क्षेत्र के लिए वित्तीय संसाधन जुटाए गए। परन्तु 1956 में बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण होने और 1955 में इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया को स्टेट बैंक आफ इण्डिया के रूप में परिवर्तित किये जाने और भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम लि0 (आई0सी0आई0सी0आई0) की स्थापना तथा 1964 में भारतीय औद्योगिक विकास में बैंक की स्थापना और 1969 में 14 वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण से पूंजी बाजार को धक्का लगा क्योंकि व्यापार और उद्योग को इन संस्थाओं से रियायती ऋण उपलब्ध थे जिसके परिणामस्वरूप कम्पनियों को बाजार मूल्य से पर्याप्त रूप से कम और बट्टे पर इक्विटी का निर्गम करना पड़ा।

विदेशी विनिमय विनियमन अधिनियम (फेरा), के संशोधन से विदेशी स्वामित्व और नियंत्रण वाली कम्पनियों का विस्तार सीमित था। तदनुसार, फेरा कम्पनियों के लिए यह अनिवार्य किया गया है कि वे भारतीय शेयरधारकों को

अनुमोदित अधिमूल्य प्रीमियम पर या सममूल्य (at par) पर नई पूंजी का निर्गमन करके अपनी पूंजी को कम करें। इससे भारतीयों को इन फेरा कम्पनियों के शेयरों का 40 प्रतिशत निर्गमन क्रय मूल्य पर प्राप्त हो गया है। 1980 के दशक के दौरान पूंजी-बाजार पर्याप्त रूप से उन्नत हुआ क्योंकि पूंजी-बाजार में मांग और आपूर्ति दोनों में तेजी लाने के लिए विभिन्न उपाय किए गए थे। सरकार ने इक्विटी और डिबेंचर इश्युओं के लिए अनेक प्रकार के प्रोत्साहन दिए जैसा कि सूचीबद्ध कम्पनियों के लिए कम्पनी कर की दर को कम करना तथा डिबेंचरों पर स्थाई जमा से अधिक ब्याज दर की अनुमति देना जबकि बैंक ऋणों पर अपेक्षाकृत कम ब्याज की अनुमति देना इसके अलावा, कम्पनियों को प्राधिकृत (Authorise) किया गया कि वे संचयी तथा परिवर्तनीय अधिमान शेयर तथा इक्विटी-लिंक्ड डिबैंचर इस्तेमाल कर सकते थे तथा निवेशकों को नए इश्युओं में कर प्रोत्साहन दिया गया था। इस प्रकार 1970 तक भारतीय पूंजी बाजार अविकसित था। उदाहरणार्थ, पांचवी पंच-वर्षीय योजना के दौरान (1974-79) प्राथमिक बाजार से 551 करोड़ रु0 जुटाए गए। द्वितीयक बाजार बहुत छोटा था जिसमें केवल 8 स्टाक एक्सचेंज थे, 1203 सूचीबद्ध कम्पनियाँ थीं, बाजार पूंजीकरण 2600 करोड़ रु0 था जो सकल घरेलू उत्पाद का 7.6 प्रतिशत था, और इसके निवेशक दस लाख से भी कम थे। 1980 के दशक से प्राथमिक और द्वितीयक पूँजी बाजार उल्लेखनीय वृद्धि दिखा रहे हैं। इस समय देश में 22 स्टाक एक्सचेंज हैं जिनमें से 20 क्षेत्रीय हैं और दो अन्य नेशनल एक्सचेंज (NSE) और ओवर दी काउण्टर एक्सचेंज आफ इंडिया (OTCEI) हैं जो सारे देश में व्यापार करते हैं। 31 मार्च, 1998 को 9,833 कंपनियां सभी स्टॉक एक्सचेंजों पर रजिस्टर्ड थीं। 1995-96 में प्राथमिक बाजार से 1,726 कंपनियों ने 20,804 करोड़ रु0 जुटाए जो मंदी के कारण 1997-98 में कम होकर 111 कंपनियों द्वारा 4,570 करोड़ रु0 हुए। इस प्रकार, भारतीय पूंजी-बाजार विश्व के महत्वपूर्ण बाजारों में से एक बाजार के रूप में उभर कर आया है। यह आठवीं पंचवर्षीय योजना में निजी और सार्वजनिक क्षेत्र के लिए वित्त के मुख्य स्रोत के रूप में जाना गया है क्योंकि इस दौरान बाजार में लगभग 50,000 करोड़ रुपये जुटाए गए।

1980 के दशक के दौरान पूंजी-बाजार की तेजी से वृद्धि के बावजूद आन्तरिक लेन-देन, कीमतों में हेरा-फेरी, कम्पनियों के अधूरे, अस्पष्ट और गुमराह करने वाले प्रोस्पैक्टस (प्रविवरण) शेयर आवंटन तथा धन वापसी में विलम्ब तथा

स्टॉक एक्सचेंज मे कीमतों में जोड़-तोड़ आदि जैसी अनेक बुराईयाँ मौजूद थीं। पूंजी-बाजार कम तरल था और इसमें पारदर्शिता भी कम थी जिससे निवेशकों को कम सुरक्षा प्राप्त थी। इन कारणों से पूंजी बाजार में अनेक सुधार किए गए।

3.7 पूंजी बाजार में सुधार (Capital Market Reforms)-

भारत सरकार द्वारा समय-समय पर नियुक्त नरसिह्मन समिति, अन्य समितियों और समूहों की सिफारिश पर भारतीय पूंजी-बाजार में सुधार लाने के लिए अनेक उपाए किए गए हैं। इन्हें नीचे सूचीबद्ध किया गया है-

(क) भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (Securities and Exchange Board of India) की स्थापना : - 31 मार्च, 1992 को भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (SEBI अर्थात सेबी) की स्थापना एक स्वायत्त और वैधानिक निकाय के रूप में की गई। मई, 1992 में पूंजी निर्गमन नियंत्रण अधिनियम, 1947 को रद्द करने के कारण 29 मई, 1992 से निर्गत नियंत्रक, (Controller of Issues) का कार्यालय बंद कर दिया गया। सेबी नव निर्गमनों (New Issues) को देखने, निवेशकों के हितों की रक्षा करने, पूंजी बाजार के विकास को उन्नत और स्टॉक एक्सचेंज की कार्यशीलता को विनियमित करने के लिए नियामक (Regulatory) प्राधिकरण है। सेबी ने इस दिशा में मध्यस्थों के पंजीकरण, कड़े प्रकटीकरण मानदंड, आंतरिक व्यापार पर विनियमन तथा स्टॉक एक्सचेंजों और म्यूचुअल फंडों की कार्य-प्रणाली के निरीक्षण जैसे अनेक उपाय शुरू किए हैं। ऐसे उपाय और नीचे स्पष्ट किए गए अन्य उपाय निवेशकों में विश्वास पैदा कर सकते हैं।

(ख) प्राथमिक बाजार सुधार (Primary Market Reforms) - निर्गमन प्रक्रियाओं में अपर्याप्तताओं और कमियों को दूर करने के लिए प्राथमिक अथवा नये निर्गमन (Issue) पूंजी बाजार में सुधार के लिए निम्न उपाए किए गए हैं-

(1) शेयरों के मूल्य और अधिमूल्य (प्रीमियम) पर नियंत्रण हटा दिया गया है। कम्पनियाँ अब सेबी से अनुमोदन लेने के उपरान्त शेयरों और डिबेंचरों की कीमतों और अधिमूल्य निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र है।

(2) प्राथमिक बाजार में शेयरों और ऋण-पत्रों का निर्गमन करने वाली कम्पनियों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे अपने परियोजनाओं से जुड़े सभी महत्वपूर्ण तथ्य और विशिष्ट जोखिम कारकों को प्रकट करें।

(3) जनसाधारण हेतु इश्यू की जाने वाली प्रतिभूतियों का न्यूनतम प्रतिशत 25 प्रतिशत निर्धारित कर दिया गया है।

(4) सेबी द्वारा एक विज्ञापन संहिता के द्वारा यह सुनिश्चित कर दिया गया है कि विज्ञापनों में ऐसा विवरण न हो जो निवेशकों को गुमराह करने वाला हो।

(5) आवंटन प्रक्रिया में यह अनिवार्य होता है कि शेयर आनुपातिक आधार पर आवंटित किए जाएं और म्यूचुअल फंड्स तथा विदेशी संस्थागतों को पब्लिक इश्युओं से निश्चित आवंटन की अनुमति दी गयी है।

द्वितीयक बाजार सुधार (Secondary Market Reforms) - सेबी द्वारा द्वितीयक बाजार में मध्यस्थों के लिए विशिष्ट नियम और विनियम निर्धारित किए गए हैं। वे हैं :-मर्चेन्ट बैंकर्स, निवेश प्रबंधक, अभिगोपक, रजिस्ट्रार, दलाल और उप-दलाल तथा शेयर हस्तांतरण एजेन्ट्स। उनके लिए अनिवार्य है कि वे विशिष्ट पूंजी पर्याप्तता मानदंड को पूरा करें और निवेशकों के लिए आचार संहिता का अनुसरण करें। चूक की स्थिति में सेबी द्वारा उनके विरुद्ध कार्रवाई का भी प्रावधान है। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

(1) सभी दलालों के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वे उस स्टॉक एक्सचेंज में स्वयं को पंजीकृत कराएँ जहाँ वे कार्य करना चाहते हैं।

(2) स्टॉक-दलालों के लिए सेबी द्वारा निर्धारित पूंजी पर्याप्तता मानदंड व्यक्तिगत दलालों के लिए 3% और निगम के सदस्यों के लिए 6% किया गया है।

(3) स्टॉक एक्सचेजों को निर्देश दिया गया है कि वे यह सुनिश्चित करें कि दलालों द्वारा ग्राहकों को जारी अनुबंध टिप्पणियाँ सौदा होने के

24 घंटे के भीतर जारी हो जाएं।

(4) ग्राहकों द्वारा दलालों को कीमत-अन्तरों का भुगतान और दलालों द्वारा हस्तान्तरणों एवं बिक्री प्राप्तियों के भुगतान के लिए समय-सीमा निर्धारित की गई है। त्रुटियों के लिए दंड की व्यवस्था की गई है।

(5) विनिमय में अधिक पारदर्शिता लाने के लिए, दलालों द्वारा ग्राहकों और अपने लिए पृथक खाते रखना अनिवार्य है। ग्राहकों को जारी अनुबंध टिप्पणियों पर विनिमय मूल्य और दलाली का उल्लेख पृथक तौर पर होना चाहिए।

3.8 भारतीय पूंजी बाजार के दोष एवं सुधार के लिए सुझाव (Defects Of Indian Capital Markets & Suggestions For Improvement)-

इन सुधारों के बावजूद भारतीय पूंजी-बाजार की कार्य-प्रणाली में कुछ दोष भी है। इन दोषों की हम नीचे चर्चा करेंगे-

1. **कम तरलता (Poor Liquidity) -** भारतीय पूंजी-बाजार में पर्याप्त तरलता नहीं है। हाल ही में किए गए अध्ययन से पता चलता है कि प्रतिदिन 20 प्रतिशत शेयर-पत्रों और वह भी समूह 'ए' के शेयर-पत्रों का व्यापार किया जाता है। अन्य 20 प्रतिशत शेयर-पत्रों का व्यापार सप्ताह में 2 से 3 और 10 प्रतिशत शेयर-पत्रों का व्यापार 15 दिन में एक बार किया जाता है। इस प्रकार देश के सबसे बड़े स्टाक एक्सचेंज में सुचीबद्ध 50 प्रतिशत शेयर पत्रों में बहुत कम तरलता है। अन्य स्टाक एक्सचेंजों में सूचीबद्ध 2/3 शेयर-पत्र का तो लेन-देन बिल्कुल ही नहीं होता है।

2. **सुपुर्दगी में विलम्ब (Delay in Delivery) -** शेयर-पत्रों की सुपुर्दगी और निपटान अथवा लेन-देन में असाधारण विलम्ब होता है। शेयर-पत्रों की सुपुर्दगी में साधारणतः 3 से 4 महीने और भुगतान में 2 से 3 महीने का समय लगता है। खराब सुपुर्दगी की अवधि मुख्यतया विक्रेता के हस्ताक्षरों के कारण और अधिक लम्बी हो जाती है और समस्या जटिल हो जाती है। भुगतान में भी प्रायः विलम्ब हो जाता है और इनमें साधारणतया 1 से 2 माह का समय लग जाता है। भुगतानों और सुपुर्दगियों में होने वाले बारंबार विलम्ब के कारण स्टॉक

एक्सचेंज प्रचालनों के कार्य में अवरोध होता है।

3. **आंतरिक व्यापार (Insider Trading) -** भारतीय पूंजी-व्यापार आंतरिक व्यापार के कारण उतार-चढ़ाव से ग्रस्त है। कम्पनी में कार्य करने वाले व्यक्ति प्रायः कम्पनी की प्रत्याशित लाभप्रदता और हानियों के आधार पर शेयरों का क्रय-विक्रय करते हैं। इससे कम्पनी के शेयर - पत्रों में कीमत उतार-चढ़ाव होता है जिसका छोटे निवेशकों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कुछ बड़े औद्योगिक घराने भी समूह कम्पनियों के शेयरों में लेन-देन का सहारा लेते हैं जिससे साधारण शेयरधारकों के लिए आन्तरिक व्यापार की समस्या बढ़ जाती है।

4. **अपर्याप्त बाजार उपकरण (Inadequate Market Instruments)-** भारत में पूंजी-बाजार उपकरण मुख्यतया शेयरों और डिबेंचरों तक सीमित रहते हैं जोकि पूंजी बाजार की सही कार्य-प्रणाली के लिए अपर्याप्त होते हैं। अभी हाल ही में शुरू किए गए वारंट, शून्य कूपन बांड्स आदि निवेशकों में अभी तक लोकप्रिय नहीं है।

5. **अकुशल बैकिंग और डाक सेवाएं (Inefficient Banking and Postal Service) –** बैकिंग और डाक सेवाएं इतनी कार्यकुशल नहीं हैं जिससे छोटे निवेशकों की कठिनाइयाँ और बढ़ जाती हैं। धन-राशि वापसी, लाभांश, वारंट्स और ब्याज का भुगतान, कम्पनियों द्वारा छोटे ग्राहकों को साधारण डाक द्वारा भेजे जाते हैं जो प्रायः उन तक नहीं पहुंचते हैं। कुछ भ्रष्ट डाक और बैंककर्मी आपस में सांठ-गाँठ करके धोखाधड़ी द्वारा ऐसे चैक का भुगतान करा लेते हैं और छोटे निवेशकों को ठगते हैं।

6. अलभ्य वस्तु बाजार का अस्तित्व (Existence of Grey Market)
7. अस्पष्ट प्रविवरण (Vague Prospectus)
8. स्टॉक दलाली व्यवस्था दोषपूर्ण (Defective Stock-Broking System)
9. पारदर्शिता का अभाव (Lack of Tranaparency)
10. निवेशकों को अपर्याप्त संरक्षण (Inadequate prtection to Investors)
11. विषम शेयरों की समस्याएं (Odd Lot Share Problem)

12. स्टॉक एक्सचेंजों का दोषपूर्ण प्रचालन (Defective Operation of Stock Exchange)
13. अपर्याप्त स्टॉक एक्सचेंज (Inadequate Stock-Exchange)
14. विखंडित बाजार (Fragmented Market)

उपरोक्त दोषों और पहले अपनाए गए सुधार उपायों को देखते हुए स्टॉक एक्सचेंज की कार्यशीलता को सुचारू ढंग से लागू करने और भारतीय पूंजी-बाजार के दोषों को दूर करने के लिए निम्न सुझाव दिए गए हैं-

1. तरलता में सुधार (Improving Liquidity)
2. स्टॉक एक्सचेंजों की कार्यशीलता को सरल और कारगर बनाना (Streamlining the working of stock-Exchange)
3. आंतरिक व्यापार को नियन्त्रित करना (Controlling the Insiders Trading)
4. नए बाजार उपकरण तैयार करना (Devising New Market Instrument)
5. अलभ्य वस्तु-बाजार प्रचालनों पर प्रतिबंध (Banning Grey Market Operations)
6. प्रविवरण में पारदर्शिता (Transparency in Prospectus)
7. स्टॉक दलाली व्यवस्था को सरल एवं कारगर बनाना (Streamling the Stock Broking System)
8. निवेशकों और दलालों को संरक्षण प्रदान करना (Protecting Investors and Brokers)
9. विषम प्रकार के शेयरों का निपटारा (Disposal of Odd Lots)
10. अधिक स्टॉक एक्सचेंज खोलना (Openig More Stock Exchange)
11. मध्यस्थों की गतिविधियों को विनियमित करना (Regulating the Activities of Intermediaries)
12. स्टॉक एक्सचेंजों की गतिविधियों को समन्वित करना (Co-ordinating the Activities of Stock Exchanges)
13. कर रियायतें देना (Giving Tax Concessions)

इस प्रकार सेबी का पेपरलेस निपटान, भविष्य एवं विकल्प मार्केट, शेयरों के निर्गमन से कीमत निर्धारण को अधिक मुक्त करने और अधिक पारदर्शिता तथा अत्यधिक प्रतियोगिता जैसे सुधार लाने चाहिये।

3.9 सारांश

पूंजी बाजार से आशय उस बाजार से है जो दीर्घकालीन ऋणों में लेनदेन करता है। तथा यह उद्योगों को कार्यशील पूंजी उपलब्ध कराता है। भारतीय पूंजी बाजार दो भागों में बाँटा गया है-प्राथमिक बाजार, द्वितीयक बाजार, ऐसा बाजार जहाँ प्रतिभूतियाँ (जिसमें अंशपत्र, ऋणपत्र आदि को शामिल किया जाता है) पहली बार विक्रय या क्रय की जाती हैं प्राथमिक बाजार कहा जाता है। द्वितीयक बाजार वह बाजार है जो स्टॉक एक्सचेंज में अंशपत्र और ऋणपत्र का व्यापार करता है।

स्टॉक एक्सचेंज वह बाजार है जहाँ प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय निश्चित नियमों के अनुसार, पहले से पंजीकृत प्रतिभूतियों में ही होता है। सामान्य भाषा में इन्हीं बाजारों को शेयर बाजार सट्टा बाजार, स्टॉक एक्सचेंज, स्कंध बाजार भी कहते हैं।

पूंजी बाजार में निवेशकों के विश्वास को अर्जित करने एवं बनाये रखने के लिये निवेशकों का संरक्षण, प्रतिभूति बाजार का संवर्द्धन एवं विकास तथा प्रतिभूति बाजार का नियमन व नियन्त्रम की आवश्यकता को पूरा करने के उद्देश्य से एक प्रशासनिक संस्था के रूप में भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) की स्थापना की गई।

3.10 संदर्भ

1. वित्तीय बाजार परिचालन - पी0 के0 अग्रवाल, उपेन्द्र कुमार
2. मुद्रा एवं वित्तीय पद्धतियां - वी0सी0 सिन्हा
3. मुद्रा बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं लोकवित्त - एम0एल0 झिंगन
4. निगमित वैधानिक रूपरेखा - रविकुमार भोला, के0सी0गर्ग, बी0के0 सरीन, मुकेश शर्मा

3.11 स्वपरख प्रश्न

1. पूंजी बाजार क्या है? इसके प्रकार बताइये।
2. स्टॉक एक्सचेंज क्या है? इसके कार्य बताइये।
3. सेबी की संगठन संरचना व कार्य बताइये।
4. भारतीय पूंजी बाजार के दोष व इसके सुधार के सुझाव बताइये।

इकाई 4 : सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 सूचना प्रौद्योगिकी का अर्थ
4.3 सूचना प्रौद्योगिकी के उदय के कारक
4.4 सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व
4.5 सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न घटक
4.6 सूचना प्रौद्योगिकी का प्रभाव
4.7 भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000
4.8 सूचना प्रौद्योगिकी संशोधन अधिनियम 2008
4.9 सारांश
4.10 संदर्भ ग्रन्थ
4.11 स्वपरख प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न का वर्णन कर सकेंगे :

- सूचना प्रौद्योगिकी का अर्थ,
- सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व,
- सूचना प्रौद्योगिकी के कुप्रयोग को रोकने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम का अध्ययन,
- सायबर अपराधों के विरुद्ध सूचना प्रौद्योगिकी संशोधित अधिनियम

4.1 प्रस्तावना

सूचना प्रौद्योगिकी वह उद्योग है जो कम्प्यूटर और सहायक उपकरणों की सहायता से ज्ञान का प्रसार करता है। सूचना प्रौद्योगिकी शब्द में कम्प्यूटर और संचार प्रौद्योगिकी तथा सम्बन्धित सॉफ्टवेयर का भी समावेश होता है इस इकाई में आपको सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व, इसके विभिन्न घटक तथा इसके प्रभाव के बारे में जानकारी दी जायेगी तथा साइबर अपराधों को रोकने के लिए लागू सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 व सूचना प्रौद्योगिकी संशोधित अधिनियम 2008 की चर्चा की जायेगी।

4.2 सूचना प्रौद्योगिकी का अर्थ

सूचना प्रौद्योगिकी आंकड़ों की प्राप्ति, सूचना संग्रह, सुरक्षा, परिवर्तन आदान-प्रदान, अध्ययन आदि कार्यों तथा इन कार्यों के निष्पादन के लिये आवश्यक कम्प्यूटर हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर अनुप्रयोगों से सम्बन्धित है। सूचना प्रौद्योगिकी कम्प्यूटर पर आधारित सूचना प्रणाली का आधार है। सूचना प्रौद्योगिकी वर्तमान समय में वाणिज्य और व्यापार का अभिन्न अंग बन गई है। संचार क्रांति के फलस्वरूप अब इलेक्ट्रानिक संचार को भी सूचना प्रौद्योगिकी का एक प्रमुख घटक माना जाने लगा है और इसे सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी भी कहा जाता है। एक उद्योग के तौर पर यह एक उभरता हुआ क्षेत्र है।

4.3 सूचना प्रौद्योगिकी के उदय के कारक

- **अर्द्धचालक प्रौद्योगिकी-** इन्टीग्रेट परिपथों का लघुकरण, कम्प्यूटिंग शक्ति में वृद्धि, उन्नत क्षमता उपयुक्त एकीकृत परिपथों का विकास।
- **सूचना भण्डारण -** आंकड़ा भण्डारण के लिये प्रयुक्त अर्द्धचालक प्रौद्योगिकी के विकास से सस्ता, लघु आकार और अति क्षमता-युक्त युक्तियाँ सुलभ हो गई हैं।
- **नेटवर्किंग-** प्रकाशीय तन्तु (ऑप्टिकल फाइबर) की तकनीकी में अत्यधिक विकास के कारण नेटवर्किंग सस्ती, तेज व आसान हो गई है।
- **सॉफ्टवेयर तकनीकी -** नित नये-नये और उपयोगी सॉफ्टवेयरों के आने से सूचना प्रौद्योगिकी और अधिक उपयोगी बन गई है।

4.4 सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व

- सूचना प्रौद्योगिकी सेवा अर्थतन्त्र का आधार
- यह किसी देश के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए एक सम्यक् तकनीकी है।
- गरीब जनता को सूचना सम्पन्न बनाकर ही निर्धनता का उन्मूलन किया जा सकता है।
- सूचना सम्पन्नता से सशक्तीकरण होता है।
- यह प्रशासन और सरकार में पारदर्शिता लाती है। इससे भ्रष्टाचार कम करने में मदद मिलती है

- इसका प्रयोग योजना बनाने, नीति निर्धारण तथा निर्णय लेने में होता है।
- यह नये रोजगारों का सृजन करती है।

4.5 सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न घटक

- **कम्प्यूटर हार्डवेयर प्रौद्योगिकी-**इसके अन्तर्गत माइक्रो कम्प्यूटर, सर्वर, बड़े मेनफ्रेम कम्प्यूटर के साथ-साथ इनपुट, आउटपुट एवं संग्रह करने वाली युक्तियाँ आती हैं।
- **कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर प्रौद्योगिकी -** इसके अन्तर्गत संचालन प्रणाली, वेब ब्राउजर तथा व्यापारिक वाणिज्यिक सॉफ्टवेयर आते हैं।
- **दूरसंचार व नेटवर्क प्रौद्योगिकी -** इसके अन्तर्गत दूरसंचार के माध्यम, प्रोसेसर तथा अन्तराल जाल से जुड़ने के लिये तार या बेतार पर आधारित सॉफ्टेवयर।
- **मानव संसाधन -** सिस्टम एडमिनिस्ट्रेटर, नेटवर्क, एडमिनिस्ट्रेटर आदि।

4.6 सूचना प्रौद्योगिक का प्रभाव

सूचना प्रौद्योगिकी ने पूरी धरती को एक गाँव बना दिया है। इसने विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं को जोड़कर एक वैश्विक अर्थव्यवस्था को जन्म दिया है। यह नवीन अर्थव्यवस्था अधिकाधिक रूप से सूचना के रचनात्मक व्यवस्था का वितरण पर निर्भर है। इसके कारण व्यापार और वाणिज्य में सूचना का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है, इसलिए इस अर्थव्यवस्था को सूचना अर्थव्यवस्था या ज्ञान अर्थव्यवस्था भी कहने लगे हैं।

सूचना क्रांति से समाज के सम्पूर्ण कार्यकलाप प्रभावित हुये हैं- धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार, प्रशासन, सरकार, उद्योग, अनुसंधान व विकास, संगठन प्रचार आदि सभी क्षेत्रों में कायापलट हो गयी है। आज का समाज सूचना प्राप्त कहलाता है।

सूचना के महत्व के साथ सूचना की सुरक्षा का महत्व भी बढ़ गया है। प्रौद्योगिकी से जुड़े कार्यों में रोजगार के अवसर बढ़े हैं। विशेष रूप से सूचना सुरक्षा एवं सर्वर के विशेषज्ञों की माँग बड़ी है।

भारत में सूचना प्रौद्योगिकी - भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का विकास पिछले वर्षों में बड़ी तेजी से हुआ है। सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत में कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हैं। उनमें से प्रमुख हैं- इंटेल (Intel), माइक्रोसॉफ्ट (Microsoft), टी0आई0 (Taxas Instruments), गूगल (Google) याहू (Yahoo) सैप लैब्स इंडिया (SAP Labs India) (SAP Labs India की Parent कम्पनी SAP AG है जो कि जर्मनी में स्थित है)। इस क्षेत्र की प्रमुख भारतीय कम्पनियाँ- इंफोसिस (Infosys),

टी0सी0एस0 (Tata Consultancy Services), विप्रो (Wipro) तथा सत्यम (Satyam) आदि हैं।

4.7 भारत में सूचना प्रौद्योगिक अधिनियम 2000

सायबर अपराधों को रोकने व ऐसे अपराधों के बढ़ते मामलों को रोकने के लिये मई सन् 2000 में भारत सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी विधेयक को पारित कर दिया। इस विधेयक ने अगस्त सन् 2000 में राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त की और इसे सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 के रूप में जाना गया। 15 दिसम्बर सन् 2006 को सूचना प्रौद्योगिकी संशोधन अधिनियम, 2006, को लोकसभा में पेश किया गया और 23 दिसम्बर सन् 2008 को संसद के दोनों सदनों ने इसे पारित कर दिया। इसके बाद 5 फरवरी, 2009 को सूचना प्रोद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम, 2008 को राष्ट्रपति ने अपनी मंजूरी प्रदान कर दी और इसे भारत के राजपत्र में अधिसूचित कर दिया गया।

धारा 52- (अध्यक्ष तथा सदस्यों के वेतन, भत्तों तथा अन्य शर्तें और नियम), **धारा 54-** (दुर्व्यवहार की जांच के लिए प्रक्रिया या अध्यक्ष तथा सदस्यों की अक्षमता), **धारा 69 -** (सूचना का अवरोधन, निगरानी तथा अवमूल्यन प्रक्रिया तथा सुरक्षा उपाय), **धारा 69(ए) -** (आम जनता द्वारा सूचना तक पहुँच तथा रोक के लिए प्रक्रिया तथा सुरक्षा उपाय), **धारा 69(बी) -** (सूचना या आंकड़ा एकत्रीकरण तथा निगरानी के लिये प्रक्रिया तथा सुरक्षा उपाय) के अनुकूल नियमों तथा **धारा 70(बी)** के तहत भारतीय कम्प्यूटर आपातकाल अनुक्रिया टीम के लिये भी अधिसूचना जारी कर दी गई है।

इस अधिनियम का लक्ष्य भारत में ई-वाणिज्य के लिए कानूनी बुनियादी ढांचा उपलब्ध कराना है। साइबर कानून का भारत में ई-व्यवसायों और नई अर्थव्यवस्था पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। इसलिए आईटी अधिनियम, 2000 के विभिन्न दृष्टिकोणों को जानना और ये क्या प्रस्तुत कर रहे हैं समझना महत्वपूर्ण हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 का लक्ष्य कानूनी ढांचा उपलब्ध कराना है जिसके कि सभी इलेक्ट्रानिक रिकॉर्ड और अन्य गतिविधियों को इलेक्ट्रानिक रिकार्ड और अन्य गतिविधियों को इलेक्ट्रानिक माध्यम से प्रदान करने के लिए कानूनी कार्यवाही अनुरूप हो सके। अधिनियम के अनुसार जब तक अन्यथा सहमति नहीं प्रकट की जाए तब तक अनुबंध की स्वीकृति, इलेक्ट्रॉनिक संचार के साधनों, कानूनी वैधता और लागूकरण द्वारा होगी, इस अधिनियम के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु नीचे सूचीबद्ध हैं-

- अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कोई भी ग्राहक अपने डिजिटल हस्ताक्षर जोड़कर एक इलेक्ट्रानिक रिकॉर्ड प्रमाणित कर सकता है तथा कोई भी व्यक्ति ग्राहक की सार्वजनिक कुंजी के प्रयोग से एक इलेक्ट्रानिक रिकॉर्ड को

सत्यापित कर सकता है।

- यह अधिनियम विनियमन के प्रमाण पत्र अधिकारियों को प्रमाण पत्र के लिए एक योजना देता है तथा प्रमाणपत्र प्राधिकरणों के नियंत्रण की परिकल्पना पूर्ण करता है, जो अधिकारियों की गतिविधियों पर निगरानी रखने का काम करेगा क्योंकि प्रमाणपत्र प्राधिकरणों पर शासन करने वाले मानक और शर्तों को भी विभिन्न रूपों और डिजिटल हस्ताक्षर प्रमाणपत्र की सामग्री के रूप में निर्दिष्ट प्राधिकारी का प्रमाण पत्र प्रदर्शित करेगा। अधिनियम विदेशी अधिकारियों को पहचानने की आवश्यकता को मान्यता देता है और आगे विविध उपलब्धताओं के बारे में विवरण देता है।
- इस अधिनियम में दण्ड, जुर्माना और विभिन्न अपराधों के लिए अधिनिर्णयन कानून के बारे में विस्तृत रूप से व्याख्या की गई है।
- अधिनियम एक निर्णायक अधिकारी की नियुक्ति व अधिकार के बारे में बताता है, जिसमें वह किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी भी प्रावधानों का उल्लंघन किये जाने पर इसका निर्णय करेगा। यह अधिकारी भारत सरकार या राज्य सरकार का समकक्ष अधिकारी होगा जो एक निदेशक के रैंक से नीचे नहीं होगा। इस निर्णायक अधिकारी को एक नागरिक न्यायालय का अधिकार दिया गया है।
- अधिनियम सायबर रेग्युलेशन अपीलेट ट्रिब्यूनल की स्थापना के बारे में विवरण देता है जिसमें अपील निर्णायक अधिकारियों द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील किया जायेगा।
- अधिनियम में विभिन्न अपराधों के बारे में चर्चा की गई है। इसके अनुसार अपराधों की जाँच एक पुलिस अधिकारी, जो उप पुलिस अधीक्षक के पद से नीचे नहीं होगा, के द्वारा की जायेगी।
- यह अधिनियम सायबर विनिमय सलाहकार समिति के गठन के लिये भी उपलब्ध है, जो सरकार को किसी भी नियम से सम्बन्धित या अधिनियम सम्बन्धी किसी अन्य उद्देश्य के साथ जुड़ने की सलाह देता है। इस अधिनियम में भारतीय दण्ड संहिता, 1860, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, द बैंकर्स बुक साक्ष्य अधिनियम, 1891, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया एक्ट, 1934 को अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप बनाने के लिए उनमें संशोधन करने का प्रस्ताव है।
- सन् 2008 के संशोधन के परिणामस्वरूप सेवा प्रदाता द्वारा सेवाओं की सुपुर्दगी हेतु शासन द्वारा अधिकृत किया जा सकता है। अधिकृत सेवा प्रदाता कोई भी व्यक्ति, निजी एजेन्सी, निजी कम्पनी साझेदारी फर्म, एकांकी स्वामी के रूप में हो सकता है।
- सेवा प्रदाता सेवा प्रदान करने के लिए सेवा प्राप्त करने वाले व्यक्ति से अधिकृत सेवा शुल्क संग्रह करने का आधिकार रखता है। सेवा शुल्क की दरें

शासन द्वारा निर्धारित की जा सकती हैं।

- **प्रमाणित करने वाले अधिकारियों का नियमन -** केन्द्रीय सरकार, प्रमाणित करने वाले प्राधिकारियों के नियंत्रण हेतु उपनियंत्रक, सहायक नियंत्रक एवं अन्य अधिकारी एवं कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकती है जो केन्द्रीय सरकार के निर्देशों का पालन व अपने दायित्वों का निर्वहन करेंगे। इन अधिकारियों की योग्यता अनुभव, सेवा शर्तें केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की जायेगी। इनका मुख्य कार्यालय और शाखा कार्यालय केन्द्रीय सरकार द्वारा उचित एवं वांछित स्थानों पर स्थापित किये जायेंगे।
- **लाइसेन्स का निर्गमन -** किसी भी व्यक्ति के द्वारा नियन्त्रक को आवेदन-पत्र देने पर नियंत्रक द्वारा इलेक्ट्रानिक हस्ताक्षर प्रमाणपत्र निर्गमित किया जा सकता है बशर्ते कि उसके पास निर्धारित योग्यता, दक्षता, मानव शक्ति वित्तीय संसाधन एवं अन्य आवश्यक बुनियादी सुविधायें उपलब्ध हों, यह लाइसेन्स एक निर्धारित अवधि के लिए वैध होगा जो अपरिवर्तनीय होगा।
- लाइसेन्स हेतु आवेदन पत्र के साथ निर्धारित शुल्क (जो 25000 रु0 से अधिक नहीं होगा), प्रमाणन अभ्यास प्रपत्र, आवेदक का पहचान प्रमाणपत्र तथा अन्य ऐसे प्रलेख जो केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित किये गये हों, संलग्न किये जायेंगे।
- प्रमाणक प्राधिकरण द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रिया-
  1. प्रत्येक प्राधिकरण हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर और सुरक्षित प्रक्रिया का प्रयोग करेगा।
  2. उचित विश्वसनीयता का स्तर प्राधिकरण प्रदान करेगा।
  3. केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित प्रमाणों का अनुपालन करेगा।

4.8 सूचना प्रौद्योगिकी संशोधन अधिनियम, 2008 (सायबर अपराध के विरुद्ध सरकारी उपाय)

सायबर अपराध के बढ़ते मामलों से निपटने के लिए मौजूदा कानून को अपर्याप्त मानते हुए सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2008 में व्यापक संशोधन कर यह दर्शा दिया है कि वह भविष्य से सायबर अपराधों के प्रति पूरी तरह जागरूक है। 28 अक्टूबर 2009 को इन संशोधनों को सरकार ने अधिसूचित भी कर दिया है, जिससे त्वरित आधार पर इनका उपयोग शुरू किया जा सके। इस अधिनियम को संशोधित करते हुए सरकार ने न केवल देश के घटे विभिन्न तरह के अपराधों का आंकलन किया बल्कि दुनियाभर में मौजूद आईटी या सायबर अपराध नीति का भी अध्ययन किया। इसका उद्देश्य यह तय करना था कि कम्प्यूटर या सायबर अपराध से जुड़ा कोई भी पहलू छूटने न पाए।

मूल रूप से वर्ष 2000 में तथा बाद में वर्ष 2008 में लाया गया सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, उस समय ई-कामर्स, इलेक्ट्रानिक रूप में पैसे के लेन-देन, ई-प्रशासन के साथ ही कम्प्यूटर से जुड़े अपराधों को ध्यान में रखकर लाया गया था। उस समय हुए अपराधों व घटनाओं को ध्यान में रखकर तैयार किए गए इस सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धाराएँ अगले कुछ सालों में ही कम्प्यूटर व इंटरनेट के बढ़ते प्रयोग और उससे जुड़े अपराधों की संख्या व विविधता के आधार पर कम पड़ने लगीं। जिसके बाद सरकार ने मौजूदा इंटरनेट अपराधों व उसके लिए विश्वस्तर पर उपलब्ध कानूनों की तर्ज़ पर इस अधिनियम में संशोधन कर इसे समकालीन व शक्तिमान बनाने का निर्णय किया। जिसके बाद इसके मौजूदा प्रावधानों को और अधिक सख्त करने के साथ ही उसके स्वरूप को भी व्यापक किया गया, ताकि कम्प्यूटर अपराध से जुड़ा हर पहलू इसमें शामिल हो सके।

सूचना प्रौद्योगिकी के संशोधन में कुल 52 धारायें हैं, जिसमें हर पक्ष को शामिल किया गया है। इस संशोधन के दौरान यह भी ध्यान रखा गया है कि यह United Nations Commission on International Trade Relations, Law (UNCITRL) के अनुरूप भी हो। UNCITRL विश्वस्तरीय कानून है। अधिनियम में संचार उपकरण की व्याख्या को भी शामिल किया गया है। कम्प्यूटर या इंटरनेट नेटवर्क पर इस उपकरण के बिना कार्य करना सम्भव नहीं है। इसको ध्यान में रखकर संचार उपकरण को कानूनी परिधि में शामिल किया गया जिससे इसे उल्लेखित कर उसके अनुरूप भी कानूनी प्रक्रियायें शुरू की जा सके। इसी तरह सेवा प्रदाता को भी अधिनियम में उल्लेखित किया गया। इसके तहत सभी सेवा प्रदाता, वेब होस्टिंग सेवा लेने वाले, सर्च इंजन, ऑन लाइन नीलामी साइट व सायबर कैफे को भी शामिल किया गया है जिससे कोई भी सेवा प्रदाता कानूनी परिधि से बाहर न रहे। इलेक्ट्रानिक हस्ताक्षर के बढ़ते अपराधों व धोखाधड़ी को देखते हुए संशोधित एक्ट में 3ए सेक्शन को उल्लेखित किया गया है। एक्ट में डाटा सुरक्षा व उसकी निजता को सुनिश्चित करने के लिए डाटा सिक्यूरिटी एण्ड प्राइवेसी को नामित कर एक नया सेक्शन 43ए लाया गया है जो डाटा लीकेज होने पर पीड़ित को मुआवजा का अधिकार देता है। इस सेक्शन के तहत केन्द्र सरकार को यह विशेष अधिकार दिया गया है। वह चाहे तो विभिन्न संवेदनशील डाटा के मामलों में सुरक्षा को लेकर नियम या प्रावधान घोषित कर सकती है।

गोपनीयता भंग करके सूचना जारी करने को लेकर धारा 72ए भी एक्ट में शामिल किया गया है। ब्रीच ऑफ काफीडेंशलिटी-डिस्कलोजर ऑफ इंफोरमेशन के नाम से नामित यह धारा 43ए का ही अगला कदम है। जहाँ 43ए सेक्शन में आंकड़े प्रकट करने वाली कंपनी के खिलाफ सामाजिक उत्तरदायित्व निर्धारित किया गया है। वहीं सेक्शन 72ए में गोपनीयता भंग करने पर दण्ड का उल्लेख किया गया है। इस अपराध में तीन साल तक की कैद का प्रावधान किया गया है। यह संज्ञेय अपराध की श्रेणी में रखा गया है लेकिन इसके लिए जमानत का प्रावधान रखा गया है। डाटा

सुरक्षा के लिए एक्ट में इंक्रिप्सन को लेकर धारा 84ए का भी उल्लेख किया गया है। इसके तहत सरकार को यह अधिकार होगा कि वह इंक्रिप्शन के तरीके की व्याख्या कर सकती है। संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय का मानना है कि इससे डाटा की सुरक्षा को लेकर सरकार के हाथ और मजबूत होंगे।

अधिनियम संशोधन में एकल व्यक्ति आधारित सायबर अपीलेट ट्रिब्यूनल को बहु सदस्यीय बनाने की भी व्यवस्था की गई है क्योंकि यह एक तकनीकी ट्रिब्यूनल होगा इसलिये इसमें एक तकनीकी सदस्य रखने का भी उल्लेख किया गया है। साइबर नग्नता को लेकर अधिनियम में सरकार ने सख्त कदम उठाया है। धारा 67ए में इलेक्ट्रानिक रूप में नग्नता के लिए दंड का उल्लेख किया गया है। पहली बार सरकार ने बाल नग्नता को लेकर एक नयी धारा 67बी का उल्लेख अधिनियम में किया है। इसका उद्देश्य इलेक्ट्रानिक रूप में बच्चों के बीच नग्नता के प्रचार-प्रसार को रोकना व इलेक्ट्रानिक रूप में बच्चों के यौन शोषन में लगे लोगों को सजा दिलाना है। नग्नता को लेकर उल्लिखित दोनों ही धाराओं में पहली बार पकड़े गए व्यक्ति को पांच साल की सजा का प्रावधान है, जबकि दूसरी बार या अगली बार यह सजा सात साल तक की हो सकती है। संशोधित अधिनियम में प्रोटेक्टेड सिस्टम को लेकर भी व्याख्या की गई है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 70 का संशोधन करते हुए सक्षम सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी कम्प्यूटर संसाधन को प्रोटेक्टेड या सुरक्षित सिस्टम घोषित कर सकती है। इस तरह कि किसी भी सुरक्षित सिस्टम को हैक करने वाले के खिलाफ दस वर्ष की सजा का प्रावधान भी किया गया है। इस धारा को और मजबूती देने के लि दो नई धारा 70ए व 70बी भी बनाइ गई हैं। धारा 70ए में साइबर सुरक्षा के लिए इंडियन कम्प्यूटर इमरजेंसी रिस्पांस टीम या सीईआरटी-आईएन का उल्लेख किया गया है।

साइट हैक होने या फिर किसी साइट से देश की एकता, अखण्डता पर पड़ने वाले संभावित दुष्प्रभावों को रोकने के लिए यह संगठन तत्काल प्रभाव से ऐसी साइट को बंद करने या फिर साइट को हैक करने वाले के खिलाफ तकनीकी जांच शुरू करेगा। इस अधिनियम के साथ ही सायबर अपराधों के जाने-अनजाने हिस्सा बनने वाले सायबर कैफों को पूरी तरह कानूनी दायरे में लाने के लिए धारा 79 का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही धारा 79ए भी अधिनियम में शामिल किया गया है। यह सरकार को अधिकार देता है कि वह इलेक्ट्रानिक तकनीकियों को समझाएगी या फिर अदालत का सहयोग करेगी। इस अधिनियम में संशोधन से पहले मंत्रालय के अधिकारियों ने लंबे समय तक विभिन्न देशों के अधिनियमों का अध्ययन करने के साथ ही जमीनी स्तर पर भी सायबर अपराधों का अध्ययन किया। इस अधिनियम के संशोधित रूप से अब पुलिस को भी ऐसे मामलों की जांच में खासी सहायता मिलेगी। पहले कम्प्यूटर या सायबर से संबंधित कई तरह के अपराध के लिए आई0पी0सी0 या सी0आर0पी0सी0 में व्याख्या नहीं थी, जिससे पुलिस या जांच एजेन्सी कठिनाई में रहती थी। संशोधित अधिनियम में सभी बिन्दुओं को शामिल

किया गया है ताकि जांच प्रक्रिया में तेजी लायी जा सके।

4.9 सारांश

सूचना प्रौद्योगिकी आंकड़ों की प्राप्ति, सूचना संग्रह, सुरक्षा, परिवर्तन आदान-प्रदान, अध्ययन आदि कार्यों तथा इन कार्यों के निष्पादन के लिये आवश्यक कम्प्यूटर हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर अनुप्रयोगों से सम्बन्धित है। सूचना के महत्व के साथ सूचना की सुरक्षा का महत्व भी बढ़ा है। सूचना प्रौद्योगिकी से जुड़े कार्यों में रोजगार के अवसर बढ़े हैं। विशेष रूप से सूचना सुरक्षा एवं सर्वर के विशेषज्ञों की मांग बढ़ी है।

सायबर अपराधों को रोकने व ऐसे अपराधों के बढ़ते मामलों को रोकने के लिये मई सन् 2000 में भारत सरकार ने सूचना प्रौद्योगिकी विधेयक को पारित कर दिया। इस विधेयक ने अगस्त सन् 2000 में राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त की और इसे सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 के रूप में जाना गया। 15 दिसम्बर 2006 को सूचना सूचना प्रौद्योगिकी संशोधन अधिनियम 2006 को लोकसभा में पेश किया गया और 23 दिसम्बर 2006 को संसद के दोनों सदनों ने इसे पारित कर दिया। इसके बाद 5, फरवरी, 2009 को सूचना प्रौद्योगिकी (संशोधन) अधिनियम, 2008 को राष्ट्रपति ने अपनी मंजूरी प्रदान कर दी और इसे भारत के राजपत्र में अधिसूचित कर दिया गया है।

4.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. Computer Application in Management- Sanjay Saxena & Prabha Preet Chopra.
2. Management Infor Syatem - Jaiswal Mittal
3. Commentary on Information Technology Act - Apar Gupta
4. Computer Contracts & Information Technology Law - Prof. S. Joga Rao.
5. Computer Fundamentals & Information Technology - S. S. Srivastava.

4.11 स्वपरख प्रश्न

1. सूचना प्रौद्योगिकी का महत्व एवं उसके घटक बताइये।
2. सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं भारतीय कम्पनियों के नाम बताइये।
3. सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 क्यों लागू किया गया?
4. सूचना प्रौद्योगिकी संशोधन अधिनियम 2008 के बारे में बताइये।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

M.COM-02
व्यावसायिक पर्यावरण
(Business Environment)

खण्ड

4

विदेशी व्यापार (Foreign Trade)

इकाई-1 5
निर्यात-आयात नीति (Exim Policy)

इकाई-2 24
विदेशी विनियोग नीति (Foreign Investment Policy)

इकाई-3 44
विदेशी तकनीक एवं सहयोग (Foreign Technology & Collaboration)

इकाई-4 63
बहुराष्ट्रीय निगम (Multinational Co-operation)

इकाई-5 81
विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation)

इकाई-6 99
विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम-1999 (Foreign Exchange Management Act 1999)

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एस0 ए0 अंसारी	निदेशक, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 दिनेश कुमार	एसो0 प्रोफेसर, इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से श्री एम0 एल0 कनौजिया, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2010
मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खण्ड-4 (विदेशी व्यापार)

किसी भी राष्ट की अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार का महत्वपूर्ण योगदान होता है। आज के वैश्विक व्यावसायिक वातावरण में विदेशी व्यापार में अपना स्थान बना पाना और भी कठिन हो गया है। विश्व व्यापार में किसी राष्ट्र की आयात निर्यात नीति, विदेशी तकनीक एवं सहयोग, बहुराष्ट्रीय निगम, विश्व व्यापार संगठन, विदेशी विनिमय का प्रबन्धन आदि अपनी अपनी भूमिका अदा करते हैं।

इकाई-1 विदेशी व्यापार में आयात निर्यात नीति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समय के साथ-साथ उसमें परिवर्तन करना पड़ता है। इस इकाई में आयात-निर्यात नीति के बारे में बताया गया है।

इकाई-2 किसी भी देश के विदेशी व्यापार को बढ़ाने में विदेशी विनियोग नीति महत्वपूर्ण है। विदेशी विनियोग कैसे किया जाय कि देश के घरेलू उद्योग/व्यापार को नुकसान न हो, इन सब बातों का अध्ययन हम इस इकाई में करेंगे।

इकाई-3 देश में व्यापार एवं उद्योग के विकास में विदेशी तकनीक एवं सहयोग विशेष रूप से अल्पविकसित देशों के लिये आवश्यक है। इस इकाई में हम विदेशी तकनीक एवं सहयोग के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करेंगे।

इकाई-4 विश्व के प्रायः सभी देशों में बहुराष्ट्रीय निगम अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुके हैं। बहुराष्ट्रीय निगम वे हैं जो अनेक देशों में उत्पादन एवं वितरण का जाल फैलाये हुए हैं। इस इकाई में हम बहुराष्ट्रीय निगमों के लाभ एवं दोषों का भी अध्ययन करेंगे।

इकाई-5 विश्व व्यापार के अवरोधों को दूर करने, पर्यावरण की सुरक्षा एवं अल्पविकसित देशों में रोजगार के अवसर बढ़ाने के उद्देश्यों से वर्ष 1995 में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की गई । इस इकाई में हम विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों, कार्यों एवं इसके प्रभावों का अध्ययन करेंगे।

इकाई-6 विदेशी विनिमय पर नियंत्रण एवं नियमन की आवश्यकता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो देश का धन विदेशों की ओर पलायन कर जायेगा । इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हमारे देश में विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम 1973 लागू किया गया था लेकिन वैश्विक उदारीकरण के चलते 1999 में सरकार ने विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम (फेमा) लागू किया। इस इकाई में हम फेमा के प्रमुख प्रावधानों का अध्ययन करेंगे।

इकाई - 1 आयात - निर्यात नीति

इकाई की रूपरेखा-

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 निर्यात-आयात नीति के उद्देश्य

1.3 आयात नीति

1.4 निर्यात नीति

1.5 भारत की विभिन्न निर्यात एवं आयात नीति

1.5.1 निर्यात एवं आयात नीति 1983-84

1.5.2 निर्यात-आयात नीति, 1985-88

1.5.3 निर्यात-आयात नीति, 1988-91

1.5.4 निर्यात-आयात नीति, 1992-97

1.5.5 निर्यात-आयात नीति, 1997-2002

1.5.6 निर्यात-आयात नीति, 2002-2007

1.5.7 आयात-निर्यात नीति, 2004-09

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 अभ्यास के लिये प्रश्न

1.9 संदर्भ पुस्तकें

1.0 : उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- निर्यात - आयात नीति का आशय बता सकें।
- निर्यात - आयात नीति के उद्दश्यों के बारे में बता सकें।
- भारत में समय समय पर लागू की गई निर्यात-आयात नीति की विशेषताओं के बारे में बता सकें

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

अल्प विकसित देशों के सामने अनेक आर्थिक-सामाजिक एवं राजनैतिक अवरोधों को दूर करते हुये आर्थिक विकास करने की समस्या सर्वोपरि होती है। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उपयुक्त निर्यात आयात नीति की आवश्यकता होती है।

भारत जैसे विकासशील देश के संतुलित आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि निर्यात को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक उपाय किये जायें तथा देश की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक वस्तुओं का आयात किया जाय। इस प्रकार निर्यात को अधिकाधिक करने व आवश्यक आयात सुनिश्चित करने तथा अनावश्यक या नुकसानप्रद आयात को रोकने के लिए निर्यात एवं आयात नीति की आवश्यकता होती है। तीसरी पंचवर्षीय योजना तक भारत की व्यापार नीति आयात प्रतिस्थापन पर केन्द्रित रही। तृतीय पंचवर्षीय योजना की मध्यावधि समीक्षा के समय निर्यात सम्वर्द्धन नीति अपनाने का निर्णय लिया गया। इसके मुख्य कारण बढ़ता विदेशी व्यापार घाटा तथा विदेशी विनिमय संकट रहे हैं। 1970 में सरकार ने मुदलियार समिति की सिफारिश पर पहली बार निर्यात नीति की घोषणा की इसके पहले केवल आयात नीति ही घोषित की जाती थी। वर्ष 1970 से नियमित आयात तथा निर्यात नीति अलग-अलग घोषित की जाने लगी।

1.2 निर्यात-आयात नीति के उद्देश्य (Objectives of Exim Policy)

किसी भी देश की व्यापार नीति उस देश के विदेशी व्यापार को गति प्रदान करने में बहुत सहायक सिद्ध होती है। अतः विदेशी व्यापार के प्रति किसी देश के दृष्टिकोण को भी उस देश की व्यापारिक नीति के माध्यम से समझा जा सकता है। किसी भी देश की निर्यात-आयात नीति के उद्देश्य को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है :

1. विभिन्न देशों (विशेषकर विकसित देशों) के आर्थिक प्रभाव से बचना,
2. देश में संचालित उद्योग धन्धों को संरक्षण प्रदान करना,
3. आयात प्रतिस्थापन को बढ़ावा देना,
4. भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखना,
5. विदेशी विनिमय कोष में निरन्तर वृद्धि करना,

6. पुराने एवं नये दोनों प्रकार के उद्योगों में वृद्धि करना,
7. अनुत्पादक कार्यों में सट्टा को बढ़ावा देने वाले विनियोग को हतोत्साहित करना,
8. विदेशी व्यापार की मात्रा में लगातार वृद्धि करना,
9. वृहद स्तर के उद्योगों के साथ-साथ लघु एवं कुटीर उद्योगों की उत्पादकता में वृद्धि करना,
10. देश के तीव्र समग्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता करना,
11. विश्व समुदाय के मध्य आपसी सद्भावना तथा मैत्रीपूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयास करना।

1.3 आयात नीति (Import Policy)

1970-71 की आयात नीति में उत्पादनों को विदेशी मुद्रा के उपयोग की सुविधा दी गयी, जो अपने कुल उत्पादन का 25 प्रतिशत या इससे अधिक का निर्यात करते थे। इस वर्ष की आयात नीति में 22 वस्तुओं के आयात व्यापार को पूर्ण रूप से सरकारी नियन्त्रण में ले लिया गया। अगले वर्ष 1971-72 की आयात नीति में पूर्व घोषित आयात नीतियों का ही विस्तार किया गया जिसमें उद्योगों की उत्पादन क्षमता दुगुना करने हेतु विशेष विदेशी विनिमय का आवंटन किया गया। 1973-74 की आयात नीति में पहले की आयात नीति की तुलना में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया गया।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष (1974-75) में घोषित आयात नीति में निर्यात व्यापार में संलग्न उद्योगों को आयातों के मामले में प्राथमिकता दी गयी। आयात लाइसेंस प्रक्रिया को सरल बनाया गया तथा निर्यात उद्योगों को उनके कार्यों एवं सफलता के आधार पर प्राथमिकता दी गयी। इस वर्ष सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं को आयात व्यापार में हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए 10 नयी वस्तुओं के आयात के अधिकार दिये गये। 1975-76 में सरकार ने उदार आयात नीति की घोषणा की, जिसका उद्देश्य निर्यात उत्पादन बढ़ाना था, जिसके लिए अनुरक्षण आयातों पर बल दिया गया । इस आयात नीति की प्रमुख विशेषता में मशीनों की आयात सीमा 6 लाख रूपये से बढ़ाकर 7.5 लाख रूपये करना, स्वतः लाइसेंस प्रणाली की शुरूआत, आयात हेतु लाइसेंस सीधे सम्बन्धित अधिकारी को देना, लघु इकाइयों की सहायता के लिए निःशुल्क विदेशी विनिमय की मात्रा बढ़ाकर दस हजार रूपया करना आदि था।

1976-77 की आयात नीति एक उदार, नवप्रवर्तक एवं लोचपूर्ण नीति थी। इस नीति में मुख्य रूप से अतिरिक्त कच्चे माल तथा सामानों का प्रयोग करने वालों को 'पूरक

लाइसेंस' देने की व्यवस्था की गयी, लघु उद्योगों के बारे में उदार नीति अपनायी गयी तथा इन्हें उदारतापूर्वक लाइसेंस देने का निर्णय किया गया तथा विदेशी विनिमय पूर्ति की सीमा 10000 रू. से बढ़ाकर 50 हजार रूपया कर दिया गया। प्राथमिकता वाले निर्यातों के मूल्य की सीमा बढ़ाकर 50 लाख रू. कर दिया गया तथा अन्य उत्पादकों के लिए न्यूनतम सीमा 3 करोड़ रू. किया गया।

1977-78 में घोषित आयात नीति का प्रमुख उद्देश्य देश के औद्योगिक विकास के साथ ही आन्तरिक खपत एवं निर्यात के लिए उत्पादन बढ़ाने पर बल देना था। इस आयात नीति की प्रमुख विशेषता आयात प्रक्रिया को सरल बनाना, शॉपिंग लिस्ट की पद्धति समाप्त करना, देश के उत्पादकों को संरक्षण, लघु एवं कुटीर उद्योगों पर विशेष बल देना, मशीनों के आयात की व्यवस्था, राज्य व्यापार संस्थाओं द्वारा आयात की व्यवस्था आदि शामिल थी।

1.4 निर्यात नीति (Export Policy)

1947-48 से 3 वर्षों के लिए भारत की निर्यात नीति के दो मुख्य उद्देश्य थे, प्रथम पंचवर्षीय योजना में देश का निर्यात बढ़ाकर देश में दुर्लभ मुद्रा की मात्रा बढ़ाना तथा द्वितीय घरेलू माँग में वृद्धि पर निर्यातों को कम करना। इस अवधि में निर्यात नीति नियन्त्रणात्मक थी, क्योंकि इस अवधि में वस्तुओं में कमी एवं बढ़ते हुए मूल्यों को दृष्टि में रखते हुए निर्यातों को अधिक प्रोत्साहन दिया गया। दूसरी पंचवर्षीय योजना में चाय, जूट तथा सूती वस्त्रों के अलावा अन्य वस्तुओं के निर्यात पर बल दिया गया। तीसरी योजना में निर्यात बढ़ाने के लिए निर्यात नीति में व्यापक प्रावधान किया गया, जिसमें विशेष रूप से तीन उपायों पर जोर दिया गया जो है - (1) उचित तरीके से घरेलू उपभोग की सीमा में कटौती करके निर्यात को बढ़ाना (2) निर्यात व्यापार द्वारा अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना (3) निर्यात करने वाले उद्योगों को अधिक प्रतियोगी बनाना तथा निर्यात विविधता पर बल देना।

चौथी पंचवर्षीय योजना में निर्यातों में 7 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की नीति बनायी गयी तथा प्रमुख कार्य जो निर्धारित किये गये उनमें थे - निर्यात बढ़ाने के लिए कृषि, खनिज एवं औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने पर बल देना, निर्यात बढ़ाने के लिए आन्तरिक कीमतों में स्थायित्व पर बल देना, निर्यातित वस्तुओं की लागत घटाना तथा गुणवत्ता में सुधार करना, सार्वजनिक क्षेत्र को अधिक महत्व देना, बन्दरगाहों के विकास एवं आधुनिकीकरण पर जोर देना आदि।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निर्यात नीति में 7.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष निर्यात में वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। निर्धारित निर्यात लक्ष्य की पूर्ति के लिए घरेलू

उत्पादन को बढ़ाने, उचित कीमतों वाली वस्तुओं का निर्माण करने तथा घरेलू कमी होने पर भी निर्यात के स्तर को बनाये रखने पर बल देना आदि प्रमुख थे। 1977-78 की निर्यात नीति में छोटे पैमाने के तथा कुटीर उद्योग द्वारा निर्मित माल के अधिक निर्यात पर बल दिया गया। छोटे निर्माताओं के निर्यात में वृद्धि करने के लिए अनेक प्रकार की सुविधा शर्तों में ढील व प्रोत्साहन दिये गये। 1978-79 की निर्यात नीति में निर्माताओं को अधिक आयात छूट देकर निर्यात में वृद्धि का आधार बनाया गया। लघु उद्योगों को प्रतिष्ठित निर्यातकों का दर्जा देने के लिए शर्तों को उदार बना दिया गया और जिन छोटे उद्योगों का निर्यात 10 लाख रूपये से कम था तथा जो प्रतिवर्ष 5 लाख रू. तक निर्यात में वृद्धि की क्षमता रखते थे, उन्हें भी प्रतिष्ठित निर्यातक की श्रेणी में शामिल कर लिया गया। रिजर्व बैंक ने इस अवधि में विदेशी विनिमय सुविधा को बढ़ाकर 5 लाख रूपया कर दिया।

1.5 भारत की विभिन्न निर्यात एवं आयात नीति (Export and Import [Exim] policy of India)

देश में पहली बार इस नीति के अन्तर्गत 1981 में संयुक्त आयात्-निर्यात नीति घोषित की गयी। इसमें आयात प्रतिस्थापन के साथ-साथ निर्यात संवर्द्धन पर विशेष बल दिया गया था। देश की प्रमुख घोषित निर्यात एवं आयात नीति का विवरण निम्नवत् हैः

1.5.1 निर्यात एवं आयात नीति 1983-84 (Export-Import Policy, 1983-84)

15 अप्रैल 1983 को निर्यात-आयात नीति, 1983-84 की घोषणा की गयी। इस नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् थे -

1. निर्यात वृद्धि पर अधिक ध्यान देना,
2. आयातों की मात्रा में विशेष प्रयास करके बचत करना,
3. स्वदेशी उद्योगों की प्रगति एवं स्थापना के लिए सहायता करना,
4. निर्यात-आयात की कार्य प्रणाली को सरल करना एवं प्रभावी नियन्त्रण लागू करने पर ध्यान देना, तथा
5. निर्यात संवर्द्धन एवं ऊर्जा की बचत के लिए इस तकनीक को नवीनतम बनाने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करना।

निर्यात-आयात नीति 1983-84 के अधीन औद्योगिक मशीनरी की 144 वस्तुओं को खुले सामान्य अनुज्ञापन के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया, परन्तु 38 वस्तुएं

जो इसमें पहले से शामिल थीं, उन्हें अलग कर लिया गया। निर्यात मूलक इकाइयों के लिए स्वतः अनुज्ञापन तथा पूरक अनुज्ञापन की व्यवस्था की गयी। स्वदेशी उद्योगों की रक्षा के लिए कई महत्वपूर्ण उपाय किये गये। शोध एवं विकास को बढ़ावा देने के लिए एक करोड़ रू. तक तकनीकी आयात की अनुमति प्रदान की गयी।

1.5.2 निर्यात-आयात नीति, 1985-88 (Export-Import Policy, 1985-88)

1984 में भारतीय विदेशी व्यापार को संचालित करने तथा विदेशी विनिमय संकट को स्थायी रूप से दूर करने के लिए योजना आयोग के सदस्य आबिद हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी। समिति की सिफारिशों के आधार पर 12 अप्रैल 1985 को पहल बार त्रिवर्षीय (1985-88) निर्यात-आयात नीति की घोषणा की गयी। इस नीति में पहली बार पास-बुक प्रथा शुरू की गयी, जिसके अन्तर्गत आयात-निर्यात प्रक्रिया को सरल बनाया गया। इस नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्न थे-

1. आयात निर्यात में निरन्तरता तथा स्थायित्व बनाये रखना,
2. निर्यात उत्पादनों का आधार मजबूत करना तथा निर्यात में पर्याप्त वृद्धि का प्रयास करना,
3. स्वदेशी उत्पादन व आयात प्रतिस्थापन को बढ़ावा देना।
4. औद्योगिक कुशलता एवं औद्योगीकरण को बढ़ावा देना,

विशेषताएँ (Characteristics)- निर्यात-आयात नीति 1985-88 की प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् थीं-

1. आयात किये जाने वाले सामानों को सरलता एवं शीघ्रता से उपलब्ध कराने के लिए स्वतः लाइसेन्सिंग को समाप्त कर दिया गया।
2. औद्योगिक मशीनों की 201 मदों को आयात हेतु सामान्य लाइसेन्स व्यवस्था के अन्तर्गत अनुमति।
3. कम्प्यूटर प्रणाली की आयात नीति को उदार बनाया गया।
4. 53 वस्तुओं के आयात को राजकीय व्यापार से मुक्त कर दिया गया।
5. कार्य निष्पादन स्तर से कम होने पर निर्यात गृह एवं व्यापारिक गृह प्रमाण पत्र के नवीनीकरण की व्यवस्था।
6. लघु एवं कुटीर उद्योग क्षेत्र की चुनी हुई वस्तुओं का निर्यात करने वाले उद्यमकर्ता, व्यापारी निर्यातकों के लिए निर्धारित कर की दर 50 प्रतिशत से घटाकर 20 प्रतिशत करना।
7. आई.ई.पी. लाइसेंस के अधीन पूँजीगत सामान की आयात व्यवस्था।
8. पंजीकृत निर्यातकों के लिए आयात सीमा एक लाख रू. से बढ़ाकर दो लाख रूपये

करना।

9. तकनीकी व विदेशी सेवाओं के आयात को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक उपाय एवं रियायत की व्यवस्था । साथ ही साथ तकनीकी विकास कोष के अन्तर्गत प्रति उपक्रम मूल्य की राशि को 5 लाख रू. से बढ़ाकर एक करोड़ रू. तक करना। पूँजीगत माल के आयात के लिए भी अनेक रियायत की घोषणा।

10. अग्रिम लाइसंसिंग योजना के अन्तर्गत लाइसेंस शीघ्रता से प्रदान किये जाने के उद्देश्य से कोलकाता, मुम्बई, नई दिल्ली तथा चेन्नई में क्षेत्रीय समितियों की स्थापना।

1.5.3 निर्यात-आयात नीति 1988-91(Export-Import Policy, 1988-91)

1 अप्रैल 1988 से 31 मार्च 1991 तक की अवधि के लिए त्रिवर्षीय निर्यात आयात नीति की घोषणा 30 मार्च 1988 को की गयी। इस नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार थीं -

1. इस नीति के अन्तर्गत खुले सामान्य लाइसेंस का क्षेत्र बढ़ा दिया गया तथा इसमें 745 अतिरिक्त मदें शामिल की गयी। इसमें से 329 मदें कच्चे माल, कल पुर्जे व उपभोक्ता माल की थीं, 209 मदें जीवन रक्षक उपकरणों की 109 मदें जीवन रक्षक दवाओं की तथा 99मदें पूँजीगत वस्तुओं की थीं।
2. आयात पुनः पूर्ति की योजना में व्यापक परिवर्तन किये गये। परम्परागत तथा गैर-परम्परागत दोनों प्रकार के निर्यातों में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के लिए पुनः पूर्ति योजना को अधिक उदार एवं व्यापक बनाया गया।
3. 10 लाख रू. तक की पूँजीगत वस्तुओं को निर्यातकों द्वारा बिना अनुमति के आयात करने की छूट।
4. 26 मदों को सरकारी क्षेत्र से मुक्त कर दिया गया।

1.5.4 निर्यात-आयात नीति, 1992-97(Exim policy, 1992-97)

जुलाई 1991 में आर्थिक सुधार कार्यक्रम लागू होने के बाद पंचवर्षीय व्यापार नीति घोषित करने का निर्णय लिया गया। भारत की पहली पंचवर्षीय निर्यात-आयात नीति 31 मार्च 1992 को घोषित की गयी। इसके पहले यह त्रिवर्षीय होती थी। इस निर्यात-आयात नीति की अवधि आठवीं पंचवर्षीय योजना के अनुरूप 1 अप्रैल 1992 से 31 मार्च 1997 तक 5 वर्षों के लिए निर्धारित की गयी। इस नीति का प्रमुख उद्देश्य उदारीकरण तथा स्वतंत्रता थी। निर्यात-आयात नीति 1992-97 की प्रमुख विशेषताएं निम्न प्रकार से थीः-

1. उदारीकरण एवं स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विदेशी व्यापार को काफी सीमा तक स्वतंत्र कर दिया गया।

2. आयातों तथा निर्यातों दोनों के लिए नकारात्मक सूची रखी गयी।
3. आयात की सकारात्मक सूची को दो भागों में बाँटा गया।

   भाग-1 : **निषेधात्मक मदें** - इन मदों के आयात पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया गया था, इसमें तीन मदें शामिल थीं - अनिर्मित हाथी दाँत, पशु रेनेट, चर्बी से बना तेल,

   भाग-2 : **प्रतिबन्धात्मक मदें** - ऐसी मदों का आयात लाइसेंस प्राप्त करने पर या सार्वजनिक सूचना जारी करके आयात की जा सकती है। इस सूची में कुल 81 मदें शामिल थीं। जिसमें 16 लघु क्षेत्र की मदें तथा 11 उपभोक्ता वस्तुएं रखी गयी थीं।
4. निर्यातों की नकारात्मक सूची को भी दो भागों में विभाजित किया गया था -

   भाग-1 : **निषेधात्मक सूची** - ऐसी मदें जिनके निर्यात पर प्रतिबन्ध है, इनमें 7 मदों को शामिल किया गया, इसमें वन्य जीवन के सभी रूप, विदेशी पक्षी, गो माँस आदि शामिल हैं।

   भाग-2 : **प्रतिबन्धात्मक सूची** - (1) ऐसी मदें जिनका निर्यात केवल लाइसेंस से ही सम्भव है। इसके अन्तर्गत कुल 51 मदों को रखा गया, जिसमें राक फास्फेट, कच्चा रेशम, वेस्ट पेपर आदि प्रमुख है। (2) ऐसी मदें जिन पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध या सीमा लाभांश गया वे 11 वस्तुएँ हैं।

इस प्रकार निर्यातों की प्रतिबन्धात्मक सूची में कुल 62 मदें शामिल थीं तथा निर्यातों की नकारात्मक सूची में कुल 69 मदें (62+7) शामिल हैं।

5. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आयात हेतु 8 मदों को सुरक्षित रखा गया, जिसमें पेट्रो पदार्थ, रासायनिक उर्वरक, दवाएँ, नारियल तेल, मूंगफली , बीज आदि शामिल हैं।
6. 10 मदों को सार्वजनिक क्षेत्र की एजेन्सियों के माध्यम से निर्यात करने के लिए सुरक्षित रखा गया, इसमें मुख्य रूप से अभ्रक वेस्ट, प्याज, घी, खनिज अयस्क आदि शामिल हैं।
7. 46 मदों को निर्यात के लिए कुछ शर्तों को पूरा करने पर बिना लाइसेंस के किया जा सकता है। इसमें प्रमुख मदें हैं - बासमती चावल, नारियल के रेशे व इससे बनी वस्तुएं, चीनी, काली मिर्च आदि।
8. व्यापारिक व स्टार व्यापारिक घरानों, निर्यात घरानों को अग्रिम लाइसेन्स योजना

के अन्तर्गत स्व-प्रमाणन की स्वीकृति प्रदान की गयी एवं विशेष आयात लाइसेंस प्रदान किये गये।

9. पूँजीगत वस्तुओं के आयात को उदार बनाया गया जिसमें कुछ शर्तों के साथ दो प्रकार की योजना लागू की गयी, जिसमें 25 प्रतिशत तथा 15 प्रतिशत रियायती शुल्क लगाने का प्रावधान किया गया।

10. शत-प्रतिशत निर्यातोन्मुख इकाइयाँ, मुक्त व्यापार तथा निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र में संलग्न इकाइयों को अधिक सुविधाएं प्रदान करने की व्यवस्था की गयी। ये इकाइयाँ अब कृषि, फल उत्पादन, पशुपालन आदि क्षेत्रों में प्रवेश करने के लिए स्वतंत्र हैं।

इस प्रकार निर्यात-आयात नीति 1992-97 की विशेषताओं का अध्ययन करने के उपरान्त निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस नीति में विदेशी व्यापार को अधिक उदार बनाया गया, विदेशी व्यापार पर लगे अनेक प्रतिबन्ध हटा लिये गये तथा आयातों को अधिक मुक्त किया गया। इन सबका लक्ष्य यह था कि आयात एवं निर्यात का क्षेत्र विस्तृत हो ताकि देश को विदेशी व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान मिल सके।

1.5.5 निर्यात-आयात नीति, 1997-2002 (Exim Policy, 1997-2002)

केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री वी.वी.रमैया द्वारा 31 मार्च 1997 को भारत की दूसरी व्यापार नीति घोषित की गयी जिसकी अवधि देश की नौवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि के समान 1 अप्रैल 1997 से 31 मार्च 2002 तक थी। 1998 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) की सरकार बनने पर इसमें संशोधन किया गया। इस नीति के अन्तर्गत लाइसेंस प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण, उत्पादकता एवं विनियोग को बढ़ाने तथा आयात-निर्यात योजनाओं में लोचशीलता प्रदान करने के लिए विभिन्न कदम उठाये गये। इसके अतिरिक्त मूल्य आधारित अग्रिम लाइसेंस व्यवस्था को समाप्त करके अधिकार शुल्क, नयी व्यवस्था पास-बुक योजना शुरू की गयी। इसी व्यापार नीति के अन्तर्गत ही विशेष आर्थिक क्षेत्र योजना की शुरूआत हुई। संक्षेप में इस नीति के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं-

1. भारत को भूमण्डलीकरण अर्थव्यवस्था के रूप में ढालना, जिससे कि बढ़ते हुए भूमण्डलीय बाजार का लाभ उठाया जा सके।

2. देश के औद्योगिक व आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक कच्चा माल व पूँजीगत माल उपलब्ध कराना।

3. भारतीय कृषि उद्योग एवं सेवा की तकनीक को मजबूत करना व बढ़ावा देने हेतु

प्रयत्न करना।

4. उपभोक्ताओं को उचित दाम पर अच्छी गुणवत्ता वाली वस्तु या सेवा उलब्ध कराना।

निर्यात आयात नीति 1997-2002 की प्रमुख विशेषताएँ या प्रावधान (Main provisions or characteristics of exim policy-1997-2002).

इस नीति के प्रमुख प्रावधान या विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से परिलक्षित किया जा सकता है।

1. प्रतिबन्धित सूची से 542 वस्तुओं को हटाया गया तथा 1 अप्रैल 2001 से शेष 715 वस्तुओं पर प्रतिबन्ध समाप्त ।

2. मूल्य आधारित अग्रिम लाइसेंस योजना व पास-बुक योजना को समाप्त करके इनके स्थान पर Duty Entitlement Pass Book Scheme (DEPB) लागू की गयी है।

3. निर्यातों में तीव्र वृद्धि प्राप्त करने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zone- SEZ) नीति की घोषणा तथा राज्यों के कृषि निर्यात उपाय में मदद के लिए कृषि आर्थिक क्षेत्र का गठन।

4. इस नीति के अन्तर्गत अब वे ही निर्यात गृह (export house) माने जायेंगे, जिनका औसत F.O.B. निर्यात मूल्य पिछले तीन वर्षों में 20 करोड़ रू. होगा। इसी प्रकार व्यापार गृह (trading house) के लिए 100 करोड़ रू., स्टार व्यापार गृह (Star trading house) के लिए 500 करोड़ रू. तथा सुपर स्टार व्यापार गृह (Super Star Trading house) के लिए 1500 करोड़ रूपया होगा।

5. अग्रिम लाइसेंस योजना के अन्तर्गत शुल्क मुक्त पुनः पूर्ति प्रमाण पत्रों की वैधता की अवधि 12 महीने से बढ़ाकर 18 महीने कर दिया गया।

6. निर्यात संवर्द्धन पूँजीगत माल (Export Promotion Capital Goods (E.P.C.G.) के अन्तर्गत प्रशुल्क को 15 प्रतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत किया गया साथ ही साथ कृषि व सम्बन्धित क्षेत्र के लिए 5 करोड़ रू. तक के आयात को शून्य-प्रशुल्क (Zero duty) के अन्तर्गत रखा गया है।

7. निर्यात संवर्द्धन क्षेत्र तथा निर्यात दायित्व इकाइयाँ जो कृषि व उससे सम्बन्धित व्यवसाय में संलग्न हैं, अपने उत्पादन का 50 प्रतिशत घरेलू प्रशुल्क क्षेत्र में बेच सकती हैं।

8. विशेष आर्थिक क्षेत्रों में स्थित इकाइयों के लिए निर्यात आय को स्वदेश लाने की सीमा को 6 माह से बढ़ाकर 12 माह किया गया।

9. निर्यातकों की निर्यात ऋण सम्बन्धी लागत को कम करने के लिए प्रोत्साहन योजना की शुरूआत।

10. विशेष आर्थिक क्षेत्रों (SEZs) में स्वतः मंजूरी के द्वारा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति के क्षेत्र को व्यापक करने का प्रस्ताव ।

11. लघु उद्योगों के लिए विशेष आयात लाइसेंस एक प्रतिशत से बढ़ाकर दो प्रतिशत कर दिया गया तथा माने गये आयात लाभ (deemed import benefits) को विद्युत क्षेत्र से बढ़ाकर तेल व गैस क्षेत्र को भी प्रदान करने की व्यवस्था की गयी।

12. कुछ विशेष वस्तुएं जैसे - गेहूँ, चावल, मकई, डीजल, पेट्रोल तथा यूरिया का आयात केवल व्यापार उद्योगों के माध्यम से ही होगा।

13. पशुओं पौधों तथा उनसे सम्बन्धित सभी मूल उत्पादों के आयात हेतु कृषि मन्त्रालय से आयात-आदेश की अनिवार्यता होगी।

14. फल, फूल, सब्जी आदि के निर्यातकों को निर्यात के मूल्य का एक प्रतिशत अतिरिक्त आयात लाइसेंस दिया जायेगा।

15. राष्ट्रीय निर्यात के विभिन्न प्रयासों के अन्तर्गत राज्यों को निर्यात में सहायता देना।

16. विदेशी व्यापार में कागजी कामों को कम करके आवेदन पत्रों को शीघ्रातिशीघ्र निबटाने के लिए विदेशी व्यापार महानिदेशक के कार्यालय को कम्प्यूटरीकृत करने की व्यवस्था तथा सभी लाइसेंस के लिए आवेदन E-mail के माध्यम से लिये जाने का प्रावधान किया जायेगा।

देश में उदारीकरण की प्रक्रिया बीसवीं शताब्दी के अन्त तक दूसरे चरण में प्रवेश कर गयी। इस समय विश्व बाजार में अनेक अवसर सृजित हुए। अतः विश्व बाजार के इन अवसरों का अधिकतम लाभ उठाने के लिए भारत की द्वितीय पंचवर्षीय (1997-2002) व्यापार नीति में 31 मार्च 1999 को संशोधन किया गया जिसको लागू भी कर दिया गया। संशोधन के पश्चात् व्यापार नीति को और सरल तथा व्यापक बनाया गया। इस संशोधन के पश्चात् 989 वस्तुओं के आयात को स्वतंत्र किया गया तथा 414 वस्तुओं को विशेष आयात योजना के अधीन लाया गया। इस प्रकार आयातों की प्रतिबन्धित सूची में इस निर्यात आयात नीति के अन्त तक केवल 667 मदें ही शेष बची थीं। संशोधन के पश्चात् अब खाद्य तथा गैर खाद्य उपभोग वस्तुओं के लिए आयात हेतु लाइसेंस लेने की बाध्यता या आवश्यकता नहीं होगी।

1.5.6 निर्यात-आयात नीति, 2002-2007 (Exim Policy, 2002-2007)

देश की तृतीय पंचवर्षीय योजना निर्यात-आयात नीति की घोषणा तत्कालीन केन्द्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री मुरासोली मारन ने 31 मार्च 2002 को की। यह नीति 30 अप्रैल 2002 से प्रभावी हुई वैश्वीकरण के प्रथम पाँच वर्षों में देश के निर्यात में औसतन लगभग 20 प्रतिशत की वृद्धि हुई, परन्तु इसके पश्चात् अगले 5 वर्षों में यह वृद्धि दर लगभग 4 प्रतिशत ही रही जिसका प्रमुख कारण वैश्विक मन्दी रहा है। अतः विदेशी व्यापार की मात्रा व संरचना में तीव्र वृद्धि की परिकल्पना इस निर्यात नीति (2002-07) के अन्तर्गत की गयी। निर्यात-आयात नीति 2002-07 के प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् हैं :

1. भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से एकीकृत करके (जोड़कर) निरन्तर बाजार की बढ़ती सुविधाओं का लाभ उठाना।

2. विश्व निर्यात में भारत की भागीदारी 0.67 प्रतिशत से बढ़ाकर 1 प्रतिशत तक करना।

3. देश के औद्योगिक व आर्थिक समृद्धि के लिए आवश्यक तकनीक, कच्चा माल व पूंजीगत वस्तुओं को देशवासियों को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराना।

4. भारतीय निर्यातों को विदेशी प्रतियोगिता के अनुरूप बनाना।

5. देश के भीतर अधिकाधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।

निर्यात-आयात नीति 2002-2007 के प्रमुख प्रावधान (Main Provisions of Exim Policy-2002-2007)

निर्यात-आयात नीति 2002-07 के उद्देश्यों को सफलतापूर्वक निर्धारित समय पर प्राप्त करने के लिए इस नीति के अन्तर्गत सरकार द्वारा अनेक उपाय व प्रावधान किये गये हैं, उनमें से प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा परिलक्षित किये गये हैं-

1. निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्र (Export Processing Zones-EPZs) के स्थान पर विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zones-SEZs) की स्थापना की जायेगी, जहाँ आयात शून्य सीमा शुल्क (Custom duty) पर होगा। SEZs के आपूर्तिकर्ता को निर्यातक (Exporter) का दर्जा दिया जायेगा।

2. विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) में Offshore banking units अथवा Over-seas Banking Units - (OBU) खोली जायेगी, जो निर्यातों को कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध करायेगी। इन शाखाओं को नकद कोष अनुपात (CRR) एवं वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) की कोई बाध्यता नहीं होगी।

3. विशेष आर्थिक क्षेत्र की इकाइयों को उनकी स्थापना से 5 वर्ष तक आयकर से पूरी छूट तथा उसके बाद 5 वर्षों तक 50 प्रतिशत आयकर में छूट प्रदान की जायगी। 15 वर्षों की अवधि के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र विकसित करने वालों को आयकर में शत-प्रतिशत छूट की व्यवस्था तथा लाभांश वितरण व कर से छूट।

4. निर्यातों पर से परिमाणात्मक (Quantitative) प्रतिबन्धों को समाप्त करने की घोषणा।

5. कृषि क्षेत्र में विशेष सुविधाएं एवं रियायत दी जायेगी। इसके अन्तर्गत परिवहन व्यवस्था सुनिश्चित एवं तीव्र करने के लिए ढुलाई लागत में कमी तथा कृषि के लिए परिवहन सुविधा की व्यवस्था पर राजकीय सहायता का प्रावधान किया गया है। कृषि निर्यात पर सभी मात्रात्मक प्रतिबन्धों को हटा लिया गया है। केवल प्याज एवं जूट पर ये प्रतिबन्ध लागू हैं।

6. लघु एवं कुटीर उद्योगों की बढ़ती भागीदारी को स्वीकार करते हुए इन्हें विशेष सुविधाएँ तथा रियायत देने का प्रावधान किया गया है। हथकरघा उद्योग के लिए निर्यात गृह का मानक घटाकर 15 करोड़ रू. के स्थान पर 5 करोड़ रू.कर दिया गया अर्थात 5 करोड़ रू. या इससे अधिक निर्यात करने वाली हथकरघा इकाई को बिना किसी प्रशुल्क के आयात की सुविधा प्रदान की जायेगी।

7. औषधि क्षेत्र में निर्यात को बढ़ावा देने के लिए निर्यात के लिए पंजीकरण शुल्क 50 प्रतिशत कर दिया गया है।

8. हार्डवेयर क्षेत्र के निर्यात सम्वर्धन के लिए पैकेज की व्यवस्था की गयी है।

9. अफ्रीकी देशों को नयी बाजार सम्भावनाओं के रूप में पहचान कर बाजार विस्तार हेतु आकर्षित करने के प्रयत्न हेतु योजनाएं लागू की गयी हैं।

10. पूँजीगत वस्तु निर्यात योजना में बाध्यता की सीमा को 5 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दिया गया है।

11. आयात-निर्यात नीति में राज्यों की भागीदारी सुनिश्चित करने एवं उनको प्रोत्साहन देने हेतु महत्वपूर्ण प्रावधान किये गये हैं।

12. देश का कुल निर्यात इस नीति के अन्त तक 80 अरब डालर प्रतिवर्ष करने का लक्ष्य बाद में यह लक्ष्य बढ़ाकर (संशोधित कर) 104 अरब डालर प्रतिवर्ष कर दिया गया है।

1.5.7 आयात निर्यात नीति, 2004-09

आयात-निर्यात नीति भारत की व्यापार नीति का ही एक महत्वपूर्ण भाग है। इस विदेशी व्यापार नीति की घोषणा तत्कालीन केन्द्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मन्त्री श्री कमलनाथ द्वारा 31 अगस्त 2004 को की गयी। इस नीति में भारत के समग्र विकास को केन्द्रित किया गया है तथा इस नीति के माध्यम से विदेशी व्यापार को नयी दिशा देने एवं उसके समुचित विकास के लिए दिशा-निर्देश तैयार किया गया है।

आयात-निर्यात नीति 2004-09 के दो प्रमुख उद्देश्य निम्नवत् हैं -

1. वर्ष 2009 तक विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी दोगुनी करना।
2. रोजगार सृजन पर जोर देते हुए आयात-निर्यात नीति को आर्थिक विकास के एक कारगर साधन के रूप में प्रयोग करना।

उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु इस नीति में निर्यात में औसतन 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया है। इसके साथ ही साथ वर्ष 2009 तक विश्व व्यापार में भारत की भागीदारी 1.5 प्रतिशत तक कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के साथ भारत का निर्यात व्यापार 300 अरब डालर के स्तर पर पहुँच जायेगा।

निर्यात-आयात नीति, 2004-09 के प्रमुख प्रावधान (Main Provisions of Exim Policy 2004-09)

इस नीति के प्रमुख प्रावधान या मुख्य विशेषताओं को निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है ;-

1. सेवा निर्यात सम्वर्द्धन परिषद का गठन (Establishment of Service Export Promotion Board)

सेवाओं के निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए सेवा निर्यात सम्वर्द्धन परिषद का गठन किया गया है। इसके अन्तर्गत निर्यातों को बढ़ाने के उद्देश्य से बोर्ड आफ ट्रेड का पुनर्गठन भी किया जाना है। परिषद के पदेन अध्यक्ष वाणिज्य मन्त्री होंगें।

2. भारत से सेवित योजना (Served from India Plan)

देश की सेवाओं के निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए इस योजना को शुरू करने का निर्णय लिया गया है। इसके अन्तर्गत कम से कम 10 लाख रू. तक की विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाले व्यक्तिगत सेवा उत्पादक अपनी विदेशी मुद्रा प्राप्तियों के 10 प्रतिशत की ड्यूटी क्रेडिट के लिए अर्ह होंगे।

3. विशेष कृषि उपज योजना (Special agriculture yield scheme)

इस विदेश व्यापार नीति में कृषि उत्पादों, फलों, फूलों, सब्जियों, लघु वनोत्पादों तथा इनके मूल्य वर्धित उत्पादों के निर्यात में वृद्धि करने के लिए विशेष कृषि उपज योजना की शुरूआत की गयी है। वित्तीय वर्ष 2005-06 में मुर्गीपालन उद्योग तथा पशुपालन उद्योग को भी इस योजना में शामिल कर लिया गया। इस योजना का विस्तार करते हुए 2006-07 की पूरक विदेशी नीति में ग्रामीण तथा कुटीर उद्योगों के उत्पाद को भी इसमें सम्मिलित कर लिया गया। इस योजना का नाम परिवर्तित कर कृषि विशेष उपज एवं ग्राम उद्योग योजना कर दिया गया है। इस योजना के अन्तर्गत निर्यात मूल्य के 5 प्रतिशत के बराबर शुल्क मुक्त आयात का अधिकार प्राप्त हो सकेगा।

4. मुक्त व्यापार एवं गोदाम क्षेत्र की स्थापना (Establishment of free trade and warehousing zones)

विशेष आर्थिक क्षेत्र की भांति मुक्त व्यापार एवं गोदाम क्षेत्र बनाने का प्रस्ताव इस विदेशी व्यापार नीति में किया गया है। इन क्षेत्रों के आधारिक संरचना के विकास के लिए 100 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति होगी। इस क्षेत्र में केवल ट्रेडिंग कम्पनियों की ही स्थापना की जा सकती है। इसमें स्थापित इकाइयों को वे सभी सुविधाएँ प्राप्त होंगी, जो विशेष आर्थिक क्षेत्र में स्थापित इकाइयों को प्राप्त होती है।

5. टार्गेट प्लस योजना (Target plus scheme)

यह योजना वित्तीय वर्ष 2004-05 में प्रारम्भ की गयी। इस योजना के अन्तर्गत निर्धारित लक्ष्य से अधिक निर्यात करने पर निर्यातकों को उस अतिरिक्त निर्यात पर निःशुल्क आयात की सुविधा प्रदान की गयी है। इसमें निर्धारित लक्ष्य से 20 प्रतिशत, 25 प्रतिशत तथा 100 प्रतिशत अधिक निर्यात करने पर क्रमशः 5 प्रतिशत 10 प्रतिशत तथा 15 प्रतिशत क्रेडिट देने की व्यवस्था की गयी। इस योजना को वर्ष 2006-07 में बंद कर दिया गया।

6. निर्यात पूँजी वस्तु सम्वर्द्धन योजना (Export promotion capital good scheme (EPCG)

इस योजना के अन्तर्गत पूँजीगत सामान का निःशुल्क आयात निर्यातकों द्वारा किया जा सकता है इस योजना में यह भी व्यवस्था की गयी है कि घरेलू उद्योगों में प्रौद्योगिकी उन्नयन को बढ़ावा दिया जा सकेगा तथा प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने पुरानी मशीनों के आयात को सुविधाजनक बनाया है एवं इन पर समय सीमा सम्बन्धी शर्त को हटा लिया है।

7. उत्पाद विशेष योजना (Focus product scheme)

विदेशी व्यापार नीति में चयनित विशिष्ट उत्पादों के निर्यात को बढ़ावा देने के लिए यह योजना प्रारम्भ की गई। इस योजना के अन्तर्गत अधिसूचित उत्पादों के निर्यात के लिए विशेष रियायतें प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। इनको निर्यात मूल्य के 50 से 25 प्रतिशत के बराबर शुल्क रियायत से प्राप्त होगी।

8. बाजार विशेष योजना (Focus market scheme)

वित्तीय वर्ष 2006-07 में इस योजना को प्रारम्भ किया गया। भारतीय उत्पादों की मांग उत्पन्न करने तथा भारतीय उत्पादों को लोकप्रिय बनाने के लिए यह योजना प्रारम्भ की गयी। इस योजना में मुख्य रूप से अफ्रीकी देश एवं लैटिन अमेरिकी देशों पर अधिक ध्यान दिया गया है।

9. विविध प्रावधान (Miscellaneous provisions)

उपरोक्त प्रावधानों के अतिरिक्त निर्यात-आयात नीति 2004-09 में कुछ और प्रावधान किये गये हैं उनमें से कुछ मुख्यतया इस प्रकार हैं -

1. निर्यात के लिए आवश्यक आगम को सुगम बनाने के लिए 1 मई 2006 को शुल्क मुक्त आयात अधिकृत योजना की शुरूआत की गयी।

2. बीज के आयात की शर्तों में उदारता।

3. टाउंस आफ एक्सपोर्ट एक्सीलेंस (Towns of Export Excellence) के लिए दर्ज निर्यात सीमा को 1000 करोड़ रू. से कम करके 250 करोड़ रू. कर दिया गया।

4. निर्यातोन्मुख इकाइयों के लिए सुविधाओं में विस्तार करते हुए समस्त निर्यात प्राप्तियों को विदेशी मुद्रा खाते में रखने की अनुमति प्रदान की गयी है।

1.6 सारांश (Summary)

अल्प विकसित देशों के सामने अनेक आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अवरोधों को दूर करते हुये आर्थिक विकास करने की समस्या सर्वोपरि होती है। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु उपयुक्त निर्यात-आयात नीति की आवश्यकता होती है। भारत जैसे विकासशील देश के संतुलित आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि निर्यात को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक उपाय किये जायें तथा देश की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आवश्यक वस्तुओं का आयात किया जायें। इस प्रकार निर्यात को अधिकाधिक करने व आवश्यक आयात सुनिश्चित करने तथा अनावश्यक या नुकसानप्रद आयात को रोकने के लिए निर्यात एवं आयात नीति की आवश्यकता होती है।

तीसरी पंचवर्षीय योजना तक भारत की व्यापार नीति आयात प्रतिस्थापन पर केन्द्रित रही। तृतीय पंचवर्षीय योजना की मध्यावधि समीक्षा के समय निर्यात सम्वर्द्धन नीति अपनाने का निर्णय लिया गया। इसका मुख्य कारण बढ़ता विदेशी व्यापार घाटा तथा विदेशी विनिमय संकट रहे हैं। 1970 में सरकार ने मुदलियार समिति की सिफारिश पर पहली बार निर्यात नीति की घोषणा की इसके पहले केवल आयात नीति ही घोषित की जाती थी। वर्ष 1970 से नियमित आयात तथा निर्यात नीति अलग-अलग घोषित की जाने लगी।

किसी भी देश में निर्यात-आयात नीति का उद्देश्य मुख्य रूप से विकसित देशों के आर्थिक प्रभाव से बचना, अपने देश में संचालित उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना, आयात प्रतिस्थापन को बढ़ावा देना, भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखना, विदेशी विनिमय कोष में वृद्धि करना, विदेशी व्यापार की भारत में लगातार वृद्धि करना, बड़े तथा लघु उद्योगों की उत्पादकता में वृद्धि करना, विश्व समुदाय के मध्य मैत्रीपूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करना आदि होता है।

1970 के दशक में घोषित आयात नीति की मुख्य विशेषता विदेशी विनिमय की बचत करते हुए निर्यातक उद्योगों को आयात में प्राथमिकता देना रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं को विशेष रूप से पूंजीगत सामानों के आयात में सुविधा देना रहा है। 1977-78 की आयात नीति में आयात प्रक्रिया को सरल बनाना देश के उद्योगों को संरक्षण एवं लघु तथा कुटीर उद्योगों पर विशेष बल मशीनों के आयात की व्यवस्था आदि विशेष बातें रहीं।

1947-48 में घोषित विनिमय निर्यात नीति के दो मुख्य उद्देश्य रहे : प्रथम निर्यात बढ़ाकर दुर्लभ विदेशी मुद्रा अर्जित करना और द्वितीय घरेलू मांग में वृद्धि होने पर निर्यात कम करना। इस अवधि में निर्यात नीति नियन्त्रणात्मक रही। दूसरी पंचवर्षीय योजना में चाय, जूट, सूती वस्त्र के अलावा अन्य वस्तुओं के निर्यात पर जोर दिया गया। तीसरी योजना में निर्यातक उद्योगों को अधिक प्रतियोगी बनाने तथा निर्यात विविधता पर बल दिया गया। चौथी योजना में निर्यात वस्तुओं की लागत में कमी,गुणवत्ता सुधार, बन्दरगाहों का विकास आदि पर जोर दिया गया। पांचवी पंचवर्षीय योजना में छोटे तथा कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित भारत के अधिक निर्यात पर बल दिया गया। इसके लिए प्रतिष्ठत निर्यातकों को विनिमय एवं कर में सुविधा का प्रावधान किया गया।

वर्ष 1981 से पहली बार संयुक्त आयात-निर्यात नीति घोषित की गई जिसमें आयात प्रतिस्थापन एवं निर्यात संवर्धन पर विशेष बल दिया गया। 15 अप्रैल 1983 को निर्यात-आयात नीति 1983-84 घोषित की गई। 12 अप्रैल 1985 को निर्यात-

आयात नीति 1985-88 घोषित की गई । 30मार्च 1988 को निर्यात-आयात नीति 1988-91 घोषित की गयी। 31 मार्च 1992 को जुलाई 1991 में घोषित आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के मद्देनजर निर्यात-आयात नीति 1992-97 घोषित की गयी। 31 मार्च 2002 को आयात नीति 2002-2007 घोषित की गई। 31 अगस्त 2004 को केन्द्रीय राज्य मंत्री कमलनाथ निर्यात-आयात नीति 2004-2009 घोषित की गई। इन सभी निर्यात-आयात नीतियों में विशेष रूप से निर्यात वृद्धि पर अधिक ध्यान देना, आयातों की मात्रा में विशेष प्रयास करके बचत करना, स्वदेशी उद्योगों की प्रगति, निर्यात-आयात की कार्य प्रणाली को सरल करना, निर्यात संवर्धन, स्वतः अनुज्ञापन, आबिद हुसैन समिति की सिफारिशों को लागू करना, तकनीकी एवं विदेशी सेवाओं के आयात को प्रोत्साहन, पूँजीगत माल आयात के लिये अनेक रियायत की घोषणा, खुले सामान्य लाइसेन्स के क्षेत्र का विस्तार, निर्यात में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा, शत-प्रतिशत निर्यातोन्मुख इकाइयों, निर्यात, प्रसंस्करण क्षेत्र में संलग्न इकाइयों को अधिक सुविधा, विशेष आर्थिक क्षेत्र की इकाइयों को अपनी निर्यात आय को स्वदेश लाने की समय सीमा में वृद्धि, विदेशी व्यापार महानिदेश के कार्यालय को कम्प्यूटरीकृत करने की व्यवस्था, निर्यात वृद्धि के लिए राज्यों को मदद, विश्व व्यापार में भारी की हिस्सेदारी 0.67 प्रतिशत से बढ़ाकर 1 प्रतिशत करना, FPZ एवं SEZ में शून्य सीमा-शुल्क पर आयात की व्यवस्था, निर्यात पर परिमाणात्मक (Quantitative) प्रतिबन्धों की समाप्ति,कृषि क्षेत्र को विशेष सुविधा एवं रियायतें, लघु एवं कुटीर उद्योगों को विशेष सुविधाएँ एवं रियायत हार्डवेयर क्षेत्र को निर्यात संवर्धन पैकेज की घोषणा, अफ्रीकी देशों में निर्यात बाजार विस्तारीकरण, देश का कुल निर्यात इस नीति के अन्त तक 104 अरब डालर करने का प्रयास, सेवा निर्यात संवर्धन परिषद् का गठन,सर्व्ड फ्राम इण्डिया योजना का प्रारम्भ, मुक्त व्यापार एवं गोदाम क्षेत्र की स्थापना, उत्पाद विशेष एवं बाजार विशेष योजना, निर्मातोन्मुख इकाइयों को निर्यात प्राप्तियों को विदेशी मुद्रा खाते में रखने की अनुमति आदि विशेष प्रावधान किये गये हैं।

1.7 शब्दावली

आयात नीति - दूसरे देशों से खरीदी जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में सरकारी नीति एवं नियम ।

निर्यात नीति - अपने देश से दूसरे देशों को बेची जाने वाली वस्तुओं के सम्बन्ध में सरकार की नीति एवं नियम।

संरक्षण नीति - अपने देश के उद्योगों को दूसरे देश के उद्योगों से होने वाले नुकसान से बचाने की नीति एवं कार्यक्रम।

निर्यात-आयात नीति - वर्ष 1981 से संयुक्त रूप से निर्यात सम्वर्द्धन एवं आयात प्रतिस्थापन एवं बचत की नीति घोषित की जाने लगी।

स्वदेशी उद्योग - अपने देश के उद्योग धन्धे जो स्वदेशी तकनीक पर आधारित हैं

निषेधात्मक मदें - ऐसी मदों के आयात पर पूर्ण प्रतिबन्ध होता है।

प्रतिबन्धात्मक मदें - ऐसी मदों का आयात लाइसेन्स प्राप्त कर किया जा सकता है।

EPZ - एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन/निर्यात संवर्द्धन क्षेत्र

SEZ - स्पेशल इकोनॉमिक जोन / विशेष आर्थिक क्षेत्र

1.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की निर्यात-आयात नीति पर एक निबन्ध लिखिये।
2. भारत की नवीन निर्यात-आयात नीति की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिये।
3. विदेशी व्यापार नीति 2004 की मुख्य विशेषतायें बताइये।

लघुउत्तरीय प्रश्न

4. 1991 से पूर्व भारतीय निर्यात नीति की विशेषतायें बताइये।
5. भारतीय निर्यात नीति 2009 की विशेषतायें बताइये।

1.9 संदर्भ पुस्तकें (Suggested Readings)

Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.

MS-3, IGNOU Course Material: Economic and Social Environment.

Tandon, BB, Indian Economy: Tata Mcgraw Hill, New Delhi.

मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

मिश्रा जे.एन., भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।

माथुर जे.एस., व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

पंत ए.के., व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

सिन्हा वी.सी., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा.लि., आगरा।

मालवीया ए.के. व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।

सिंह एस.के., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई - 2 विदेशी निवेश नीति

इकाई की रूपरेखा-

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विदेशी निवेश का वर्गीकरण

2.3 विदेशी निवेश की आवश्यकता

2.4 विदेशी निवेश के प्रति सरकार की नीति

2.5 भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश एवं पोर्टफोलियो निवेश

3.6 विदेशी निवेश नीति का आलोचनात्मक परीक्षण

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

29 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.10 संदर्भ पुस्तकें

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् इस इस योग्य हो सकेंगे कि -

- विदेशी निवेश का आशय बता सकें,
- विदेशी निवेश की आवश्यकता के कारणों को जान सकें,
- विदेशी निवेश के प्रति भारत सरकार की नीति से परिचित हो सकें, तथा
- विदेशी निवेश नीति की कमियों को बता सकें।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामान्यतः अल्पविकसित देशों में आय का स्तर नीचा होने के कारण पूँजी का निर्माण भी कम होता है। लेकिन पूंजी की इस कमी के बावजूद दोनों देशों में औद्योगीकरण और आर्थिक विकास की गहरी इच्छा होती है। उदाहरण के लिए भारत ने अपनी दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगीकरण का व्यापक कार्यक्रम बनाया क्योंकि इस कार्यक्रम को लागू करने के लिए घरेलू साधनों की कमी थी इसलिए देश को विदेशी पूँजी का सहारा लेना पड़ा ।

भारत में विदेशी ऋण एवं भुगतान संतुलन की समस्या पर लगातार चिंता व्यक्त की जाती रही है। जहाँ तक विदेशी निवेश का सवाल है तो 1948 की औद्योगिक नीति तथा उसके बाद की सभी नीतियों में विदेशी पूँजी निवेश का स्वागत किया गया है। परन्तु विदेशी पूँजी निवेश/निवेश नीति में वर्ष 1991 के बाद से अधिक छूट दी गयी एवं विदेशी निवेश को आमंत्रित करने व आकर्षित करने का सतत् प्रयास किया जा रहा है। यद्यपि इसके पीछे अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीकरण का भी तर्क दिया जाता है। इसी परिप्रेक्ष्य में वर्ष 1991 की घोषित क्रान्तिकारी औद्योगिक नीति में विदेशी निवेश को अधिक उदारीकृत बनाने के कदम उठाये गये। इसी प्रक्रिया के तहत विदेशी निवेश सम्वर्द्धन परिषद् की भी स्थापना की गयी। वर्ष 1992-93 के बाद से लगातार विदेशी प्रत्यक्ष निवेश तथा पोर्टफोलियो निवेश एवं अनिवासी भारतीयों द्वारा निवेश को आकर्षित करने के लिए प्रयास किये गये हैं ।

2.2 विदेशी निवेश का वर्गीकरण (Classification of Foreign Investment)

(1) प्रत्यक्ष निवेश (Direct Investment) - जब कोई विदेशी व्यक्ति अथवा फर्म प्रत्यक्ष रूप से दूसरे देश में अपनी पूँजी से कोई उद्योग लगाती है तो इसे हम प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कहते हैं। इस प्रकार की स्थापित इकाई में पूरा नियंत्रण पूँजी लगाने वाले व्यक्ति अथवा संगठन का होता है। इस प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में रिजर्व बैंक के माध्यम से होने वाला स्वतः निवेश, विदेशी निवेश सम्वर्द्धन ब्यूरो के माध्यम से किया गया निवेश, अनिवासी भारतीयों द्वारा किया गया निवेश (40 प्रतिशत से 100 प्रतिशत की सीमा तक) एवं विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम फेमा (FEMA) की धारा 5 के अन्तर्गत अनिवासियों द्वारा भारतीय कम्पनियों के अंशों का क्रय सम्मिलित है।

(2) पोर्टफोलियो निवेश (Portfolio Investmnet) - पोर्टफोलियो निवेश के अन्तर्गत विदेशी कम्पनियाँ भारतीय कम्पनियों के ऋण पत्र (बॉण्ड) या अंश (शेयर) खरीद कर निवेश करती हैं। इस व्यवस्था में विदेशी कम्पनियों द्वारा क्रय किये गये भारतीय कम्पनियों के ऋण पत्रों व शेयरों के आधार पर उनके स्वामित्व नियन्त्रण व प्रबन्धन में इनकी भागीदारी नहीं होती है। परन्तु ये कम्पनियाँ अथवा निवेशकर्ता ब्याज व लाभांश के भागीदार होते हैं।

2.3 विदेशी निवेश की आवश्यकता

विदेशी निवेश की आवश्यकता प्रायः निम्नलिखित कारण से होती है :

1. **निवेश बढ़ाने के लिए** - क्योंकि अल्पविकसित देश थोड़े से समय में ही तेजी से औद्योगीकरण करना चाहते है। इसलिए यह जरूरी होता है कि वे निवेश स्तर में तेजी

से वृद्धि करें। ऐसा करने के लिए ऊँची बचत दर का होना आवश्यक है। परन्तु व्यापक गरीबी के कारण इन देशों में बचत अक्सर बहुत कम हो पाती है।इसलिए निवेश की वांछित मात्रा और बचत की वास्तविक उपलब्धि के बीच अन्तर रह जाता है। इस अन्तर को पूरा करने के लिए विदेशी निवेश आवश्यकता है।

2. **आधुनिक तकनीक की प्राप्ति** - अल्पविकसित देशों में तकनीकी ज्ञान का स्तर भी नीचा है अतः जब इन देशों को विदेशी निवेश के साथ साथ तकनीकी ज्ञान की भी प्राप्ति होती है तो औद्योगीकरण के लिए उपयुक्त परिस्थितियां बन जाती है।भारत में तकनीकी सहायता ने तीन प्रकार से मदद पहुँचाई है - (1) विदशी विशेषज्ञों की सेवाओं द्वारा, (2) भारतीय कर्मचारियों के प्रशिक्षण द्वारा, तथा (3) देश में शैक्षिक, अनुसन्धान व प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना द्वारा।

3. **प्राकृतिक साधनों का पर्याप्त विदोहन** - अनेक अल्पविकसित देश प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी गरीब और पिछड़े हुए हैं। इन देशों के लिए अपनी निजी पूँजी द्वारा साधनों का दोहन सम्भव नहीं होता है। विदेशी निवेश के पक्ष में कहा जाता है कि उसके प्राप्त हो जाने पर ये देश अपने उन साधनों का दोहन कर औद्योगिक विकास का ऊंचा स्तर प्राप्त करने में सफल होते हैं जिन्हें अन्यथा वे इस्तेमाल नहीं कर पाते।

4. **प्रारम्भिक जोखिम वहन करने में सहायक** - अल्पविकसित देशों में प्रायः उद्यमी वर्ग का अभाव होता है। अतः औद्योगीकरण में बाधा पड़ती है। विदेशी निवेश के पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि वह इन देशों में पहुँच कर प्रारम्भिक जोखिम को झेलती है।इस प्रकार जब एक बार औद्योगीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है तो देशी पूंजीपति भी उद्योगों की स्थापना में दिलचस्पी दिखाने लगते हैं परन्तु तथ्यों से इस तर्क की पुष्टि नहीं होती। आज भी वे सभी देश औद्योगीकरण की दृष्टि से पिछड़े हैं जिनमें प्रारम्भिक औद्योगिक विकास विदेशी पूँजी के द्वारा हुआ था।

5. **आधारभूत आर्थिक ढाँचे का निर्माण** - आधारभूत आर्थिक ढांचे के विकास के लिये प्रायः स्वदेशी पूंजी का अभाव रहता है परन्तु ऋणों के रूप में विदेशी निवेश उपलब्ध हो जाता है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं तथा विभिन्न देशों की सरकारों ने अल्पविकसित देशों को परिवहन के साधनों के निर्माण, बिजली विकास तथा सिंचाई के साधनों की व्यवस्था के लिए भारी मात्रा में ऋण दिए हैं।

6. **भुगतान सन्तुलन की स्थिति में सुधार** - विकासशील देशों को आर्थिक विकास के लिए भारी मात्रा में मशीनों संयंत्रों, कच्चे पदार्थों आदि का आयात करना होता है। इससे भुगतान शेष प्रायः प्रतिकूल हो जाता है। यह स्थिति दीर्घकाल तक नहीं रह

सकती है। विदेशी पूंजी के मिलने पर इस समस्या का अल्पकालीन हल निकल जाता है।

विदेशी निवेश की उपलब्धि से आयातक देश में आर्थिक विकास की गति होना स्वाभाविक है। इसलिए यदि विदेशी निवेश बिना किसी प्रतिबन्ध के सरल शर्तों पर मिल सकती है तो उसका स्वागत किया जाना चाहिए। जॉन पी. ल्युइस के अनुसार ''इन्कार करने के बावजूद यह एक तथ्य है कि विदेशी सहायता के साथ प्रतिबन्ध होते हैं और प्रत्येक विदेशी सहायता से संबंधित शर्तों के बारे में सहायता लेने और देने वाले पक्षों के बीच सौदेबाजी होती ही है।'' विदेशी निवेश के सम्बन्ध में ल्युइस का विचार सही है। इसलिए पूँजी को आमंत्रित करते समय बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए।

2.4 विदेशी निवेश के प्रति सरकार की नीति

भारत में औद्योगिक विकास के क्षेत्र में विदेशी निवेश की भूमिका विशेष गौरवपूर्ण नहीं रही है। इस देश में पहले विदेशी पूँजी अंग्रेजी शासनकाल में आई थी, जिसका प्रधान उद्देश्य उपनिवेश का शोषण करना था। ब्रिटिश पूँजी का आधारभूत निर्माण उद्योगों के विकास में विशेष योगदान नहीं रहा है। वास्तव में विदेशी पूँजी ने अनेक क्षेत्रों में भारतीय पूँजी के साथ अनुचित प्रतिस्पर्धा की। भारतीयों को न तो उद्योग सम्बन्धी तकनीकों में प्रशिक्षित किया गया और न ही उन्हें प्रबन्ध व्यवस्था में कोई ऊँचा पद दिया गया।

अप्रैल 1948 में भारत सरकार ने औद्योगिक नीति प्रस्ताव में औद्योगीकरण के लिए विदेशी पूँजी की उपयोगिता को स्वीकार किया। परन्तु साथ ही प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया कि जिन इकाइयों में विदेशी पूँजी के निवेश की अनुमति दी जाए उनके स्वामित्व और प्रबन्ध में विदेशी हितों की प्रधानता नहीं रहनी चाहिए। इसके अतिरिक्त जिन उद्योगों में विदेशी तकनीशियनों की सेवाएं प्राप्त की गई हों, उनमें भारतीयों को प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि बाद में भारतीय विशेषज्ञ विदेशी विशेषज्ञों का स्थान ले सकें। भारत सरकार के इस औद्योगिक नीति प्रस्ताव में विदेशी पूँजी पर प्रतिबन्धों के उल्लेख से विदेशी पूँजीपति असन्तुष्ट हो गये और इसके परिणामस्वरूप दूसरे देशों से पूँजी के आयात में गतिरोध उत्पन्न हो गया। अतः 6 अप्रैल, 1949 को भारत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री ने संसद में भाषण करते हुए विदेशी पूँजी के सम्बन्ध में न केवल भारत सरकार की नीति को स्पष्ट किया बल्कि उन्होनें विदेशी पूंजीपतियों को निम्नलिखित आश्वासन भी दिये :-

(1) भारत सरकार भारतीय और विदेशी निवेश में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगी। तात्पर्य यह है कि विदेशी निवेश पर कोई भी ऐसा प्रतिबंध नहीं लगाया जाएगा जो स्वदेशी पूँजी पर न लगाया गया हो परन्तु इस आश्वासन के बदले में प्रधानमन्त्री

ने आशा व्यक्त की कि विदेशी निवेश का आचरण भी भारत सरकार की औद्योगिक नीति के अनुकूल होगा।

(2) विदेशी हितों को लाभ कमाने के पूरे अवसर दिए जाएंगे और उन पर केवल वे ही प्रतिबंध लगाए जायेंगे जो भारतीय औद्योगिक हितों पर लगाए गए हैं । विदेशी निवेशकों को विदेशी विनिमय की स्थिति को ध्यान में रखते हुए लाभ और पूँजी वापस ले जाने की सुविधा प्रदान की जाएगी।

(3) यदि भारत सरकार किसी ऐसे उद्योग का राष्ट्रीयकरण करती है जिसमें विदेशी पूँजी का निवेश होता है तो निवेशकों को उचित हर्जाना दिया जाएगा।

उपरोक्त आश्वासन के बावजूद भी पहली योजना काल में समुचित मात्रा में विदेशी निवेश प्राप्त नहीं हो सका। सन्देह का वातावरण अभी बना हुआ था। फिर भी 1949 में दिए गये प्रधानमंत्री के वक्तव्य से विदेशी सहयोग के नये द्वार खुले। सरकारी नीति में धीरे-धीरे जो उदारवादी दृष्टिकोण उभरा उससे विदेशी निवेश को और प्रोत्साहन मिला। सरकार ने विदेशी निवेशकर्ताओं को करों में कई रियायतें दीं। सरकार द्वारा जुलाई 1991 में घोषित नई औद्योगिक नीति में विदेशी निवेश को कई तरह के प्रोत्साहन दिये गये। इस नीति से पूर्व विदेशी निवेश की अनुमति आमतौर पर उन्हीं क्षेत्रों में दी जाती थी जिनमें घरेलू पूंजी की कमी होती थी इसके अलावा, व्यापारिक क्षेत्रों, बागान, बैंकिंग तथा वित्तीय संस्थाओं में विदेशी निवेश की अनुमति नहीं दी जाती थी। विदेशी निवेश की अनुमति उन क्षेत्रों में भी नहीं दी जाती थी जिन्हें सरकारी संरक्षण प्राप्त था या जो देश के लिए मूलभूत या सामरिक महत्व के थे। सरकार की घोषित नीति 'अनावश्यक उपभोग वस्तुओं' के क्षेत्र में विदेशी निवेश को हतोत्साहित करने की थी। परन्तु इसके बावजूद बहुत सी अनावश्यक उपभोग वस्तुओं जैसे प्रसाधन सामग्री, टूथपेस्ट, बिस्कुट इत्यादि में भी विदेशी सहयोग की अनुमति दी गई। यह भी कहा गया था कि विदेशी निवेश की अनुमति केवल उन क्षेत्रों में होगी जिनसे या तो निर्यात संवर्द्धन हो सके या आयात प्रतिस्थापन। सरकार ने यह भी शर्त रखी थी कि जिन उद्योगों में विदेशी निवेश की अनुमति दी जाएगी उनका स्वामित्व व प्रभावी नियन्त्रण हमेशा भारतीयों के हाथ में होगा (परन्तु इस शर्त में अक्सर ढील दी गई)। विदेशी निवेश व तकनीकी सहयोग पर इस प्रकार के नियन्त्रण की व्यवस्था थी कि वे योजनाओं के ढांचे में ही रहे। जिन क्षेत्रों में कुशल व अनुभवी भारतीयों की कमी के कारण, विदेशी विशेषज्ञों व प्रबन्धकों को काम करने की छूट थी, उनमें यह व्यवस्था कि भारतीयों को जल्द से जल्द प्रशिक्षण देकर रोजगार प्रदान किया जाए।

हाल के वर्षों में विदेशी निवेश तथा अनिवासी भारतीयों के निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने कई कर रियायतें प्राथमिकता प्राप्त उद्योगों में निम्न कर दरें कुछ

अवधि तक नई स्थापित औद्योगिक इकाइयों के लाभों पर कर छूटें जैसी सुविधाओं की घोषणा की है। भारत में निवेश कर रहे अनिवासी भारतीयों को कई और रियायतें प्रदान की गई है। जैसे उच्च निवेश सीमाएं, कमी वाली मदों की आपूर्ति भारतीय कम्पनियों के शेयर खरीदने की अनुमति, इत्यादि। परन्तु सबसे क्रान्तिकारी परिवर्तन तो जुलाई 1991 में घोषित नई औद्योगिक नीति से आधा जिससे विदेशी निवेश के प्रति पूरा रवैया ही बदल गया। इस नीति में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए कई कदम उठाए गये। बाद की अवधि में इस दिशा में कुछ और रियायतें व छूटों की घोषणा की गई। इन निर्धारित सीमाओं के भीतर सभी क्षेत्रों में (इसमें सेवा क्षेत्र भी शामिल है) विदेशी निवेश की पूरी छूट है। केवल कुछेक क्षेत्रों में ही विदेशी निवेश पर प्रतिबंध है। अधिकतर उद्योगों के लिए अब स्वतः अनुमोदन की व्यवस्था है। स्वतः अनुमोदन का अर्थ यह है कि सरकार से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है - केवल सूचना देना आवश्यक है। (स्वतः अनुमोदन से सरकारी हस्तक्षेप की संभावना कम हो जाती है)। 1991 से 2008 के बीच की अवधि में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए जो कदम उठाये गये हैं उनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं :

(1) 1991 में सरकार ने उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों (जिनमें बड़े निवेश और जटिल प्रौद्योगिकी की आवश्यकता पड़ती है) की एक सूची तैयार की जिनमें सीधे विदेशी निवेश के लिए 51 प्रतिशत विदेशी इक्विटी की अनुमति दी गई। इन उद्योगों को परिशिष्ट ।।। में शामिल किया गया। बाद में विदेशी निवेश की सीमा को 74 प्रतिशत तथा कई उद्योगों में 100 प्रतिशत कर दिया गया। इसके अलावा, समय के साथ बहुत से नए उद्योगों को सूची में शामिल किया गया।

(2) 1991 से पूर्व सरकार होटलों के अलावा अन्य सेवा क्षेत्रों में विदेशी इक्विटी को हतोत्साहित करती थीं। 1991 की नीति में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक कम्पनियों द्वारा 51 प्रतिशत तक विदेशी इक्विटी को आमंत्रित किया गया। होटलों के साथ-साथ अब अन्य पर्यटन संबंधित क्षेत्रों में भी 51 प्रतिशत विदेशी इक्विटी को स्वीकार किया जाता है।

(3) बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय फर्मों के साथ बातचीत करने के लिए एक विशेषाधिकार प्राप्त बोर्ड का गठन किया गया है जो चुने हुए क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का मूल्यांकन व अनुमोदन करेगा।

(4) विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों की सेवाएं प्राप्त करने के लिए तथा देश में विकसित प्रौद्योगिकी की विदेशों में जांच के लिए पहले यह व्यवस्था थी कि हर मामले में सरकार से स्वीकृति लेनी होगी। इससे कार्यान्वयन में विलम्ब होता था। इसलिए अब सरकार से स्वीकृति लेने की शर्त को हटा दिया गया है।

(5) विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिए शत-प्रतिशत विदेशी इक्विटी की अनुमति दी गई है। इसलिए लाभों का विदेशों को सीधा अन्तरण संभव होगा तथा विदेशी निवेशक, बिना किसी बाधा के, विद्युत संयंत्रों की जल्द स्थापना कर सकेंगी।

(6) अनिवासी भारतीयों तथा उनके अधिपत्याधीन समुद्रपारीय निगमित निकायों को यह छूट दी गई है कि वे उच्च प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में शत प्रतिशत इक्विटी तक निवेश कर सकते हैं। अनिवासी भारतीय निर्यात गृहों, व्यापार गृहों स्टार व्यापार गृहों, अस्पतालों, निर्यात उन्मुख इकाइयों, अस्वस्थ औद्योगिक इकाइयों, होटलों इत्यादि में भी शत प्रतिशत इक्विटी तक निवेश कर सकते हैं। भारतीय मूल के विदेशी नागरिकों को अब, रिजर्व बैंक से अनुमति लिए बिना, भारत में घर बनाने या मकान खरीदने की भी छूट दी गयी है।

(7) भारत में अपनी बिक्री पर विदेशी कम्पनियों को 14 मई 1992 से अपना ट्रेड मार्क इस्तेमाल करने की अनुमति दी गई है।

(8) अब विदेशी निवेशकों के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वे इक्विटी का विनिवेश (Disinvestment) रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित कीमतों पर ही करें। 15 सितम्बर 1992 से उन्हें यह छूट दी गई है कि वे विनिवेश स्टॉक एक्सचेन्जों पर बाजार दरों पर कर सकते हैं तथा इस विनिवेश से प्राप्त राशि को विदेशों में भेज सकते हैं।

(9) विदेशी संस्थापक निवेशकों तथा अनिवासी भारतीयों को यह छूट दी गई है कि वे स्टॉक एक्सचेंजों की सूची में शामिल किसी भी भारतीय कम्पनी में निवेश कर सकते है परन्तु उनका निवेश कम्पनी की 30 प्रतिशत इक्विटी पूंजी से अधिक नहीं हो सकता। भारतीय कम्पनियों को और विदेशी निवेश उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से सरकार ने 2000-01 के बजट में इस सीमा को 30 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 प्रतिशत कर दिया।

(10) विदेशी निवेशक अब भारतीय कंपनियों में भूमण्डलीय निक्षेपी रसीदों के माध्यम से निवेश कर सकते है। उन पर यह पाबन्दी नहीं होगी कि कितने कम से कम समय के लिए निवेश करना आवश्यक है। इन रसीदों को किन्हीं भी समुद्रपारीय स्टॉक एक्सचेंजों पर लिस्ट किया जा सकता है। तथा वह किसी भी परिवर्तनीय विदेशी मुद्रा में हो सकती है।

(11) 1998-99 में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए कई उपायों की घोषणा की गई। मुख्य उपाय निम्नलिखित थे (1) विद्युत उत्पादन, पारेषण और वितरण एवं सड़क तथा राजमार्ग, पत्तन व बंदरगाह तथा वाहनों की सुरंगें व पुलों की परियोजनाओं को,स्वतः अनुमोदन नीति के अंतर्गत 100 प्रतिशत इक्विटी भागीदारी की

अनुमति दी गई बशर्ते विदेशी इक्विटी 1500 करोड़ रूपये से अधिक न हो, (2) निजी क्षेत्र के बैंकों में इक्विटी प्रतिभागिता के संबंध में बहुपक्षीय वित्तीय संस्थानों को अनुमति दी गई कि वे 40 प्रतिशत की समग्र अनुमत सीमा के भीतर अनिवासी भारतीयों की धारिताओं में कमी तथा इक्विटी अंशदान कर सकती है (3) उपग्रह के माध्यम से भूमण्डलीय चल वैयक्तिक संचार सेवाएं उपलब्ध कराने वाली कंपनियों को, लाइसेंस की शर्त के साथ, कुल इक्विटी के 49 प्रतिशत तक के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई (4) अनिवासी भारतीयों/ भारतीय मूल के व्यक्तियों समुद्रपारीय निगमित निकायों द्वारा निवेश सीमा चुकता पूंजी के 1 प्रतिशत से बढ़ाकर 5 प्रतिशत कर दी गई। इसके अलावा अनिवासी भारतीयों/समुद्रतटीय मूल के व्यक्तियों/समुद्रपारीय निगमित निकायों के लिए सकल निवेश सीमा किसी कंपनी की चुकता पूंजी के 5 प्रतिशत से बढ़ा कर 10 प्रतिशत कर दी गई (5) अनिवासी भारतीय/भारतीय मूल के व्यक्तियों/समुद्रपारीय निगमित निकायों को असूचीबद्ध कंपनियों में निवेश की छूट दी गई (6) विदेशी संस्थागत निवेशकों को समग्र अनुमोदित ऋण सीमाओं के भीतर सरकारी प्रतिभूमियों और राजकोषीय हुंडियों का क्रय और विक्रय करने की अनुमति दी गई तथा (7) 100 प्रतिशत विदेशी संस्थागत निवेशकों की ऋण निधियों को भारतीय कंपनियों की असूचीबद्ध ऋण प्रतिभूतियों में निवेश की अनुमति दी गई।

(12) मार्च 1999 में जारी एक अधिसूचना के तहत रिजर्व बैंक ने म्युचल फंडों को इस बात की अनुमति दी कि वे (कुछ शर्तों के अधीन) अनिवासी भारतीयों, भारतीय मूल के लोगों तथा समुद्र पारीय निगमित निकायों को यूनिट जारी कर सकते हैं अर्थात जब उन्हें रिजर्व बैंक से पूर्व अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है। इसके अलावा बहुत से क्षेत्रों में अब अनिवासी भारतीयों, भारतीय मूल के लोगों तथा समुद्रपारीय निगमित निकायों को सामान्य अनुमति (General Permission) दे दी गई है अर्थात एक-एक प्रस्ताव पर अब अलग-अलग अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। ये क्षेत्र हैं :- भारतीय कम्पनियों द्वारा जमाओं की स्वीकृति, एअर टैक्सी सेवाओं में निवेश, शेयर बाजारों में शेयरों की बिक्री, धर्मार्थ कार्यों में लगे संगठनों को उपहारस्वरूप शेयरों, बॉण्डों, ऋणपत्रों तथा अचल सम्पत्ति का अंतरण भारतीय कम्पनियों द्वारा अनिवासी भारतीयों को वाणिज्यिक पत्र जारी करना इत्यादि।

(13) विदेशी स्वामित्व वाली भारतीय धारक कंपनियों को अनुप्रवाही निवेश के लिए अभी तक विदेश निवेश संवर्द्धन बोर्ड से अनुमति लेना अनिवार्य था। अब उन्हें स्वतः अनुमोदन माध्यम से स्वीकृत इक्विटी सीमा के अन्तर्गत निवेश करने की अनुमति दे दी गई है। बशर्ते धारक कंपनियां विदेशों से स्वयं फंडों की व्यवस्था करें। इसके अतिरिक्त पहले से ही स्वीकृत सीमा के अन्तर्गत विदेशी इक्विटी में वृद्धि के लिए विदेश निवेश संवर्द्धन बोर्ड से पूर्व अनुमति लेने की आवश्यकता को उन सब मामलों में समाप्त कर

दिया गया है जहाँ कि मूल परियोजना लागत 600 करोड़ रूपए तक है।

(14) विदेशी संस्थागत निवेश श्रेणी का विस्तार करने के उद्देश्य से सरकार ने विदेशी कंपनियों तथा काफी धनी व्यक्तियों को सेबी के साथ पंजीकृत विदेशी संस्थागत निवेशकों के माध्यम से निवेश करने की अनुमति प्रदान कर दी है। सरकार ने 'सेबी' में पंजीकृत घरेलू कोष प्रबन्धकों को पोर्टफोलियो निवेश मार्ग से भारतीय पूंजी बाजार में निवेश के लिए विदेशी निधियों का प्रबंध करने की भी अनुमति दे दी है बशर्ते कि निधियाँ अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त वित्तीय संस्थाओं से आएं।

(15) अगस्त 1999 में उद्योग मंत्रालय के अधीन एक विदेशी निवेश कार्यान्वयन अधिकरण (Foreign Investment Implementation Authority) की स्थापना की गई ताकि विदेशी निवेश संबंधित अनुमोदनों (Approvals) को जल्द से जल्द वास्तविक निवेश प्रवाहों में परिणत किया जा सके।

(16) दिसम्बर 1999 में जारी एक अधिसूचना के माध्यम से वित्त मंत्रालय ने उन भारतीय साफ्टवेयर कंपनियों की जो पहले से ही विदेशी एक्सचेंजों पर सूचीबद्ध हैं तथा पहले ही (American Depository Receipts/Global Depository Receipts) जारी कर चुकी हैं, यह अनुमति दी कि वे भारत सरकार से अथवा रिजर्व बैंक से इजाजत लिए बिना ही विदेशी साफ्टवेयर कंपनियों का अधिग्रहण कर सकती हैं तथा एडीआर/ जीडीआर जारी कर सकती है। बशर्ते कुल मूल्य 100 मिलियन डालर से अधिक न हों। 100 मिलियन डालर से अधिक के अधिग्रहण के लिए प्रस्तावों की जाँच रिजर्व बैंक की विशेष संयुक्त समिति करेंगी।

(17) दिसम्बर 1999 में बीमा नियामक एवं विकास अधिनियम संसद द्वारा पारित किया गया। यह अधिनियम बीमा क्षेत्र में निजी क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए अपनाया गया है। इस अधिनियम में यह व्यवस्था है कि घरेलू निजी बीमा कंपनियां अपनी कुल चुकता पूंजी के 26 प्रतिशत तक विदेशी इक्विटी भागीदारी कर सकती हैं।

(18) फरवरी 2000 में सरकार ने एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया जिसके तहत एक छोटी सी नकारात्मक सूची (Negative list) के अलावा अन्य सभी वस्तुओं के लिए स्वतः अनुमोदन का रास्ता खोल देने की व्यवस्था की गई। इस निर्णय को लागू करने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक ने 5 अप्रैल 2000 को अधिसूचना जारी की जिसमें कहा गया कि कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को छोड़कर सभी मदों को स्वतः अनुमोदन के अधीन विदेशी निवेश प्राप्त करने की छूट होगी।

(19) विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए 2000-01 में कई निर्णय लिए गये जिनमें प्रमुख हैं : (1) बिजनेस से बिजनेस ई-कामर्स के लिए 100 प्रतिशत विदेशी

प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई (2) विद्युत उत्पादन, पारेषण और वितरण में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर जो 1500 करोड़ रूपये की अधिकतम सीमा निर्धारित की गई थी उसे समाप्त कर दिया गया (3) तेल शोधन सेक्टर में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए इस सेक्टर में प्रत्येक विदेशी निवेश पर स्वतः अनुमोदन के अंतर्गत 45 प्रतिशत की जो अधिकतम सीमा लगाई गई थी उसे बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया, (4) विशिष्ट आर्थिक क्षेत्रों में सभी विनिर्माण गतिविधियों में (कुछेक गतिविधियों को छोड़कर) स्वतः अनुमोदन के अंतर्गत प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गई (5) दूरसंचार सेक्टर में कुछ सीमाओं के अन्दर, 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की छूट दी गई (6) सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में भी स्वतः अनुमोदन का रास्ता खोल दिया गया (उस स्थिति मे भी जबकि आवेदक कंपनी का उसी क्षेत्र में कोई संयुक्त उद्यम चल रहा हो या फिर प्रौद्योगिकी अंतरण समझौता किया गया हो), (7) समुद्रपारीय उपक्रम पूंजी निधियों /कंपनियों (Offshore Venture Capital Funds/Companies) को कुछ शर्तों के अधीन देश की उपक्रम पूंजी कंपनियों व अन्य कंपनियों में स्वतः अनुमोदित मार्ग के जरिए निवेश करने की अनुमति दी गई।

(20) 2001-02 तथा 2002-03 में सरकार ने विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को कई और रियायतें व छूटें दी। इनमें से प्रमुख हैं : (1) स्वतः अनुमोदित माध्यम से दवाइयों के क्षेत्र में विदेशी निवेश की अधिकतम सीमा को 74 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया (2) एयरपोर्ट सेक्टर में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को 74 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया। (3) होटल व पर्यटन क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को 51 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया, (4) कोरियर सेवा में 100 प्रतिशत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई (इससे पहले यह सेक्टर विदेशी निवेश के लिए खुला नहीं था), (5) व्यापक त्वरित परिवहन प्रणाली में 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गई (इससे पहले यह सेक्टर विदेशी निवेश के लिए खुला नहीं था) (6) नगर क्षेत्र विकास में 100 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की छूट दी गई (7) इंटरनेट सेवा प्रदायकों के लिए प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दिया गया, (8) बैंकिंग सेक्टर में, रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित शर्तों के अधीन, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दिया गया, (9) सुरक्षा सेक्टर में 26 प्रतिशत तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति दी गई तथा (10) प्रिंट मीडिया में भारतीय उद्योगपतियों की 26 प्रतिशत चुकता पूंजी तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई।

(21) 15 जनवरी 2004 को सरकार ने निजी बैंकिंग, पेट्रोलियम परिष्करण तथा वैज्ञानिक व तकनीकी पत्रिकाओ में विदेशी निवेश को महत्वपूर्ण रियायतों की घोषणा की। जहाँ तक निजी बैंकिंग का संबंध है इस क्षेत्र में यह छूट दी गई है कि कोई भी विदेशी

बैंक याय उसके अधीन कार्यरत कोई वित्तीय नियन्त्रक किसी भी निजी बैंक में 100 प्रतिशत तक निवेश कर सकता है। अन्य कोई विदेशी निवेशक प्रत्यक्ष या पोर्टफोलियो निवेश द्वारा, निजी बैंक में 74 प्रतिशत तक निवेश कर सकता है। बैंकिंग क्षेत्र में विदेशी निवेश को दी गई यह छूट विलयन तथा अधिग्रहण के कई द्वार खोल सकती है। सरकार ने पेट्रोलियम सेक्टर में भी विदेशी निवेश को कई रियायतें प्रदान की हैं जैसे पेट्रोलियम मार्केटिंग में विदेशी निवेश की सीमा को 74 प्रतिशत से 100 प्रतिशत करना, तेल व गैस के लिए पाइपलाइन में विदेशी निवेश की सीमा को 51 प्रतिशत से 100 प्रतिशत करना, तथा तेल अन्वेषण ने 100 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति देना। इसके अलावा, वैज्ञानिक एवं तकनीकी पत्रिकाओं में 100 प्रतिशत तक विदेशी निवेश की छूट दी गई है।

(22) जनवरी 2005 में प्रेस नोट 18 (Press Note-18) की समीक्षा की गई और नए दिशा-निर्देश जारी किये गये। इस नोट में यह प्रावधान था कि यदि किसी विदेशी निवेशक का भारत में किसी कम्पनी के साथ संयुक्त उद्यम (Joint Venture) काम कर रहा है तो उस विदेशी निवेशक को भारत में उसी औद्योगिक कार्य क्षेत्र में कोई और संयुक्त उद्यम लगाने के लिए विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड (Foreign Investment Promotion Board) से अनुमति लेनी होगी और इसके लिए इस बोर्ड में आवेदन देना होगा। विदेशी निवेशकों के अनुसार इस प्रावधान से नए संयुक्त उद्यम स्थापित करने में देरी होती थी और कई बार बोर्ड अनुमति नहीं भी देता था। इसलिए विदेशी निवेशक, प्रेस नोट 18 को एक अड़चन मानते थे। 12 जनवरी 2005 को जारी नए दिशा-निर्देशों के अनुसार अब विदेशी निवेश के नए प्रस्तावों के लिए स्वतः अनुमोदन का रास्ता खोल दिया गया है बशर्ते प्रस्तावित गतिविधि स्वतः अनुमोदन के लिए स्वीकृत हो और बशर्ते निवेशक का उसी क्षेत्र में पहले से ही कोई संयुक्त उद्यम या सहयोग (Collaboration) न हो।

(23) निजी घरेलू एयरलाइंस में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की सीमा को बढ़ाकर 49 प्रतिशत कर दिया गया है।

(24) व्यवसाय से व्यवसाय को इलेक्ट्रानिक वाणिज्य में 26 प्रतिशत विदेशी इक्विटी की विनिवेश अनिवार्यता (Mandatory disinvestment) की शर्त को समाप्त कर दिया गया है।

(25) 30 जनवरी 2006 को सरकार ने 6 व्यवसायों में विदेशी स्वामित्व संबंधी रियायतों की घोषणा की। वे क्षेत्र हैं (1) वायुयान चालन (2) खनन (3) तेल शोधन, (4) वास्तविक भूसम्पत्ति, (5) पदार्थ विनिमय (6) साख सूचना कंपनियां (Credit Information Companies)। नागरिक वायुयान चालन क्षेत्र में यद्यपि अनुसूचित

एयरलाइन्स में पूर्ववत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर उच्चतम सीमा को 49 प्रतिशत (तथा अनिवासी भारतीयों के लिए 100 प्रतिशत) रखा गया है तथापि कई परिवर्तन भी किये गये है। उदाहरण के लिए (1) गैर-अनुसूचित एयरलाइंस, चार्टर्ड एयरलाइंस तथा माल वाहक एयरलाइंस में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की सीमा को बढ़ाकर 74 प्रतिशत (अनिवासी भारतीयों के लिए 100 प्रतिशत) कर दिया गया है (2) एयरलाइन्स की धरातल पर संचालन गतिविधियों (Ground Handling Services) तथा गैर-अनुसूचित एयरलाइन्स में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दिया गया है। तथा (3) वायुयानों के रख-रखाव व मरम्मत का काम करने वाले संगठनों उद्यान प्रशिक्षण संस्थानों तथा हैलिकाप्टर सेवाओं में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की सीमा को 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया है। खनन के क्षेत्र में कुछ शर्तो के तहत (जैसे प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की शर्त) टिटेनियम के खनन में 100 प्रतिशत विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी गई है। तेल शोधन क्षेत्र में सार्वजनिक उद्यमों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की सीमा को 26 प्रतिशत से बढ़ाकर 49 प्रतिशत कर दिया गया है। पदार्थ विनिमय में 26 प्रतिशत तक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश तथा 23 प्रतिशत तक विदेशी संस्थात्मक निवेश की अनुमति दी गई है। जहाँ तक साख सूचना कंपनियों का सम्बन्ध है जहाँ इनमें पहले विदेशी निवेश की अनुमति नहीं थी वहां अब इनमें 49 प्रतिशत तक के विदेशी निवेश की अनुमति दी गई है (परन्तु इसके लिए सरकार तथा रिजर्व बैंक से अनुमोदन आवश्यक है)। इसके अलावा विदेशी फर्में अब वास्तविक भूसंपत्ति के क्षेत्र में भी निवेश कर सकती हैं (उपयुक्त अनुमोदन के बाद) । इण्डस्ट्रीयल पार्क के क्षेत्र में प्रवेश के लिए भी विदेशी निवेश शर्तों में ढील दी गई है।

2.5 भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश एवं पोर्टफोलियो निवेश

भारतीय उद्योगों में विदेशी पूँजी का अंतर्प्रवाह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और पोर्टफोलियो निवेश के रूप में होता है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश भारतीय कम्पनियों में स्थायी पूंजी और कार्यशाली पूंजी अथवा पूंजीगत उपकरण प्रदान करने के रूप में होता है। इससे विदेशी निवेशकों को भारतीय कम्पनी के प्रबन्ध पर नियंत्रण अथवा सहभागिता की सुविधा प्राप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश द्वारा विदेशी निवेशकर्ताओं को भारतीय कम्पनी पर स्वामित्व के साथ साथ विदेशी नियंत्रण भी प्राप्त हो जाता है। पोर्टफोलियों निवेश की श्रेणी में वे निवेश आते है। जो किसी विदेशी द्वारा समता व अंशों के रूप में रखे जाते हैं। इस निवेश पर एक निश्चित ब्याज व लाभांश की गारंटी दी जाती है। इस प्रकार के निवेशकर्ता कोई जोखिम नहीं उठाते हैं । इसमें कम्पनी का स्वामित्व और नियंत्रण भारतीयों के पास छोड़ दिया जाता है।

वर्ष 1991 की उदारवादी नीति के पश्चात प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने का सतत् प्रयास किया जा रहा है। इस संदर्भ में अनिवासी भारतीयों के योगदान की भी सराहना की जा रही है। अनिवासी भारतीयों के निवेश को आकर्षित करने के लिए सरकार ने तमाम प्रकार की रियायतें एवं सुविधाएं देने की घोषणा की है। निम्न तालिका से भारत में प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग की स्थिति स्पष्ट हो जाती है:-

विदेशी निवेश प्रवाह

(मि. यू.एस. डालर में)

	1992-93	1999-00	2005-06	2006-07	2008-09
प्रत्यक्ष विदेशी निवेश	315	2155	7722	19531	27309
पोर्टफोलियो निवेश	244	3026	12492	7062	-11341
कुल	559	5181	20214	26593	15968

Source: Statistical Outline of India, 2007-08 p. 163
Economic Survey, 2008-09, p. 134.

नीतिगत परिवर्तनों के कारण प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं पोर्टफोलियो निवेश के परिणाम उत्साहवर्द्धक हैं। वर्ष 2005-06 की तुलना में वर्ष 2006-07 में तीव्र वृद्धि दर्ज की गयी है। वर्ष 1992-93 में विदेशी निवेश प्रवाह कुल 559 मि. यू0एस0 डालर रूपये का था जो 2006-07 में बढ़कर 26593 मि. यू.एस. डालर हो गया। वर्ष 2008-09 में भारत का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश 27309 मि.यू.एस.डालर था जो वर्ष 2006-07 की तुलना में लगभग 140 प्रतिशत है। इस प्रकार इन सब प्रयासों से विदेशी पूंजी /निवेश के अन्तः प्रवाह को गति मिली है। इन प्रयासों के फलस्वरूप वर्ष 2006 तक इस दिशा में कुछ सकारात्मक परिणाम दिखाई पड़े हैं परन्तु ये देश की अर्थव्यवस्था को कहाँ गति प्रदान करेंगे यह सन्देह के घेरे में है।अभी इतनी अल्पावधि में कुछ भी ठोस एवं स्थायी परिमाण निकालना उचित नहीं है।

रिजर्व बैंक के अनुसार विकासशील देशों में अब भारत,चीन के बाद दूसरा देश ऐसा बन गया है जो सर्वाधिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित कर रहा है। पूरे विश्व में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में भारत का हिस्सा 2005 में 2.3 प्रतिशत से बढ़कर 2006 में 4.5 प्रतिशत हो गया।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के स्त्रोत (Sources of FDI 1991-92) :- 1991-92 से मार्च 2006 की पूरी अवधि में सबसे अधिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश मॉरीशस से प्राप्त हुए। कुल अन्तर्प्रवाहों में मॉरीशस का हिस्सा 37.8 प्रतिशत था। दूसरा स्थान अमेरिका का था जिसका कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में हिस्सा 15.25 प्रतिशत था। परन्तु इस

संदर्भ में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि मॉरीशस से प्राप्त विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अमेरिका द्वारा किया गया निवेश ही है । उसे मॉरीशस के माध्यम से भारत भेजा गया है। क्योंकि मॉरीशस से आने वाले विदेशी निवेश पर निवेशकों को कर की बचत होती है। इसका कारण भारत और मॉरीशस के बीच कर संधि है जिसके तहत विदेशी निवेशक या तो मॉरीशस में कर दे सकता है या भारत में। क्योंकि मॉरीशस में कर दरें अत्यंत कम है। इसलिए बहुराष्ट्रीय निगम मॉरीशस के माध्यम भारत में विदेशी निवेश करते हैं। भारत में एफ.डी.आई. के अन्य प्रमुख स्रोत है- जापान, नीदरलैण्ड, इंग्लैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, दक्षिण कोरिया और स्विटजरलैण्ड । विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के स्रोतों की चर्चा करते समय 1990, के दशक में होने वाले परिवर्तनों की चर्चा करना आवश्यक है, जहाँ 1990 के दशक से पहले भारत को विदेशी निवेश के लिए कुछ विकसित पश्चिमी देशों पर ही निर्भर रहना पड़ता था वहाँ 1990 के दशक व उसके बाद से कई अन्य देशों ने भारत में निवेश करने में रूचि दिखाई है। इनमें इटली, आस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया, मलेशिया, सिंगापुर, इत्यादि शामिल हैं। कई ऐसे देश जिन्होंने 1990 के दशक से पहले भारत में निवेश नहीं किया था (या नगण्य निवेश किया था) जैसे इज्राईल, थाईलैण्ड, सऊदी अरब, दक्षिण अफ्रीका इत्यादि, उन्होंने भी 1991 के बाद भारत में अपना निवेश बढ़ाया है।

क्षेत्र अनुसार विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Sectoral Composition of FDI) - यदि अगस्त 1991 से सितम्बर 2006 तक प्राप्त विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के क्षेत्र अनुसार वितरण को देखें तो पाएंगे कि सबसे अधिक निवेश बिजली उपकरणों (जिसमें कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर तथा इलेक्ट्रॉनिक्स शामिल हैं) में किया गया है। इस पूरी अवधि में प्राप्त कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में इस क्षेत्र का हिस्सा-स्थान, परिवहन उद्योग (हिस्सा 9.31 प्रतिशत) में पांचवां स्थान,विद्युत शक्ति व तेल परिशोधन (हिस्सा 7.45 प्रतिशत) में छठा स्थान, रसायन (हिस्सा 5.79प्रतिशत) में सातवाँ स्थान, खाद्य संसाधन उद्योग (हिस्सा 3.12 प्रतिशत) में आठवां स्थान, दवाइयां (हिस्सा 2.91 प्रतिशत) में, नौवां स्थान, धातुक्रमीय (metallurgical) उद्योग एवं सीमेन्ट व जिप्सम उत्पाद (प्रत्येक का हिस्सा 2.14 प्रतिशत) का था। वस्तुतः कुल प्राप्त विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में इन 10 क्षेत्रों का कुल हिस्सा 70 प्रतिशत से अधिक रहा है।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का राज्यवार वितरण (Destinations of FDI) - यदि एफ.डी.आई. का राज्यवार वितरण देखा जाए तो सबसे अधिक हिस्सा (24 प्रतिशत) दिल्ली, हरियाण तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भागों को प्राप्त हुआ। महाराष्ट्र, दादरा व नागर हवेली, दमन व दियू का स्थान दूसरा था और उन्हें एफ.डी.आई. का 21.52 प्रतिशत प्राप्त हुआ। कर्नाटक का स्थान तीसरा था और उसे एफ.डी.आई. का 6.85 प्रतिशत प्राप्त हुआ । इस प्रकार इन तीन क्षेत्रों को कुल एफ.डी.आई. का आधे से अधिक प्राप्त हुआ।

2.6 विदेशी निवेश नीति का आलोचनात्मक परीक्षण (Critical Appraisal of Foreign Investment Policy)

1991 के पूर्व की अवधि में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अनुमोदन के मुकाबले में वास्तव में किया गया निवेश बहुत कम रहा है। इस प्रकार यद्यपि विदेशी निवेशकों ने भारत में निवेश करने में काफी रूचि दिखाई तथापि वास्तव में निवेश बहुत कम किया। वस्तुतः कुल प्राप्त विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अनुमोदित निवेश के आधे से भी कम रहा है।

1990 के दशक में FDI में तेज वृद्धि का कारण केवल आर्थिक सुधार नहीं है। वस्तुतः इस दशक में विकसित देशों के विश्वव्यापी विदेशी निवेश में ही तेज वृद्धि हुई (1987-92 में औसतन 35 बिलियन यू.एस. डालर से बढ़कर 1998 में 166 बिलियन यू.एस. डालर और 2004 में 648 बिलियन यू.एस.डालर)।

विदेशी निवेश के बारे में एक चिन्ताजनक बात इसके वास्तविक प्रयोग को लेकर है। इसके एक बड़े अंश का प्रयोग नए पूंजी निर्माण के लिए न करके विलयन तथा अधिग्रहण (mergers and acquisition) के लिए किया जा रहा है। इस संदर्भ में अनुमान है कि 1990 के दशक में 40 प्रतिशत विदेशी निवेश अन्तर्प्रवाह का प्रयोग घरेलू औद्योगिक इकाइयों को खरीदने के लिए तथा उन पर अपना प्रबंधकीय नियंत्रण पाने के लिए किया गया। 2004 से 2007 के बीच खासतौर पर विदेशी निजी पूंजी के अन्तर्प्रवाह में तेज वृद्धि हुई। हाल में प्रकाशित रिपोर्ट में अनुमान लगाया है कि इनमें से 29 प्रतिशत का प्रयोग विद्यमान इक्विटी पूंजी को खरीदने के लिए किया गया अर्थात इससे देश के पूंजी स्टॉक में वृद्धि नहीं हुई। दूसरे शब्दों में इसका प्रयोग घरेलू कंपनियों पर अधिग्रहण के लिए किया गया। उदारीकरण की प्रक्रिया का लाभ उठाते हुए बहुत से बहुराष्ट्रीय निगम देश में विद्यमान अपनी सहयोगी कंपनियों में अपना हिस्सा बढ़ा रहे हैं या फिर भारतीय औद्योगिक इकाइयों को खरीद रहे हैं।

दिल्ली, महाराष्ट्र, दादरा व नागर हवेली, दमन व दियू, हरियाणा उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों तथा कर्नाटक को FDI अन्तर्प्रवाह का आधे से अधिक प्राप्त हुआ है। देश के एक बड़े क्षेत्र को बहुत कम FDI मिला है। इस प्रकार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश ने क्षेत्रीय असमानताओं में और वृद्धि की है।

दो-तिहाई से अधिक FDI अनुमोदन 100 करोड़ रूपये से अधिक की परियोजनाओं को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार सापेक्षिक रूप से छोटी परियोजनाओं को FDI अनुमोदन का बहुत कम हिस्सा मिला है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि FDI का एक बहुत छोटा हिस्सा निर्यात बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जा सका है क्योंकि निर्यात ज्यादातर श्रम प्रधान अपंजीकृत इकाइयों द्वारा किये जाते हैं।

यद्यपि 1991 के पूर्व की अवधि की तुलना में 1991 के बाद की अवधि में भारत में FDI अन्तर्प्रवाह में तेज वृद्धि हुई है तथापि यह चीन की तुलना में बहुत कम है। Report on Currency and Finance, 2002-03 के अनुसार 1990 के दशक में चीन को भारत की तुलना में 10गुणा अधिक FDI अन्तर्प्रवाह प्राप्त हुए। UNCTAD के FDI निष्पादन सूचकांक में चीन 54वें नंबर पर है जबकि भारत 122वें नम्बर पर। FDI में इस व्यापक अंतर का एक कारण भारत और चीन में FDI की अलग-अलग परिभाषाएं हैं। भारत में FDI की परिभाषा चीन की तुलना में कम व्यापक है परन्तु इस अंतर के लिए यदि समायोजन कर भी लिया जाए तो चीन में FDI भारत की तुलना में बहुत अधिक है। Report on currency and Finance के अनुसार इसके कई कारण हैं जैसे चीन की अर्थव्यवस्था का बड़ा आकार, विनिर्माण क्षेत्र की बेहतर उत्पादकता, लोचशील श्रम कानून, बेहतर काम-काज की दशाएं, व्यवसाय प्रवेश और निर्गमन की आसान शर्तें, चीन सरकार की अधिक व्यवसाय उन्मुख एवं FDI प्रोत्साहक नीति, इत्यादि। परन्तु इस संदर्भ में दो तर्क महत्वपूर्ण हैः (1) चीन में विदेशी निवेश, अन्तर्प्रवाह का एक बड़ा हिस्सा चीन की अपनी घरेलू बचत ही है जो बहुत से लोग कर बचतों का लाभ उठाने के लिए हांग-कांग के माध्यम से वापिस ला रहे हैं (अनिवासी चीनी लोगों को करों में कटौती जैसे कई लाभ दिए गये हैं) तथा (2) चीन में अन्तर्प्रवाह का एक चौथाई घर, भवन जैसी संपत्ति खरीदने में इस्तेमाल हुआ है क्योंकि 1990 के दशक में हांग-कांग में संपत्ति की कीमतों में तेज गिरावट आने से चीन के तटीय शहरों में सम्पत्ति की कीमतों में काफी वृद्धि हुई है। जो अन्तर्प्रवाह बचता है उसका एक बहुत कम हिस्सा घरेलू क्षमता बढ़ाने वाली और निर्यात बढ़ा सकने वाली बड़ी औद्योगिक उत्पादन इकाइयों को प्राप्त हुआ है।

इस सन्दर्भ में एक खुला प्रश्न यह भी है कि क्या अधिक विदेशी निवेश से उच्च संवृद्धि दर प्राप्त होना अनिवार्य है। उपलब्ध तथ्यों से कोई स्पष्ट निष्कर्ष निकाल पाना बहुत मुश्किल है। यदि हम यह कहें कि चीन के अप्रत्याशित अच्छे निष्पादन का कारण मुख्यतया विदेशी पूंजी अन्तर्प्रवाह है तो हमें ब्राजील का उदाहरण भी याद रखना चाहिए। 1994 के बाद से ब्राजील को संभवतः सर्वाधिक FDI की प्राप्ति हुई परन्तु इनका प्रयोग अधिकतर घरेलू परिसंपत्तियाँ खरीदने के लिए किया गया (वे संपत्तियां जिनका बड़े पैमाने पर निजीकरण किया गया था)। परन्तु न तो ब्राजील की संवृद्धि दर में और न उसके निर्यातों में हाल के वर्षों में कोई सुधार दिखाई देता है।

विदेशी निजी संसाधनों का निवेश अधिकतर 'श्वेत वस्तु' सेक्टर, वाहनों व अन्य विलासिता की मदों के उत्पादन में किया गया है जो धनी व उच्च मध्यम वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करता है। उच्च प्रौद्योगिकी क्षेत्रों तथा निर्धनों की उपभोग वस्तुओं में विदेशी निजी संसाधनों का निवेश बहुत कम हुआ है।

भारत की समष्टि-आर्थिक नीतियों के संदर्भ में यदि देखा जाए तो FDI एवं अन्य विदेशी संसाधनों का प्रयोग कराधान के द्वारा अतिरिक्त घरेलू बचत पैदा करने के विकल्प के रूप में किया गया है अर्थात सरकार ने अपेक्षाकृत आसान रास्ता अपनाया है। इतना ही नहीं बल्कि अपने अनुसंधान व विकास (Research and Development) क्षमताओं को और मजबूत बनाने के स्थान पर FDI की नवीनतम प्रौद्योगिकी पाने का साधन माना गया है,अर्थात यहाँ भी अपेक्षाकृत आसान रास्ता चुना गया है।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को प्रोत्साहित करने का एक मुख्य उद्देश्य उत्पादन में कुशलता बढ़ाना तथा निर्यातों में वृद्धि करना है। विद्यमान संयुक्त परियोजनाओं में विदेशी निवेशकों की हिस्सेदारी में वृद्धि से या उनके द्वारा घरेलू फर्मों के शेयर खरीदने मात्र से ही फर्म के दृष्टिकोण या कार्यविधि में कोई परिवर्तन नहीं होगा। अर्थात ''इस प्रकार के FDI निवेशकों का उद्देश्य भारतीय बाजार में लाभ संभावनाओं से फायदा उठाना होगा। इसलिए इन स्थितियों में FDI से निर्यातों में वृद्धि नहीं होगी, चाहे इस निवेश से घरेलू क्षमताओं का आधुनिकीकरण हो अथवा न हो। संक्षेप में, अधिकतर FDI का उद्देश्य भारतीय घरेलू बाजार से लाभ कमाना है न कि निर्यात संवर्द्धन करना या दक्षता सुधार करना।

जैसा कि सारणी से स्पष्ट है, पिछले कुछ वर्षों में विदेशी निवेश अन्तर्प्रवाहों में तेज वृद्धि हुई है। 2005-06 में 20,214 मिलियन यू.एस. डालर, 2006-07 में 26,534 मिलियन यू.एस. डालर तथा 2008-09 में, 27,309 मिलियन यू.एस. डालर तक पहुँच गये। इससे सरकारी क्षेत्रों में व्यापक उत्साह है और सरकार का दावा है कि ये निवेश, देश की मजबूत आधारभूत संरचना के कारण आकर्षित हुए हैं। परन्तु इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि विदेशी निवेश अन्तर्प्रवाहों में विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा किये गये पोर्टफोलियो निवेश का एक बहुत बड़ा हिस्सा है (2004-05 में 15,306 मिलियन यू.एस. डालर में से 9,315 मिलियन यू.एस. डालर तथा 2005-06 में 20,214 मिलियन यू.एस. डालर में से 12,492 मिलियन यू.एस. डालर)। ये अन्तर्प्रवाह अर्थव्यवस्था की समष्टि आर्थिक निष्पत्ति तथा अन्य देशों में निवेश की संभावनाओं के प्रति अत्यन्त 'संवेदनशील ' होते हैं। जरा सी भी निष्पत्ति बिगड़ने पर या अन्य देशों में अधिक लाभ कमाने की संभावना प्रकट होने पर, तेजी से पूंजी का बहिर्प्रवाह हो सकता है। जैसा कि वर्ष 2008-09 में 11341 मिलियन यू.एस. डालर वापिस किया गया (सारणी देखें) जिससे देश के लिए संकट की स्थिति पैदा हो सकती है।

2.7 सारांश (Summary)

विदेशी निवेश के प्रति भारत सरकार का दृष्टिकोण प्रारम्भिक वर्षों में अत्यन्त ही कठोर था। यह विदेशी शासन तथा उस समय के स्वीकृत आर्थिक दर्शन का परिणाम था। विदेशी निवेश के विपरीत विदेशी सहायता के प्रति सरकार तथा नियोजक उतने कठोर नहीं थे। हमारी योजनाओं में विदेशी सहायता की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है।

लेकिन निर्यात वृद्धि के क्षेत्र में हमारी असफलता, विदेशी विनिमय की कमी की समस्या तथा बाद में अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य बैंकों द्वारा उधार कम करने या न देने से उठने वाली भुगतान शेष की समस्या ने 1990 के दशक के प्रारम्भ में आर्थिक संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी। चालू खाते में घाटा इतना बढ़ गया कि बड़े पैमाने पर विदेशों से ऋण लेने की जरूरत आ पड़ी जो उपलब्ध नहीं था। अतः भुगतान शेष में समायोजन के लिए एक नई रणनीति की आवश्यकता पड़ी। इस नीति के अन्तर्गत अवमूल्यन एवं रूपये की परिवर्तनीयता के साथ ही विदेशी निवेश को आकृष्ट करने के लिए उदारवादी नीति भूमण्डलीकरण तथा निजीकरण को अपनाया। विदेशी निवेश की विशेषता यह है कि यह ऋण का सृजन नहीं करता है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकृष्ट करने के लिए सरकार ने अनेक कदम उठाए, जैसे विदेशी व्यापार पर से अनेक प्रतिबन्धों को उठा लेना, घरेलू बाजार को विदेशी निवेशकों के लिए खोल देना, विदेशी निवेश नीति की निरन्तर विवेचना तथा अड़चनों को तत्काल दूर करना, लाभांश को अपने देश भेजने के लिए नियमों को शिथिल करना, विदेशी निवेश के प्रस्तावों की शीघ्र स्वीकृति के उपयुक्त संस्था का गठन, गाइडलाइन का विवरण प्रस्तुत करना, स्वचालित रास्ते को अपनाना, 100 प्रतिशत इक्विटी प्राप्त करने की सुविधा, आदि। पोर्टफोलियो निवेश के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय कम्पनियों को अनेक सुविधाएं प्रदान की गई हैं साथ ही ADRs तथा GDRs के माध्यम से विनियोग को प्रोत्साहित किया गया है।

इन नीतियों को अपनाने का परिणाम यह हुआ है कि जहाँ विकासशील देशों को जाने वाले कुल विदेशी निवेश का केवल 0.5 प्रतिशत भाग 1992 में भारत में आया वहाँ यह हिस्सा 1995 में 1.9 प्रतिशत तथा 1997 में 2.0 प्रतिशत हो गया। उसके बाद से यह हिस्सा घटने लगा है- 1998 में 1.5 प्रतिशत तथा 1999 तथा 2000 में 1.0 प्रतिशत है किन्तु, 2001 तथा 2002 में फिर वृद्धि हुई और यह 2.9 प्रतिशत हो गया। विकासशील देशों को जाने वाले विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की राशि 1992 में 51 बिलियन यू.एस. डालर से भी अधिक थी। इसमें भारत को सिर्फ 0.23 बिलियन यू.एस.डालर मिला था जबकि चीन को 11.1बिलियन यू.एस. डालर (21.8 प्रतिशत, इण्डोनेशिया को 1.8 बिलियन यू.एस. डालर (3.5 प्रतिशत), मलेशिया को 5.2 बिलियन यू.एस. डालर (10.1 प्रतिशत)। लेकिन भविष्य आशापूर्ण है, विदेशी

विनियोग के क्षेत्र में आर्थिक सुधारों की जो प्रक्रिया चल रही है उनसे अन्तर्राष्ट्रीय समाज में विदेशी निवेश के प्रति भारत का आकर्षण बढ़ा है। विश्व आर्थिक फोरम/हार्वर्ड विश्वविद्यालय (World Economic Forum/Harvard University) द्वारा प्रकाशित भूमण्डलीय प्रतिस्पर्धात्मक रिपोर्ट,(Global Competitiveness Report) में भारतीय अर्थव्यवस्था के विषय में अनेक उत्साहजनक बातें बतायी गई हैं, जिनमें निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :

- टेक्नोलॉजी की लाइसेंसिंग
- पूर्ति करने वालों की उपलब्धता
- आयकर की मीडियन दर
- निर्यात प्रोत्साहन तथा
- व्यावसायिक वातावरण की क्वालिटी।

इन सब के कारण से विकास की प्रतिस्पर्धात्मक रैंकिंग (Competitiveness Ranking) में भारत में स्थिति में सुधार हुआ है।

2.8 शब्दावली (Key Words)

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश - विदेश में किया गया निवेश जिस पर निवेशकर्ता का नियंत्रण रहता है।

पोर्टफोलियो निवेश - विदेश में शेयर अथवा बॉण्ड में निवेश जिस पर निवेशकर्ता नियंत्रण का प्रयास नहीं करता है।

अनिवासी भारतीय - वे भारतीय जो भारत के साधारण निवासी नहीं हैं।

विदेशी संस्थागत निवेशक - विदेश की वित्तीय संस्थायें जो दूसरे देश में अपना धन लगाती हैं।

ग्लोबल डिपोजिटरी रसीद/ अमेरिकन डिपोजिटरी रसीद - डालर में अंकित प्रपत्र जिसका क्रय-विक्रय अमेरिका और यूरोप में होता है। कम्पनी शेयर के बदले इन्हें प्राप्त कराती है।

2.9 अभ्यास के लिए प्रश्न (Question for Exercise)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. विदेशी निवेश से क्या आशय है? विदेशी निवेश की आवश्यकता क्यों होती है?

What is meant by Foreign Investmnet? Why is Foreign Investmnet needed?

2. विदेशी निवेश के प्रति भारत सरकार की नीति की विवेचना कीजिये।

Discuss the Indian Government Policy towards Foreign Investment.

3. भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश एवं पोर्टफोलियो निवेश की क्या स्थिति है? बताइये।

Discuss the position of DFI and Port Folio Investment in India.

4. भारत की विदेश नीति का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

Critically examine the India's Foreign Investment Policy.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Question)

5. विदेशी निवेश का वर्गीकरण कीजिये।

Classify the Foreign Investment.

6. विदेशी निवेश के लाभ बताइये।

State the advantages of Foreign Investment.

7. विदेशी निवेश नीति पर टिप्पणी लिखिये।

Writes a short note on Foreign Investment Policy.

8. प्रत्यक्ष विदेशी निवेश पर टिप्पणी लिखिये।

Write a short note on FDI.

2.10 संदर्भ पुस्तकें (Suggested Readings)

Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.

MS-3, IGNOU Course Material: Economic and Social Environment.

Tandon, BB, Indian Economy: Tata Mcgraw Hill, New Delhi.

मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

मिश्रा जे.एन., भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।

माथुर जे.एस., व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

पंत ए.के., व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

सिन्हा वी.सी., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा.लि., आगरा।

मालवीया ए.के. व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।

सिंह एस.के., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई - 3 विदेशी तकनीक एवं सहयोग (Foreign Technology and Collaboration)

इकाई की रूपरेखा-

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 विदेशी तकनीक एवं सहयोग का आशय

3.3 भारत में विदेशी सहयोग का संक्षिप्त इतिहास

3.4 भारत में विदेशी सहयोग की भूमिका या उद्देश्य

3.5 भारत में विदेशी तकनीक एवं सहयोग की मुख्य बातें

3.6 भारत में विदेशी सहयोग का योगदान

3.6.1 विदेशी सहयोग के दोष या सीमायें

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

3.10 संदर्भ पुस्तकें

3.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् इस इस योग्य हो सकेंगे कि -

- विदेशी तकनीक एवं सहयोग का आशय बता सकें,
- भारत में विदेशी तकनीक एवं सहयोग का संक्षिप्त इतिहास बता सकें,
- भारत में विदेशी तकनीक एवं सहयोग के उद्देश्य बता सकें,
- भारत में विदेशी तकनीक एवं सहयोग के महत्व को बता सकें,तथा
- भारत में विदेशी तकनीक एवं सहयोग की सीमाओं को बता सकें।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

विश्व भर में सभी देशों को किसी न किसी रूप में विदेशी सहयोग की आवश्यकता पड़ती है।आजकल अविकसित एवं विकासशील देशों के लिये अपने

आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए विदेशी तकनीक एवं सहयोग अपरिहार्य होता जा रहा है। निर्धनता का कुचक्र सभी अविकसित एवं विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को घेरे रहता है। तकनीकी ज्ञान की कमी, अपर्याप्त पूंजी, शिक्षा का अभाव निम्न सामाजिक स्तर आदि अनेक कारण हैं जो अविकसित देशों के तेज आर्थिक एवं सामाजिक विकास में बाधा डालते हैं। ऐसी परिस्थितियों में विदेशी सहयोग ही एक मात्र उपाय दिखाई पड़ता है। चूँकि आन्तरिक स्रोतों से पूंजी की कमी को पूरा करना कठिन है, अतः विदेशी पूंजी एवं सहयोग की आवश्यकता और बढ़ जाती है।

3.2 विदेशी तकनीकी एवं सहयोग का आशय (Meaning of Foreign Technology and Collaboration)

प्रायः विकसित तथा तकनीकी रूप से सम्पन्न देशों द्वारा अन्य देशों को विदेशी सहायता तकनीकी सहायता के रूप में प्रदान की जाती है। इसके अन्तर्गत श्रेष्ठ तकनीक को प्रदान करना, तकनीकी विशेषज्ञ आदि भेजकर सहायता प्रदान करना शामिल है। वर्तमान परिवेश में इस तरह की सहायता में तीव्र वृद्धि हुई है। भारत में विदेशी तकनीकी सहायता प्रदान करने का काम अनेक संस्थाओं के माध्यम से हो रहा है।

विदेशी सहयोग का अर्थ देश के आर्थिक विकास के लिए विदेशों से प्राप्त सहायता से है। विदेशी सहयोग के अन्तर्गत विदेशी पूंजी, विदेशी तकनीक एवं प्रौद्योगिकी, विदेशी मशीनरी, विदेशी तकनीकी ज्ञान व सेवा, विदेशी ऋण, अनुदान आदि सम्मिलित होते हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि किसी देश से जो दान, उपहार आदि प्राप्त होते हैं वे विदेशी सहयोग के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं किये जाते हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध आर्थिक विकास से नहीं होता। विदेशी सहयोग प्रायः शर्त युक्त होता है जिसके लिए विधिवत् समझौते किये जाते हैं जबकि दान,उपहार आदि में प्रायः कोई शर्त नहीं होती है। विदेशी सहायता को संकीर्ण अवधारणा के अन्तर्गत विदेशी पूंजी के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

3.3 भारत में विदेशी सहयोग का संक्षिप्त इतिहास (Brief History of Foreign Collaboration in India)

भारत में विदेशी सहयोग का आगमन, पूँजी के रूप में अंग्रेजी शासन काल से हो गया था, परन्तु विदेशी पूँजी का उचित सहयोग 1850 के पश्चात शुरू हुआ। उस समय देश के लोहा एवं इस्पात, रेल यातायात, चाय, जहाजरानी, बैंकिंग, कागज, दियासलाई, साईकिल आदि उद्योगों का विकास विदेशी पूँजी के ही आधार पर किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक अरबों रूपये की विदेशी पूँजी व तकनीक भारतीय उद्योगों में विनियोजित की गयी । भारत में 1948 की औद्योगिक नीति तथा उसके बाद

की सभी नीतियों में विदेशी सहयोग का निवेश के रूप में विशेष रूप से स्वागत किया गया तथा स्वीकार किया गया कि भारत सरकार इस तथ्य को भली-भाँति अनुभव करती है कि भारत के तीव्र औद्योगीकरण के लिए विदेशी पूँजी एवं विशेषकर औद्योगिक तकनीकी ज्ञात अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। फिर भी यह अत्यन्त आवश्यक है कि विदेशी पूँजी के साथ संलग्न शर्तों का राष्ट्रीय हित में सावधानी से नियमन किया जाना चाहिए।

वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण के युग में बिना विदेशी सहयोग के किसी भी अर्थव्यवस्था की आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति की परिकल्पना करना असम्भव है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने विदेशी पूँजी नीति में वर्ष 1991 के बाद अधिक छूट दी एवं विदेशी निवेश को आमंत्रित करने व आकर्षित करने का भरसक सकारात्मक प्रयास किया है। भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में योजना आयोग ने विदेशी सहयोग के महत्व को सदैव स्वीकार किया तथा माना कि ऐसे क्षेत्रों में जहाँ उत्पादन का विकास एवं विस्तार करना हो या तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता पड़ती हो, वहाँ विदेशी सहयोग अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है। 1948 में भारत में कुल विदेशी विनियोग 320.4 करोड़ रूपये था तथा 1990-91 में यह बढ़कर कुल राष्ट्रीय आय का लगभग एक चौथाई हो गया।

3.4 भारत में विदेशी सहयोग की भूमिका या उद्देश्य (Role or Objectives of Foreign Collaboration in India)

भारत की आर्थिक दशा के सम्बन्ध में कहा जाता है कि, ''भारत एक धनी देश है परन्तु यहाँ के निवासी निर्धन हैं''। अतः इस कथन से स्पष्ट होता है कि भारत प्राकृतिक रूप से धनी है परन्तु पूँजी व साधनों के अभाव में यह प्राकृतिक साधनों व उपलब्ध अवसरों का लाभ उठाने में असमर्थ रहा है, जिस कारण हम निर्धन है, परन्तु देश में एक विकसित देश होने की सभी सम्भावनाएं विद्यमान है। अतः ऐसी स्थिति में देश को अपेक्षित विकास स्तर पर पहुँचाने के लिए विदेशी सहयोग की आवश्यकता काफी बढ़ जाती है। भारत में विदेशी सहयोग अधिकतर उत्पादक वस्तुओं के उत्पादन में सहायता पहुँचाने या आर्थिक संरचना को सुदृढ़ करने के लिए प्राप्त की गयी है। देश को विश्व बैंक से मिला ऋण मुख्य रूप से रेलवे, सड़कों व सिंचाई सुविधाओं के विकास के लिए था। जिन देशों ने मुख्य रूप से सहायता पहुँचायी उसमें रूस ने इस्पात संयन्त्रों एवं तेल परिशोधनशालाओं के लिए, अमेरिका ने रेलवे, बिजली, कागज, एल्युमिनियम, उर्वरक आदि के उत्पादन के लिए विभिन्न प्रकार से सहयोग किया । इस प्रकार भारत के समग्र आर्थिक एवं सामाजिक विकास में विदेशी सहयोग की भूमिका सराहनीय रही है। भारत को विदेशी सहयोग की आवश्यकता, महत्व, उद्देश्य अथवा भूमिका को निम्नलिखित

शीर्षकों के माध्यम से भली-भाँति समझा जा सकता हैः-

1. **प्राकृतिक संसाधनों का उचित विदोहन (Proper utilisation of natural resources)**- भारत प्राकृतिक संसाधनों के दृष्टिकोण से एक सम्पन्न देश है परन्तु देश में पूँजी व तकनीकी ज्ञान के अभाव में इन प्राकृतिक संसाधनों का उचित विदोहन सम्भव नहीं हो सका, क्योंकि इसके लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। भारत के विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों जैसे तेल एवं प्राकृतिक गैस, सौर ऊर्जा, खनिज पदार्थों आदि की खोज एवं उत्पादन में अनेक विदेशी संस्थाएँ संलग्न है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के विदेशी सहयोग के ही माध्यम से देश के प्राकृतिक संसाधनों का उचित विदोहन करना सम्भव हो पाया है।

2. **निर्धनता चक्र को समाप्त करने के लिए (To end poverty circle)** - भारत जैसे विकासशील देश के विकास में प्रमुख बाधक यहाँ की निर्धनता है, जिसमें अधिक बेरोजगारी, प्रति व्यक्ति आय का कम होना, बचत एवं विनियोग का निम्न स्तर आदि प्रमुख कारक हैं। अतः निर्धनता के चक्र को समाप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के विदेशी सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता होती है यह आवश्यकता अधिक उत्पादन व निर्माण तथा संरचनात्मक विकास आदि के लिए प्रमुख रूप से होती है। अतः विदेशी सहयोग के माध्यम से कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र के विकास के द्वारा देश में गरीबी के दुष्चक्र को आसानी से समाप्त किया जा सकता है।

3. **बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहन (Encouragement of saving and investment)**- निर्धन व विकासशील देशों में कम उत्पादन, अधिक जनसंख्या तथा ऊँची उपभोग दर के कारण बचत एवं विनियोग की दर निम्न स्तर पर होती है जिससे इन देशों के आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त पूँजी उपलब्ध नहीं हो पाती है। अतः देश के समग्र आर्थिक विकास के लिए बचत एवं विनियोग को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जाना आवश्यक होता है। इसलिए बचत एवं विनियोग के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता की पूर्ति विदेशी सहयोग के रूप में प्राप्त होती है। विदेशी पूँजी के कुशलतापूर्वक उपयोग से बचत एवं विनियोग में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय व राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

4. **आधारभूत उद्योगों की स्थापना (Establishment of basic Industries)**- आधारभूत उद्योगों के अन्तर्गत ऐसे उद्योग शामिल होते हैं जो देश के विभिन्न उद्योगों के विकास के लिए आधार प्रदान करते हैं। इनमें लोहा एवं इस्पात उद्योग, सीमेण्ट उद्योग, कोयला उद्योग रासायनिक उद्योग तथा भारी इंजीनियरिंग उद्योग शामिल होते हैं। इन उद्योगों के विकास के लिए अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। भारत जैसे विकासशील देश में यद्यपि अनेक आधारभूत उद्योग स्थापित किये जा चुके हैं परन्तु

वर्तमान एवं भावी आवश्यकता एवं आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अभी अनेक आधारभूत उद्योगों की स्थापना की आवश्यकता है। अतः इन उद्योगों के विकास के लिए कई देशों या संस्थाओं ने सहयोग के द्वारा इन उद्योगों की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

5. **भुगतान शेष में असंतुलन दूर करने के लिए (For the removal of imbalance in the balance of payment)** - किसी देश द्वारा तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जब विभिन्न प्रकार की योजनाओं एवं परियोजनाओं को अपनाया जाता है, तो प्रायः भुगतान शेष असंतुलित हो जाता है क्योंकि ऐसी स्थिति में विकास कार्यक्रम को संचालित करने के लिए अधिक आयात की आवश्यकता होती है तथा दूसरे निर्यात कम हो जाता है अतः भुगतान शेष को संतुलित करने के लिए सरकार विदेशी सहायता के माध्यम से अनेक उपाय करती है।

6. **तकनीकी कुशलता एवं उद्यमी प्रतिभा की पूर्ति हेतु (For the fulfillment of requirement of technical skill and industrial talent)**- विकासशील देशों में पूँजी के अभाव के साथ-साथ तकनीकी ज्ञान, उत्पादन कुशलता, प्रबन्धकीय योग्यता आदि का भी अभाव पाया जाता है। अतः इनको प्राप्त करने के लिए विकसित या सम्पन्न देशों से सहायता ली जाती है। इस प्रकार की विदेशी सहायता देश के औद्योगिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है, क्योंकि इससे अधिक उत्पादन अधिक कुशलता से प्राप्त होता है तथा उत्पादन लागत घटती है जिससे देश में औद्योगीकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

7. **आर्थिक नियोजन के लिए (For economic planning)**- आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं एवं परियोजनाओं के माध्यम से देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए अनेक दीर्घकालीन लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं। इसकी सफलतापूर्वक पूर्ति के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है, जिसे देश की पूँजी से पूरा करना विकासशील देशों के लिए प्रायः असम्भव होता है । अतः इसके लिए विदेशी सहायता अपरिहार्य हो जाती है। यह विदेशी सहायता विदेशी ऋण, पूँजी, अनुदान आदि के रूप में प्राप्त करके इससे आर्थिक नियोजन के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

8. **व्यावसायिक जोखिम में कमी (Reduction in business risk)**- वर्तमान प्रतिस्पर्धी युग में व्यावसायिक क्षेत्र में अनेक प्रकार के जोखिम उत्पन्न हो गये हैं। व्यवसाय में जोखिम की इसी अधिकता के कारण अनेक ऐसे उद्योग धन्धे हैं जहाँ

भारतीय उद्यमी पूँजी विनियोजित करने से डरते हैं। विदेशी सहायता के अन्तर्गत विदेशी निवेशक ऐसे उद्योगों या क्षेत्रों में पूँजी विनियोजन करके जोखिम में हिस्सा बंटाते हैं अर्थात कुल पूँजी में भागीदार बनते हैं। इससे किसी भी घरेलू या विदेशी विनियोजक पर व्यवसाय का सम्पूर्ण जोखिम कम हो जाता है, परिणामस्वरूप ऐसे उद्योग या क्षेत्रों का अपेक्षित विकास सम्भव होना सुनिश्चित हो जाता है।

9. **मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण (Control on inflation)** - मुद्रा स्फीति का एक प्रमुख कारण कम उत्पादन या माँग के अनुरूप उत्पादन न होना होता है। अतः ऐसी स्थिति में देश में वस्तुओं एवं सेवाओं के दाम में तीव्र वृद्धि होती है तथा मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण करना कठिन हो जाता है। मुद्रा स्फीति की समस्या का समाधान करने के लिए अधिक आयात या उत्पादन करने की सख्त आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति विदेशी पूँजी, ऋण आदि के माध्यम से की जाती है। उदाहरण के लिए भारत में पेट्रोलियम पदार्थों तथा कुछ प्रमुख खाद्यान्नों की आपूर्ति लगातार सुनिश्चित करने के लिए अधिक उत्पादन एवं आयात की आवश्यकता होती है। इन आयातों की पर्याप्त मात्रा विदेशी सहायता जैसे- विदेशी पूँजी, ऋण, अनुदान, उधार आदि के रूप में प्राप्त होती है। इस प्रकार विदेशी सहायता के माध्यम से आवश्यक पदार्थों की संतुलित पूर्ति सुनिश्चित होती है एवं मुद्रास्फीति पर नियन्त्रण हो जाता है।

10. **स्वस्थ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध (Healthy International Relation)** - जिस तरह से आम जिन्दगी में हम सब यदि किसी व्यक्ति की उसकी आवश्यकता के समय उसकी मदद या सहयोग कर देते हैं तो उससे प्रायः लम्बे समय तक अच्छे सम्बन्ध बने रहते हैं, उसी प्रकार विश्व अर्थव्यवस्था में जब कोई देश किसी दूसरे की विभिन्न माध्यमों से सहायता करता है तो इससे उनके आपसी सम्बन्ध प्रगाढ़ होते हैं। विदेशी सहायता के द्वारा अच्छे सम्बन्ध के निर्मित हो जाने से सम्बन्धित देशों के विकास को बढ़ावा मिलता है। इसका प्रमुख लाभ होता है कि ये देश एक-दूसरे के यहाँ करों में कमी या छूट, कम से कम व्यापार की शर्तें या प्रतिबन्ध में कमी, उधार, आयात निर्यात, पूँजी विनियोजन, अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर आवश्यकता पड़ने पर साथ देना आदि महत्वपूर्ण सहयोग की भावना हो जाती है, परिणामस्वरूप आर्थिक नियोजन के लक्ष्य को प्राप्त करना अत्यन्त आसान हो जाता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वर्तमान उदारीकरण के युग में किसी भी देश को तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विदेशी सहायता अपरिहार्य है। यह देश के औद्योगिक विकास में विवेकीकरण को बढ़ावा देकर अधिक उत्पादन के

माध्यम से उपभोग की आवश्यकता की पूर्ति के साथ-साथ रोजगार के अच्छे अवसर भी उपलब्ध कराती है। कृषि क्षेत्र में विदेशी सहयोग के माध्यम से बड़ी-बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के साथ अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ विदेशी सहायता द्वारा भारतीय कृषि में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। जैसे - उन्नतशील बीज, हाइब्रिड बीज, अच्छी उत्पादन तकनीक आदि। साथ ही साथ सेवा क्षेत्र में भी विदेशी सहयोग बहुत ही प्रभावशाली रहा हैं जिससे देश में विभिन्न सेवाओं का विस्तार, नयी-नयी सेवाओं की शुरूआत व सेवा की लागत में कमी आदि के माध्यम से अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास सम्भव हो पा रहा है। इस प्रकार निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में विदेशी सहायता की भूमिका या योगदान अत्यन्त सराहनीय रहा है।

3.5 भारत में विदेशी तकनीक एवं सहयोग :एक संक्षिप्त विवरण (Foreign Technology & Collaboration in India: A brief discription)

भारत में आर्थिक सुधारों के प्रारम्भिक समय से लगातार विदेशी सहयोग प्राप्त होता आ रहा है।स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक वर्षों में भी जर्मनी, ब्रिटेन व सोवियत रूस से भारत की नदी घाटी परियोजनाओं के निर्माण में तथा लौह-इस्पात के भारी भीमकाय उद्योगों के निर्माण में सहयोग मिलता रहा है। आज विदेशी सहयोग की तस्वीर बदलने लगी है। अब प्रचुर मात्रा में सहयोग बढ़ चुका है। इस बात को नीचे दिया जा रहा है

विदेशी सहयोग (Foreign Collaboration) के रूप - विदेशी सहयोग के तीन रूप होते हैं :

(1) निजी निवेशकों के मध्य संयुक्त भागीदारी,

(2) विदेशी फर्मों एवं भारत सरकार के मध्य सहयोग,

(3) विदेशी सरकारों एवं भारत सरकार के बीच सहयोग।

विदेशी सहयोग के अतिरिक्त प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (Foreign Direct Investment - FDI) एवं पोर्टफोलियों निवेश से भी देश में विदेशी पूँजी को आकर्षित किया जा सकता है। भारत जैसे देश में जहाँ पूँजी व उच्च तकनीक का अभाव है विदेशी सहयोग की सर्वाधिक आवश्यकता है। विदेशी सहयोग के सम्बन्ध में भारत की रणनीति निम्न प्रकार रही है -

1. **आयोजन का प्रारम्भिक काल** - आयोजन के प्रारम्भिक काल में भारत का अर्थव्यवस्था स्वरूप मिश्रित रूप को लिए हुए था । भारत एक ओर अपनी अर्थव्यवस्था में विदेशी सहयोग की अपेक्षा तो करता था परन्तु दूसरी ओर खुलकर इसे आमन्त्रित भी

नहीं कर पा रहा था क्योंकि 1948 व 1956 की औद्योगिक नीति नियंत्रित अर्थव्यवस्था वाली रही हैं। इसके तहत भारत में विदेशी पूँजी को अपनी इक्विटी 49 प्रतिशत की अधिकतम सीमा के भीतर ही रखने का फैसला लिया था तथा अपने हिस्से में 51 प्रतिशत भाग रखा था। विदेशी सहयोगी फर्मों को प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में प्रवेश की अनुमति दी गयी विशेषकर ऐसे क्षेत्रों में जहाँ भारत अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम नहीं कर पा रहा था। भारत की यह नीति प्रतिबन्धात्मक थी जिससे उसे अधिक विदेशी सहयोग नहीं मिल पाया।

2. **अस्सी के दशक का आगमन** - केन्द्र में स्व.राजीव गाँधी के प्रधानमंत्री बनने के बाद भारत सरकार की नरम आर्थिक नीति देखने में आयी थी। थोड़े बहुत प्रतिबन्धों को हटाया जाने लगा। उसका मुख्य कारण यह था कि देश में विदेशी सहयोग को आकर्षित किया जा सके। यह ढील विशेषकर तेल निर्यातक देशों के सन्दर्भ में दी गयी थी। इस सन्दर्भ में दो बातें मुख्यतया देखी गयीं - (1) तकनीकी हस्तान्तरण के साथ सम्बन्ध कायम किये बिना तेल निर्यातक देशों के सम्बन्ध में 40 प्रतिशत इक्विटी तक के निवेश को सुनिश्चित क्षेत्र में निवेश करनेकी स्वीकृति प्रदान करना (2) अनिवासी भारतीयों को सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों के अनुसार भारत में निवेश करने की स्वीकृति प्रदान करना।

3. **1981 से 1990 के दशक में परिवर्तन** - विदेशी सहयोग में अधिकाधिक वृद्धि हो सके इस उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा अपनी नीतियों में अनेक परिवर्तन किये गये। निगमों के उद्योगवार विश्लेषण से पता चलता है कि इलेक्ट्रानिक्स व विद्युत में कुल स्वीकृतियों का 22 प्रतिशत विदेशी सहयोग प्राप्त हुआ। औद्योगिक मशीनरी में 15.55 प्रतिशत का सहयोग प्राप्त हुआ। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्राथमिक क्षेत्र में 70 प्रतिशत तक विदेशी सहयोग प्राप्त हो गया था।

4. **भारत की उदारीकरण की नीति का प्रभाव -** भारत में 1991 के बाद उदारीकरण की नीति को अपनाया गया जिसके परिणामस्वरूप भारत में विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग व पोर्टफोलियो विनियोग में वृद्धि होने लगी। अब एक प्रकार से निर्बाध व्यापार का स्वरूप दिखायी देने लगा, प्रतिबन्ध हटाये गये। भारत अब हर सम्भव प्रयत्नों के द्वारा विदेशी सहयोग को अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त करना चाहता है, फलतः उसकी नीति सफल होने लगी। विदेशी तकनीकी सहयोग में प्रगति होती गयी।

5. **भारत में विदेशी तकनीकी सहयोग करार** - 1991 की नई औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद भारत में विदेशी पूँजी का प्रवाह तेजी से बढ़ा है। इस बात को हम पूर्व में भी दे चुके हैं। 1991-92 से 1999-2000 के दौरान देश में कुल 33.97 अरब अमरीकी डालर का निवेश हुआ है। केन्द्रीय उद्योग नीति संवर्द्धन विभाग के

अनुसार वर्ष 2006-07 में 12 अरब डालर के कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में अमरीका का योगदान 8 अरब डालर का होने की सम्भावना है। निम्न तालिका से तकनीकी सहयोग व विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग की स्थिति को दिखाया गया है।

भारत में तकनीकी सहयोग एवं विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग की स्थिति :

वर्ष	करोड़ रूपये में
1991	661
1992	828
1993	691
1994	792
1995	982
1996	744
1997	660
1998	595
1999	498
2000	418
2001	288
2002	307

1991 से लेकर वर्ष 2002 तक कुल विदेशी तकनीकी सहायताओं (FTA) की संख्या 7464 थी। जबकि इस अवधि में प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग (FDI) का वास्तविक प्रवाह 1,29,838 करोड़ रूपये था जो कुल अनुमोदित राशि का मात्र 45.6 प्रतिशत था।

भारत में वित्तीय एवं तकनीकी सहयोग में भी वृद्धि हो रही है। यदि देखा जाय तो 1981-85 के बीच वित्तीय सहयोग 20.1 प्रतिशत था परन्तु 1991-98 के बीच यह बढ़कर 58.7 प्रतिशत हो गया। विदेशी सहयोग दो प्रकार से होता है - (1) तकनीकी सहयोग, जिसका हमें भुगतान करना होता है। (2) वित्तीय सहयोग जिसमें किसी नई फर्म की हिस्सा पूँजी के लिए भुगतान करना पड़ता है।

भारत में 600 करोड़ रूपये की राशि तक विदेशी सहयोग हेतु अनुमोदन जारी करने के लिए उद्योग मंत्रालय अधिकृत है। उद्योग मंत्रातय विदेशी निवेश संवर्द्धन बोर्ड (FIPB) की सलाह पर यह स्वीकृति देता है। यदि 600 करोड़ रूपये से अधिक की स्वीकृति देनी होती है तो इसके लिए मन्त्रीमण्डल की स्वीकृति लेनी आवश्यक होती है। विगत कुछ वर्षों में वित्तीय एवं तकनीकी सहयोग की जो स्थिति भारत में देखी गयी है

उसे हम सन्तोषजनक कह सकते हैं।

6. उच्चतम विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों के अन्तर्प्रवाहों को आकर्षित करने वाले क्षेत्र - मौजूदा वित्तीय वर्ष में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) में भारी वृद्धि दर्ज की गयी हैं। यू.एन.सी.टी.ए.(UNCTA) की रिपोर्ट के अनुसार भारत दक्षिणी कोरिया को पीछे छोड़कर इस क्षेत्र में सीधे स्थान पर आ चुका है। अधिक संचित करने वाले क्षेत्रों में विद्युत उपकरणों का पहला स्थान रहा है। इसके बाद सेवाओं और दूरसंचार का स्थान रहा है। तालिका में इस बात को दिया जा रहा है :-

भारत में उच्च तकनीकी क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का अर्न्तप्रवाह

क्षेत्र	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07 (अप्रैल-सितम्बर)	कुल अर्न्तप्रवाह अगस्त 1991 से सितम्बर 2006	अर्न्तप्रवाहों की हिस्सेदारी (प्रतिशत) में
विद्युत उपकरण	532	721	1451	778	6272	17.54
सेवा क्षेत्रक	269	469	581	1509	600	12.69
दूर संचार	116	129	680	405	776	10.39
परिवहन उद्योग	308	179	222	259	436	9.31
ईधन	113	166	94	138	720	7.45
रसायन	20	198	447	95	238	5.79
खाद्य प्रसंस्करण उद्योग	111	38	42	33	1212	3.12
औषधि भेषज	109	292	172	48	1055	2.91
धातुकर्म उद्योग	32	192	153	111	766	2.14
सीमेन्ट और जिप्सम उत्पाद	10	-	452	21	768	2.14

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि कुछ क्षेत्रों में विदेशी सहभागिता का प्रतिशत काफी अच्छा है। इसमें 17.49 प्रतिशत उपकरण, 12.69 प्रतिशत सेवा क्षेत्र, 10.39 प्रतिशत, दूरसंचार 9.31 प्रतिशत परिवहन उद्योग, 7.45 प्रतिशत ईधन 5.79 प्रतिशत रसायन उर्वरक आदि, 3.12 प्रतिशत खाद्य प्रसंस्करण, 2.91 प्रतिशत औषधि में तथा सबसे कम धातुकर्म उद्योग व सीमेन्ट तथा जिप्सम उत्पाद में 2.14 प्रतिशत का अन्तर्प्रवाह हुआ है साथ ही अन्तर्प्रवाह से विदेशी सहयोग की हिस्सेदारी लगातार बढ़ती जा रही है।

7. भारत में विदेशी सहायता के स्रोत - भारत को सहयाता देने वाले समाजवादी व पूंजीवादी दोनों ही प्रकार के देश हैं विदेशी सहायता का सबसे बड़ा भाग सहायता क्लब (भारत विकास मंच) के सदस्य देशों से प्राप्त होता है, जिसमें सदस्य देशों और विश्व सदस्य देशों और विश्व बैंक समूह ने बहुत बड़ी मात्रा में योगदान किया हैं, वास्तव में प्रयुक्त सहायता की दृष्टि से संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा सबसे अधिक धनराशि भारत को ऋण एवं सहायता के रूप में प्रदान की गयी है जो किसी एक स्रोत से मिली राशि से बहुत अधिक है, इसमें पी.एल. 480/665 सहायता का अंश बहुत है। दूसरा

स्थान जापान का है और उसके बाद क्रमशः जर्मनी और ब्रिटेन का स्थान आता है। इससे स्पष्ट है कि विश्व में औद्योगिक दृष्टि से अग्रणी माने जाने वाले राष्ट्रों से बड़ी मात्रा में भारत को सहायता मिली है।

8. योजना काल में विदेशी सहायता - प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर दसवीं योजना के संचालन में विदेशी सहयोग बराबर मिलता रहा है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के वित्त प्रबन्ध में विदेशी सहायता की स्थिति को तालिका से स्पष्ट किया गया है।

तालिका : पंचवर्षीय योजनाओं में वित्तीय प्रबन्ध में विदेशी सहायता

पंचवर्षीय योजनाएं	कुल व्यय (करोड़ रू.में	विदेशी सहायता (प्रतिशत में)
प्रथम योजना (अप्रैल 1951-56)	1960	9.64
द्वितीय योजना (1956-1961)	4672	22.45
तृतीय योजना (1961-1966)	8577	28.25
तीन वार्षिक योजनाएं (1966-1969)	6625	36.36
चौथी योजना (1969-1974)	15779	12.92
पंचम योजना (1974-1979)	39426	12.80
छठी योजना (1980-1985)	109292	7.70
सातवीं योजना (1985-1990)	218730	9.04
आठवीं योजना (1992-1997)	485457	6.61
नौवीं योजना (1997-2002)	8844032	6.90
दसवीं योजना (2002-2007)	1525639	1.70
ग्यारहवीं योजना (2007-2011)	?	?

भारत की द्वितीय योजना से लेकर सातवीं योजना तक बड़े पैमाने पर विदेशी सहायता प्राप्त हुई है। आठवीं और नौंवीं योजना में कुल परिव्यय का क्रमशः 6.61 प्रतिशत तथा 6.96 प्रतिशत सहायता के रूप में प्राप्त हुआ जबकि दसवीं योजना में विदेशी सहायता का अनुमान 1.70 प्रतिशत लगाया गया है। योजनाओं के प्रारम्भिक काल में भारत की स्थिति अच्छी नहीं थी उसे विदेशी सहायता से अपनी योजनाओं को चलाना था। तृतीय योजना के बाद तो स्थिति और भी खराब हो चुकी थी। भारत को तीन वार्षिक योजनाएँ चलानी पड़ी जिनके संचालन के लिए प्रतिवर्ष भारत को 12.12 प्रतिशत की विदेशी सहायता प्राप्त करनी पड़ी थी। आठवीं योजना के बाद उदारीकरण की नीति के कारण देश में विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग (FDI) तथा पोर्टफोलियो विनियोग में वृद्धि होती गयी जिसके कारण विदेशी सहयोग में कमी आती गयी।

3.6 भारत में विदेशीं सहयोग का योगदान (Role of Foreign Collaboration in India)

भारत में विदेशी पूँजी और विदेशी सहायता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस बात को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया गया है :

1. **पूँजी निर्माण में वृद्धि** - स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यदि देश अपने संसाधनों से विकास करना चाहता तो विकास की जिस सीढ़ी पर भारत आज पहुँचा है, वहाँ नहीं पहुँच सकता था। प्रारम्भिक दौर में आय, उपभोग व बचत का स्तर काफी निम्न था। विदेशी सहयोग के कारण देश में लोगों के आय स्तर में वृद्धि हुई, क्योंकि रोजगार के अवसर बढ़ने लगे। बचतें बढ़ी और पूँजी निर्माण भी बढ़ने लगा। प्रारम्भ में पूँजी निर्माण की दर 5 प्रतिशत थी जो आज बढ़कर 15 प्रतिशत तक पहुँच गयी है।

2. **खाद्य समस्या का हल** - स्वतंत्रता के बाद भारत के सामने मुख्य समस्या खाद्यान्नों की थी। आज उस समस्या को हल करने में अमरीका का महत्वपूर्ण सहयोग रहा। पी.एल.480 के तहत अमरीका ने भारत की मदद की थी। विदेशी पूँजी व तकनीक के सहयोग से देश में वैज्ञानिक खेती होने लगी। उर्वरकों के कारखाने खोले जाने लगे। सिंचाई के साधनों का विकास हुआ। बड़े-बड़े बाँधों व नहरों का निर्माण किया जाने लगा। इन सब बातों को भारत अपने संसाधनों से करने में असमर्थ था। खाद्यान्नों के सम्बन्ध में अमरीका के अतिरिक्त कनाड़ा व आस्ट्रेलिया ने भी भारत को पर्याप्त सहायता उपलब्ध करायी थी।

3. **निवेश के स्तर में वृद्धि** - भारत में निवेश का स्तर काफी नीचा था। विदेशी पूंजी के अन्तर्प्रवाह के कारण तथा उदारीकरण की नीति की सहायता से तथा भारत की नई आर्थिक नीति द्वारा आज भारत में निवेश का स्तर काफी आगे बढ़ चुका है। यही कारण है कि भारत आज विकासशील देशों की पंक्ति में अग्रिम स्थान पा चुका है।

4. **औद्योगिक विकास में योगदान** - विदेशी सहायता व विदेशी पूँजी के विनियोग के कारण भारत में नये-नये कल कारखाने लगाये जा रहे हैं। विदेशी पूँजी का ही यह परिणाम है कि भारत का औद्योगिक ढाँचा शक्तिशाली बनने जा रहा है। आधारभूत ढाँचे, जैसे - यातायात, दूरसंचार, विद्युत, सिंचाई के साधनों का विकास हो जाने से व्यापार का विस्तार हुआ। इससे देश में औद्योगीकरण की लहर आ गई है।

5. **तकनीकी विकास** - भारत में लगातार विदेशी तकनीकी समझौते (FTAs) होते रहे। वर्ष 1991 में 661 FTAs के अनुमोदन किये गये थे जो वर्ष 2002 में 307 रहे। वर्ष 1995 में सर्वाधिक विदेशी तकनीकी समझौते 982 तक पहुँच गये थे। तकनीकी समझौते के बढ़ने के कारण भारत में नये आधुनिक कौशल में वृद्धि हुई।

वर्तमान समय तक कुल 7,464 तकनीकी समझौते हो चुके हैं जिसका देश की अर्थव्यवस्था पर अच्छा प्रभाव पड़ा और भारत में नई तकनीक का प्रवेश हो गया।

6. **विदेशी विनिमय की समस्या का समाधान** - विदेशी पूँजी और सहायता का एक लाभ भारत को यह हुआ, जो देश के सामने विदेशी विनिमय की समस्या थी, उसमें कमी आयी। यह कमी विदेशी सहायता के ही कारण हुई। भारत में प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग बढ़े हैं जिसके कारण भारत के निर्यात भी बढ़े हैं। निर्यातों के बढ़ने से भारत में विदेशी मुद्रा का भण्डार बढ़ा है। 1 सितम्बर 2006 को भारत के पास कुल विनिमय कोष 166.6 बिलियन डॉलर का था।

7. **खाद्यान्नों की कीमत में स्थिरता** - विदेशी कुल सहायता में से आधी सहायता राशि का उपयोग खाद्यान्नों के आयात के लिए किया गया। 1960-70 के दशक में विदेशी से आयात किये गये अनाज के कारण खाद्यान्नों की कीमतों को स्थिरता प्रदान की गयी थी।

8. **रेलवे विकास में विदेशी सहायता का योगदान** - विदेशी सहायता का 14 प्रतिशत भाग भारत में परिवहन योजनाओं पर खर्च किया गया जिसमें से अकेले 12 प्रतिशत भाग रेलवे के विकास पर किया गया। इससे रेलवे के नये डिब्बों को बनाया गया, साथ ही रेल के इंजनों व कलपुर्जों का सुधार भी हुआ और इस सहायता से देश के यातायात के साधनों का काफी विकास हुआ है।

9. **सिंचाई एवं बिजली क्षमता का विस्तार** - देश की सिंचाई क्षमता का विस्तार हुआ है। विदेशी सहायता से देश की बिजली क्षमता में काफी वृद्धि हुई है। भारत ने विद्युत के अनेक उपकरणों को विदेशों से आयात किया है। 1950-51 में 23 लाख किलोवाट की स्थापित क्षमता 2004-05 में बढ़कर 1380 लाख किलोवाट हो गया है।

विदेशी सहयोग के दोष (Limitations or Demerits of Foreign Collaboration)-

किसी भी देश में एक उचित सीमा तक विदेशी सहयोग प्राप्त करना उसके आर्थिक एवं सामाजिक विकास में सहायक तो हो सकता है, परन्तु जब यह उचित सीमा को पार कर जाता है तो देश के समक्ष अनेक आर्थिक एवं राजनैतिक कठिनाइयाँ व मजबूरियाँ आती हैं, अतः ऐसी स्थिति में राष्ट्र का कर्तव्य हो जाता है कि विदेशी सहयोग केवल उन्हीं क्षेत्रों में लिया जाय जहाँ राष्ट्रीय पूँजी प्राप्त करना सम्भव न हो। यदि ऐसे क्षेत्रों में विदेशी पूँजी का विनियोजन किया जाता है जिसमें पहले से ही घरेलू पूँजी विनियोजित है तो ऐसी स्थिति में घरेलू विनियोजक विदेशी विनियोजकों से प्रतिस्पर्धा

नहीं कर पायेंगें, क्योंकि औद्योगिक दृष्टि से विदेशी विनियोजकों की कार्यकुशलता अच्छी होती है। विकासशील अर्थव्यवस्था में कुछ वर्षों तक विदेशी भुगतानों के असंतुलन को विदेशी ऋणों के सहारे ठीक किया जा सकता है, परन्तु ऋणों के पुनर्भुगतान या किश्तों की अदायगी का भार प्रतिवर्ष बढ़ता चला जाता है। फलस्वरूप देश के भुगतान-शेष के और अधिक असंतुलित होने का खतरा बढ़ जाता है।

देश में विदेशी सहायता प्राप्त करने के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों की विचारधाराएँ भिन्न-भिन्न हैं। कुछ विद्वान, इसको देश के लिए खतरा व अहितकारी मानते हैं तथा वे इस सम्बन्ध में कुछ सार्थक तर्क भी प्रस्तुत करते हैं। विदेशी सहायता से हानियाँ या खतरे निम्नलिखित शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट किये जा सकते हैः-

1. **अनुचित दबाव एवं राजनैतिक हस्तक्षेप (Undesirable pressures and political interferences)** - विदेशी सहायता के विरूद्ध सबसे बड़ा आरोप या खतरा रहता है कि इससे देश के आन्तरिक मामलों में अनावश्यक दबाव एवं हस्तक्षेप बढ़ते हैं। सहायता देने वाला देश प्रायः अपने आर्थिक एवं राजनैतिक हित को सर्वोपरि रखता है। इसके लिए सहायता प्राप्त देश पर अनावश्यक रूप से दिशा निर्देश हस्तक्षेप, प्रतिबन्ध, सामरिक अड्डों की स्थापना आदि अनुचित कार्य किये जाते हैं। इन अनुचित कार्यों के परिणामस्वरूप अविकसित या विकासशील देशों की स्वतंत्रता, प्रभुसत्ता, स्पष्टवादिता आदि मन्द पड़ जाती हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण भारत-पाकिस्तान युद्ध व भारत का परमाणु परीक्षण है जब अमेरिका ने भारत पर अनेक राजनैतिक दबाव डाले तथा विभिन्न प्रकार के आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये थे।

2. **स्वतंत्र आर्थिक नीति लागू करना कठिन (Difficulty in Implementing Independent economic policy)** - जब कोई देश विदेशी सहायता प्राप्त करता है तो उसे स्वतंत्र आर्थिक नीति अपनाने में अनेक कठिनाई व सीमाओं का सामना करना पड़ता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि विदेशी सहायता लेने से आर्थिक नीतियों को सहायता देने वाले देश के हितों को ध्यान में रखकर बनानी पड़ती है। इसके अन्तर्गत कर नीति, प्रशुल्क नीति, औद्योगिक नीति आदि इस प्रकार बनानी पड़ती है कि पर्याप्त सहायता में कोई बाधा उत्पन्न न हो तथा यह पर्याप्त एवं निरन्तर प्राप्त होती रहे। परिणाम स्वरूप देश की आर्थिक योजनाओं की प्राथमिकताओं को भी परिवर्तित करना पड़ता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री नानावती का मत है कि 'विदेशी सहायता ने भारत की आर्थिक नीतियों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है।''

3. **राष्ट्र के लिए बोझ (Burden for the nation)** - किसी भी कारणवश यदि विदेशी सहायता का विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग नहीं किया जाता है तो यह राष्ट्र के लिए बहुत बड़ा बोझ सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में कर्ज भार बढ़ता जाता है तथा कर्ज के

ब्याज की रकम चुकाने के लिए भी विदेशी ऋण लेना पड़ता है। यह प्रक्रिया निरन्तर जारी रहती है, जिससे देश के नागरिकों की कमाई का बहुत बड़ा हिस्सा कर्ज व ब्याज चुकाने में चला जाता है व विकास अवरूद्ध हो जाते हैं। भारत में राष्ट्रीय आय का बड़ा एवं महत्वपूर्ण भाग विदेशी ऋण व ब्याज को चुकाने में चला जाता है।

4. **विदेशी निर्भरता में वृद्धि (Increase in foreign dependency)**- विदेशी सहायता किसी भी देश की आत्मनिर्भरता में बाधक सिद्ध होती है क्योंकि इससे देश को विदेशी सहायता पर निर्भर रहने की मजबूरी बन जाती है तथा इसमें लगातार वृद्धि होती रहती है, क्योंकि इसमें कुछ विशेष शर्तों का पालन करना होता है। ये शर्तें भारी मशीनों एवं यन्त्रों का आयात, कच्चे माल का आयात, पक्के माल का निर्यात, सेवाओं का आयात-निर्यात, तकनीकी व प्रबन्धकीय ज्ञान आदि के सम्बन्ध में होती हैं। इन शर्तों के कारण देश की विदेशी निर्भरता में वृद्धि होने से विकास कार्यक्रम प्रभावित होते हैं।

5. **घरेलू वित्तीय साधनों का अपर्याप्त विकास (Inadequate development of domestic financial resources)** - जब कोई देश विदेशी सहयोग पर निर्भर हो जाता है तो उसकी घरेलू बचत एवं विनियोग का पर्याप्त विकास करना मुश्किल हो जाता है क्योंकि ऐसी दशा में उसे आसानी से विदेशी सहायता मिल जाती है। दीर्घकालीन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए घरेलू वित्तीय साधनों के विकसित न होने से आर्थिक विकास प्रभावित होता है। भारत के सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का मानना है कि यहाँ नियोजनकाल की प्रारम्भिक अवस्थाओं में आन्तरिक बचतों की गति धीमी रही है, जिनका प्रमुख कारण विदेशी सहायता का उपलब्ध होना रहा है।

6. **असंतुलित विकास (Imbalanced development)** - विदेशी सहयोग प्रायः उन क्षेत्रों को मिलता है जो पहले से आर्थिक एवं औद्योगिक रूप से अग्रणी होते हैं, क्योंकि विदेशी विनियोजकों का प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है इसलिए वे अधिक लाभ वाले व विकसित क्षेत्रों में विनियोग करते हैं। इस प्रकार ऐसे क्षेत्र जो आर्थिक रूप से पिछड़े होते हैं वे औद्योगिक व आर्थिक विकास में इस पूँजी के अभाव में और पिछड़ जाते हैं। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाती हैं जिससे देश का विकास असंतुलित हो जाता है जो एक समाजवादी समाज की स्थापना के लिए बाधक हैं ।

7. **निर्माणी उद्योगों की स्थापना का अभाव (Lack of establishment of manufacturing industries)** - पिछड़े देशों के विकास के लिए निर्माणी उद्योगों की स्थापना एवं विकास का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान होता है। विदेशी पूँजी या सहयोग प्रायः विकसित देशों द्वारा प्रदान किया जाता है, इसलिए ये देश अपने प्रभुत्व व निर्यात बढ़ाने के लिए निर्माणी क्षेत्र के उद्योगों के निर्माण एवं विकास के लिए कोई

रूचि नहीं दिखाते हैं परिणामस्वरूप पिछड़े व विकासशील देश विकसित देशों के लिए खनिज भण्डारों तथा कृषिगत सामान को पैदा करने वाले देश ही बने रहे । इस तरह अविकसित तथा विकासशील देश पर्याप्त विदेशी सहयोग के अभाव में अपेक्षित विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहे हैं।

8. पूँजी के स्थायित्व की अनिश्चितता (Uncertainity in stability of capital) - विदेशी सहायता के अन्तर्गत उसकी विदेशी पूँजी के सम्बन्ध में सदैव यह भय रहता है कि किसी भी विपरीत परिस्थिति जैसे युद्ध, अकाल, भूकम्प, राजनैतिक अस्थिरता, मन्दी आदि की स्थिति में इस प्रकार की पूँजी का पलायन हो सकता है। अतः इस प्रकार की विदेशी सहायता किसी भी देश के नियोजन एवं विकास का एक स्थायी अंग नहीं बन पाती है और इनके सहारे देश के अपेक्षित विकास की कल्पना करना बेमानी ही होगा।

9. आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण (Centralization of Economic Power)- अधिक विदेशी सहायता लेने से सहायता लेने वाले देश में विदेशी संस्था या सरकार के आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण हो जाता है । इस केन्द्रीयकरण से विदेशी सहायता देने वाले अपने लाभ व प्रभुत्व को बढ़ाने के लिए अनुचित कार्य एवं शर्तों का सहारा लेने लगते हैं, जिससे सहायता प्राप्त करने वाले देश के सन्तुलित आर्थिक विकास व कल्याणकारी राज्य की स्थापना का कार्य सम्भव नहीं हो पाता।

10. लाभों का निर्यात (Expatriation of profit) - विदेशी सहायता के अन्तर्गत जो भी विदेशी पूँजी किसी भी देश में लगायी जाती है उस पूँजी के लगाने से प्राप्त होने वाला लाभ विदेशों में चला जाता है। इससे देश में लाभों का पुनर्वियोजन नहीं हो पाता है। जिससे संस्थाओं के तीव्र विकास एवं विस्तार न होने के कारण औद्योगिक विकास के लक्ष्य के साथ साथ अपेक्षित समग्र विकास प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है।

3.7 सारांश(Summary)

विश्व भर में सभी देशों को किसी न किसी रूप में विदेशी सहयोग की आवश्यकता पड़ती है । आजकल विशेष रूप से अविकसित एवं विकासशील देशों के लिये अपने आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए विदेशी तकनीक एवं सहयोग अपरिहार्य होता जा रहा है।

विदेशी तकनीक एवं सहयोग से आशय देश के आर्थिक विकास के लिये विदेशों से प्राप्त तकनीकी एवं वित्तीय सहायता से है। इसके अन्तर्गत विदेशी तकनीक, विदेशी पूँजी, विदेशी मशीनरी, प्रौद्योगिकी, सेवा, विदेशी ऋण एवं अनुदान सम्मिलित होते हैं।

भारत में विदेशी सहयोग एवं पूंजी का आगमन अंग्रेजी शासनकाल से हुआ। सन्

1850 के बाद लोहा एवं इस्पात रेल यातायात, जहाजरानी, बैंकिंग बीमा, एवं मशीनरी उद्योगों का विकास विदेशी सहयोग से ही किया जा सका। स्वतंत्रता के पूर्व तक अरबों रूपये की विदेशी पूँजी व तकनीक भारतीय उद्योगों में विनियोजित की जा चुकी थी। भारत में औद्योगिक नीति 1948 व उसके बाद भी विदेशी सहयोग का निवेश के रूप में विशेष रूप से स्वागत किया गया।

वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण के युग में बिना विदेशी तकनीक एवं सहयोग के किसी भी अर्थव्यवस्था की आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति की परिकल्पना करना असम्भव है। इसी बात को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार ने विदेशी पूँजी नीति में वर्ष 1991 के बाद अधिक छूट दी एवं विदेशी सहयोग एवं विनियोग को आमंत्रित एवं आकर्षित करने का भरसक प्रयास किया गया है।

भारत में विदेशी तकनीक एवं सहयोग का उद्देश्य विशेष रूप से प्राकृतिक संसाधनों के उचित विदोहन, निर्धनता के कुचक्र को समाप्त करने, बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहन देने, आधारभूत उद्योगों की स्थापना, भुगतान असंतुलन को दूर करने, तकनीकी कुशलता एवं उद्यमी प्रतिभा विकसित करने, आर्थिक नियोजन, व्यावसायिक जोखिम में कमी लाने, मुद्रा स्फीति पर नियन्त्रण एवं स्वस्थ्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए आवश्यक है।

भारत को विदेशी तकनीक एवं सहयोग स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारम्भिक वर्षों में जर्मनी, ब्रिटेन एवं सोवियत रूस से मिला। अस्सी के दशक में जापान, अमेरिका, फ्रांस,आदि देशों से सहयोग मिला। सरकार ने विदेशी सहयोग आकर्षिक करने के लिए विगत 1951 से 1980 तक जो प्रतिबन्धात्मक नीति अपना रखी थी उसमें नरमी बरती। 1980 से 1990 के बीच सरकार की नीति अधिकाधिक विदेशी सहयोग आकर्षित करने की रही।

1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा के बाद घोषणा के बाद विदेशी तकनीकी समझौते एवं प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के समझौतों में तीव्र वृद्धि हुई। 1991-2000 के बीच भारत को 33.97 अरब अमेरिकी डालर का विदेशी सहयोग प्राप्त हुआ। भारत में विदेशी तकनीक एवं सहयोग विशेष रूप से विद्युत सेवा केन्द्र, दूर संचार, परिवहन, ईधन रसायन, खाद्य प्रसंस्करण, औषधि आदि उद्योगों में प्राप्त हुआ ।

भारत को विदेशी तकनीक एवं सहयोग समाजवादी एवं पूंजीवादी दोनों ही प्रकार के देशों से मिली है। इसमें विश्व बैंक, संयुक्त राज्य अमेरिका जापान, जर्मनी, ब्रिटेन, आदि देशों से मिला जिसके परिणामस्वरूप भारत आज औद्योगिक दृष्टि से अग्रणी राष्ट्रों की श्रेणी में पहुँच गया है। भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में विदेशी तकनीक एवं सहयोग का विशेष योगदान रहा है।

भारत में विदेशी तकनीक एवं सहयोग का जो योगदान रहा है उसी के फलस्वरूप पूँजी निर्माण में वृद्धि खाद्य समस्या का हल, औद्योगिक विकास, तकनीकी विकास, विदेशी विनिमय की समस्या का समाधान, रेलवे का विकास, सिंचाई एवं बिजली क्षमता का विस्तार हो पाया है। लेकिन विदेशी सहयोग एक सीमा तक आर्थिक एवं सामाजिक विकास में सहायक होता है। उसके बाद देश के समक्ष अनेक आर्थिक एवं राजनैतिक कठिनाइयां उत्पन्न होने लगती हैं। अतः ऐसी स्थिति में विदेशी सहायता केवल उन्हीं क्षेत्रों में लेना चाहिए जिससे घरेलू उद्योगों को अनुचित प्रतिस्पर्धा का सामना न करना पड़े। अत्यधिक विदेशी सहयोग से अनुचित दबाव एवं राजनैतिक हस्तक्षेप, स्वतंत्र आदि नीति को लागू करने में कठिनाई, राष्ट्र के लिये अत्यधिक भार एवं निर्भरता में वृद्धि, असंतुलित विकास, पूँजी के स्थायिपत्व में अनिश्चितता, आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण एवं लाभों का निर्वाह जैसी समस्यायें उत्पन्न होने लगती हैं।

3.8 अभ्यास के लिए प्रश्न (Question for Exercise)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. विदेशी तकनीक एवं सहयोग से क्या आशय है? किसी देश को इसकी क्यों आवश्यकता होती है

What is meant by Foreign Technology and Collaboration? Why is this required by any country?

2. विदेशी सहयोग के विभिन्न रूप क्या हैं? विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर विस्तृत टिप्पणी लिखिये।

What are the various forms of Foreign Collaboration? Write a detailed note on Foreign Direct Investmnet.

3. ''विदेशी पूँजी खतरनाक होती है और इसकी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।'' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? यदि नहीं तो क्यों?

"Foreign Capital is dangerous and it should not be allowed." Do you agree with this statement? if not, why?

4. विदेशी तकनीक एवं सहयोग की भारत में क्या स्थिति है? भारत के आर्थिक विकास में इसके योगदान पर प्रकाश डालिये।

What is the present position of Foreign Technology and Collaboration in India? Throw light on its role in India's economic growth.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Question)

5. विदेशी सहयोग की सीमायें या दोष क्या हैं?

What are the limitations or demerits of Foreign Collaboration?

6. विदेशी सहयोग के उद्देश्य बताइये।

State the objectives of Foreign Collaboration?

7. भारत में विदेशी तकनीकी सहयोग अनुबन्ध पर टिप्पणी लिखिये।

Write a note on Foreign Technologicla Collaboration agreement in India..

8. योजना काल में विदेशी सहयोग पर टिप्पणी लिखिये।

Write a note on Foreign Collaboration during plan period.

3.10 संदर्भ पुस्तकें (Suggested Readings)

Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.

MS-3, IGNOU Course Material: Economic and Social Environment.

Tandon, BB, Indian Economy: Tata Mcgraw Hill, New Delhi.

मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

मिश्रा जे.एन., भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।

माथुर जे.एस., व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

पंत ए.के., व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

सिन्हा वी.सी., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा.लि., आगरा।

मालवीया ए.के. व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।

सिंह एस.के., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई - 4 बहुराष्ट्रीय निगम (Multinational Corporations)

इकाई की रूपरेखा-

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 बहुराष्ट्रीय निगम का आशय एवं अवधारणा
4.3 बहुराष्ट्रीय निगम की विशेषताएं
4.4 बहुराष्ट्रीय निगम एवं विदेशी सहयोग के प्रति सरकार की नीति
4.5 बहुराष्ट्रीय निगमों के विस्तार/लोकप्रियता के कारक
4.6 बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका एवं महत्व
4.7 बहुराष्ट्रीय निगमों के दोष या सीमाएं
4.8 बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 अभ्यास के लिए प्रश्न
4.12 संदर्भ पुस्तकें

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- यह जान सकें कि बहुराष्ट्रीय निगम क्या है,
- भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों का इतिहास से परिचित हो सकें, तथा
- बहुराष्ट्रीय निगमों की लोकप्रियता/महत्व/सीमाओं के बारे में जान सकें।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों का इतिहास काफी पुराना है। स्वतंत्रता से पूर्व देश में 1940 के दशक के मध्य तक विदेशी पूँजीपतियों का ही प्रभुत्व था। लगभग सभी आर्थिक क्रियाओं का संचालन इन्हीं विदेशी कम्पनियों द्वारा होता था। कोयला, खदान,

जूट उद्योग, जहाजरानी, बैंकिंग, चाय के बागान, बीमा व्यवसाय आदि सभी में ब्रिटिश कम्पनियों का ही प्रभुत्व था, यहाँ तक कि भारत की अनेक सहयोगी कम्पनियों में भी ब्रिटिश कम्पनियों का नियन्त्रण था। 1920 के बाद से भारत में अमेरिकी कम्पनियों का भी आगमन हुआ, जिसमें जनरल मोटर्स का प्रमुख स्थान था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था की बिगड़ी हालत सुधारने के लिए जो भी औद्योगिक नीति बनायी गयी उसमें घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए इन्हें अनेक प्रकार से संरक्षण दिया गया तथा विदेशी कम्पनियों के पूंजी निवेश पर लगभग प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 1991 के पश्चात भारत में उदारीकरण, निजीकरण व भूमण्डलीकरण (LPG) की जो नीति अपनायी गयी उसके अन्तर्गत भारत के लगभग हर क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का तेजी से आगमन हुआ है, परिणामस्वरूप देश में विदेशी पूँजी व विनियोग के साथ ही साथ विदेशी मुद्रा भण्डार में लगातार वृद्धि हो रही है।

बहुराष्ट्रीय निगमों की मौजूदा संख्या 40,000 के लगभग है और ये बहुराष्ट्रीय निगम विश्व भर में करीब 2,50,000 सहायक कंपनियों के माध्यम से काम करती हैं। इन निगमों के पास अपार साधन हैं। यह इस बात से स्पष्ट है कि 1982 में विश्व के सबसे बड़े 200 बहुराष्ट्रीय निगमों का विश्व के सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 24.2 प्रतिशत था जो 1998 में और बढ़कर 28.3 प्रतिशत हो गयां । इससे यह सिद्ध होता है कि विश्व की सबसे बड़ी 200 कम्पनियों का विश्व के एक चौथाई से अधिक उत्पादन पर अधिकार है। 1998 में इन 200 बहुराष्ट्रीय कंपनियों की कुल बिक्री से आय 7.1 ट्रिलियन डॉलर थी। जबकि 182 राष्ट्रों का 1998 में सकल घरेलू उत्पाद 6.9 ट्रिलियन डॉलर था जो सबसे बड़े 200 बहुराष्ट्रीय निगमों की कुल बिक्री के आय से कम है। बहुराष्ट्रीय निगमों की उत्पादन तकनीक बहुत उन्नत है और इनकी ख्याति संसार भर में फैली हुई है। इसलिये ये कम्पनियां जो भी चीज बनाती हैं उसे आसानी से किसी भी देश में बेच लेती हैं। वास्तविकता यह है कि अल्पविकसित देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के लिए विशेष दीवानापन है और आम लोग स्वदेशी वस्तुओं की तुलना में इन्हें ज्यादा पसन्द करते हैं।

वैश्वीकरण एवं भूमण्डलीकरण नीति के अन्तर्गत पिछले एक दशक में निगमों में निजी पूँजी सहित विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में तेजी से परिवर्तन आया है। आज स्थिति यह है कि बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से प्राप्त राशि देश के विकास कार्यों में लगायी जा रही है। भारत जैसे विकासशील देश में बहुराष्ट्रीय निगमों के आकर्षित होने का प्रमुख कारण विस्तृत बाजार, कुशल श्रमिकों की बहुत बड़ी संख्या, सस्ती श्रम शक्ति के साथ-साथ विकसित औद्योगिक संरचना का उपलब्ध होना भी है।

1980 के पूर्व भारत सरकार की नीति विभिन्न बहुराष्ट्रीय निगमों का भारतीयकरण

करने की थी। अतः उसने सभी कम्पनियों से कहा कि वे अपनी पूँजी में विदेशियों का हिस्सा 40 प्रतिशत करने का प्रयास करें। अतः 700 कम्पनियों ने अपनी पूँजी में विदेशियों का हिस्सा 40 प्रतिशत कर दिया तथा लगभग 100 कम्पनियों को 51 प्रतिशत पर बने रहने की अनुमति दे दी गयी। लगभग 40 कम्पनियों को 74 प्रतिशत पर बने रहने की आज्ञा दे दी गयी, लेकिन कोका कोला तथा आई.बी.एम. इस प्रकार विदेशी हिस्सा कम करने को तैयार नहीं हुए अतः उन्होंने अपना व्यापार बन्द कर दिया। किन्तु अब सरकार ने नीति में परिवर्तन किया है। औद्योगिक नीति, 1991 के अनुसार 51 प्रतिशत की पूँजी की अनुमति सरकार द्वारा दी जा रही है। कुछ मामलों में शत प्रतिशत पूँजी की अनुमति दी जा रही है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय निगमों की क्रियाएं हमारे देश में बढ़ रही हैं। अनेक बहुराष्ट्रीय निगम भारत में आ गये हैं । कोका कोला कम्पनी जिसे पहले अनुमति न मिल पाने के कारण अपना व्यापार बन्द करना पड़ा था, वह अब 18 वर्ष बाद पुनः भारत में आ गयी है।

नवीन आर्थिक नीति के रूप में भारत की औद्योगिक नीति, 1991 के परिणामस्वरूप बहुराष्ट्रीय निगमों का व्यापार हमारे देश में तीव्र गति से बढ़ने लगा है जिससे भारतीय उद्योगपतियों में एक भय सा फैल गया है तथा वे भरसक प्रयास कर रहे हैं कि इन निगमों का भली-भाँति मुकाबला किया जा सके। सरकारी स्तर पर भी इन निगमों पर पर्याप्त नियंत्रण रखा जाता है ताकि इनके दुष्प्रभावों से बचा जा सके। भारतीय रिजर्व बैंक, कम्पनी मामलों का मन्त्रालय, वित्त मंत्रालय तथा औद्योगिक विकास मंत्रालय आदि इन निगमों के क्रिया-कलापों पर नजर रखते हैं। सर 1973 में पारित फॉरेन एक्सचेंज रेगूलेशन एक्ट ने भी विदेशी कम्पनियों की गतिविधियों पर अंकुश लगाया। समय के साथ साथ वह अधिनियम कमजोर पड़ गया जिसके स्थान पर 1999 में फारेन एक्सचेंज मैनेजमेन्ट एक्ट अस्तित्व में आया।

4.2 बहुराष्ट्रीय निगम : आशय एवं अवधारणा (Multinational Corporation : Meaning and Concept)

बहुराष्ट्रीय निगम एक ऐसी कम्पनी या उद्यम होती है जो एक से अधिक देशों में फैली रहती है तथा जिसका उत्पादन तथा सेवाएं उस देश के बाहर भी होती है जिनमें यह जन्म लेती है। आई.बी.एम. वर्ल्ड ट्रेड कारपोरेशन के अध्यक्ष के अनुसार - ''एक बहुराष्ट्रीय निगम वह है जो-

(1) अनेक देशों में कार्य करता है,

(2) उन देशों में अनुसन्धान विकास व निर्माण का कार्य करता है,

(3) जिसका बहुराष्ट्रीय प्रबन्ध होता है,

(4) जिसका प्रबन्ध स्वामित्व बहुराष्ट्रीयता लिए होता है।

संक्षेप में - ''बहुराष्ट्रीय निगम एक उद्यम होता है जिसकी क्रियाएं अपने देश के बाहर अनेक देशों तक फैली रहती हैं।'' ऐसे निगमों को अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी या बहुराष्ट्रीय कम्पनी के नाम से जाना जाता है।

भारत में इस प्रकार की अनेक कम्पनियाँ हैं जिनका कारोबार भारत में है लेकिन उनका मुख्यालय भारत के बाहर किसी अन्य देश में है तथा जिनका भारत के अतिरिक्त अन्य कोई देश में भी कारोबार है। जैसे - पौण्ड्स चेहरे के लिए क्रीम बनाने वाली कम्पनी, वारेन टी चाय बेचने वाली कम्पनी, शिप्ला दवाई वाली कम्पनी, कालगेट पालमोलिव दन्त मंजन व दाढ़ी का साबुन बनाने वाली कम्पनी, हिन्दुस्तान लीवर साबुन व डालडा बनाने वाली कम्पनी, ग्लैक्सो दवाई बनाने वाली कम्पनी आदि।

4.3 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषताएँ (Characteristics of Multinational Corporations)

बहुराष्ट्रीय निगमों में अनेक विशेषताएं पायी जाती हैं जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं :

(1) अन्तर्राष्ट्रीय क्रिया-कलाप (International Operations)- बहुराष्ट्रीय निगमों की क्रियाएं किसी एक राष्ट्र में सीमित न होकर अनेक राष्ट्रों तक चलती हैं। इसके लिये वे अपने देश में मुख्य निगम (Parent Corporation) रखती हैं व अन्य देशों में शाखाएँ अथवा सहायक कम्पनियाँ (Branches or Subsidiary Companies) रखती हैं लेकिन इन सहायक कम्पनियों में मुख्य निगम का हिस्सा 51 प्रतिशत या इससे अधिक होता है। इस प्रकार मुख्य निगम इन शाखाओं व सहायक निगमों पर नियन्त्रण करता रहता है।

(2) साधनों का हस्तान्तरण (Transfer of Resources) - इन निगमों की दूसरी विशेषता यह है कि ये अपने साधनों को सहायक कम्पनियों व शाखाओं में हस्तान्तरित कर देते हैं। ये अपनी तकनीक (Technical know-how), प्रन्धकीय सेवा वर्ग (Managerial Personnel), कच्चा माल (Raw Material) व पक्का व तैयार माल (Finished and Ready Goods) आदि को अपनी सहायक कम्पनियों व शाखाओं को आसानी से हस्तान्तरित कर देते हैं।

(3) बहुराष्ट्रीय स्कन्ध स्वामित्व (Multinational Stock Ownership) - इन निगमों की पूँजी में हिस्सा अनेक राष्ट्रों का होता है।

(4) वृहत आकार (Giant Size) - इन निगमों की विशेषता यह है कि वे वृहत

आकार की होती है। इनकी पूंजी व बिक्री अरबों रूपये में होती है।

(5) बहुराष्ट्रीय प्रबन्ध (Multinational Management) - इन निगमों का प्रबन्ध बहुराष्ट्रीय होता है अर्थात इनके प्रबन्ध मण्डल में अनेक राष्ट्रों के व्यक्ति होते हैं।

4.4 सरकार की विदेशी सहयोग एवं बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रति नीति : (Govt's Policy Towards Foreign Collaboration and MNCs)

भारतीय उद्योगों में बहुराष्ट्रीय निगमों की हिस्सेदारी का एक मुख्य रूप विदेशी सहयोग है। इस उद्देश्य के लिए भारतीय उद्योगपतियों के साथ सहयोग के समझौते बनाये जाते हैं जिनमें टेक्नोलॉजी के आयात की व्यवस्था होती है। कई बार विदेशी ब्राण्ड के नाम का इस्तेमाल करने की भी अनुमति दी जाती है। भारतीय कम्पनियों के साथ विदेशी कम्पनियों के सहयोग की मात्रा कितनी अधिक रही है, इसका अन्दाज मात्र इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि आजादी के बाद बड़े या मध्यम औद्योगिक ग्रुप में जितने नए उद्योग स्थापित किए गये उनमें से लगभग सभी में किसी न किसी प्रकार का विदेशी सहयोग मौजूद रहा है। पिछले कुछ वर्षों में तो सरकारी नीति और ज्यादा उदार बना दी गई है जिसके परिणामस्वरूप विदेशी सहयोग की बाढ़ सी आ गई है। उदाहरण के लिए 1948 से 1988 के बीच 40 वर्षों में किये गये कुल 12,760 विदेशी सहयोग के समझौतों में से 6,165 (अर्थात 48.3 प्रतिशत) 1981 से 1988 के बीच आठ वर्षों में किए गये। जुलाई अगस्त 1991 में घोषित उदार विदेशी निवेश नीति के परिणामस्वरूप विदेशी सहयोग के समझौतों में तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में तेज वृद्धि हुई है। अगस्त 1991 से मार्च 2006 के बीच विदेशी प्रत्यक्ष निवेश 4,61,411 करोड़ रूपये (अर्थात 38,905 मिलियन डालर) हो चुका था।

इन विदेशी सहयोगों के अध्ययन से कुछ रोचक तथ्य सामने आते हैं। बहुत सारे समझौते ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए किये गये जो अनावश्यक थीं या जिनका उत्पादन घरेलू टैक्नोलॉजी से भी आसानी से हो सकता था। इस सन्दर्भ में बहुत सी वस्तुओं का नाम लिया जा सकता है जैसे वैक्यूम फ्लास्क (थरमस), प्लास्टिक, टूथपेस्ट, कॉस्मेटिक्स, आइसक्रीम, बियर, बिस्कुट रेडीमेड कपड़े इत्यादि । न केवल इन वस्तुओं के लिए विदेशी सहयोग के समझौतों को मंजूरी दी गई अपितु एक ही वस्तु के उत्पादन के लिए अलग-अलग उद्योगपतियों को अलग-अलग विदेशी कम्पनियों से सहयोग करने की अनुमति भी दी गई । विदेशी सहयोग की अवधि समाप्त होने पर उनका दोबारा नवीनीकरण भी अक्सर किया गया। स्पष्ट है कि ये सारे विदेशी सहयोग के समझौते एक विशिष्ट उच्च आय वर्ग की मांग को पूरा करने के लिए तथा विदेशी ब्रांड के नाम का लाभ कमाने के लिए किए गये थे।

विदेशी सहयोग की इस 'प्रवृत्ति' के अलावा, उसमें और बहुत से दोष थे जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट हैः-

1. विदेशी सहयोग के बहुत से समझौतों में सरकार ने अलग-अलग उद्योगपतियों को अलग-अलग स्त्रोतों से एक ही अथवा एक जैसी ही टैक्नोलॉजी के आयात की अनुमति दी है। इससे देश पर भुगतान का भार तो बढ़ गया है परन्तु उपलब्ध तकनीकी ज्ञान में वृद्धि नहीं हुई है।

2. एक ही जैसी वस्तुओं की टैक्नोलॉजी का अलग-अलग स्त्रोतों व देशों से आयात करने के कारण कई तरह के कलपुर्जों डिजाइनों, कच्चा माल इत्यादि की आवश्यकता बढ़ गई है, इसलिए इनके उत्पादन के लिए फिर इनका स्टॉक रखने के लिए व्यवस्था करनी पड़ी है जिससे साधनों का अपव्यय हुआ है। इसके अलावा वस्तुओं के मानकीकरण में भी कठिनाई हुई है।

3. समझौतों की शर्तें अक्सर विदेशियों के अनुकूल व हमारे हितों के प्रतिकूल रही है। इसके मुख्य कारण भारतीय उद्योगपतियों की कमजोर सौदा शक्ति तथा विदेशी विनिमय के संकट के कारण सरकार की विदेशी सहयोग प्राप्त करने की तत्परता थी।

4. क्योंकि मशीनरी के विनिर्देश तथा उपकरणों की आपूर्ति करने का काम विदेशी सहयोगियों पर छोड़ दिया गया था, इसलिए न केवल उन्होंने मनमानी कीमतें लगाई अपितु कई बार आवश्यकता से अधिक सामान का आयात किया। कई बार तो स्थानीय विकल्प उपलब्ध होने के बावजूद माल का आयात किया गया । कभी-कभी कलपुर्जे न होने के कारण मशीनरी बेकार पड़ी रही और कभी कभी उत्पादन प्रक्रिया आवश्यकता से अधिक जटिल व यंत्रीकृत थी। ऐसे भी उदाहरण मिले हैं कि विदेशी सहयोगियों ने भारत को अपने देश में पुरानी पड़ चुकी टैक्नोलॉजी सौंप दी।

5. भुगतान की दरें भी इस प्रकार तय की गई थी कि ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त किया जा सके। आमतौर पर सरकार की यह नीति थी कि ज्यादा से ज्यादा वार्षिक बिक्री का 5 प्रतिशत तथा आयात किए गये प्लांट के मूल्य का 5 प्रतिशत तकनीकी फीस के रूप में दिया जाए या फिर तकनीकी फीस के रूप में जारी पूँजी का 10 प्रतिशत एकमुश्त राशि के रूप में दे दिया जाए। परन्तु ये अधिकतम सीमाएँ वास्तव में **सामान्य दरें** बन गई।

6. सबसे बड़ी कठिनाई विदेशी सहयोग के समझौतों में कोई प्रतिबंधात्मक व नियंत्रक शर्तों का होना है। कुछ नियंत्रक शर्तें निम्न थीं - (1) टैक्नोलॉजी किसी अन्य व्यक्ति या उद्योगपति को हस्तांतरित नहीं की जा सकती, (कई बार तो समझौते के समाप्त होने के बाद भी), (2) उत्पादन विदेशी सहयोगी द्वारा बताए गये विनिर्देशों के अनुसार

करना होगा और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उसमें फेरबदल नहीं किया जा सकता, (3) यदि विदेशों से कुछ खरीदारी करनी हो तो केवल विदेशी सहयोगी से ही (या उसके माध्यम से ही) की जा सकती है, (4) कई बार विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों की निगाह के नीचे उत्पादन पर नियन्त्रण करने की व्यवस्था थी, (5) कीमत नीति व विपणन इत्यादि में भी विदेशी सहयोगी फर्म का हस्तक्षेप रहता था। कई बार यह शर्त होती थी कि उत्पादन का एक हिस्सा उस सहयोगी कम्पनी की इस देश में कार्यरत किसी इकाई को पूर्व निश्चित कमीशन पर उपलब्ध कराना होगा या किन्ही विशिष्ट फर्मों को एकमात्र बिक्री एजेंट नियुक्त करना होगा तथा (6) निर्यात करने के अधिकार पर भी प्रतिबन्ध थे और यह प्रावधान था कि केवल विशिष्ट देशों को अथवा विशिष्ट शर्तों पर निर्यात किये जा सकते हैं।

7. विदेशी सहयोग के कारण एकाधिकारी शक्तियों को प्रोत्साहन मिला है तथा आर्थिक शक्ति का संकेद्रण बढ़ा है। विदेशी कम्पनियों ने बड़े औद्योगिक घरानों के साथ साठ-गाँठ की है और इससे दोनों पक्षों को लाभ हुआ है। विदेशी सहयोग के कारण बड़े औद्योगिक घरानों को पेटेंट साधनों, विदेशी मुद्रा इत्यादि प्राप्त करने में बड़ी मदद मिली है जिससे उनकी संपत्ति व आर्थिक शक्ति में और ज्यादा वृद्धि हुई है।

4.5 बहुराष्ट्रीय निगमों के विस्तार/लोकप्रियता के कारक (Factors for the Expansion/Popularity of MNCs)

बहुराष्ट्रीय निगमों के विकास में सहयोग देने वाले बहुत से कारक हैं जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं -

1. **बाजार का विस्तार (Expansion of Market)** - जैसे-जैसे किसी बड़ी फर्म का आकार बढ़ता जाता है और उसकी ख्याति देश विदेश में फैलने लगती है वैसे-वैसे वह फर्म अपने देश की भौगोलिक सीमाओं से बाहर अन्य देशों में अपनी गतिविधियों के प्रसार की कोशिश करती हैं।

2. **विपणन में श्रेष्ठता (Marketing Superiorities)**- राष्ट्रीय फर्मों की तुलना में बहुराष्ट्रीय फर्मों को विपणन के क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त है। उदाहरण के लिए (1) बहुराष्ट्रीय निगमों की ख्याति के कारण उन्हें अपना माल बेचने में कम कठिनाई होती हैं (2) वे अपनी वस्तुओं की बिक्री के लिए बेहतर व अधिक विज्ञापन व प्रचार की व्यवस्था करने के स्थिति में होती हैं तथा (3) उनके पास भण्डारण की बेहतर सुविधाएं होती हैं।

3. **वित्तीय क्षेत्र में श्रेष्ठता (Financial Superiorities)** - बहुराष्ट्रीय फर्म को राष्ट्रीय फर्म की तुलना में निम्न कारणों से वित्तीय श्रेष्ठता प्राप्त है:- (1) उसके पास अत्यधिक वित्तीय साधन होते हैं जिनकी मदद से वह सब परिस्थितियों को अपने अनुकूल

बना सकती हैं, (2) कोषों के इस्तेमाल में वह अधिक दक्ष होती हैं तथा एक देश में सृजित साधनों का प्रयोग आवश्यकता पड़ने पर अन्य देशों में कर सकती हैं, (3) वह विदेशी पूँजी बाजारों से ज्यादा आसानी से साधन जुटा सकती हैं तथा (4) अपनी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कारण वह अधिक आसानी से अन्तर्राष्ट्रीय साधन एकत्रित कर सकती हैं। यहाँ तक कि अन्य देशों के निवेशक और बैंक भी इनमें निवेश करने को उत्सुक रहते हैं।

4. **तकनीकी क्षेत्र में श्रेष्ठता (Technological superiorities)** - अल्पविकसित देशों ने बहुराष्ट्रीय निगमों को अपने औद्योगिक विकास में सहयोग देने के लिए मूलतः इसलिए आमंत्रित किया है क्योंकि राष्ट्रीय कम्पनियों के तुलना में इनके पास बेहतर टेक्नोलॉजी हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों से टेक्नोलॉजी का हस्तान्तरण अल्पविकसित देश निम्न कारणों से उपयोगी मानते हैं- (1) अल्पविकास से निकलने के लिए सबसे महत्वपूर्ण रास्ता औद्योगीकरण का है परन्तु इन देशों के पास इतने साधन नहीं हैं कि वे अपने बूते पर औद्योगिक विकास कर सकें, (2) स्थानीय मानव शक्ति, पूंजी उपकरणों तथा अन्य साधनों का अनुकूलतम उपयोग आवश्यक है परन्तु अल्पविकसित देशों के पास इतनी सामर्थ्य नहीं है कि अपने आप यह काम कर सकें, (3) औद्योगिक विकास की सम्पूर्ण जिम्मेदारी स्थानीय कम्पनियों पर डालने से कच्चे माल, पूँजी उपकरण, मशीनरी तथा तकनीकी ज्ञान के भारी आयात की आवश्यकता पड़ेगी परन्तु बहुराष्ट्रीय निगम स्वयं इन सबका इंतजाम करते हैं, तथा (4) अल्पविकसित देशों को अपना माल बेचने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। जब तक वे बढ़िया क्वालिटी की अंतर्राष्टीय स्तर की वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते तब तक उनका माल बिक नहीं सकेगा। बहुराष्ट्रीय निगम इस तरह का माल बनाने में उनकी सहायता करते हैं।

5. **उत्पाद अभिनवीनीकरण (Product innovations)** - बहुराष्ट्रीय निगमों के बड़े-बड़े अनुसंधान व विकास विभाग हैं जो नए उत्पादों का विकास करने में तथा विद्यमान उत्पादों की किस्म व डिजाइन सुधारने में प्रयत्नशील रहते हैं। इसलिए राष्ट्रीय कम्पनियों की तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय निगमों की उत्पादन सम्भावनाएं कहीं ज्यादा व्यापक हैं।

4.2 बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका एवं महत्व (Role and Importance of Multinational Corporations)

भारत जैसे विकासशील देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण रही है। सातवें निर्गुट सम्मेलन में जो रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी उसके अनुसार 1979 के अन्त में बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील देशों के 40 प्रतिशत औद्योगिक उत्पादन व 50 प्रतिशत विदेशी व्यापार पर नियन्त्रण रखते थे।

भारत जैसे विकासशील देश की अपनी कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं इन्हीं विशेषताओं की विद्यमानता के कारण बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भूमिका या महत्व काफी बढ़ जाता है। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास एवं जन-साधारण की आवश्यकता की पूर्ति में अनेक प्रकार की भूमिका का निर्वहन किया जाता है तथा इन कम्पनियों द्वारा अपनी महत्वपूर्णता सिद्ध की जा रही है। उनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है -

1. **देश के औद्योगीकरण में सहायक (Helpful is Industrialisation of the Country)** - उदारीकरण से पूर्व देश के औद्योगीकरण में बहुराष्ट्रीय नियमों की भूमिका सीमित थी परन्तु उदारीकरण के पश्चात भारत जैसे विकासशील देश में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रही है। तीव्र औद्योगीकरण के लिए दो प्रमुख तत्वों पूँजी एवं उन्नत तकनीक की अति आवश्यकता होती है, जो भारत जैसे विकासशील देश के लिए मुश्किल थी। अतः देश में अनेक बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारी मात्रा में पूँजी विनियोजित की तथा उन्नत तकनीक उपलब्ध करायी, परिणामस्वरूप देश के औद्योगीकरण की विधिवत् नींव पड़ी व औद्योगिक विकास को बल मिला। देश के अनेक उद्योगों जिनमें भारी मात्रा में पूँजी व आधुनिक तकनीक की आवश्यकता थी। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने ऐसे उद्योगों की स्थापना पर बल दिया। ऐसे उद्योगों मे मुख्य रूप से पेट्रोलियम, खनिज, रसायन आदि शामिल हैं।

2. **उपलब्ध संसाधनों का उचित विदोहन (Proper utilisation of available resources)** - हमारे देश के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात कहीं गयी है कि, ''भारत एक धनी देश है परन्तु यहाँ के निवासी निर्धन हैं'', अर्थात यहाँ पर संसाधनों की कमी नहीं है बल्कि उसके दोहन के लिए पूँजी व आधुनिक तकनीक की आवश्यकता है। अतः इस आवश्यकता की काफी हद तक पूर्ति बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने किया है। इन कम्पनियों में उन्नत तकनीक के माध्यम से देश में उपलब्ध संसाधनों का पता लगाकर इनके उत्पादन हेतु बड़ी मात्रा में पूँजी विनियोग किया है। जिससे देश के औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होने से आर्थिक विकास में वृद्धि को गति मिली है।

3. **आधुनिक उत्पादन तकनीकों का प्रयोग (Use of modern production technique)** - देश में उत्पादन तकनीक श्रम प्रधान व परम्परागत थी। बहुराष्ट्रीय निगमों ने विधिवत व्यापारिक गतिविधियाँ शुरू करने से पूर्व यह पाया कि यहाँ पर श्रम सस्ता है। अतः इन कम्पनियों द्वारा ऐसी आधुनिक उत्पादन तकनीक अपनायी गयी जो अधिकाधिक उत्पादन, कम लागत में उपलब्ध कराने में सक्षम है। परिणामस्वरूप वस्तुओं एवं सेवाओं की प्रति इकाई उत्पादन लागत में काफी कमी आयी। इसका लाभ यह हुआ कि देश प्रमुख वस्तुओं के उत्पादन का आधुनिक व अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रतियोगी बन

गया तथा कम लागत या खर्च के कारण लोगों की बचत एवं विनियोग में वृद्धि से पूँजी निर्माण की गति में भी वृद्धि हुई।

4. **शोध व विकास को बढ़ावा (Promotion of Research and Development)** - बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा अधिक कुशलता स्तर प्राप्त करने के लिए देश में अनेक शोध व विकास केन्द्र खोले गये हैं। ये शीघ्र एवं विकास केन्द्र मुख्य रूप से सूचना प्रौद्योगिकी, दवा, तेल व खनिज आदि क्षेत्रों के लिए हैं। अतः बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने देश में उपलब्ध विभिन्न संसाधनों के शोध एवं विकास से नयी-नयी तकनीकें विकसित की हैं जो भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक थी।

5. **विपणन का विस्तार (Expansion of Marketing)** - बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारतीय अर्थव्यवस्था में विपणन के क्षेत्र के विस्तार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। इन कम्पनियों ने विपणन का विस्तार करने के लिए बाजार शोध, प्रभावकारी विज्ञापन, विपणन सूचनाओं का व्यापक प्रसारण, आधुनिक भण्डार प्रबन्ध व आकर्षक पैकेजिंग आदि का विकास एवं विस्तार किया। सेवाओं के विपणन को बढ़ावा देने का प्रमुख श्रेय इन्हीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ही जाता है। अतः बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने विपणन के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया, जिससे उपभोक्ताओं को विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं के प्रयोग का उचित अवसर प्राप्त हुआ है।

6. **उपभोक्ताओं को लाभ (Benefits to consumers)** - भारत जैसे विकासशील देश जहाँ पर दूसरे सर्वाधिक उपभोक्ता रहते हैं, बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारी विनियोग व उन्नतशील तकनीक के माध्यम से उपभोक्ताओं को नयी-नयी वस्तुएं व सेवाएँ सस्ती व अधिक उपयोगी उपलब्ध कराई हैं, जिससे उपभोक्ताओं की संतुष्टि में वृद्धि व उनकी कार्यक्षमता में विकास हुआ है। उदाहरण के लिए आज बहुपयोगी उत्पाद मोबाइल सेट, टी.वी., कम्प्यूटर, लैपटाप, विभिन्न सेवाएं जैसे-संचार, बीमा, परिवहन आदि तथा तीव्र उपयोग होने वाले खाद्य पदार्थों में नये-नये व आकर्षक खाद्य पदार्थों आदि की सस्ते दाम पर सर्वत्र उपलब्धता सुनिश्चित हुई है।

7. **अधिक रोजगार के अवसरों का सृजन (Creation of more employment opportunity)** - देश में अनेक प्रकार के बहुराष्ट्रीय निगमों के अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों जैसे कृषि उद्योग व सेवा क्षेत्र में स्थापित होने से देश के विभिन्न उप क्षेत्रों का तीव्र गति से विकास हुआ है, परिणामस्वरूप ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ देश के नागरिकों को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से बड़ी मात्रा में रोजगार के अवसर के सृजन में सफल रही हैं। इन कम्पनियों ने प्रत्यक्ष रूप से अधिकारी से लेकर चपरासी तक तथा परोक्ष रूप से लाखों लोगों को रोजगार प्रदान किया है या लाभान्वित किया है।

बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका या महत्व का विवरण उपरोक्त शीर्षकों के अन्तर्गत पूर्ण नहीं हो सकता है, क्योंकि इसके अतिरिक्त इनकी अन्य भूमिकाएं हैं,जिनका अनुकरण एवं उनसे प्रेरित होकर घरेलू कम्पनियों ने भी अपनी कार्य प्रणाली एवं क्षमता में विकास एवं विस्तार किया है। अतः संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारत जैसे विकासशील देश को अपनी उपस्थिति एवं कार्य प्रणाली से विकसित देश की श्रेणी में शामिल होने के लिए एक सुदृढ़ एवं महत्वपूर्ण आधार प्रदान किया है जिसका देश को समुचित फायदा उठाना चाहिए।

4.7 बहुराष्ट्रीय निगमों के दोष या सीमाएँ
(Demerits or Limitations of Multinational Companies)

भारत जैसे विकासशील देश को बहुराष्ट्रीय निगमों ने विकास के नये-नये अवसर प्रदान किये हैं परन्तु इन्हीं बहुराष्ट्रीय निगमों की कुछ कमियाँ, आशंकाएँ, सीमाएं या दोष हैं जो भारतीय अर्थव्यवस्था को दृष्टिगत रखते हुए आलोचना का कारण होती है। उनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैः-

1. उपभोक्ताओं के लिए हानिकारक (Harmful for the Consumers) - बहुराष्ट्रीय निगमों की सर्वाधिक आलोचना इस आधार पर होती है कि ये कम्पनियाँ उपभोक्ताओं के हितों की अनदेखी करके उनका शोषण करती हैं इनके द्वारा उत्पाद का अधिक मूल्य लिखा जाता है तथा जो भी वस्तु प्रदान की जाती है उसमें दिखावापन अधिक होता है जबकि गुणवत्ता का अभाव पाया जाता है। ये कम्पनियाँ आकर्षक व बढ़ा-चढ़ा कर विज्ञापन के माध्यम से अधिकाधिक विक्रय पर सदैव ध्यान देती हैं तथा उपभोक्ता संतुष्टि या सेवा पर कम। साथ ही साथ इन कम्पनियों द्वारा वस्तु विभेद की भी प्रवृत्ति पाई जाती है।

2. क्षेत्रीय आर्थिक असमानताओं में वृद्धि (Increase in Regional Economic Inequalities) - बहुराष्ट्रीय निगमों की आलोचना इस आधार पर भी होती है कि इनका प्रमुख उद्देश्य अधिकाधिक लाभ कमाना होता है सेवा भावना नहीं। अतः इनके द्वारा प्रायः वही उद्योग स्थापित किया जाता है जहाँ पहले से उद्योग विद्यमान रहते हैं या जहाँ पर अधिक लाभ प्राप्त करने की सम्भावना रहती हैं । इस प्रकार ये कम लाभ वाले क्षेत्रों या पिछड़े क्षेत्रों में अपने उद्योगों को लगाना पसन्द नहीं करते हैं, जिससे क्षेत्रीय आर्थिक असमानताओं को बढ़ावा मिलता है।

3. ऊँचे मूल्य पर तकनीक का हस्तान्तरण (Transfer of Techniques at exhorbitant price) - बहुराष्ट्रीय निगमों का एक प्रमुख दोष यह है कि ये प्रायः अवसरवादी होती हैं। अतः ये कम्पनियाँ अपनी तकनीक या सलाह देने के बदले में जो

शुल्क क्षतिपूर्ति, व्यय आदि लेती हैं वे वास्तविक राशि या उचित राशि से काफी अधिक होती है।

4. उचित तकनीक का न अपनाना (No Applications of Proper Technique) - बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा अधिकाधिक विक्रय एवं लाभ को प्राप्त करने के लिए जो उत्पादन व सेवा तकनीक अपनायी जाती हैं वह देश व आम आदमी के हित के विरूद्ध होती है। इसमें संसाधनों का निजी स्वार्थ के लिए अनुचित दोहन, कर्मचारियों से अधिक कार्य व कम वेतन आदि द्वारा शोषण की प्रवृत्ति पायी जाती है जो किसी भी देश के आर्थिक व सामाजिक विकास के लिए सर्वथा अनुपयुक्त होता है।

5. देश के दीर्घकालीन हित के विरूद्ध (Against Long Term Interest of the Country) - बहुराष्ट्रीय निगमों की आलोचना इस आधार पर भी होती है कि ऐसी कम्पनियाँ दीर्घकालीन आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति में अनुपयुक्त होती है क्योंकि इनकी स्थापना से देश को अल्पकालीन तीव्र विकास लक्ष्य को प्राप्त करने में तो मदद मिलती है जबकि दीर्घ काल में इन कम्पनियों द्वारा देश से अधिक मात्रा में लाभ कमा कर देश से बाहर भेजा जाता है जिससे देश की पूँजी बचत व विनियोग पर विपरीत प्रभाव भी पड़ता है।

6. लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए खतरा (Dangerous for Small and Cottage Industries) - भारत जैसे विकासशील देश में पूँजी की कमी के कारण लघु एवं कुटीर उद्योग औद्योगिक ढाँचे की रीढ़ माने जाते हैं। ये लघु एवं कुटीर उद्योग निम्न आय वर्ग वालों, पिछड़े क्षेत्रों, परम्परागत आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन रोजगार के अवसर आदि के लिए वरदान माने जाते हैं । बहुराष्ट्रीय नियमों की स्थापना एवं विकास होने से लघु एवं कुटीर उद्योग इनके समक्ष व्यापारिक प्रतिस्पर्धा में कहीं नहीं टिक पाते हैं, परिणामस्वरूप ये बन्द होने लगते हैं। भारत जैसे समतामूलक समाज के लिए इस प्रकार की प्रवृत्ति निश्चित रूप से चिंता का विषय है। जिसके आधार पर बहुराष्ट्रीय नियमों की आलोचना की जाती है।

7. व्यवसाय में अनैतिकता (Immorality in Business) - बहुराष्ट्रीय निगम अधिकाधिक लाभ कमाने व प्रभुत्व स्थापित करने के कारण नैतिकता पर बहुत कम ध्यान दे पाती है। ये अपने उद्देश्य की प्राप्ति करने के लिए अन्तरण मूल्य नीति, कपटपूर्ण व्यवहार, भ्रष्टाचार, राजनीतिक हस्तक्षेप आदि अनैतिक कार्यो को बढ़ावा देते हैं। भारत जैसे देश जहाँ नैतिकता का सर्वोपरि स्थान है वहाँ ऐसे अनैतिक कार्य देश व समाज दोनों के लिए अहितकर एवं चिन्ता का विषय है।

इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बहुराष्ट्रीय निगम अपने निजी स्वार्थ को पूरा करने व विभिन्न देशों की कमजोरियों तथा मजबूरियों का फायदा उठाकर

अपने लाभों व प्रभुत्व को बढ़ाने का सदैव प्रयास करती रहती है जो उनके लिए लाभप्रद तो हो सकता है परन्तु अन्य के लिए नहीं।

बहुराष्ट्रीय निगमों की भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में भूमिका के अध्ययन के साथ-साथ इन नियमों के दोष, सीमाएं आलोचनाएं आदि को भी ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष स्वरूप यही कहा जा सकता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास व अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता है साथ ही साथ इन कम्पनियों से उत्पन्न दोष या चुनौतियों को भी ध्यान में रखना होगा। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति व समाज की संरचना को देखते हुए बहुराष्ट्रीय निगमों की स्थापना की शर्तें व व्यापारिक गतिविधि भी ऐसी निर्धारित की जानी चाहिए जो भारतीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए प्रेरक व उपयोगी हों तथा घरेलू उद्योग धन्धों को भी बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ संयुक्त उपक्रम लगाने पर विशेष बल देना चाहिए। उदारीकरण के इस दौर में भारतीय अर्थव्यवस्था में विद्यमान विभिन्न उद्योगों को इस प्रकार विकसित करना चाहिए,जिससे वे उद्योग आवश्यकता पड़ने पर बहुराष्ट्रीय निगमों से प्रतिस्पर्धा कर सकें। इससे घरेलू उद्योग व बहुराष्ट्रीय निगमों दोनों को विकास एवं विस्तार होगा परिणामस्वरूप देश का समग्र विकास सम्भव होगा।

विदेशी निजी पूँजी एवं बहुराष्ट्रीय निगमों पर नियन्त्रण (Control Over Foreign Private Capitall and MNCs) - भारत में निजी विदेशी पूँजी पर नियन्त्रण की जिम्मेदारी कई अलग-अलग सरकारी एजेंसियों पर रही हैं जैसे (1) कम्पनी विधि विषयक मन्त्रालय (Ministry of Company Affairs), (2) भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India), (3) औद्योगिक विकास मंत्रालय (Ministry of Industrial Development), (4) वित्त मंत्रालय (Ministry of Finance)। परन्तु इन विभिन्न एजेन्सियों के कार्यों के बीच कोई तालमेल नहीं रहा है। प्रत्येक विभाग अपने संकीर्ण पहलू से निजी विदेशी पूँजी के मामले पर विचार करता रहा है। इसके अलावा विदेशी कम्पनी के हर प्रस्ताव की अलग-अलग जांच की जाती रही है और कभी भी इस बात की जांच नहीं की गई कि उसका भारत के बाहर दूसरे उपक्रमों के साथ क्या सम्बन्ध है।

माइकल किडरान के 1965 में प्रकाशित महत्वपूर्ण अध्ययन Foreign investment in India के परिणामस्वरूप तथा 1968 में औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति जाँच समिति रिपोर्ट के प्रकाशन से आर्थिक क्षेत्रों में यह विश्वास जमने लगा कि विदेशी टेक्नोलॉजी भारत के लिए मंहगी सिद्ध हुई है और इससे देश की विदेशों पर निर्भरता बढ़ रही है। कुछ अन्य अर्थशास्त्रियों के अध्ययन से भी इसी प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त हुए। इसके परिणामस्वरूप निम्न दिशाओं में सरकारी नीति को और कड़ा बना दिया गया।

(1) कुछ उद्योगों में टैक्नोलॉजी के आयात पर रोक लगा दी गई । इस सम्बन्ध में सरकारी नीति के दो पहलू थे - (1) अनावश्यक उपभोग वस्तुओं में और नए तकनीकी आयात की अनुमति नहीं दी जाएगी (इससे विद्यमान घरेलू और विदेशी उत्पादकों को नए तकनीकी आयात से स्वतः संरक्षण मिल गया। तथा (2) जिन क्षेत्रों में उपलब्ध घरेलू क्षमता काफी है उनमें टैक्नोलॉजी का आयात नहीं किया गया। (2) जिन उद्योगों में टैक्नोलॉजी के आयात की अनुमति दी गई उनमें रायल्टी की अधिकतम दर निश्चित कर दी गई (3) कुछ विशिष्ट उद्योगों में सिद्धान्त रूप से विदेशी निवेश की इजाजत दी गई परन्तु विभिन्न व्यक्तिगत स्थितियों में निर्णय प्रशासन पर छोड़ दिया गया (4) समझौतों की अनुज्ञेय विधि दस वर्षों से घटाकर पांच वर्ष कर दी गयी और नवीकरण के बारे में कड़ा दृष्टिकोण अपनाया गया (5) निर्यातों पर प्रतिबन्धों तथा अन्य विपणन सम्बन्धी प्रतिबन्धों की इजाजत नहीं दी गयी और उत्पादन के एक निश्चित अनुपात को निर्यात करने का प्रावधान रखा गया (6) समझौतों में ऐसी व्यवस्था रखने की बात की गयी कि आयातक को टैक्नोलॉजी का अन्तरण करने की अनुमति होगी, तथा (7) विज्ञान व औद्योगिक अनुसंधान परिषद को टैक्नोलॉजी आयात के पूर्व प्रार्थना पत्रों का परीक्षण करने की अनुमति दी गई और व्यवस्था रखी गई कि यदि उसके अनुसार ऐसी टैक्नोलॉजी देश में ही उपलब्ध है अथवा वह स्वयं इस टैक्नोलॉजी को सप्लाई कर सकती है तो टैक्नोलॉजी के आयात की अनुमति नहीं दी जाएगी (या कम से कम जल्दी व आसानी से नहीं दी जाएगी)।

विदेशी कम्पनियों की गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण कदम उठाया गया वह था विदेशी विनिमय नियमन (FERA) अधिनियम जिसे 1973 में अपनाया गया।

4.8 बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका का मूल्यांकन (Appraisal of the Role of MNCs)

चूँकि विदेशी पूंजी द्वारा सहायता प्राप्त करने वाले देश के औद्योगिक व आर्थिक विकास में हस्तक्षेप के द्वार खुल जाते हैं, इसलिए राष्ट्रवादी विचारधारा के लोग विदेशी पूँजी का विरोध करते हैं। विदेशी पूंजी के भारतीय अर्थव्यवस्था पर निम्नलिखित हानिकारक प्रभाव पड़े हैं :

1. **लाभांश व रॉयल्टी की अदायगी (Payments of dividends and royalty)** - भारत से दूसरे देशों को लाभांश, ब्याज, रॉयल्टी, तकनीकी सेवाओं के लिए शुल्क तथा तकनीशियनों के वेतन के रूप में प्रतिवर्ष विदेशी मुद्रा के रूप में बहुत बड़ी राशि का भुगतान होता है।

2. आर्थिक संरचना का विरूपण (Distortion of economic structure)- विदेशी पूँजी देश की अर्थव्यवस्था पर काफी बुरा प्रभाव डाल सकती है। कई बार इसके कारण घरेलू उद्यम योग्यताओं को पनपने का मौका नहीं मिलता,अल्पाधिकारिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है। अर्थव्यवस्था में पुरानी टैक्नोलॉजी का प्रयोग और अनुपयुक्त वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है तथा उत्पादन संरचना में उच्च आय वर्गों की मांग को पूरा करने के लिए परिवर्तन किए जाते हैं। जैसाकि पहले कहा जा चुका है भारत में विदेशी पूंजी कई अनावश्यक उद्योगों जैसे शृंगार के प्रसाधनों, टूथपेस्ट, बिस्कुट, बाल पेन, फाउन्टेन पेन इत्यादि में लगी हुई है।

3. राजनैतिक हस्तक्षेप (Political interference) - अपनी व्यापक वित्तीय एवं तकनीकी शक्ति के कारण बहुराष्ट्रीय निगमों के पास अब इतनी ताकत आ गयी है कि वे अल्पविकसित देशों के नीति-निर्णयों पर राजनैतिक प्रभाव डाल सकने में सक्षम हो गए हैं। इन बहुराष्ट्रीय निगमों के अनुचित राजनैतिक हस्तक्षेप के कारण कई छोटे-छोटे अल्पविकसित देशों की स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता कम हुई है और उनकी स्वायत्तता खतरे में है। यही कारण है कि अल्पविकसित देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों की गतिविधियों को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है और उन पर नियन्त्रण लगाने के लिए कई तरह के कानून बनाए गये हैं एवं प्रशासनिक नियन्त्रणों की व्यवस्था की गई हैं।

4. तकनीकी सहायता हमेशा विकास में सहायक नहीं होती (Technical Assistance is not always conducive to development) -जहाँ तक अल्पविकसित देशों को तकनीकी सहायता का प्रश्न है, बहुराष्ट्रीय निगमों का व्यवहार-पैटर्न यह दिखाता है कि अल्पविकसित देशों में अनुसन्धान व विकास गतिविधियाँ नहीं करते। उनके ये प्रयास अपने मूल देश में अथवा किसी अन्य विकसित देश में होते हैं। यह निश्चय ही चौंकाने वाली बात है कि यद्यपि अनुसन्धान व विकास की विधियाँ विकसित देशों में केन्द्रित रहती हैं तथापि उनकी कीमत अल्पविकसित देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों की सहायक कम्पनियों को अपनी बिक्री के अनुपात में विदेशी मुद्रा के प्रेषण द्वारा चुकानी पड़ती है। विदेशी मुद्रा के रूप में यह प्रेषण रॉयल्टी व तकनीकी फीस के अलावा है। इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि कभी-कभी बहुराष्ट्रीय निगम, जिनकी अपने उत्पादन क्षेत्र में एकाधिकारिक या अर्द्ध-एकाधिकारिक स्थिति होती है,अपनी सर्वोत्तम टैक्नोलॉजी का अन्तरण अल्पविकसित देशों में नहीं करते अपितु पुरानी व प्रयोग न आ सकने वाली टैक्नोलॉजी का अन्तरण करते हैं। अपनी मजबूत सौदाकारी शक्ति का फायदा उठाकर बहुराष्ट्रीय निगम कड़ी शर्तों पर तकनीक अन्तरण करते हैं। कई बार तकनीक अन्तरण घरेलू बाजार का लाभ उठाने के लिए किया जाता है। इसके अलावा, बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा अक्सर पूंजी प्रधान तकनीकों का अन्तरण किया जाता है जो भारत जैसे अत्यधिक श्रम पूर्ति वाले देश के लिए उपयुक्त नहीं माना जा सकता ।

4.9 सारांश (Summary)

भारत में बहुराष्ट्रीय निगमों का इतिहास काफी पुराना है स्वतंत्रता के पूर्व भारत में विदेशी पूँजीपतियों का ही प्रभुत्व था। लगभग सभी आर्थिक क्रियाओं का संचालन इन्हीं विदेशी कम्पनियों द्वारा होता था कोयला खदान, जूट, जहाजरानी, बैंकिंग, चाय बागान, बीमा, रेलवे आदि सभी में विदेशी (ब्रिटिश) कम्पनियों का प्रभुत्व था। स्वतंत्रता के बाद सरकार द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था की बिगड़ी हालत सुधारने के लिए औद्योगिक नीति एवं पंचवर्षीय योजना की घोषणा की गई जिसमें घरेलू उद्योगों को विशेष महत्व एवं संरक्षण दिया गया। लगभग तीन दशकों तक सरकार की नीति विदेशी पूंजी के प्रति बहुत उदार नहीं थी। 1991 से भारत में उदारीकरण निजीकरण व भूमण्डलीकरण की जो नीति अपनाई गयी इसी के फलस्वरूप लगभग हर क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का तेजी से आगमन हुआ एवं विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के मामले में भारत एक पसंदीदा देश के रूप में पहचाना जाने लगा।

पूरे विश्व में वर्तमान समय में इनकी संख्या 40,000 से ज्यादा है एवं 2,50,000 से ज्यादा इनकी सहायक कम्पनियाँ हैं। विश्व की 200 बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का पूरे विश्व के उत्पादन के एक चौथाई उत्पादन पर अधिकार है। 1998 के आंकड़ों के हिसाब से इन 200 बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की कुल बिक्री से आय 7.1 ट्रिलियन डालर थी जो 182 देशों के सकल घरेलू उत्पाद के कुल जोड़ से भी अधिक था।

बहुराष्ट्रीय निगम एक ऐसी कम्पनी या उद्यम होते हैं जो एक से अधिक देशों में फैले रहते हैं, अनेक देशों में इनका अनुसंधान एवं विकास कार्य होता है,प्रबन्ध बहुराष्ट्रीय होता है तथा स्वामित्व भी बहुराष्ट्रीय होता है। इन निगमों की उत्पादन तकनीक बहुत उन्नत होती है और इनकी ख्याति विश्व भर में फैली होती है ।

पिछले कुछ वर्षो से विदेशी विनियोग एवं सहयोग के प्रति भारत सरकार की नीति अत्यन्त उदार होने की वजह से विदेशी विनियोग एवं सहयोग के अनेक ऐसे समझौते भी हुये जिनकी हमें आवश्यकता नहीं थी। स्वतंत्रता के बाद जितने भी बड़े उद्योग स्थापित हुये उनमें लगभग सभी में किसी न किसी प्रकार का विदेशी सहयोग मौजूद रहा है।

विश्व में लगभग सभी देशों में बहुराष्ट्रीय निगमों के विस्तार एवं लोकप्रियता के लिए कुछ कारक जिम्मेदार रहे हैं इसमें प्रमुख है - देश विदेश तक फैला बाजार, विपणन की श्रेष्ठतम रणनीति, अत्यधिक सुदृढ़ वित्तीय स्थिति, तकनीकी रूप से श्रेष्ठ तथा उत्पाद विकास एवं नवीकरण में आगे होना हैं ।

हमारे देश में बहुराष्ट्रीय निगमों का अर्थव्यवस्था के विकास में भारी योगदान रहा है। भारत की अर्थव्यवस्था को लाभ प्राप्त हुये उनमें प्रमुख हैं - देश के औद्योगीकरण में सहायक उपलब्ध साधनों का उचित विदोहन, आधुनिक उत्पादन तकनीकों का लाभ, शोध एवं विकास को प्रोत्साहन, विपणन का विस्तार, उपभोक्ताओं को सस्ती एवं अच्छी वस्तुयें मिलना, रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध होना इन लाभों के बावजूद बहुराष्ट्रीय निगमों की कुछ कमियाँ भी रही हैं जैसे - उपभोक्ताओं का शोधन, क्षेत्रीय असमानता में वृद्धि, तकनीक या ऊँचा मूल्य वसूलना, राष्ट्रीय हित एवं आदमी की अनदेखी, लघु एवं कुटीर उद्योगों को नुकसान, दीर्घकालीन राष्ट्रीय हित के विरूद्ध, व्यवसाय में अनैतिकता को बढ़ावा आदि।

भारत में विदेशी पूंजी एवं बहुराष्ट्रीय निगमों पर नियंत्रण के लिए समय-समय पर अनेक उपाय किये गये। कम्पनी मंत्रालय, रिजर्व बैंक, औद्योगिक विकास मंत्रालय, वित्त मंत्रालय आदि के द्वारा अपने अपने ढंग से अनेक प्रतिबन्धात्मक एवं नियामक उपाय किये। 1973 में लागू विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम एक प्रमुख प्रावधान रहा है।

यदि हम बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका का मूल्यांकन करें तो पाते हैं कि इन बहुराष्ट्रीय निगमों ने भारतीय अर्थव्यवस्था को अनेक प्रकार से नुकसान भी पहुँचाया है। इन निगमों ने आर्थिक संरचना का एक प्रकार से निरूपण कर दिया है। जिन क्षेत्रों में इनकी आवश्यकता नहीं थी वहां भी अपने पैर जमा लिये हैं। अपनी व्यापक वित्तीय एवं तकनीकी शक्ति के कारण बहुराष्ट्रीय निगम इतने ताकतवर हो गये हैं कि वे अब राजनैतिक दखलन्दाजी भी करने लगे हैं। विदेशी तकनीक से हमेशा उन्हीं का हित हुआ है, तकनीक पाने वाले देश को इसकी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति व समाज की संरचना को देखते हुए बहुराष्ट्रीय निगमों की स्थापना एवं उनकी व्यापारिक गतिविधियों को इस प्रकार निर्धारित किया जाना चाहिए,जो भारतीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिये प्रेरक व उपयोगी हो एवं घरेलू उद्योग-धन्धों को नुकसान न पहुँचाये।

4.10 शब्दावली (Key words)

बहुराष्ट्रीय निगम - ऐसी उद्यम जिसकी क्रियायें अपने देश के बाहर कई देशों तक फैली रहती हैं।

संयुक्त उपक्रम - ऐसे वाणिज्यक अथवा औद्योगिक प्रतिष्ठान जिसमें दो या दो से अधिक पक्ष विभिन्न देशों के हों।

घरेलू टेक्नालॉजी - ऐसी तकनीक जो अपने देश में उसकी परिस्थितियों के अनुरूप विकसित की गई हो।

फेरा - विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम, 1973

फेमा - विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम, 1999

4.11 अभ्यास के लिए प्रश्न (Question for Exercise)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long answer questions)

1. बहुराष्ट्रीय निगम की क्या विशेषतायें होती हैं? इनके लाभों के बारे में बताइये।

   What are the characteristics of MNCs? Discuss their advantages.

2. बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रति भारत सरकार की क्या नीति रही है? इनके दोषों एवं सीमाओं को बताइये।

   What has been the Government of India's Policy towards MNC's Describe their demerits and limitation.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Question)

3. बहुराष्ट्रीय निगमों के विस्तार के क्या कारक जिम्मेदार रहे हैं?

   What have been the factors responsible for the expansion of MNCs?

4. बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका पर एक टिप्पणी लिखिये ।

   Write a short note on the Role of MNCs.

4.12 सन्दर्भ पुस्तकें (Suggested Readings)

Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.

MS-3, IGNOU Course Material: Economic and Social Environment.

Tandon, BB, Indian Economy: Tata Mcgraw Hill, New Delhi.

मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

मिश्रा जे.एन., भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।

माथुर जे.एस., व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

पंत ए.के., व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

सिन्हा वी.सी., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा.लि., आगरा।

मालवीया ए.के. व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।

सिंह एस.के., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई - 5 विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation)

इकाई की रूपरेखा-

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य एवं कार्य
5.2.1 उद्देश्य
5.2.2 कार्य
5.3 विश्व व्यापार संगठन के सम्मेलन
5.4 दोहा घोषणा पत्र
5.5 विश्व व्यापार संगठन समझौता
5.6 विश्व व्यापार संगठन पर प्रभाव
5.6.1 भारत पर बुरे प्रभाव
5.6.2 भारत को लाभ
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास के लिए प्रश्न
5.10 संदर्भ पुस्तकें

5.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप को जानकारी मिलेगी -

- विश्व व्यापार संगठन की स्थापना कब और कैसे हुई,
- विश्व व्यापार संगठन के कार्यों एवं उद्देश्यों की,
- विश्व व्यापार संगठन के विभिन्न सम्मेलनों के बारे में, तथा
- विश्व व्यापार संगठन का भारत की अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव रहा।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

1944 में ब्रेटनवुड सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना के साथ ही

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की भी स्थापना की सिफारिश की गई थी। लेकिन आम सहमति न बनने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना नहीं की जा सकी। इसके बाद 1947 में जेनेवा (स्विट्जरलैण्ड) में 23 देशों द्वारा सीमा शुल्क से सम्बन्धित एक सामान्य समझौते पर हस्ताक्षर किये गये जिसे प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (General Agreement on Tarrif and Trade- GATT) के नाम से जाना जाता है। वास्तव में गैट का मुख्य उद्देश्य प्रशुल्क को कम करके अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की बाधाओं को दूर कर सदस्य देशों के आर्थिक विकास को तीव्र करना था। गैट ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये तीन सिद्धान्तों (अ) भेदभाव रहित व्यापार को बढ़ावा देना, (ब) व्यापार पर न्यूनतम प्रतिबन्ध लगाना एवं (स) आपसी विचार-विमर्श से व्यापारिक विवादों का निपटारा करना, को स्वीकार किया।

बहुत सी कमियों के बावजूद गैट के सदस्य देशों की संख्या लगातार बढ़ती रही। 1995 तक यह संख्या 128 पहुँच गयी। गैट की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि व्यापार में अवरोधों को कम करने के लिये एक निरन्तर विचार-विमर्श का फोरम बना तथा व्यापक व्यापारिक उदारीकरण प्राप्त हुआ। लेकिन कृषि के क्षेत्र में सब्सिडी, विकसित देशों को विशेष दर्जा तथा कपड़ा उद्योग के क्षेत्र में मल्टी फाइबर एग्रीमेन्ट्स को लेकर विवाद तथा आलोचना की स्थिति बनी रही।

गैट की 8वें दौर की वार्ता जो उरूग्वे में 1986 से शुरू हुई, 1994 तक चली और जेनेवा में समाप्त हुई। 15 अप्रैल 1994 की वार्ता के दौरान एक समझौता हुआ जिसमें सभी सदस्य-देश इस बात पर सहमत हुये कि गैट को समाप्त कर विश्व व्यापार संगठन की स्थापना की जाय।गैट की आठवें दौर की वार्ता में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का प्रस्ताव गैट के तत्कालीन महानिदेशक आर्थर डंकल द्वारा किया गया था इसलिये डंकल प्रस्ताव के नाम से जाना जाता है।

लगभग पाँच दशक तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की निगरानी करने वाली संस्था गैट का अस्तित्व 12 दिसम्बर 1995 को समाप्त हो गया। 1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन की स्थापना कर दी गई। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना में भारत संस्थापक सदस्य के रूप में शामिल हुआ। जून 2008 तक विश्व व्यापार संगठन को सदस्य देशों की संख्या 151 थी।

सदस्यता व संगठन का मुख्यालय (Membership and Head Quarter)

1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना हो चुकी थी। यह एक शक्तिशाली संगठन बन कर उभर गया है। विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय गैट के मुख्यालय के समान ही जेनेवा में स्थित है। यह एक स्थायी संगठन है। विश्व व्यापार संगठन के कार्यों का संचालन करने के लिए निम्न व्यवस्था को अपनाया गया

है।

1. **सचिवालय** - विश्व व्यापार संगठन के संचालन के लिए एक सचिवालय की स्थापना की गयी है। यह संगठन अपने सचिवालय की देख-रेख में काम करता है। सचिवालय के प्रमुख को महानिदेशक कहा जाता है। महानिदेशक को सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं।

2. **मंत्रियों का सम्मेलन -** समय-समय पर सदस्य देशों के व्यापार एवं वाणिज्य मंत्रियों का सम्मेलन बुलाया जाता है। इस सम्मेलन में व्यापार-वाणिज्य मंत्री की अनुपस्थिति में मंत्री के द्वारा नामित सदस्य भी भाग ले सकते हैं। इस सम्मेलन में व्यापार, पर्यावरण व भुगतान सम्बन्धी निर्णयों पर विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण कार्यों को करवाने के लिए मंत्रियों का संगठन अलग-अलग समितियों का गठन करता है जो विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होता है।

3. **सामान्य परिषद -** विश्व व्यापार की सफलता के लिए यह संगठन सामान्य परिषदों का गठन करता है। मन्त्रिपरिषद के द्वारा लिये गये निर्णयों को लागू करने में इन परिषदों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विश्व व्यापार संगठन पर्यावरण के बारे में बहुत अधिक जागरूक है, वह इसके लिए अलग से एक परिषद् का गठन कर चुका है।

4. **बहुपक्षीय समझौतों के लिए परिषदों का गठन** - विश्व व्यापार संगठन को अपने उद्देश्य में सफल होने के लिए अलग-अलग परिषदों का गठन करना होता है। इसे विभिन्न प्रकार के समझौते करने होते हैं। उदाहरण के लिए, व्यापारिक निवेश सम्बन्धी समझौतों के लिए परिषद् का गठन करना, टेक्सटाइल व वस्त्रों पर समझौते के लिए परिषदों का गठन आदि।

5.2 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य व कार्य (Objectives and Functions of World Trade Organisation)

विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य व कार्यों को नीचे दिया गया है -

5.2.1 उद्देश्य -

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की गयी थी-

(1) विश्व व्यापार संगठन का मुख्य उद्देश्य विश्व में पर्यावरण की सुरक्षा को बनाये रखना है। वह विशेषकर अपने सदस्य देशों को ऐसा करने के लिए दबाव बनाता है।

(2) विश्व में जो भी प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध है उन सब संसाधनों को मितव्यतापूर्वक

दोहन करवाने के लिए सदस्य देशों को परिपत्र भेजना।

(3) विकसित एवं विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए उत्पादन एवं रोजगार को बढ़ाना। इससे लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार होगा। अतः विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का उद्देश्य यही था कि लोगों के आर्थिक स्तर में सुधार लाया जाय।

(4) विकास की अवधारणा को जीवित रखना तथा सतत् विकास के प्रवाद को बनाये रखना।

(5) विश्व व्यापार संगठन का उद्देश्य विश्व की आर्थिक दशा में लगातार परिवर्तनों के कारण जो बदलाव हो रहे हैं, उसके अनुसार नयी व्यापारिक नीति को विश्व व्यापार में प्रतिस्थापित करना था।

(6) विश्व व्यापार में जो विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही हैं अथवा पक्षपाती नीति अपनायी जा रही है उसे समझौते के आधार पर दूर करना।

(7) विश्व व्यापार संगठन ने उपभोक्ताओं के हितों की अनदेखी नहीं की है। इसका उद्देश्य यह है कि उपभोक्ताओं को कम कीमत पर अच्छी वस्तुएं उपलब्ध हो सकें। अतः वह देशों के बीच में उत्पादक प्रतियोगिता को बढ़ाने का प्रयत्न करता हैं ।

5.2.2 विश्व व्यापार संगठन के कार्य (Function of WTO) -

विश्व व्यापार संगठन के कार्य निम्नलिखित हैं-

(1) विश्व स्तर पर आर्थिक नीतियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक के साथ सहयोग स्थापित करना।

(2) विश्व व्यापार संगठन एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है जिसमें उरूग्वे चक्र के परिणामों तथा गैट के संशोधित समझौतों को मिला दिया गया है। इसके अनुसार नियमानुसार कार्य करना।

(3) विश्व व्यापार संगठन की दो इकाइयाँ हैं - Dispute Settlement Body (DSB) और Trade Policy Review Body (TPRB)। इन दोनों इकाइयों के सहायता के लिए तीन परिषदों का गठन किया गया है। यदि कोई देश किसी देश के व्यापार में बाधा डालता है या WTO के नियमों का उल्लंघन करता है, तो WTO का महाप्रबन्धक विशेषज्ञों की एक समिति बनाकर उसकी आख्या माँगेगा और उसे DSB के पास कार्यवाही के लिए भेज देगा। यदि किसी देश का जुर्म स्थापित हो जाता है तो उसे उस देश को क्षतिपूर्ति देनी होगी

जिसे क्षति पहुँचाई गयी थी।

(4) यदि देशों के बीच में व्यापार एवं शुल्क नीति से सम्बन्धित कोई गतिरोध उत्पन्न होता है तो WTO दोनों देशों के बीच में समझौता कराकर गतिरोध को दूर करता है।

(5) व्यापारिक समझौतों को कराना, व्यापार सम्बन्धी नीतियों को बनाना तथा उन्हें लागू कराने का काम करना।

(6) विश्व व्यापार संगठन अपने सदस्य राष्ट्रों को बौद्धिक अधिकार दिलाने का कार्य करता है। तथा विश्व व्यापार में प्रत्येक सदस्य देश के लाभ का निर्धारण करने के लिए नीति निर्धारित करता है।

5.3 विश्व व्यापार संगठन के सम्मेलन (Conferences of WTO)

विश्व व्यापार संगठन में सदस्य देशों के व्यापार वाणिज्य मंत्री देश का प्रतिनिधित्व करते हैं या उनके द्वारा नामित व्यक्ति सम्मेलन में भाग लेते हैं। सर्वोत्तम प्रशासनिक परिषद मंत्री स्तर की कौंसिल है। इसकी बैठक दो वर्ष में एक बार होती है। नीचे इसकी बैठकों की संक्षिप्त बातें दी जा रही हैं।

5.3.1 प्रथम सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन का प्रथम मंत्रिस्तरीय सम्मेलन 9 दिसम्बर 1996 से 13 दिसम्बर 1996 तक सिंगापुर में हुआ था। प्रथम बैठक के समय के विश्व व्यापार संगठन के 125 सदस्य देश उपस्थित थे। इस बैठक में 3 देशों को और सदस्यता प्रदान की गयी थी। इस सम्मेलन में प्रमुख रूप से इन मुद्दों में चर्चा की गई - (1) श्रम मानकों, (2) पूंजी निवेश, (3) सूचना प्रौद्योगिकी (4) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा टेक्सटाइल आदि। विकासशील देश श्रम मानकों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने के पक्ष में नहीं थे, क्योंकि इससे विकासशील देशों को कोई लाभ मिलने वाला नहीं था। विकसित यूरोपीय देश तथा विशेषकर अमरीका इस पक्ष में थे कि श्रम मानकों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ा जाए। विकासशील देशों की दलील थी कि यह विषय विश्व व्यापार संगठन का न होकर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का है। अतः लम्बे विचार-विमर्श के बाद भारत व अन्य विकासशील देशों के इस तर्क को मान लिया गया कि विकासशील देशों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बाधित करने के लिए श्रम मानकों का प्रयोग फिलहाल नहीं किया जायेगा।

5.3.2 द्वितीय सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन का दूसरा महत्वपूर्ण सम्मेलन जेनेवा में 18 मई 1998 से 20 मई 1998 तक चला। इस सम्मेलन में भाग लेने वाले 132 देशों के व्यापार एवं वाणिज्य मंत्रिगण शामिल हुए थे। इस सम्मेलन में भी पहले सम्मेलन की तरह ही गरमा-गरम चर्चाएं हुई, क्योंकि विकासशील देशों के द्वारा यह अनुभव किया जाने लगा था कि विश्व व्यापार संगठन पश्चिमी विकसित देशों के हाथ की कठपुतली बनने जा रहा है। वे प्रथम सम्मेलन में इस बात को देश चुके थे। इस दूसरे सम्मेलन में यह महत्वपूर्ण चर्चा का विषय बन गया था कि विश्व व्यापार संगठन क्षेत्रीय व्यापारिक गुटों को बढ़ावा देने जा रहा है। यह एक भेदात्मक नीति थी, जिसका विरोध भारत सहित अन्य विकासशील देशों के द्वारा किया गया था। यह सम्मेलन केवल तीन दिन तक चला था।

5.3.3 तीसरा सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन का तीसरा सम्मेलन 30 नवम्बर 1999 से 3 दिसम्बर 1999 तक अमरीका के सियटल नगर में हुआ था। इस सम्मेलन में 135 सदस्य देशों द्वारा भाग लिया गया था। यह सम्मेलन विगत दो सम्मेलनों की तुलना में हंगामेदार हुआ था। इस सम्मेलन में पुनः श्रम मानकों को उठाया गया था। इसके अतिरिक्त सूची में शामिल किये गये अन्य चर्चित विषयों -(1) कृषि व्यापार, (2) बायो टेक्नोलाजी, (3) बाजार पहुँच, (4) श्रम मानक आदि पर चर्चा होनी थी। परन्तु सदस्य देशों ने यह कहकर विरोध जताया कि कार्य सूची में मानवाधिकार जैसे विषयों को सम्मिलित नहीं किया गया है। अमरीका के द्वारा जो बायो टेक्नोलाजी का प्रस्ताव रखा था, उसका अनेक देशों के द्वारा पुरजोर विरोध किया गया है। इस प्रकार अनेकानेक मुद्दों पर सदस्य देशों की नोक-झोंक होती रहीं जिसके कारण तीसरे सम्मेलन का घोषणा पत्र भी नहीं बन पाया था। हंगामे के बीच सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा कर दी गयी।

इस सम्मेलन से पूरे विश्व के उन सदस्य देशों को काफी निराशा हुई जिन्हें यह आशा थी कि विश्व व्यापार संगठन में उनके हितों का विशेष ध्यान रखा जायेगा। वे इसी उद्देश्य की पूर्ति से इस संगठन में शामिल हुए थे।

5.3.4 चौथा सम्मेलन

विश्व व्यापार का चौथा मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन 9 नवम्बर 2001 से 14 नवम्बर 2001 तक सबसे लम्बा सम्मेलन हुआ। यह सम्मेलन दोहा, कतर, में हुआ था। इसमें मुख्य रूप सें निवेश की बहुपक्षीय व्यवस्था, व्यापार सरलीकरण, पर्यावरण आदि बातों

पर चर्चा करनी थी। भारत ने इस सम्मेलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। दोहा सम्मेलन में जो घोषणा पत्र जारी किया गया उसकी मुख्य बातें आगे दी जायेगी।

5.3.5 पाँचवाँ सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन का पाँचवां मंत्रिस्तरीय सम्मेलन कानकुन में हुआ। इस सम्मेलन में विश्व व्यापार संगठन के 148 देशों के द्वारा भाग लिया गया था। सम्मेलन की कार्य सूची में अनेक विषयों पर चर्चा की जानी थी। इसमें चर्चा के प्रमुख विषय इस प्रकार से थे - औद्योगिक टैरिफ वार्ता बौद्धिक सम्पत्ति, कृषि मानवीय सेवाएँ,गैर कृषि वस्तुओं का बाजार प्रवेश, व्यापार सम्बन्धी अधिनियम, विवादों का समझौता, पर्यावरण ,व्यापार तकनीक का हस्तान्तरण आदि।

कानकुन सम्मेलन में महत्वपूर्ण बातों पर चर्चा की गयी थी। इस सम्मेलन में प्रथम मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन जो 1996 में सिंगापुर में हुआ था उसकी महत्वपूर्ण बातों पर भी चर्चा की गयी थी। सिंगापुर मुददे की प्रमुख बातें जैसे - व्यापार एवं निवेश, व्यापार एवं प्रतियोगिता, सरकारी खरीद तथा सुगम व्यापार-व्यवस्था आदि पर सदस्य देशों की सहमति नहीं हो सकी थी। विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य जो भेद बना हुआ था उस पर भी सहमति नहीं हो सकी थी। । यहाँ यह बताना आवश्यक है कि विश्व व्यापार संगठन में एक ग्रुप में 22 देश हैं जिसे हम जी-22 के नाम से जानते हैं। इस ग्रुप में इन देशों को रखा गया है- चिली, ब्राजील, भारत, क्यूबा, ग्वाटेमाला, अर्जेण्टीना, चीन, कोलम्बिया, पेरू, पेराग्वे, नाइजीरिया, इण्डोनेशिया, मैक्सिको, पाकिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, थाईलैण्ड, बोलिविया, इक्वाडोर, इजिप्ट, फिलीपीन्स, वेनेजुएला तथा कोस्टारीका। दूसरा ग्रुप विकसित देश का है जिसमें अमेरिका,जापान तथा यूरोपीय संघ के देश शामिल हैं।

विकसित देशों के द्वारा कृषि सब्सिडी को धीरे-धीरे समाप्त करने के विषय में कोई सहमति नहीं बन पायी है। विकासशील देशों का कहना था कि यूरोपीय संघ के देशों व अमरीका ने कभी भी कृषि सब्सिडी की समस्या को प्रभावी ढंग से नहीं उठाया है।

यहाँ यह भी कहा जाता है कि विश्व व्यापार संगठन ने जी-22 के देशों की समस्या को प्रभावी ढंग से नहीं लिया है। कानकुन सम्मेलन के प्रारम्भ होने से कुछ समय पूर्व व्यापार सम्बन्धित बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार (Trade Related Intellectual property Rights - TRIPS) के कुछ पहलुओं तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के विषय में समझौता हो गया था। कई ऐसे विषय अभी भी अनसुलझे रहे हैं, जबकि इनके पूरा करने की समय अवधि बीत चुकी है इस प्रकार यह कहा जाता हैं कि विश्व व्यापार संगठन उस प्रभावी ढंग से कार्य नहीं कर पाया है जैसा कि उससे उम्मीद थी।

5.3.6 छठवाँ मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन

149 सदस्यीय विश्व व्यापार संगठन के 13-18 दिसम्बर 2005 को हांग-कांग (चीन) में सम्पन्न छठे मंत्रिस्तरीय सम्मेलन मे विकासशील देशों ने ग्राण्ड एलायन्स (जी-110) बनाकर एकजुटता दिखाई जिससे विकसित देशों को कृषि सब्सिडी समाप्त करने को सहमत होना पड़ा। साथ ही औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्क से जुड़े मुद्दों पर भी विकासशील देशों को कुछ राहत प्रदान करने को विकसित देश सहमत हुए इससे वर्ष 2006 के अन्त तक नये अर्न्राष्ट्रीय व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया।

हांगकांग घोषणा पत्र-6 दिन चले विश्व व्यापार संगठन सम्मेलन में कृषि सब्सिडी औद्योगिक उत्पादों पर प्रशुल्क व सेवाओं के व्यापार आदि संवेदनशील मुद्दों पर विकसित एवं विकासशील देशों के बीच विचार होता रहा। अन्तिम दिन 18 दिसम्बर 2005 को सहमति बन सकी, जिसके पश्चात हांगकांग घोषणा पत्र जारी किया गया। इसकी प्रमुख बातें निम्न हैं :-

(1) घोषणा पत्र के अनुसार विकसित देश अपनी कृषि निर्यात सब्सिडी को चरणबद्ध तरीके से 2013 तक पूर्णतः समाप्त करने को सहमत हुए।

(2) कृषि व्यापार समझौते में विकासशील देशों के लिए पर्याप्त ढील की व्यवस्था की गई। इसमें यह सुनिश्चित किया गया कि भारत जैसे विकासशील देशों को कृषि क्षेत्र की योजनाओं पर किये जाने वाले शासकीय व्यय में कटौती की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

(3) कृषि क्षेत्र के विकास से सम्बन्धित सभी योजनाओं को विश्व व्यापार संगठन के नियमों की परिधि से बाहर रखा गया।

(4) विकासशील देशों के औद्योगिक आयातों पर प्रशुल्क कटौती (Non-Agricultural Market Acces-NAMA) के सम्बन्ध में यूरोपीय संघ द्वारा प्रस्तुत स्विस फार्मूले को अर्जेन्टीना, ब्राजील व भारत द्वारा लाए गये प्रस्तावों को घोषणा पत्र में स्वीकार कर लिया गया, इससे विकासशील देशों को थोड़ी बहुत राहत मिल पायेगी।

विश्व व्यापार संगठन का लघु मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन

दोहा वार्ता में विकसित देशों द्वारा अपने किसानों को दी जा रही भारी कृषि सब्सिडी मुद्दे पर दोहा दौर की वार्ता के गतिरोधों को दूर करने के उद्देश्य से संगठन का लघु मन्त्रिस्तरीय सम्मेलन 29 जून से 2 जुलाई 2006 तक जेनेवा में सम्पन्न हुआ, किन्तु भारत के बहिष्कार के चलते यह सम्मेलन असफल हो गया।

भारत के वाणिज्य मंत्री श्री कमल नाथ के नेतृत्व में विकासशील देशों ने अपने यहाँ के किसानों के हितों को ध्यान में रखते हुए इस प्रस्ताव पर व्यापक विरोध दर्ज कराया था। इसके चलते वार्ता को स्थगित करना पड़ा। उद्योग मंत्री ने यह कहकर बैठक का बहिष्कार कर दिया कि वहाँ अब बात करने के लिए कुछ भी बचा हुआ नहीं है। उन्होंने कहा कि भारत के 65 करोड़ किसानों की चिन्ताओं को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि वह किसी ऐसी बैठक में मौजूद नहीं रह सकते हैं जिसमें भारतीय किसानों के हितों का ध्यान नहीं रखा जाय। वाणिज्य मंत्री का कहना था कि वे जेनेवा इसलिए नहीं गये थे कि विकसित देशों की अर्थव्यवस्था को उबारने के तौर-तरीकों पर चर्चा की जाय।

5.4 दोहा घोषणा पत्र (Doha Declaration)

दोहा घोषणा पत्र में अनेक प्रकार की बातों को करने का विश्वास दिलाया गया था। घोषणा पत्र में अनेक बातें थीं, उनमें से कुछ बातों को नीचे दिया जा रहा है :-

1. **इलेक्ट्रानिक्स एवं श्रम सम्बन्धी विषय** - विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों के सन्दर्भ में इस बात की घोषणा की गयी थी कि सदस्य देशों में वर्तमान समय में इलेक्ट्रॉनिक्स प्रसारण पर जो प्रशुल्क न लगाने की नीति अपनायी गयी है, वह नीति कुछ समय तक जारी रहे ।

2. **ट्रिप्स एवं जन-स्वास्थ्य** - व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार (Trade Related Intellectual Property Rights : TRIPS) को इस प्रकार से लागू किया जाय कि प्रत्येक सदस्य देश जन-स्वास्थ्य कार्यक्रम अपनाने और उन्हें लागू करने के लिए स्वतंत्र हो सकें। प्रत्येक व्यक्ति तक औषधि आवश्यक रूप से पहुँच सके। TRIPS का मुख्य उद्देश्य है - बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का दुरूपयोग न हो।

3. **व्यापार सम्बन्धी समझौते** - यह एक महत्वपूर्ण घोषणा थी। इसमें (Agreement on Trade Related Investment Measures (TRIPs) के प्रावधानों के अनुसार विश्व व्यापार संगठन के प्रत्येक सदस्य देश को उसके द्वारा विदेशी व्यापार में यदि कोई प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। तो उन सभी प्रावधानों को समाप्त करना होगा। यदि किसी सदस्य देश में कोई बाहरी देश निवेश करता है, तो उसे वहाँ की सरकार वे सब सुविधाएँ उपलब्ध करायेगी जो सुविधाएं वह अपने देश के निवेश करने वाले उद्यमी को देती है। इस घोषणा से स्पष्ट होता है कि जो विकसित देश विकासशील देशों में या जो विकासशील देश विकसित देशों में निवेश करने जायेंगे उनके बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा।

4. **व्यापार एवं सामान्य सेवा समझौता** - घोषणा पत्र में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया था कि सेवाओं में व्यापार का सामान्य समझौता, जिसे हम (General Agreement on Trade in Service or GATS) कहते हैं, उसका सम्बन्ध सेवाओं के विदेशी व्यापार पर लगे प्रतिबन्धों को समाप्त करना है। इस घोषणा पत्र में केवल उन्हीं सेवाओं को शामिल किया गया है जिनके लिए तकनीक की जरूरत होती हैं।

5. **पर्यावरण** - दोहा घोषणा पत्र में पर्यावरण पर विशेष ध्यान दिया गया है। सदस्य देशों से इस बात के लिए आग्रह किया गया है कि उद्योग धन्धों को लगाते समय पर्यावरण सुरक्षा का विशेष ध्यान रखेंगे। इस घोषणा पर सभी सदस्य देशों ने एकमत से अपनी सहमति दे दी थी।

6. **कृषि** - विकासशील देशों की आन्तरिक अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए कृषि को विशेष महत्व देने की बात कही गयी है। कृषि व्यवसाय ही उद्योगों को कच्चा माल आदि उपलब्ध कराता है। जब तक कृषि को महत्व नहीं दिया जायेगा, तब तक आन्तरिक अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं हो सकता है।

7. **श्रम** - श्रम मानकों के सम्बन्ध में काफी चर्चा की गयी थी। विकसित देश विशेषकर अमरीका चाहता था कि श्रम मानकों को विकासशील देशों में इस पर रोष प्रकट करते हुए कहा कि श्रम मानकों की चर्चा विश्व व्यापार संगठन के कार्य क्षेत्र में नहीं आती है।अतः इस मुद्दे की चर्चा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में होनी चाहिए।

8. **निर्यात प्रोत्साहन** - दोहा सम्मेलन के घोषणा पत्र में इस बात को महत्व दिया गया है कि विकासशील देशों के हित में निर्यातों को बढ़ाने के लिए औद्योगिक शुल्क में कटौती की जाय अथवा इसे पूर्णतया समाप्त कर दिया जाय।

9. **गैट के उद्देश्यों की पूर्ति** - घोषणा पत्र में इस बात को स्पष्ट कर दिया गया था कि गैट के उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए पूर्वनिर्धारित समझौतों एवं क्रियाओं के आधार पर समय-समय पर वार्ता जारी रखी जाय।

5.5 विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के मुख्य प्रावधान (Main Provisions of World Trade Organisation Agreements)

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना आर्थिक क्रान्ति के रूप में की गयी थी। सदस्य देशों के द्वारा बहुपक्षीय वार्ताओं व समझौतों के कारण वर्ष 2005 तक विश्व की आय बढ़कर 745 अरब डॉलर तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया था, जो प्राप्त हो चुका है। विश्व व्यापार संगठन के समझौतों के मुख्य प्रावधान निम्न हैं -

1. **निर्यात में वृद्धि** - समझौते में इस बात को प्रमुखता से रखा गया था कि विभिन्न देशों में निर्यात बढ़ाने के लिए देशों के बीच निर्यात प्रतियोगिता को बढ़ाना है।

2. **वस्त्र निर्यात प्रोत्साहन** - विकासशील देशों में विकसित देशों को कपड़ा तथा बने-बनाये कपड़ों के निर्यात को बढ़ावा देने का हर सम्भव प्रयत्न जारी रखने का प्रावधान रखा गया था । उद्देश्य यही लगता है कि विकासशील देशों का अधिकाधिक विकास हो सके।

3. **विदेशी सेवाएँ प्रतिबन्ध रहित** - उच्च तकनीक की विदेशी सेवाओं को प्रतिबन्धों से मुक्त कर देने का समझौता किया गया है। अब कोई भी देश अपने यहाँ बिना रोक टोक के विदेशी सेवा को आयात कर सकता है और अपनी सेवा को विदेशों को दे सकता है।

4. **तकनीकी बाधाओं को दूर करना** - विश्व व्यापार में रूकावटों के कारण जो बाधाएँ आ रही हैं, उन तकनीकी बाधाओं को दूर करने के लिए सदस्य देशों ने जो समझौते किये, उनसे सदस्य देशों को अनेक लाभ मिले हैं। इसके साथ ही यह समझौता भी किया गया था कि प्रत्येक देश विदेशी निवेशकों को भी वहीं सुविधाएँ वे अपने निवेशकों को दे रहे हैं।

5. **विवादों का निपटारा** - समझौते में इस बात को स्पष्ट किया गया है कि व्यापार में आने वाली सभी बाधाओं को दूर कर लिया जायेगा। सभी प्रकार के भेदभाव दूर कर लिए जाएँ ताकि व्यापार का विकास हो सके।

5.6 विश्व व्यापार संगठन का भारत पर प्रभाव (Effects of WTO on India)

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के समय से ही विकासशील देशों के द्वारा इसकी आलोचनाएँ होती रही हैं। अर्थशास्त्रियों का कहना था कि पश्चिमी विकसित देश अपने हितों की रक्षा के लिए विश्व व्यापार संगठन का गठन कर रहे हैं। इसे विकासशील देशों की आर्थिक स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप माना जा रहा था। यहाँ तक कहा जाने लगा था कि विश्व व्यापार संगठन के कारण विकासशील देश विकसित देशों के आर्थिक उपनिवेश बन जायेंगे। भारत के सन्दर्भ में इसके अच्छे व बुरे दोनों प्रभावों को नीचे दिया जा रहा है -

5.6.1 भारत पर बुरे प्रभाव

अर्थशास्त्रियों का मत है कि विश्व व्यापार संगठन से भारत को लाभ की तुलना में हानि अधिक होगी। इस सन्दर्भ में निम्न बातें कह सकते हैं -

1. **भारत विदेशी विनिमय पर नियन्त्रण नहीं लगा सकेगा** - विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अनुसार कोई भी सदस्य देश विदेशी निवेशकों को वही सुविधा देगा, जो सुविधा वह अपने देश के निवेशकों को देता है। इस समझौते का अर्थ यह हुआ कि विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत में प्रवेश करेंगी। विदेशी निवेशकों के पास अत्याधुनिक तकनीक है, पूँजी की कमी नहीं है। उनके प्रवेश पा लेने से देश के निवेशकों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। देश के उद्योग प्रभावित होंगे। प्रतियोगिता में स्वदेशी निवेशकों को हानि भी हो सकती है। विदेशी कम्पनियों का राजनीतिक हस्तक्षेप बढ़ेगा जो स्थिति भारत के सन्दर्भ में है लगभग वही स्थिति अन्य विकासशील देशों की भी हो सकती है।

2. **कृषि व्यवसाय को हानि** - विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अन्तर्गत कृषि के बारे में जो बातें दी गयी हैं उससे भारत की कृषि व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ने लगा है। हमारे देश के किसान को अब बीज व कृषि तकनीक के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दया पर निर्भर रहना होगा। छोटे-छोटे किसानों की दशा और भी खराब हो जायेगी। कृषि व्यवसाय पर जो छूट दी जाती थी, उसमें भी कमी होगी। आलोचकों का यहाँ तक कहना है कि पर्यावरण की दुहाई देकर पश्चिम के विकसित देश भारत से कृषि पदार्थों का आयात नहीं करेंगे। कहा जा सकता है कि विश्व व्यापार संगठन का सबसे बुरा प्रभाव यदि किसी क्षेत्र में देखा जा सकता है तो वह कृषि के क्षेत्र में देखा जा सकता है। आज भारत के किसान सबसे अधिक आत्महत्याएँ करने लगे हैं। विगत 10 वर्षों के भीतर इस बात को देखा जा सकता है।

3. **आर्थिक शोषण** - आलोचकों का कहना है कि भारत जैसे प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न देश में विदेशी कम्पनियों के प्रवेश के कारण भारत का हित कम, विदेशी कम्पनियों का हित अधिक होगा। वास्तव में, आज यह बात सामने आने लगी हैं। विदेशी कम्पनियों के भारत में प्रवेश होने के कारण उनका आर्थिक एकाधिकार बढ़ने लगा है। वे अपनी उच्च औद्योगिक तकनीक की सहायता से धीरे- धीरे आर्थिक शोषण करते जा रहे हैं। यह शोषण चाहे मानव श्रम का हो या बौद्धिक क्षमता का या हमारे प्राकृतिक संसाधनों का। कुल मिलाकर देश को परजीवी बनाने का उपक्रम विश्व व्यापार संगठन के द्वारा किया जा रहा हैं

4. **पेटेन्ट कानून** - विश्व व्यापार संगठन के समझौते के अनुसार औषधियों, कृषि पदार्थों, पशुओं पौधों आदि का पेटेन्ट कराना अति आवश्यक है। क्या धनाभाव के कारण भारत जैसा देश उन तमाम चीजों का पेटेन्ट करा सकता है। उत्तर है - नहीं। इसके विपरीत अमरीका जैसा धनी देश जिसके पास आधुनिकतम प्रयोगशालाएँ हैं उसके द्वारा

ही ऐसा किया जायेगा और वह कर भी रहा है। अतः हमें रॉयल्टी आदि का भुगतान इन विकसित देशों को करना होगा, तभी हम उन वस्तुओं को या सेवाओं को प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकार, अनावश्यक रूप से हमारे देश से विकसित देशों को संचित पूँजी जाने लगेगी। हमारा लाभ शून्य होगा। विदेशियों के भण्डारों में स्वतः ही वृद्धि होगी। वह दिन दूर नहीं जब हमें विदेशों द्वारा पेटेन्ट किये हुए कच्चे माल तक को बड़े पैमाने में आयात करना होगा। कल्पना कीजिए विश्व व्यापार संगठन के द्वारा किन देशों का हित हो रहा है और किन देशों का अहित।

5. **विश्व व्यापार संगठन भारत के लिए छलावा -** इस बात को साधिकार रूप से कहा जा सकता है कि विश्व व्यापार संगठन भारत के लिए छलावा साबित हो गया है। भारत उसके जाल में बिना सोचे समझे फँसा हुआ है। विश्व व्यापार संगठन में अधिकांश समझौते विकसित देशों को लाभ पहुँचाने वाले है। अबन्ध व्यापार नीति, प्रतियोगिता आदि अनेक बातें ऐसी हैं जो भारत देश की सामर्थ्य से बाहर की है। क्या विश्व व्यापार की प्रतियोगिता में भारत विकसित देशों में अपने निर्यात बढ़ा सकता है? जो विदेशी कम्पनियाँ हमारे देश में निवेश कर रही हैं संभवतः उन्हीं के उत्पादों का निर्यात अधिक होगा। हमारा उनकी तुलना में निर्यात कम होगा, लाभ भी उन्हें होगा। जब हम विनिमय नियन्त्रण ही नहीं कर सकते हैं और विदेशी कम्पनियों के प्रभाव क्षेत्र को नहीं रोक पाते हैं, तब विश्व व्यापार संगठन से हमें क्या लाभ मिलने जा रहा है? मात्र वह एक रोते हुए बच्चे को बरगलाने के लिए उसके हाथ में झुनझुना ही दे सकता है, उसका पेट नहीं भर सकता है।

6. **धनिकों का क्लब** - विश्व व्यापार संगठन गैट का ही प्रतिरूप है। लोगों का कहना है कि विश्व व्यापार संगठन विकसित देशों की धनी मानी कम्पनियों का एक क्लब है। विकसित देशों की सरकारें व उनके सदस्य जब चाहें और जैसी चाहें वैसी नीति का पालन करने के लिए विश्व व्यापार संगठन को प्रभावित करते रहते हैं। इस क्लब में विकासशील देशों का हित कम व विकसित देशों का हित अधिक है। इन देशों के निवेशक जब चाहें, तब किसी भी देश में आ-जा सकते हैं और अपने व्यापार को बढ़ा सकते हैं जबकि विकासशील देशों के निवेशकर्ताओं में इतना दमखम नहीं होता है।

7. **बाल श्रमिकों द्वारा निर्मित वस्तुओं के निर्यात पर प्रतिबन्ध** - विश्व व्यापार संगठन की साजिश का एक प्रकरण हाल ही में सामने आया है, जिसमें हमारे देश के कालीन उद्योग पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। हुआ यह कि हारकिन बिल की आड़ में अमरीका, फ्रांस, आदि देशों ने इस बात के लिए विश्व व्यापार संगठन में दबाव बनाया कि जिन वस्तुओं का उत्पादन बाल श्रमिकों के द्वारा किया जा रहा है उन वस्तुओं

के निर्यात व्यापार को बन्द कर दिया जाये। भारत में हीरे की तराशी, कालीन, जरी काम आदि शिशु श्रमिकों के द्वारा किया जाता है। अतः ऐसी नकारात्मक नीति के कारण अनेक लोगों के मुँह से निवाला छीन लिया गया।

8. **निर्यात व्यापार पर पर्यावरणीय प्रभाव** - प्रकृति के साथ छेड़-छाड़ करने का दुष्परिणाम आज पूरा विश्व भोग रहा है। औद्योगिक क्रान्ति, यातायात क्रान्ति, युद्ध सामग्री के विस्फोट, वैज्ञानिक प्रयोग, जल और जंगलों का प्रदूषण आज जानलेवा बन चुका है। ऐसी स्थिति में विश्व व्यापार संगठन ने अपने सदस्य देशों को पर्यावरणीय सुरक्षा का संदेश दिया है। उसका यह प्रयास जहाँ एक ओर सराहना के योग्य है वहीं प्रतिबन्ध ऐसा लगा दिया है कि विकासशील देशों को मुँह की खानी पड़ी है। जिन देशों में पर्यावरण को शुद्ध रखने के सम्बन्ध में कार्य नहीं किये जायेंगे उनसे कोई भी वस्तु आयात नहीं की जायेगी। ऐसी स्थिति में निर्यात व्यापार को काफी धक्का पहुँच सकता है। लगता है इसमें भी विकसित देशों का हित निहित है।

5.6.2 विश्व व्यापार संगठन का भारत को लाभ

अभी ऊपर हमने अनेक तर्कों के आधार पर तथा अनेक अर्थशास्त्रियों के विचारों को आधार मानकर यह बताया है कि विश्व व्यापार संगठन एक ऐसा व्यापारिक संगठन है जो विकासशील देशों का आर्थिक क्लब बनकर रह गया है। भारत जैसे अनेक देशों के हित का उसे ध्यान नहीं है। सच्चाई इसके विपरीत है। जहाँ थोड़ी बहुत बुराई उसमें हैं उसकी तुलना मे विश्व व्यापार संगठन की अनेक अच्छाइयों का लाभ मिल रहा है। उसमें से कुछ बातों को नीचे दिया जा रहा है -

1. **निर्यात में वृद्धि** - भारत को सबसे अच्छा फायदा निर्यात में वृद्धि को होना है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से पूर्व भारत के निर्यात व्यापार का आँकड़ा जो 26.33 अरब डॉलर था, वह विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता लेने के बाद 2002-2003 में बढ़कर 51.70 अरब डॉलर तक पहुँच चुका है।

2. **सूती वस्त्रों के निर्यात में वृद्धि** - भारत सूती कपड़ों व बने-बनाये कपड़ों का प्रमुख उत्पादक देश है। 1974 से कपड़ों के निर्यात पर जो कोटा तय किया गया था उसे विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनने के बाद हटा दिया गया है। अब भारत से अन्य देशों को सिले सिलाये वस्त्रों का निर्यात व्यापार बहुत अधिक बढ़ चुका है।

3. **विदेशी निवेशकों को प्रोत्साहन** - विदेशी निवेशकों को स्वदेश में विनियोग करने की खुली छूट दे देने से भारत में उद्योग धन्धों का विकास होगा। लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध होने लगे हैं। देश के पढ़े-लिखे युवाओं को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में ऊँचा वेतनमान मिलने लगा है।

4. आधुनिक तकनीक का लाभ - भारत में विदेशी कम्पनियों के आगमन से स्वदेशी उद्योगों के साथ उनकी प्रतियोगिता होने लगी है। भारत के उद्योगपति भी विदेशी उद्योगपतियों की देखा देखी आपने उद्योगों में नयी तकनीक का प्रयोग करके उत्पादन को बढ़ाने लगे हैं। इससे जहाँ उत्पादन बढ़ा है, वहीं निर्यात में भी वृद्धि होने लगी है।

5. विदेशी वस्तुओं का लाभ - स्वतंत्र व्यापार व्यवस्था के कारण आयात व निर्यात प्रतिबन्धित न होने के कारण भारत को कम कीमत पर विदेशी वस्तुएँ उपलब्ध होने लगी हैं। इससे पूर्व देश में विदेशों से जो भी वस्तु आती थीं वे चोरी छिपे अथवा तस्करी से ही उपलब्ध हो पाती थीं। ऊँची कीमतों में विदेशी वस्तुएं मिलती थीं। आज सस्ती कीमत में अच्छी विदेशी वस्तुएँ उपलब्ध हो रही हैं।

6. भारत की अन्तर्राष्ट्रीय छवि - विश्व व्यापार संगठन का भारत को यह लाभ मिला कि उसकी छवि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की बन गई है। यदि भारत विश्व व्यापार संगठन का सदस्य नहीं बना होता तो वह विश्व समुदाय से अलग-थलग हो गया होता।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि विश्व व्यापार संगठन स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की एक आवश्यकता है जिसे अपनाना भारत के लिए आवश्यक हो गया था। यदि वह ऐसा नहीं करता तो उसे जो थोड़े बहुत फायदे विश्व व्यापार संगठन से मिल रहे हैं वे भी नहीं मिल पाते।

5.7 सारांश (Summary)

1944 में ब्रेटनबुड सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना की भी सिफारिश की गई थी। लेकिन आम सहमति न बनने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना नहीं की जा सकी। इसके बाद 1947 में जेनेवा (स्विटजरलैण्ड) में 23 देशों द्वारा सीमा शुल्क से सम्बन्धित एक सामान्य समझौता अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की बाधाओं को दूर करने के लिये तथा सदस्य देशों के आर्थिक विकास को तीव्र करने के उद्देश्य से किया गया।

1986 में गैट की 8वें दौर की वार्ता जो उरूग्वे में हुई यह बातचीत 1994 तक चली एवं विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का प्रस्ताव गैट के तत्कालीन महानिदेशक आर्थर डंकल द्वारा की गई। इस प्रकार लगभग पाँच दशक तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की निगरानी करने वाली संस्था गैट का अस्तित्व 12 दिसम्बर 1995 को समाप्त हो गया। 1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई और भारत उसके संस्थापक सदस्यों में से एक है। जून 2008 तक इसके सदस्य देशों की संख्या 151 तक पहुँच गयी। इसका मुख्यालय जेनेवा में स्थित है ।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का मुख्य उद्देश्य विश्व में पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण करते हुए विकसित एवं विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने का प्रयास करना, विश्व व्यापार में पक्षपाती नीति को समझौते से दूर करना, उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना, आर्थिक नीतियों में सामंजस्य स्थापित करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के साथ सहयोग स्थापित करना है। विश्व व्यापार संगठन अपनी दो इकाइयों Dispute Settlement Body एवं Trade Policy Review Body की सहायता से सदस्य देशों के बीच व्यापार की बाधाओं को दूर करता है। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक समझौतों के द्वारा प्रशुल्क सम्बन्धी गतिरोध को दूर करता है। बौद्धिक सम्पदा अधिकार दिलाने का कार्य तथा विश्व व्यापार में सदस्य देशों के लाभ के निर्धारण की नीति तय करता हैं

विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों के वाणिज्य मंत्रियों का सम्मेलन समय-समय पर होता है। प्रायः यह दो वर्ष में एक बार होता है। इसका प्रथम सम्मेलन दिसम्बर 1996 में सिंगापुर में, द्वितीय सम्मेलन मई 1998 में जेनेवा में, तीसरा सम्मेलन नवम्बर 1999 में अमेरिका के सियटल में, चौथा सम्मेलन नवम्बर 2001 में दोहा, कतर में, पांचवां सम्मेलन कानकुन में, छठा सम्मेलन दिसम्बर 2005 में हांगकांग (चीन) में तथा जून जुलाई 2006 में दोहा वार्ता एक लघु सम्मेलन के रूप में हुआ। अलग-अलग सम्मेलनों में विभिन्न मुद्दों जैसे प्रशुल्क, कृषि, श्रम, सम्बन्धी, बौद्धिक सम्पदा सम्बन्धी, जन स्वास्थ्य तथा पर्यावरण, निर्यात प्रोत्साहन, सेवा व्यापार, एवं निवेश सम्बन्धी मुद्दों पर मंत्री स्तरीय वार्ता हुई और विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने की कोशिश की जा रही है।

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना आर्थिक क्रान्ति के रूप में की गई। इसकी स्थापना के बाद से विश्व व्यापार काफी बढ़ा है। विभिन्न सदस्य देशों की व्यापार आय में में वृद्धि हुई है। भारत पर विश्व व्यापार संगठन का मिलाजुला प्रभाव रहा है। भारत के निर्यात में वृद्धि हुई, विदेशी निवेश में वृद्धि हुई, आधुनिक तकनीक का लाभ मिला, विश्व में भारत की छवि में सुधार हुआ, रोजगार के अवसर बढ़े वहीं दूसरी ओर कुछ ऋणात्मक प्रभाव भी रहे विदेशी विनिमय पर नियंत्रण नहीं रहा, कृषि व्यवसाय को हानि हुई, विदेशी कम्पनियों द्वारा श्रमिकों एवं उपभोक्ताओं का शोषण हुआ है, निर्यात व्यापार में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय मानक की अड़चने आ रही हैं।

विश्व व्यापार संगठन स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की एक आवश्यकता है जिसे अपनाना भारत के लिए आवश्यक हो गया था।

5.8 शब्दावली (Key words)

गैट (GATT), प्रशुल्क एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (General Agreement on Tarrifs and Trade) 1947 में स्थापित किया गया।

विश्व व्यापार संगठन (WTO), अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन जो विश्व व्यापार के अवरोधों एवं विश्व व्यापार को बढ़ाने तथा पर्यावरण की रक्षा के लिए 1 जनवरी 1995 को जेनेवा में स्थापित किया गया।

DSB : Dispute Settlement Body जो विश्व व्यापार संगठन को सदस्य देशों के बीच किसी विवाद को निबटाने का कार्य करती है।

TPRB: Trade Policy Review Body विश्व व्यापार के लिये व्यापारिक नीतियों के पुनरीक्षण के लिए काम करती है।

G-22 विश्व व्यापार संगठन के 22 देशों का ग्रुप जिसमें अनेक विकसित देशों के साथ भारत भी शामिल है।

TRIPS: Trade Related Intellectual Property Rights बौद्धिक सम्पदा अधिकार।

NAMA: Non Agricultural Market Access के अन्तर्गत विकासशील देशों के औद्योगिक आयातों पर प्रशुल्क कटौती के सम्बन्ध में प्रस्ताव को घोषणा पत्र में शामिल किया गया।

5.9 अभ्यास के लिए प्रश्न (Questions for Exercise)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Question)

1. विश्व व्यापार संगठन क्या है? इसके कार्यों व उद्देश्यों को स्पष्ट करें।

   What is WTO? Explain its function and objectives.

2. विश्व व्यापार संगठन के सदस्य होने के नाते भारत को लाभ व हानि की विवेचना कीजिए।

   Discuss the advantages and disadvantages to India as a member of WTO.

3. विश्व व्यापार संगठन तथा भारत पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।

   Write a detailed note on 'WTO and India'.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Questions)

4. गैट क्या है?

   What is GATT?

5. WTO के कार्य लिखिए।

   Write about the functions of WTO.

6. WTO एवं भारत पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

   Write a short note on 'WTO and India'.

7. WTO के क्या उद्देश्य हैं?

   What are the objectives of W.T.O.?

8. दोहा घोषणा पत्र का उल्लेख करें।

   Describe the Doha Declaration.

9. विश्व व्यापार संगठन के ढाँचे के बारे में लिखिए।

   Write about the organisational Set up of W.T.O.

10. विश्व व्यापार संगठन के प्रथम मंत्रिस्तरीय सम्मेलन से आप क्या समझते हैं?

    What do you understand by the first Ministrial level conference of W.T.O.

5.10 सन्दर्भ पुस्तकें (Suggested books)

Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.

MS-3, IGNOU Course Material: Economic and Social Environment.

Tandon, BB, Indian Economy: Tata Mcgraw Hill, New Delhi.

मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

मिश्रा जे.एन., भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।

माथुर जे.एस., व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

पंत ए.के., व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

सिन्हा वी.सी., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा.लि., आगरा।

मालवीया ए.के. व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।

सिंह एस.के., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

इकाई - 6 विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम, 1999 (फेमा) (Foreign Exchange Management Act, 1999 (FEMA))

इकाई की रूपरेखा-

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 फेमा का उद्देश्य

6.3 फेमा की विशेषताएं

6.4 फेरा और फेमा में अन्तर

6.5 फेमा के प्रमुख प्रावधान

6.6 सारांश

6.7 शब्दावली

6.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

6.9 उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- विदेशी विनिय प्रबन्धन अधिनियम 1999 से परिचित हो जायेंगे,
- विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम 1999 के उद्देश्य से अवगत हों,
- विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों को जान सकेंगे, तथा
- फेरा और फेमा में अन्तर कर सकेंगें।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत में भूमण्डलीकरण एवं उदारीकरण नीति अपनाने के कारण यह आवश्यक हो गया था कि फेरा में व्यापक संशोधन किया जाय। भारत सरकार के लिए विदेशी विनिमय पर नियंत्रण हेतु रिजर्व बैंक सन 1999 के अन्त तक विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम, 1973 (Foreign Exchange Regulation Act, 1973-FERA) के

अन्तर्गत विदेशी विनिमय पर नियंत्रण करता था। भारत में आर्थिक उदारीकरण को प्रोत्साहित करने के दृष्टिकोण से 1993 में फेरा (FERA) की समीक्षा की गयी तथा इसमें कई आवश्यक, संशोधन किये गये। केन्द्र सरकार ने इसी वर्ष एक कार्यदल गठित किया, जिसकी सिफारिशों के आधार पर संसद में 4 अगस्त 1998 को एक बिल प्रस्तुत किया गया जिसे राज्य सभा ने 8 दिसम्बर 1999 को पारित किया। इस प्रकार 'फेरा' के स्थान पर 1 जून 2000 से विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम 1999 **'फेमा'** अस्तित्व में आया।

फेमा (FEMA) सम्पूर्ण भारत पर लागू होता है तथा यह उन सभी शाखाओं, कार्यालयों एवं एजेन्सियों पर भी लागू होगा जो भारत के बाहर हैं व जो भारत के निवासी व्यक्ति के नियंत्रण में हैं। इस अधिनियम में यह भी निश्चित किया गया कि सरकार विभिन्न तिथियों पर इसके पृथक-पृथक प्रावधानों को लागू कर सकती है।

फेमा को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है तथा अभी प्रारम्भिक स्तर पर इसमें 49 धाराएँ हैं।

भारत में विनियम-नियंत्रण का इतिहास (History of Exchange Control in India)

(1) द्वितीय विश्व युद्ध के समय - 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध की घोषणा हो चुकी थी। देश संकट काल से गुजर रहा था। युद्ध का लड़ना आवश्यक था। अतः देश हित में विनिमय नियंत्रण 'भारत रक्षा नियम' के अन्तर्गत अपनाया गया था। भारत सुरक्षा नियम (Defence of India Rules) के अन्तर्गत विनियम नियंत्रण की जिम्मेदारी रिजर्व बैंक को सौंपी गई थी। रिजर्व बैंक ने इस कार्य के लिए विनिमय नियंत्रण विभाग की स्थापना की थी। 4 सितम्बर 1939 को रिजर्व बैंक ने विनिमय नियंत्रण की नीति से सम्बन्धित विज्ञप्ति जारी करते हुए विदेशी मुद्रा के क्रय-विक्रय पर नियंत्रण लगा दिया। अब विदेशी मुद्रा का प्रयोग केवल रिजर्व बैंक द्वारा अधिकृत व्यक्तियों एवं संस्थाओं द्वारा केवल स्वीकृत कार्यों के लिए ही किया जा सकता था।

(2) विदेशी विनिमय - युद्ध की समाप्ति के बाद भारत की विदेशी विनिमय की स्थिति काफी अच्छी थी। इसके बाद भी विनिमय नियंत्रण की नीति को चालू रखा गया था। देश में आयातों की माँग बढ़ रही थी। विदेशी विनिमय का भुगतान इंग्लैण्ड में जमा स्टर्लिंग शेषों से किया जाता था, परन्तु इंग्लैण्ड ने भुगतान संतुलन प्रतिकूल होने के

कारण इनके उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिये थे। 1947 का विदेशी विनिमय अधिनियम 25 मार्च 1947 को लागू किया गया जिसके अन्तर्गत रिजर्व बैंक को विनिमय नियंत्रण के स्थायी अधिकार प्राप्त हो गये थे। विनिमय नियंत्रण का कार्य-क्षेत्र अब और अधिक व्यापक हो गया था। जुलाई 1947 से स्टर्लिंग क्षेत्र के देशों में होने वाले लेन-देन पर भी विनिमय नियंत्रण लागू कर दिया गया था।

(3) विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम, 1973 (Foreign Exchange Regulation Act, 1973) - 1947 के एक्ट के स्थान पर 1 जनवरी, 1973 से इस अधिनियम को लागू किया गया जिसे फेरा (FERA) कहा जाता है। इस नये अधिनियम का मुख्य स्वरूप 1947 के अधिनियम के ही समान है, किन्तु इसमें कुछ नये उपबन्ध शामिल किये गये और पुराने अधिनियम के कुछ उपबन्धों में संशोधन किया गया था। उदारीकरण की नीति जुलाई 1991 से भारत में लागू की गयी थी। 1 मार्च 1992 से उदार विनिमय दर प्रबन्ध व्यवस्था (Liberalised Exchange Rate Management System-LERMS) के अन्तर्गत रूपये की आंशिक परिवर्तनशीलता आरम्भ की गयी।

विदेशी मुद्रा नियंत्रण के क्षेत्र में किये जा रहे महत्वपूर्ण उदारीकरण तथा अर्थव्यवस्था में बढ़ते हुए खुलेपन को देखते हुए विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम (FERA) को 31 मई 2000 से समाप्त कर दिया गया। अब फेरा इतिहास की बात हो गयी थी। उसके स्थान पर नया उदार कानून बनाया गया।

6.2 विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम 1999 (फेमा) के उद्देश्य (Objectives of Foreign Exchange Management Act FEMA)

विदेशी मुद्रा बाजार में लेन-देन को उदार बनाने तथा देश में विदेशी मुद्रा बाजार के समुचित एवं सुव्यवस्थित विकास को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने 27 वर्ष पुराने 1973 से प्रभावी विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम (फेरा) के स्थान पर 1 जून, 2000 से एक नया विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम (Foreign Exchange Management Act-FEMA-1999) लागू किया। फेमा पूर्ववर्ती 'फेरा' की तुलना में अति उदार अधिनियम है। कठोर प्रावधानों वाले फेरा को 1973 में ऐसे समय में लागू किया गया था, जबकि देश में विदेशी मुद्रा की अत्यधिक कमी थी।

फेमा का उद्देश्य - फेमा को लागू करने के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं -

1. विदेशी व्यापार के अवरोधों को कम करके विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित करना।
2. देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विदेशी विनिमय में अनुकूल संशोधन करना।
3. फेमा के माध्यम से इस बात को सुनिश्चित करना कि विनिमय दरों में स्थिरता बनी रहे।
4. फेमा का उद्देश्य भारत के विदेशी विनिमय बाजार को विकास की ओर ले जाना, साथ ही उसे शक्तिशाली बनाना।
5. देश में विदेशी पूँजी के प्रवेश के सम्बन्ध में उदार नियमों को बनाना।
6. विदेशी निनिमय के क्रय-विक्रय के लिए उचित नियम बनाना तथा उसे नियंत्रित करना।
7. देश के भुगतान असन्तुलनों को दूर करने के लिए हर सम्भव सहायता करना तथा उसे दूर करने के उपायों को खोजना।
8. देश से विदेशों को पूँजी की उड़ान को रोकने के उपाय खोजना।
9. आयात-निर्यात सम्बन्धी बिलों में होने वाली गड़बड़ियों को रोकना।
10. देश के विनिमय संसाधनों का अनुरक्षण करना आदि।

6.3 फेमा की विशेषताएँ (Characteristics of FEMA)

फेमा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. उदार अधिनियम - फेमा एक उदार अधिनियम है। फेमा में सबसे बड़ा उदारीकरण यह है कि अधिनियम के उल्लंघनकर्ता को अब केवल मौद्रिक दण्ड का ही भुगतान करना होगा।

2. दण्ड का प्रावधान कम - मौद्रिक दण्ड की राशि का सन्तोषजनक होना। इसमें दण्ड की राशि तीन गुना तक होगी जबकि फेरा (FERA) में दण्ड की राशि पाँच गुना तक तय की गयी थी।

3. **जेल सम्बन्धी कार्यवाही की वैकल्पिक व्यवस्था** - फेमा में जो आर्थिक दण्ड सुनिश्चित करने का प्रावधान है। उसमें यदि कोई व्यक्ति दण्ड की धनराशि को जमा कर देता है, तो उसे जेल नहीं जाना पड़ेगा। यदि दण्ड की धनराशि को जमा नहीं किया जाता है तभी उस पर जेल जाने की कार्यवाही की जायेगी। जब तक देश में फेरा (FERA) कानून लागू था, उसमें ऐसी कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं थी। उसमें कारावास के दण्ड का भी प्रावधान था। फेमा में कारावास भेजे जाने वाले व्यक्ति को सिविल अपराधी माना जाता है।

4. **विदेशी मुद्रा के आहरण में वृद्धि** - फेमा के अन्तर्गत विभिन्न उद्देश्यों के लिए विदेशी मुद्रा के आहरण की सीमाओं में भी पर्याप्त वृद्धि की गयी है। व्यापारिक उद्देश्यों के लिए विदेशी सेमिनार/सम्मेलन में भाग लेने के लिए तथा विदेश जाने के लिए अब प्रति फेरे 25000 डॉलर तक की राशि के लिए रिजर्व बैंक की स्वीकृत की आवश्यकता नहीं रह गयी है, भले ही विदेशी प्रवास की अवधि कितनी ही क्यों न हो।

5. **बेसिक यात्रा कोटे की राशि में वृद्धि** - बेसिक यात्रा कोटे की राशि को 3000 डॉलर से बढ़ाकर 5000 डॉलर प्रति वर्ष व उपहार हेतु राशि को 1000 डॉलर से बढ़ाकर 5000 डॉलर कर दिया गया है। नये अधिनियम के अनुसार अब कोई व्यक्ति अपने रिश्तेदार या मित्र को एक वर्ष में 5000 डॉलर तक की राशि उपहार में भेज सकता है। पहले यह अनुमति 1000 डॉलर की थी। इस प्रकार दान के रूप में भी अब 1000 डॉलर के स्थान पर 5000 डॉलर तक की राशि रिजर्व बैंक की अनुमति के बिना प्रेषित की जा सकेगी।

6. **प्रवर्तन एजेंसी का दायित्व** - फेरा (FERA) से अलग हटकर फेमा (FEMA) में एक अन्य प्रमुख परिवर्तन किया गया है। वह परिवर्तन यह है कि फेरा में जहाँ अपने आपको सिद्ध करने का दायित्व आरोपी का था वहीं फेमा अधिनियम में यह दायित्व अब प्रवर्तन एजेंसी का होगा।

7. **सनसेट अनुच्छेद -** फेमा में दण्ड के आरोपियों को तुरन्त न्याय दिलाने के लिए सनसेट अनुच्छेद को जोड़ दिया गया है। इस अनुच्छेद में यह व्यवस्था की गयी है कि लम्बित प्रकरणों को टाला न जाय, बल्कि उनका निपटारा अधिक से अधिक दो वर्ष के भीतर कर दिया जाय।

6.4 फेरा व फेमा में अन्तर (Difference between FERA and FEMA)

फेरा और फेमा के अन्तर को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है -

1. फेरा (1973) का मुख्य उद्देश्य जहाँ विदेशी मुद्राओं का संरक्षण करना था वहीं फेमा 1999 का उद्देश्य विदेशी व्यापार एवं भुगतानों को सुविधाजनक बनाना तथा देश में विदेशी मुद्रा बाजार के सुव्यवस्थित रख-रखाव को बढ़ाना है।

2. भारत में विदेशी निवेश तथा विदेशों में भारतीय निवेश सम्बन्धी नियम फेरा की तुलना में फेमा में अधिक उदार हैं।

3. विदेशी यात्राओं व अन्य विभिन्न उद्देश्यों के लिए विदेशी मुद्राओं के आहरण की सीमाएं फेरा की तुलना में फेमा में काफी अधिक निर्धारित की गयी हैं।

4. फेमा के उल्लंघन के मामलों का निपटारा सिविल अपराधों के तरीके से किया जाएगा, अर्थात इसके उल्लंघनकर्ताओं को जेल की सजा नहीं बल्कि अर्थदण्ड ही वहन करना होगा, जबकि फेरा में कारावास तक की सजा निश्चित की गयी थी।

5. फेरा उल्लंघन के मामले में दण्ड की राशि जहाँ सम्बद्ध राशि की पाँच गुना तक हो सकती थी, वहीं फेमा के तहत यह अधिकतम तीन गुना होगी।

6. फेरा में सिद्ध करने का दायित्व अभियुक्त का होता था, जबकि फेमा में यह दायित्व प्रवर्तन एजेंसी का होगा।

7. भारत में विदेशी निवेश तथा विदेशों में भारतीय निवेश सम्बन्धी नियम फेरा की तुलना में फेमा में अधिक उदार व पारदर्शी है।

8. फेमा अधिनियम के अनुसार भारत में रह चुका व्यक्ति भारत के बाहर निवासी हो जाने के बाद भी उन शेयरों, प्रतिभूतियों व सम्पत्तियों को धारण कर सकेगा जो उसने भारत प्रवास के दौरान धारण की थी परन्तु फेरा में ऐसा प्रावधान नहीं था।

उद्योग व्यापार जगत में फेमा का जहाँ स्वागत किया है वहीं आलोचकों का मत है कि अवैध रूप से विदेशों में विदेशी मुद्रा प्रेषित करने वालों के लिए फेरा जैसा कठोर कानून आवश्यक है।

6.5 फेमा के प्रमुख प्रावधान (Main Provisions of FEMA)

1. महत्वपूर्ण परिभाषायें (Important Definitions)

(अ) अधिकृत व्यक्ति (Authorised Person)

ऐसा व्यक्ति कोई अधिकृत डीलर, मुद्रा परिवर्तक, अपतट बैंकिंग इकाई Off-shore Banking Unit) या अन्य वह व्यक्ति हो सकता है जिसे धारा 10 की उपधारा (1) के अन्तर्गत विदेशी विनिमय या विदेशी प्रतिभूतियों में व्यवहार करने के लिए अधिकृत किया गया हो (विस्तृत विवरण आगे दिया गया है) ।

(2) पूँजी खाता व्यवहार (Capital Account Transactions)

इससे आशय उस व्यवहार से है जो भारत में निवासी व्यक्तियों के, भारत की सम्पत्तियों एवं देनदारियों, जिनमें संभाव्य देनदारियाँ भी शामिल हैं, में परिवर्तन लाता है। इसमें धारा 6 की उपधारा (2) के व्यवहारों को भी शामिल किया जाता है।

(क) अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (2) में स्पष्ट किया गया है कि पूँजी खाता व्यवहारों के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति किसी भी अधिकृत व्यक्ति से विदेशी विनिमय आहरित कर सकता है या उसे विक्रय कर सकता है।

(ख) केन्द्रीय सरकार से परामर्श करके रिजर्व बैंक -

(1) पूँजी खाता व्यवहारों की श्रेणियाँ निश्चित कर सकता है, तथा

(2) उस विदेशी विनिमय की सीमा भी निर्धारित कर सकता है जिसे इन व्यवहारों के लिए उचित समझता है।

एक महत्वपूर्ण प्रावधान यह भी है कि विदेशी विनिमय के ऐसे आहरणों पर रिजर्व बैंक प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता है, जो कि ऋणों के परिशोधन खाते तें में भुगतान किये जाने हैं अथवा सामान्य व्यवसाय की अवस्था में प्रत्यक्ष विनियोगों पर ह्रास के रूप में भुगतान किये जाने हैं।

(ग) उपधारा (2) को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित के नियमन या प्रतिबन्ध से सम्बन्धित नियमों की रचना रिजर्व बैंक द्वारा की जा सकती है।

(1) भारत में निवासी किसी व्यक्ति द्वारा विदेशी प्रतिभूतियों के निर्गमन एवं हस्तान्तरण के सम्बन्ध में,

(2) भारत के बाहर निवासी व्यक्ति द्वारा किसी प्रतिभूति के निर्गमन एवं हस्तान्तरण से सम्बन्धित ,

(3) भारत के बाहर निवासी व्यक्ति द्वारा भारत में स्थापित किसी शाखा, कार्यालय या एजेंसी द्वारा किसी प्रतिभूति या विदेशी प्रतिभूति के निर्गमन अथवा हस्तान्तरण के बारे में,

(4) भारत के निवासी एवं अप्रवासी व्यक्तियों के मध्य हुई जमाओं के बारे में,

(5) प्रचलित मुदा या प्रचलित मुद्रा नोट्स के आयात-निर्यात एवं नियंत्रण के बारे में।

(6) भारतीय निवासी तथा भारत के बाहर के निवासी द्वारा किस नाम से तथा किस स्वरूप के बदले, विदेशी विनिमय उधार लिया जा सकता है , इस सम्बन्ध में नियमों की रचना,

(7) किसी भी ऋण या दायित्व की ऐसी गारन्टी के बारे में जो कि -

- एक भारतीय निवासी द्वारा अप्रवासी पर देय ऋण या दायित्व के लिए हो अथवा

- अप्रवासी व्यक्ति के द्वारा दी गयी हो।

(8) भारत के निवासी द्वारा भारत के बाहर अचल सम्पत्ति का हस्तान्तरण अथवा उसे अधिकतम पाँच वर्ष हेतु पट्टे पर देने के सम्बन्ध में।

(9) एक प्रवासी द्वारा भारत के बाहर अचल सम्पत्ति के अधिग्रहण या हस्तान्तरण अथवा उसे अधिकतम पाँच वर्ष के लिए पट्टे पर देने से सम्बन्ध में।

(घ) एक व्यक्ति जो अप्रवासी है, भारत में स्थित अचल सम्पत्ति, प्रचलित मुद्रा या किसी प्रतिभूति में विनियोग कर सकता है। उस पर नियंत्रण एवं स्वामित्व कायम कर सकता है तथा हस्तान्तरण कर सकता है, यदि ऐसी सम्पत्ति, मुद्रा या प्रतिभूति उस समय अधिग्रहीत की गयी हो जबकि वह भारत में निवासी था या उत्तराधिकारी के रूप में भारत निवासी था।

(ङ) भारत का निवासी भारत के बाहर स्थित अचल सम्पत्ति, विदेशी प्रतिभूति में विनियोग कर सकता है, नियंत्रण व स्वामित्व प्राप्त कर सकता है या हस्तान्तरण कर सकता है, यदि ऐसी मुद्रा सम्पत्ति या प्रतिभूति ऐसे व्यक्ति के द्वारा अधिग्रस्त या स्वामित्व की हो जो अप्रवासी था या उसके उत्तराधिकार के रूप में भारत के बाहर कर रहा था।

(च) बिना किसी पूर्वाग्रह के नियम-कानून बनाकर रिजर्व बैंक अप्रवासी व्यक्ति

के भारत में स्थित किसी भी कार्यालय, शाखा या अन्य स्थानों पर संचालित व्यापार को निषेध कर सकता है या प्रतिबन्ध लगा सकता है या ऐसी संस्थाओं का नियमन कर सकता है।

(3) प्रचलित मुद्रा (Currency) - इसके अन्तर्गत कागजी नोट, पोस्टल नोट, पोस्टल आर्डर, मनीआर्डर, ड्राफ्ट्स, चैक, यात्री चैक, विनिमय बिल, साख पत्र, प्रतिज्ञा पत्र, क्रेडिट कार्ड तथा वे सभी प्रपत्र इत्यादि शामिल किये जाते हैं जिन्हें रिजर्व बैंक द्वारा अधिसूचित किया जाता है।

धारा 2(h) ।

(4) चालू खाता व्यवहार (Current Account Transactions) - इसमें पूँजी खाता व्यवहारों को छोड़कर निम्नलिखित व्यवहारों को शामिल किया जाता हैः-

(1) विदेशी व्यापार से सम्बन्धित देय भुगतान, अन्य चालू व्यवसाय, सेवाएं लघु अवधि एवं बैंकिंग सुविधाएं,

(2) ऋणों पर देय ब्याज का भुगतान तथा विनियोगों से प्राप्त शुद्ध आय,

(3) अपने माता पिता, पति/पत्नी तथा बच्चों पर किये गये ऐसे सारे खर्चे जो विदेशी भ्रमण, शिक्षण एवं स्वास्थ्य चिकित्सा से सम्बन्धित हों, तथा

(4) विदेशों में रह रहे अपने माता-पिता, पति/पत्नी तथा बच्चों के जीवन निर्वाह हेतु प्रेषित धनराशि।

फेमा की धारा 5 के अनुसार, ''कोई भी व्यक्ति चालू खाता व्यवहारों के अन्तर्गत, किसी भी अधिकृत व्यक्ति को या उससे विदेशी विनिमय का विक्रय अथवा आहरण कर सकता है। इस धारा में यह भी प्रावधान है कि केन्द्रीय सरकार जनता के हित में, रिजर्व बैंक से परामर्श करके ऐसे व्यवहारों पर प्रतिबन्ध लगा सकता है।''

(5) विदेशी मुद्रा (Foreign currency) - इससे आशय भारतीय चल मुद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी विदेशी चल मुद्रा से है।

(धारा 2(q))

(6) विदेशी विनिमय (Foreign Exchange) - इसमें निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है -

(1) जमाएँ साख तथा कोष जो किसी भी विदेशी मुद्रा में देय हों,

(2) यात्री चेक, ड्राफ्ट, साख पत्र या विनिमय विपत्र जो भारतीय मुद्रा में उल्लेखित या आहरित हों किन्तु किसी विदेशी मुद्रा में देय हों तथा

(3) यात्री चेक, ड्राफ्ट, साख पत्र या विनिमय विपत्र जो भारत के बाहर किसी बैंक द्वारा या किसी संस्था द्वारा या किसी व्यक्ति द्वारा आहरित हो किन्तु जिनका भुगतान भारतीय प्रचलित मुद्रा में किया गया हो।

धारा 2 (n)

(7) विदेशी प्रतिभूति (Foreign Security) - इससे तात्पर्य कोई भी ऐसी प्रतिभूति से है जो अंशों,स्कन्धों बन्ध-पत्रों, ऋण पत्रों एवं अन्य किसी ऐसे प्रपत्र से हैं जो विदेशी मुद्रा में उल्लेखित है। इसमें उन प्रतिभूतियों को भी शामिल किया जाता है जो विदेशी मुद्रा में उल्लेखित है किन्तु उनके ब्याज तथा लाभांश की वापसी भारतीय प्रचलित मुद्रा में होनी है।

धारा 2 (o)

(8) भारतीय प्रचलित मुद्रा (Indian Currency) - इससे तात्पर्य ऐसी मुद्रा से है जो भारतीय रूपये में आहरित या उल्लेखित है। लेकिन इसमें विशेष बैंक नोट एवं एक रूपये का नोट सम्मिलित नहीं है जिसे भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934 की धारा 28-ए के अन्तर्गत निर्गमित किया गया है।

धारा 2(q)

(9) व्यक्ति (Person) - में अग्रलिखित शामिल किये जाते हैं -

(1) एक व्यक्ति (Individual)

(2) एक हिन्दू परिवार

(3) एक कम्पनी

(4) एक फर्म

(5) व्यक्तियों का एक संघ अथवा संस्था, चाहे वह समामेलित हो या नहीं,

(6) प्रत्येक वैधानिक एवं कृत्रिम व्यक्ति, जिसका पूर्व में पराभाव नहीं हुआ हो, या

(7) कोई भी कार्यालय या शाखा अथवा एजेंसी जिसका नियंत्रण ऐसे व्यक्तियों के हाथों में हो।

(10) भारत में निवासी व्यक्ति (Person Resident in India) - ऐसे व्यक्ति से तात्पर्य -

(1) उस व्यक्ति से हो जो गत वित्तीय वर्ष में 182 दिन से अधिक भारत में रहा हो लेकिन इसमें निम्न को शामिल नहीं किया जाता -

(क) भारत का एक नागरिक जो भारत के बाहर जा चुका है या बाहर रहता है सम्मिलित नहीं है -

- भारत के बाहर व्यवसाय चलाने हेतु गया हो, अथवा
- भारत के बाहर रोजगार हेतु गया हो, अथवा
- किसी अन्य उद्देश्य से जिससे उसकी इच्छा अनिश्चित अवधि के लिए भारत से बाहर रहने का संकेत करती है।

(ख) भारत का एक नागरिक जिसका भारत में आवास समाप्त हो गया था, भारत मैं लौटता है या रहता है -

- भारत में रोजगार हेतु आने पर, अथवा
- भारत में व्यवसाय चलाने हेतु अथवा
- किसी अन्य उद्देश्य हेतु ऐसी परिस्थितियाँ जो उसकी इच्छा को अनिश्चित अवधि के लिए भारत में रूकने का संकेत करें।

(2) कोई व्यक्ति या निगम/निकाय जो कि भारत में पंजीकृत या समामेलित है।

(3) ऐसा कोई कार्यालय, कोई शाखा या एजेंसी जो भारत के बाहर है लेकिन उसका नियंत्रण एवं स्वामित्व भारतीय निवासी के हाथ में है।

II. विदेशी विनिमय का नियमन एवं प्रबन्धन (Regulation and Management of Foreign Exchange):

(1) विदेशी विनिमय में व्यवहार (Dealings in Foreign Exchange) - फेमा के नियमों एवं विनियमों के अन्तर्गत रिजर्व बैंक की सामान्य या विशेष अनुमति के बिना कोई व्यक्ति-

(क) अधिकृत व्यक्ति के माध्यम के अतिरिक्त कोई विदेशी विनिमय या विदेशी प्रतिभूति किसी अन्य व्यक्ति को न तो हस्तान्तरित कर सकेगा, न ही ऐसा व्यवहार करेगा।

(ख) अधिकृत व्यक्ति के माध्यम के अतिरिक्त, अन्य किसी भी रूप में भारत के बाहर

स्थिति व्यक्ति के आदेश से या उसकी ओर से कोई भी भुगतान प्राप्त नहीं करेगा।

(ग) किसी गैर आवासीय व्यक्ति को, सामान्य रूप से या उसकी साख के लिए, भुगतान नहीं करेगा।

(घ) किसी भी ऐसे वित्तीय व्यवहार में शामिल नहीं हो सकेगा जिससे कि भारत के बाहर व्यक्ति के पक्ष में किसी सम्पत्ति का हस्तान्तरण, अधिग्रहण, ग्रहणाधिकार या हस्तान्तरण नहीं कर सकता है।

(2) विदेशी विनिमय पर नियंत्रण (Holding of Foreign Exchange) - विपरीत व्यवस्था न होने की अवस्था में कोई भी भारत में निवासी व्यक्ति, विदेश में स्थित अचल सम्पत्ति, विदेशी विनिमय एवं विदेशी प्रतिभूतियों का अधिग्रहण, ग्रहणाधिकार या हस्तान्तरण नहीं कर सकता है।

(चालू खाता व्यवहार तथा पूंजी खाता व्यवहार का विवरण महत्वपूर्ण परिभाषाओं शीर्षक के अन्तर्गत दिया गया है)।

(3) वस्तुओं एवं सेवाओं का निर्यात (Export of Goods and Services)- धारा 7 के अनुसार प्रत्येक निर्यातक के लिए आवश्यक होगा कि -

(क) (1) वह रिजर्व बैंक या अन्य प्राधिकारी को, निर्धारित विधि से एवं निर्धारित प्रपत्र में सम्पूर्ण निर्यात से सम्बन्धित ब्यौरा, निर्यात किये जाने वाले माल का पूरा मूल्य तथा जहाँ निर्यात करते समय तक मूल्य निश्चित नहीं किया जा सके तो बाजार में प्रचलित वह मूल्य जो कि विदेशों में माल बेचने से प्राप्त होने की आशा हो, को सही रूप में भरकर प्रस्तुत करें।

(2) वह रिजर्व बैंक को अन्य वे सूचनायें प्रस्तुत करें जिससे कि निर्यात प्रक्रिया के सुचारू क्रियान्वयन का भरोसा रिजर्व बैंक को हो सके।

(ख) प्रत्येक निर्यातक द्वारा वस्तु का पूर्ण निर्यात मूल्य या रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित (बाजार दशाओं के मुताबिक) मूल्य बिना किसी विलम्ब के प्राप्त कर लिया जाएगा, इस बात का भरोसा रिजर्व बैंक को दिलाना होगा।

(ग) प्रत्येक सेवाओं के निर्यातक के द्वारा रिजर्व बैंक अथवा अन्य प्राधिकारी को, निर्धारित विधि से एवं निर्धारित प्रारूप में सेवाओं के भुगतान का सही विवरण प्रस्तुत होगा।

(4) विदेशी विनिमय की वसूली एवं प्रत्यावर्तन (Realisation and Repatriation) - विपरीत व्यवस्था के अभाव में रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित विधि एवं निर्धारित समय के अन्दर, भारत के निवासी किसी भी व्यक्ति को वे सभी कदम उठाने होंगे जिससे कि विदेशी विनिमय (देय या उपार्जित) को स्वदेश में लाया जा सके। (धारा 8)

(5) धारा 4 एवं 8 से छूट (Exemptions from Section 4 and 8) - अधिनियम की धारा 9 में कुछ तथ्यों के अन्तर्गत उपरोक्त धाराओं में छूट दी गयी -

(1) यदि रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित की गयी सीमा के अन्तर्गत विदेशी मुद्रा या विदेशी सिक्के किसी व्यक्ति के अधिकार में है,

(2) यदि रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित सीमा के अन्तर्गत कोई व्यक्ति या किसी श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा विदेशी मुद्रा का खाता खोला गया हो या पूर्व से धारित हो,

(3) यदि रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित सीमा के अन्दर कोई व्यक्ति रोजगार से, व्यवसाय-व्यापार से, धन्धे से, सेवाओं से, उपहार से, मानदेय से, उत्तराधिकार से या अन्य किसी वैध रूप से विदेशी विनिमय प्राप्त करता है।

(4) यदि रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित सीमा के अन्दर भारत में निवासी किसी व्यक्ति ने किसी उपहार या उत्तराधिकार के अन्तर्गत कोई विदेशी विनिमय प्राप्त किया हो या उस पर कोई अन्य आय उपार्जित की हो,

(5) यदि रिजर्व बैंक की विशेष या सामान्य अनुमति से भारत के बाहर कोई व्यक्ति 8 जुलाई 1947 से पूर्व से विदेशी विनिमय का धारक था या उसने प्राप्त की थी या उस विदेशी विनिमय पर कोई अन्य आय उपार्जित की थी, तथा

(6) ऐसी आय प्राप्तियाँ जिन्हें विदेशी विनिमय के लिए रिजर्व बैंक ने विशिष्ट रूप से स्पष्ट किया है।

(6) अधिकृत व्यक्ति (Authorised Person)

फेमा के अध्याय तीन की धारा 10 के अनुसार, ''रिजर्व बैंक, किसी व्यक्ति को आवेदन करने पर विदेशी विनिमय एवं विदेशी प्रतिभूतियों में व्यवहार करने के लिए अधिकृत डीलर, मुद्रा, परिवर्तक या विदेशी बैंकिग इकाई या किसी अन्य रूप में जो भी उचित हो, अधिकृत कर सकता है।'' यह अधिकार लिखित में होता है तथा उन शर्तों के अधीन जैसे कि उल्लेखित की जाती है, होता है। ऐसे अधिकार का रिजर्व बैंक द्वारा

खण्डन किया जा सकता है, यदि वह इस बात से संतुष्ट हो जाय कि -

(1) ऐसा करना जनहित में है, या

(2) अधिकृत व्यक्ति ने विषय से सम्बन्धित शर्तों का पालन नहीं किया है या उसने इस अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन किया है या अधिनियम के अन्तर्गत जारी किसी नियम, अधिसूचना, निर्देश या आदेश का उल्लंघन किया है। ऐसे अधिकार का खण्डन करने से पूर्व रिजर्व बैंक द्वारा अधिकृत व्यक्ति को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का उचित अवसर प्रदान किया जाना आवश्यक होगा।

धारा 11 में अधिकृत व्यक्ति के लिए दिशा-निर्देश हेतु रिजर्व बैंक के अधिकार उल्लेखित हैं। रिजर्व बैंक फेमा के नियमों, अधिसूचनाओं या निर्देशों सम्बन्धी प्रावधानों की पूर्ण अनुपालना हेतु अधिकृत व्यक्ति को, विदेशी विनिमय या विदेशी प्रतिभूति के भुगतान को करने या न करने का निर्देश प्रदान कर सकता है। निर्देशों के उल्लंघन पर रिजर्व बैंक दस हजार रूपये तक का दण्ड निर्धारित कर सकता है तथा उल्लंघन जारी रहने पर प्रतिदिन दो हजार रूपये तक का दण्ड,अनुपालना के समय तक प्रदान कर सकता हैं ।

धारा 12 रिजर्व बैंक को अधिकृत व्यक्ति के व्यवसाय का परीक्षण करने का अधिकार प्रदान करती है। रिजर्व बैंक किसी भी समय किसी भी अधिकारी के माध्यम से लिखित में विशेष आदेश देकर, अधिकृत व्यक्ति के व्यवसाय का निम्न उद्देश्य से निरीक्षण कर सकता हैः-

(1) रिजर्व बैंक को प्रस्तुत किये जाने वाले, प्रपत्र, सूचना अथवा अन्य विवरणों के सही होने का सत्यापन करने हेतु

(2) किसी भी ऐसी सूचना या विवरण को प्राप्त करने के लिए जिसे पूर्व में माँगे जाने पर अधिकृत व्यक्ति देने में असफल रहा था।

(3) इस अधिनियम के किसी भी प्रावधान, नियम, विनियम, निर्देश एवं आदेश का पालन कराने के लिए।

(7) फेमा की व्यवस्थाओं का उल्लंघन एवं दण्ड (Contravention and Penalties)

'फेमा' का अध्याय चार, व्यवस्थाओं का उल्लंघन करने तथा फलस्वरूप दण्ड

सम्बन्धी प्रावधान का उल्लेख करता है। धारा 13 के अनुसार,''यदि कोई व्यक्ति रिजर्व बैंक द्वारा जारी तथा इस अधिनियम के अन्तर्गत दिये गये नियमों, विनियमों,अधिसूचनाओं, निर्देशों या रिजर्व बैंक के अधिकार क्षेत्र में जारी की गयी शर्तों का उल्लंघन करता है, तो ऐसी दशा में.ः

(1) जहाँ राशि मापन योग्य (Quantifiable) हो तो उस राशि का तिगुना अथवा

(2) जहाँ राशि मापन योग्य नहीं है दो लाख रूपये तक का दण्ड, रिजर्व बैंक अपने न्यायाधिक्षेत्र में प्रदान कर सकता है ।

(3) यदि दण्ड निश्चित कर देने के बाद भी, यह उल्लंघन जारी रहता है तो दण्ड की राशि नहीं चुकाने तक पाँच हजार रूपया प्रतिदिन की दर से दण्ड देय होता है ।

यदि धारा 13 के अन्तर्गत दिये गये आर्थिक दण्ड का भुगतान कोई व्यक्ति नोटिस की तिथि के पश्चात 90 दिन के अन्दर करने में असफल है तो ''धारा 13'' के अन्तर्गत किये गये उल्लंघन को मानते हुए यदि कोई व्यक्ति प्रार्थना पत्र देता है तो प्रवर्तन निदेशक अथवा प्रवर्तन निदेशालय का कोई व्यक्ति प्रार्थना पत्र देता है तो प्रवर्तन निदेशक अथवा प्रवर्तन निदेशालय का कोई अधिकारी या रिजर्व बैंक के अधिकारी केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित विधि के अनुरूप 180 दिन के अन्दर उस प्रार्थना पत्र पर विचार करके निर्णय को संयोजित कर सकते हैं। उल्लंघन को संयोजित कर लेने के बाद उसके लिए न तो कोई आगामी प्रक्रिया जारी रहेगी और न ही उस पर कोई अन्य कार्यवाही होगी।

(8) निर्णय एवं पुनर्विचार (Adjudication and Appeal)

'फेमा' का अध्याय पाँच, निर्णय एवं पुनर्विचार मुद्दे से सम्बन्धित है। धारा 16 में स्पष्ट उल्लेख है कि इस अधिनियम की धारा 13 के अन्तर्गत उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की जाँच करने के लिए केन्द्र सरकार गजट में अधिसूचना जारी करके, निर्धारित प्रारूप मे विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति सम्बन्धी आदेश प्रसारित कर सकती है। ऐसे आदेश का मूल उद्देश्य उल्लंघन करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध दण्ड का निर्धारण करना होता है। प्रत्येक निर्णायक अधिकारी को इस अधिनियम की धारा 28(2) के अन्तर्गत (जिनका वर्णन आगे किया गया है) पुनरावेदन-न्यायाधिकरण द्वारा प्रदत्त सिविल न्यायालय के सभी अधिकार होंगे।

धारा 17 के अनुसार यदि निर्णायक अधिकारी (जो सहायक या उप-प्रवर्तन

निदेशक हो सकते हैं) द्वारा दिये गये निर्णय से कोई व्यक्ति पीड़ित है तो वह विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) को अपील कर सकता है। धारा 18 के अनुसार, केन्द्र सरकार,निर्णायक अधिकारी एवं विशिष्ट निदेशक (पुनरावेदन) के विरूद्ध की गयी अपील की सुनवायी हेतु, इस अधिनियम के अन्तर्गत, अधिसूचना द्वारा एक सभापति की नियुक्ति करेगी तथा जितनी केन्द्रीय सरकार उचित समझे, सदस्यों की नियुक्ति करेगी।

धारा 28(2) में पुनरावेदन न्यायाधिकरण एवं विशिष्ट निदेशक (अपील) के अधिकारी का उल्लेख हैं। उक्त दोनों अधिकारी, अपने कार्यों को परिणित करने के लिए दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत सिविल न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित मामलों पर, मुकदमें के लिए कार्यवाही कर सकते हैंः-

(1) मुकदमे से सम्बन्धित किसी व्यक्ति को बुलाना, उपस्थित होने के लिए कहना तथा शपथ हेतु परीक्षण करना,

(2) अनुसंधान करना तथा प्रपत्रों को प्रस्तुत करना,

(3) शपथ-पत्र पर प्रमाण प्राप्त करना,

(4) भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872(Indian Evidence Act 1872) की धारा 123 एवं 124 के अन्तर्गत जनता से सम्बन्धित कोई भी रिकार्ड या प्रपत्र या उनकी प्रतिलिपि प्राप्त करना।

(5) साक्ष्यों या प्रपत्रों की जॉच के लिए अधिकार पत्र निर्गमित करना,

(6) निर्णयों पर पुनर्विचार करना,

(7) किसी दोषपूर्ण प्रपत्र /वर्णन को रद्द करना या उस पर निर्णय करना तथा किसी पद मुक्ति के आदेश पर निर्णय देना तथा

(8) अन्य कोई मामले जो केन्द्र सरकार के द्वारा निर्धारित किये जाएं।

धारा 29 स्पष्ट करती है कि जहाँ खण्डपीठें गठित की जायेंगी, पुनरावेदन न्यायाधीकरण का समापित, समय-समय पर अधिसूचना द्वारा निर्णय लेगा। इस धारा में उल्लेख है कि यदि किसी खण्डपीठ के दो सदस्य, किसी बिन्दु पर एकमत नहीं हैं तो वे ऐसे मामले को अध्यक्ष के सम्मुख रख सकते हैं तथा अध्यक्ष पुनः न्यायाधिकरण के अन्य सदस्यों को उसी मामले पर निर्णय करने हेतु सौंप सकता है। सभी सदस्यों (प्रथम सदस्यों के निर्णयों सहित) द्वारा दिये गये निर्णयों का बहुमत जिस ओर होगा, वही

निर्णय लागू किया जायेगा।

धारा 34 के अनुसार कोई भी सिविल न्यायालय, निर्णायक अधिकारी द्वारा पुनरावेदन न्यायाधिकरण द्वारा विशिष्ट निदेशक (अपील) द्वारा दिये गये निर्णय के विरूद्ध की गयी अपील को स्वीकार नहीं कर सकता है और न ही इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार निषेधाज्ञा जारी कर सकता है। धारा 35 उच्च न्यायालय में की जाने वाले अपील से सम्बन्धित हैं। इस धारा के अनुसार ''कोई भी पीड़ित पक्षकार पुनरावेदन न्यायाधिकरण द्वारा गये निर्णय की तिथि से 60 दिन के अन्दर न्यायाधिकरण के विरूद्ध उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। किन्तु यदि अपीलकर्ता द्वारा समय पर अपील न कर पाने के कारणों को प्रस्तुत किया जाता है तथा उन कारणों से उच्च न्यायालय संतुष्ट हो जाता है तो वह 60 दिन के बाद अपील स्वीकार कर सकता है।''

(9) प्रवर्तन निदेशालय (Directorate of Enforcement)

अध्याय छह प्रवर्तन निदेशालय की स्थापना तथा इसके अधिकारों से सम्बन्धित है। धारा 36 के अनुसार, ''केन्द्र सरकार इस अधिनियम की व्यवस्थाओं को बनाये रखने के लिए प्रवर्तन निदेशालय की स्थापना कर सकती है तथा जितने भी उचित समझे, उतने अधिकारी तथा एक निदेशक की नियुक्ति कर सकती है। नियुक्त प्रवर्तन अधिकारी केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्दर ही अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का पालन करेंगें।''

धारा 37 में खोज एवं जब्त सम्बन्धी अधिकार दिये गये हैं, जो कि निम्नलिखित हैं :-

(1) प्रवर्तन निदेशक एवं सहायक निदेशक स्तर के अन्य अधिकारी धारा 13 के अन्तर्गत किये गये उल्लंघनों का अनुसंधान कर सकते हैं।

(2) केन्द्र सरकार, धारा 13 के अन्तर्गत किए गये उल्लंघनों का अनुसंधान करने हेतु अधिसूचना द्वारा, केन्द्र सरकार, राज्य सरकार या रिजर्व बैंक के किसी अधिकारी या अधिकारियों को अधिकृत कर सकती है जो कि भारत सरकार के अवर सचिव के स्तर से निम्न के नहीं होने चाहिए।

(3) उपधारा (1) के अन्तर्गत अधिकृत अधिकारी आयकर अधिनियम 1961 के अन्तर्गत नियुक्त अधिकारियों की भाँति, अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकता

है।

धारा 38 के अनुसार, ''केन्द्र सरकार, आदेश द्वारा तथा शर्तों एवं सीमाओं का निर्धारण करते हुए किस सीमा शुल्क अधिकारी, केन्द्रीय उत्पाद अधिकारी, पुलिस अधिकारी या अन्य केन्द्रीय /राज्य सरकार के अधिकारियों को प्रवर्तन निदेशक या अन्य किसी प्रवर्तन अधिकारी की शक्तियों का प्रयोग तथा कर्तव्यों का पालन करने के लिए अधिकृत कर सकती है।''

10. फेमा के विविध प्रावधान (Miscellaneous Provisions of FEMA)

अंतिम अध्याय अर्थात सातवें अध्याय में विविध प्रावधानों का उल्लेख धारा 39 से 49 तक है।

(1) निश्चित मामलों में प्रलेखों सम्बन्धी धारणा (Presumptions as to documents in Certain Cases) - जब कोई प्रलेखः

(क) किसी व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है अथवा किसी व्यक्ति के पास से या उसके नियंत्रण में से इस अधिनियम या अन्य किसी कानून के अन्तर्गत जब्त किया जाता है, अथवा

(ख) इस अधिनियम के अन्तर्गत लगाये गये आरोपों के संदर्भ में अथवा किसी उल्लंघन के अनुसंधान के समय ऐसे प्रलेख भारत के बाहर किसी स्थान से, किन्हीं अधिकृत अधिकारियों द्वारा निर्धारित विधि से प्राप्त किये गये हों तथा ऐसे प्रलेख उस व्यक्ति या व्यक्तियों के विरूद्ध चलायी जाने वाली प्रक्रिया में प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये गये हों तो न्यायालय या निर्णायक अधिकारी, जैसी भी स्थिति हो, वह ऐसे प्रलेखों को प्रमाण मान लेंगे-

(1) उन प्रलेखों पर एवं उनके प्रत्येक भाग पर मामले को क्रियान्वित करने वाले अधिकारी के हस्ताक्षर होने चाहिए एवं प्रलेख प्रमाणित भी होने चाहिए।

(2) प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किये जाने वाले ऐसे प्रलेख मुद्रांक लगे होने चाहिए, तभी वे प्रमाण के लिए स्वीकार योग्य (स्वीकृत) माने जायेंगे। (धारा 39)

2. फेमा के क्रियान्वयन का निलम्बन (Suspension of Operation of the FEMA) - यदि जनहित में आवश्यक एवं उचित हो तथा केन्द्र सरकार इस बात से संतुष्ट हो जाय कि इस अधिनियम के अन्तर्गत किन्हीं नियमों को लागू करने की आज्ञा दी गयी थी अथवा प्रतिबन्ध लगाया गया था तथा परिस्थितिवश इन्हें लागू करने की आवश्यकता नहीं है या प्रतिबन्ध हटाने की आवश्यकता है तो केन्द्र सरकार अधिसूचना

जारी करके, अनिश्चित समय के लिए या अधिसूचना किये गये समय तक के लिए, ऐसा कर सकती है। प्रत्येक अधिसूचना को निर्गमित किये जाने के पश्चात संसद के दोनों सदनों के पटल पर रखना होता है। यदि संसद कोई संशोधन करती है तो उसी रूप में अधिसूचना को प्रभावी माना जाता है। (धारा 40)

3. निर्देश देने के केन्द्र सरकार के अधिकार (Power of Central Government to give directions) - इस अधिनियम के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए केन्द्र सरकार समय-समय पर जैसा भी उचित समझे, उस रूप में रिजर्व बैंक को निर्देश दे सकती है और रिजर्व बैंक उन निर्देशों का पालन करना आवश्यक होगा।

(धारा 41)

4. कम्पनियों द्वारा उल्लंघन (Contravention by Companies)-

(1) जहाँ एक व्यक्ति, इस अधिनियम के उन प्रावधानों, आदेशों, नियमों, या निर्देशों का उल्लंघन करता है जो कि एक कम्पनी के लिए बनाये गये हैं तथा वह व्यक्ति ऐसे उल्लंघन के लिए दोषी होगा एवं सजा का भागी होगा। ऐसा व्यक्ति यदि सिद्ध सतर्कता बरता था तो वह दण्ड का भागी नहीं होगा।

(2) यदि यह सिद्ध हो जाता है कि कम्पनी में किया जाने वाला ऐसा उल्लंघन किसी निदेशक, प्रबन्धक, सचिव या अन्य अधिकारी की लापरवाही से होता है तो वे ऐसे उल्लंघन के लिए दोषी कहलायेंगे एवं सजा के भागीदार होंगे।

(धारा 42)

5. मृत्यु या दिवालिया सम्बन्धी मामले (Death or Insolvency in Certain Cases) - इस अधिनियम के अन्तर्गत उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों की मृत्यु होने या दिवालिया घोषित हो जाने पर भी कोई अधिकारी, दायित्व, प्रक्रिया या उससे सम्बन्धित अपील की कार्यवाही समाप्त नहीं होगी अपितु उसके लिए उनके वैधानिक प्रतिनिधि अथवा राजकीय प्रापक या निस्तारक, जैसी भी स्थिति हो, मृत या दिवालिया के उत्तराधिकार तक या उसकी सम्पत्ति की सीमा तक उत्तरदायी होंगे।

(धारा 43)

6. वैधानिक कार्यवाही हेतु बाधाएँ (Bar of Legal Proceedings) - केन्द्र सरकार या रिजर्व बैंक या केन्द्र सरकार तथा रिजर्व बैंक के विरूद्ध तथा ऐसे अधिकारियों के विरूद्ध कोई मुकदमा या वैधानिक कार्यवाही नहीं की जा सकेगी जिन्हें

इस अधिनियम के अधीन अधिकारों का प्रयोग करने के लिए अथवा कर्तव्यों की पालना करने के लिए अथवा किसी नियम, विनियम, अधिसूचना निर्देश या आदेश की पूर्ति करने के लिए कहा गया हो। (धारा 44)

7. कठिनाइयों का निराकरण (Removal of Difficulties)-

(1) यदि इस अधिनियम के प्रावधानों में कोई समस्या आती है तो उसे केन्द्र सरकार आदेश जारी करके दूर कर सकती हैं ऐसा आदेश इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात दो वर्ष की अवधि समाप्त होने तक की तिथि तक ही निर्गमित किया जा सकेगा।

(2) इस धारा के अन्तर्गत जारी किये जाने वाले प्रत्येक आदेश को लागू करने से पूर्व उसे संसद के समक्ष रखना आवश्यक होगा।

(धारा 45)

8. नियम बनाने का अधिकार (Power to make regulations) - इस अधिनियम के प्राविधानों को सुचारू रूप से लागू करने के लिए केन्द्र सरकार अधिसूचना जारी करके, नियमों का निर्माण कर सकती है।

(धारा 46)

9. विनियमों की रचना का अधिकार (Rules and Regulations) - रिजर्व बैंक अधिसूचना जारी करके, इस अधिनियम में रचित नियमों एवं प्रावधानों को सुचारू क्रियान्वयन के लिए विनियमों की रचना कर सकता है।

(धारा 47)

10. नियमों एवं विनियमों को संसद के सम्मुख रखना (Rules and Regulations to be laid before Parliament) - इस अधिनियम के अन्तर्गत बनाये जाने वाले प्रत्येक नियम तथा विनियम, जब सत्र चल रहा हो तो संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत किया जायेगा। इसे संसद के एक या दो सत्रों में अधिकतम 30 दिन के लिए प्रस्तुत किया जायेगा। यदि समय-सीमा के पूर्व ही सत्र नियमों तथा विनियमों में कोई संशोधन करते हैं तो उसी रूप में उन्हें प्रभावी माना जायेगा।

(धारा 48)

11. निरस्त एवं बचाव (Repeal and Saving)-

(1) विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम 1973 को निरस्त कर दिया गया है तथा उक्त अधिनियम की धारा 52 की उपधारा (1) के अधीन गठित पुनरावेदन मण्डल (appellate board) को भी भंग कर दिया गया है।

(2) पुनरावेदन मण्डल के भंग हो जाने के पश्चात, उसमें नियुक्त सभापति तथा प्रत्येक सदस्य पदमुक्त माने जायेंगे एवं वे समय से पूर्व पदमुक्ति के कारण, किसी भी प्रकार की क्षतिपूर्ति के लिए दावा प्रस्तुत करने के अधिकारी नहीं होंगे।

(3) यदि, किसी अन्य अधिनियम में कुछ नहीं दिया गया हो तो इस (FEMA) अधिनियम के लागू होने के दो वर्ष के पश्चात धारा 51 के अन्तर्गत कोई भी न्यायालय किसी अपराध के बारे में संज्ञान नहीं ले सकेगा और न ही कोई अधिकारी किसी उल्लंघन के बारे में कोई नोटिस जारी कर सकेगा।

(4) क) निरस्त किये गये अधिनियम के अन्तर्गत, यदि कोई कार्यवाही जारी हो (किसी भी नियम, अधिनियम, आदेश, सूचना, निरीक्षण, स्थायीकरण, घोषणा, लाइसेंस प्रक्रिया, अनुमोदन, स्वीकृति, प्राप्त छूट तथा अन्य प्रलेखों को सम्मिलित करते हुए) तथा इस अधिनियम से असंगत नहीं हो तो ऐसा कार्य/कार्यवाही इस अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत जारी रखे जा सकेंगे। धारा 52 के अन्तर्गत पुनरावेदन मण्डल को की गयी अपील इस अधिनियम के अन्तर्गत गठित पुनरावेदन न्यायाधिकरण को हस्तान्तरित की जा सकेगी।

(ख) पुनरावेदन मण्डल में लिये गये निर्णयों के विरूद्ध (धारा 52) यदि निरस्त किये गये अधिनियम में कोई अपील नहीं की जा सकी हो तो ऐसी अपील, निर्णय की तिथि से 60 दिन के अन्दर उच्च न्यायालय में की जा सकेगी। उच्च न्यायालय यदि प्रस्तुत अपील के देरी के कारणों से संतुष्ट हो जाए तो वह इस अपील को निर्धारित अवधि के बाद भी स्वीकार कर सकता है।

(धारा 49)

6.6 सारांश (Summary)

बढ़ते हुए भूमण्डलीकरण एवं उदारवादी नीति के कारण 'फेरा' के प्रावधानों में व्यापक संशोधन करना आवश्यक हो गया था। फेमा में विदेशी विनिमय के 'प्रबन्धन' पर ज्यादा जोर है न कि 'नियमन' पर। फेमा दिसम्बर 1999 में पारित किया गया और

जून 2000 से सम्पूर्ण भारत पर लागू है।

भारत में विनिमय नियंत्रण का इतिहास काफी पुराना है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय देश हित में भारत रक्षा अधिनियम के अन्तर्गत विनिमय नियंत्रण की जिम्मेदारी रिजर्व बैंक को सौंपी गई। 1947 के विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम के अन्तर्गत विनिमय नियंत्रण का स्थायी अधिकार रिजर्व बैंक को मिल गया। विनिमय नियंत्रण का कार्य क्षेत्र काफी व्यापक हो गया था। 1973 में 1947 के अधिनियम के स्थान पर विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम-फेरा लागू किया गया। 1947 के अधिनियम में व्यापक संशोधन करके इस अधिनियम को बनाया गया।

विदेशी मुद्रा के क्षेत्र में किये जा रहे महत्वपूर्ण उदारीकरण तथा अर्थव्यवस्था में बढ़ते हुये खुलेपन को देखते हुए विदेशी मुद्रा विनिमय नियमन अधिनियम 1973 को समाप्त करके विदेशी मुद्रा प्रबन्धन अधिनियम **'फेमा'** 1999 लागू किया गया। 'फेमा' का मुख्य उद्देश्य विदेशी व्यापार के अवरोधों को कम करते हुये विदेशी विनिमय दर में स्थिरता का प्रयास करना है। देश में विदेशी पूँजी के प्रवेश के नियम को और उदार बनाना है। विदेशी विनिमय के क्रय-विक्रय के नियम उदार बनाकर विदेशी विनिमय बाजार को विकसित एवं शक्तिशाली बनाना है। देश में भुगतान शेष के असंतुलन को हर सम्भव दूर करने का प्रयास करना है।

फेमा एक उदार अधिनियम है। फेमा के प्रावधानों के पालन के लिये हर बार रिजर्व बैंक की अनुमति की आवश्यकता नहीं है। उल्लंघनकर्ता का अपराध अब सिविल अपराध माना जाता है अर्थात उसे जेल नहीं भेजा जाएगा। दण्ड मौद्रिक रूप में अदा करना है। फेमा के प्रावधानों के अन्तर्गत विभिन्न उद्देश्यों के लिए विदेशी मुद्रा के आहरण की सीमा काफी बढ़ा दी गयी है। फेमा के अन्तर्गत प्रावधानों के उल्लंघन को सिद्ध करने का दायित्व अब केवल प्रवर्तन एजेन्सी का होगा न कि आरोपी का। फेमा में दण्ड के आरोपियों को तुरन्त न्याय दिलाने के लिए सनसेट अनुच्छेद जोड़ दिया गया है। फेमा के अन्तर्गत दिये गये निर्णय के खिलाफ अपील का भी प्रावधान किया गया हैं ।

फेरा के स्थान पर फेमा को अपनाया जाना विदेशी विनिमय एवं व्यापार सम्बन्धी नीति में दो महत्वपूर्ण परिवर्तनों का परिचायक है : प्रथम इसे पूँजी खाते पर परिवर्तनीयता (Capital Account Convertibility) की दिशा में पहला कदम माना जा

सकता है। द्वितीय यह कि सरकार अब विदेशी पूंजी को नियंत्रित करने का कोई इरादा तक नहीं रखती। इन नीतिगत परिवर्तनों का विदेशी निवेशकों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा स्वागत किया जाना स्वाभाविक है ।

कुछ आलोचकों का विचार है कि सरकार ने फेरा को हटाकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को छूट दी है। वह बहुत सही नहीं है क्योंकि इन कम्पनियों का भारत में पिछला रिकार्ड बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं माना जा सकता हैं। भारत में कार्यरत किसी भी बहुराष्ट्रीय निगम ने इस देश में अनुसंधान एवं विकास (R & D) को आधार बनाने का प्रयास नहीं किया है और न ही इनमें से किसी निगम ने निर्यात बाजारों को विकसित करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों में विदेशी सहयोग के नाम पर निवेश अपव्ययी (Wasteful) साबित हो रहे हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या यह सब भविष्य में देश की अर्थव्यवस्था एवं घरेलू पूँजी के प्रोत्साहन के लिये लाभकारी सिद्ध होगा? फेरा के अभाव में विदेशों में अवैध रूप से विदेशी मुद्रा प्रेषित करने वालों के विरूद्ध कोई रोक नहीं लग सकेगी और भविष्य में इसके परिणाम गम्भीर हो सकते हैं।

6.7 शब्दावली (Key words)

विदेशी निवेश (Foreign Investment) - इससे आशय विदेश में किये गये निवेश से है।

बहुराष्ट्रीय निगम (Multinational Corporation) - एक ऐसा निगम जिसका एक से अधिक देशों में व्यावसायिक या वाणिज्यक उपक्रमों पर स्वामित्व तथा नियंत्रण होता है।

अनिवासी भारतीय (Non Resident Indian) - वे भारतीय जिनका निवास भारत में नहीं हैं।

विनिमय नियंत्रण (Exchange Control) - ऐसी प्रणाली जिसमें समस्त विदेशी मुद्रा का व्यवहार बिना प्राधिकरण की अनुमति के नहीं होता।

विनिमय दर (Exchange Rate) - दूसरे देशों की मुद्रा प्राप्त करने के बदले दी जाने वाली घरेलू मुद्रा की इकाइयाँ।

6.8 अभ्यास के लिए प्रश्न (Questions for Exercise)

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न (Long Answer Questions)

1. विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम के क्या उद्देश्य हैं? इस अधिनियम के मुख्य प्रावधानों को संक्षेप में लिखिए।

   What are the objects of the Foreign Exchange Management Act? Write in brief the main provisions of this Act.

2. पूँजी खाता व्यवहार तथा चालू खाता व्यवहार के प्रावधानों की व्याख्या कीजिए।

   Explain Provisions of Capital and Current Transactions.

3. विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम में प्रयोग किये गये शब्दों (1) प्रचलित मुद्रा, (2) विदेशी विनिमय, (3) विदेशी प्रतिभूति तथा (4) भारत में निवासी व्यक्ति से आप क्या समझते हैं?

   What do you undersand by the terms (i) Currency, (ii) Foreign exchange, (iii) Foreign security and (iv) Person resident in India, as they have been used in the Foreign Exchange Management Act?

4. फेमा के अन्तर्गत विदेशी विनिमय के नियमन एवं प्रबन्धन के बारे में दिये गये प्रावधानों की विवेचना कीजिए।

   Discuss the provisions made under FEMA for the regulation and management of foreign exchange.

लघु उत्तरीय प्रश्न (Short answer questions)

5. पूँजी खाता व्यवहार किसे कहते हैं?

   What is meant by Capital Account Transactions?

6. भारत में निवासी व्यक्ति को परिभाषित कीजिए।

   Define 'Person Resident in India'?

7. अधिकृत व्यक्ति से क्या तात्पर्य है?

   What is meant by 'Authorised person'?

८. प्रवर्तन निदेशालय की स्थापना तथा इसकी शक्तियों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

Write a brief note on the establishment of Directorate of Enforcement and its powers.

९. पुनरावेदन न्यायाधिकरण एवं विशिष्ट निदेशक (अपील) के अधिकार एवं प्रक्रिया का उल्लेख करिये।

Write the procedure and powers of Appellate Tribunal and Special Director (Appeals).

६.९ संदर्भ पुस्तकें (Suggested Readings)

Francis Cherunilam, Business Environment, Himalaya Publishing House, Mumbai.

MS-3, IGNOU Course Material: Economic and Social Environment.

Tandon, BB, Indian Economy: Tata Mcgraw Hill, New Delhi.

मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

मिश्रा जे.एन., भारतीय अर्थव्यवस्था किताब महल, इलाहाबाद।

माथुर जे.एस., व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

पंत ए.के., व्यावसायिक पर्यावरण, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

सिन्हा वी.सी., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन पब्लिकेशन प्रा.लि., आगरा।

मालवीया ए.के. व्यावसायिक पर्यावरण, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।

सिंह एस.के., व्यावसायिक पर्यावरण, साहित्य भवन, आगरा।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

M.COM-02
व्यावसायिक पर्यावरण
(Business Environment)

खण्ड

5

पर्यावरण प्रबन्धन (Environmental Management)

इकाई - 1 5
पर्यावरण सम्बन्धी नियम (Environmental Law)

इकाई - 2 26
प्रदूषण नियंत्रण (Pollution Control)

इकाई - 3 50
ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन (Waste Management)

इकाई - 4 64
जैव-विविधता प्रबन्धन (Bio-diversity Management)

इकाई - 5 84
औद्योगिक पारिस्थितिकी (Industrial Ecology)

इकाई - 6 103
पर्यावरणीय अनापत्ति (Environmental Clearance)

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एस0 ए0 अंसारी	निदेशक, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 ब्रजेश कुमार	एसो0 प्रोफेसर, सी0एम0पी0 डिग्री कालेज, सम्बद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की ओर से श्री एम0 एल0 कनौजिया, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, मार्च 2010
मुद्रक नितिन प्रिन्टर्स, 1, पुराना कटरा, इलाहाबाद।

खण्ड-5 परिचय

खण्ड 5 को 6 इकाईयों में विभक्त किया गया है जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नवत है-

इकाई - 1 पर्यावरण सम्बन्धी नियमों का विवरण प्रस्तुत करती है। हमारे देश में पर्यावरण सम्बन्धी कई अधिनियम पारित हुए। इन अधिनियमों का उद्देश्य पर्यावरण को प्रदूषण से बचाना या उसके कुप्रभावों को कम करना है। पर्यावरण सम्बन्धी इन विभिन्न कानूनी प्रावधानों के फलस्वरूप नागरिकों में पर्यावरण के प्रति चेतना आ रही है।

मानव के विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा पर्यावरण (जल, वायु, भूमि) में आये अवांछित एवं प्रतिकूल परिवर्तनों को, जिन्हें पर्यावरण प्रदूषण की संज्ञा दी जाती है, इकाई - 2 के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण एवं ताप प्रदूषण की व्याख्या की की गयी है।

इकाई - 3 में ठोस अपशिष्ट प्रबन्ध की विवेचना की गया है। ठोस अपशिष्ट का प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक है जिसके लिए तीन चरणों को सम्मिलित किया जाता है- अपशिष्टों का संग्रहण, अपशिष्टों का वर्गीकरण एवं अपशिष्टों का निस्तारण। विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट जैसे- कृषि अपशिष्ट, पशु, अपशिष्ट, नगरपालिका अपशिष्ट औद्योगिक अपशिष्ट आदि के कारण प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न हो रही है। इन ठोस अपशिष्ट का प्रबन्ध प्रदूषण रोकने में कैसे किया जा सकता है यही इस इकाई का मुख्य केन्द्र है।

इकाई - 4 में अनुवांशिक स्तर पर एक जाति के सदस्यों में पायी जाने वाली विविधता, जिसे अनुवांशिक विविधता की संज्ञा दी जाती है, का वर्णन किया गया है। जैव विविधता पर्यावरण संतुलन एवं जैव जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है लेकिन प्राकृतिक एवं मानवजाति कारणों से जैव विविधता का ह्रास तेजी से हो रहा है। जैव विविधता का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। जैव विविधता संरक्षण हेतु संवैधानिक प्रयास भी दिये गये हैं।

इकाई - 5 औद्योगिक पारिस्थितिकी, जो वैज्ञानिकों एवं नीति-निर्धारकों के लिए एक नया एवं चुनौतिपूर्ण विषय है, की चर्चा की गयी है। इस इकाई के अन्तर्गत औद्योगिक पारिस्थितिकी की मूल संकल्पनाओं और विभिन्न तकनीकों का उल्लेख किया गया है।

औद्योगिकरण की तीव्र दर से उत्पन्न पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करने के लिए सरकार द्वारा कुछ उद्योगों की स्थापना, विस्तार आदि के संदर्भ में पर्यावरणीय अनापत्ति प्रमाम द्वारा लेना आवश्यक बना दिया गया है। इस पर्यावरणीय अनापत्ति प्रक्रिया का वर्णन इकाई-6 में विस्तार से किया गया है।

इकाई 1 : पर्यावरण सम्बन्धी नियम (Environmental Laws)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 संवैधानिक प्रावधान
1.3 प्रमुख अधिनियम
- 1.3.1 पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 1986
- 1.3.2 खतरनाक अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं रख-रखाव) नियम, 1989
- 1.3.3 खरतनाक रसायनों का निर्माण, भण्डारण एवं आयात नियम, 1989
- 1.3.4 खतरनाक सूक्ष्म जीवों/जेनिटिकली इंजीनियर्ड जीव या सेल के निर्माण, उपयोग, आयात, निर्यात तथा भण्डारण नियम, 1989
- 1.3.5 सार्वजनिक दायित्व बीमा अधिनियम तथा नियम, 1991
- 1.3.6 राष्ट्रीय पर्यावरणीय ट्रिब्यूनल अधिनियम, 1995
- 1.3.7 राष्ट्रीय एपीलेट प्राधिकरण अधिनियम, 1997
- 1.3.8 बायोमेडिकल अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं रख-रखाव) अधिनियम, 1998
- 1.3.9 पर्यावरण (औद्योगिक योजनाओं के लिए स्थान निर्धारण) अधिनियम, 1999
- 1.3.10 नगरपालिका ठोस उपशिष्ट (प्रबन्धन एवं संचालन) अधिनियम, 2000
- 1.3.11 ओजोन डिप्लीटिंग सबस्टैन्सेज (रेगुलेशन एवं कन्ट्रोल) अधिनियम, 2000
- 1.3.12 ध्वनि प्रदूषण (नियमन एवं नियंत्रण-संशोधन) अधिनियम, 2002
- 1.3.13 जैव-विविधता अधिनियम, 2002
- 1.3.14 जल प्रदूषण कानून (केन्द्रीय कानून)
- 1.3.15 जल (प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण) नियम, 1974
- 1.3.16 वायु प्रदूषण कानून (केन्द्रीय कानून)

- 1.3.17 वायु (प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981, तथा 1982 एवं 1983 के नियम
- 1.3.18 विकिरण कानून
- 1.3.19 कीटनाशी रसायन कानून
- 1.3.20 अन्य अधिनियम, नियम तथा अधिसूचनायें

1.4 सारांश
1.5 संदर्भित ग्रन्थ
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :-

- पर्यावरण सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधानों से परिचित हो सकेंगे।
- संघ एवं राज्य सूची में शामिल पर्यावरण सम्बन्धी विभिन्न विषयों की जानकरारी पा सकेंगे।
- पर्यावरण सम्बन्धी विभिन्न अधिनियमों की विस्तृत जानकारी से अवगत हो सकेंगे।
- केन्द्रीय एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के कार्यों से अवगत हो सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भारत में पर्यावरण की सुरक्षा से सम्बन्धित नियमों एवं कानूनों के अन्तर्गत अधिनियमों (Acts), नियमों (Rules) एवं अधिसूचनाओं (Notifications) को शामिल किया जाता है। हमारे देश में पर्यावरण सम्बन्धी कई अधिनियम पारित हुए, जैसे- वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम 1972,जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1974, वन संरक्षण अधिनियम 1980, वायु प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1981, पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986, आदि।

उल्लेखनीय है कि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए भारतीय संविधान में प्रावधान किया गया है।

1.2 संवैधानिक प्रावधान

सन् 1976 में 42वें संशोधन द्वारा संविधान में अग्रलिखित पर्यावरण सम्बन्धी प्रावधान सम्मिलित किये गये-

धारा 48ए के अनुसार - पर्यावरण का संरक्षण, संवर्द्धन तथा देश के वन एवं वन्य जीवों की सुरक्षा करना राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्य है। संविधान की धारा 51-ए(जी) के अनुसार, भारत में प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अन्तर्गत वन, झीलें, नदियाँ और वन्य जीव सम्मिलित है, की रक्षा तथा सुधार करेगा तथा हर तरह के जीव के प्रति संवेदनशील होगा।

भारतीय संविधान की 'सातवीं अनुसूची' (Seventh Schedule) में पर्यावरण सं सम्बन्धित निम्न विषयों को सम्मिलित किया गया है-

संघीय सूची (Union List) - 1

Entries

52 - उद्योग

53 - तेल क्षेत्रों एवं खनिज संसाधनों का विकास एवं नियमन

54 – खदानों एवं खनिज विकास का नियमन

56 - अन्तर्राष्ट्रीय नदियों एवं नदी घाटियों का नियमन एवं विकास

57 - टेरिटोरियल जल से बाहर मात्स्यिकी एवं मछली पकड़ना।

राज्य सूची (State List) - 2

Entries

6 - जन-स्वास्थ्य एवं सफाई

14 - कृषि, कीटों से बचाव तथा पौधों के रोगों की रोकथाम

18 - भूमि, चकबन्दी आदि

संवर्ती सूची (Concurrent List)

Entries

17ए - वन

17बी - वन्यजीवों एवं पक्षियों की रक्षा

20 - आर्थिक एवं सामाजिक नियोजन

20-ए जनसंख्या नियंत्रण एवं परिवार नियोजन

1.3 प्रमुख अधिनियम

पर्यावरण से सम्बन्धित प्रमुख अधिनियम निम्नलिखित है-

1.3.1 पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम 1986 (Environmental Protection Act, 1986)

यह अधिनियम 19 नवम्बर, 1986 को हमारी पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के जन्मदिन पर कार्यान्वित किया गया था।

पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 1980 के धारा 2 के तहत परिभाषायें-

(a) 'पर्यावरण' जल, वायु तथा भूमि एवं मानव तथा जीवित पौधों, सूक्ष्म जीवों एवं सम्पत्ति के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को सम्मिलित करता है।

(b) 'पर्यावरण प्रदूषण' का तात्पर्य किसी ठोस, तरल या गैसीय तत्व से है जिसका सान्द्रण पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है।

(c) 'पर्यावरण प्रदूषण' का तात्पर्य पर्यावरण में किसी पर्यावरणीय प्रदूषण की उपस्थिति से होता है।

(d) 'खरतनाक तत्व' वह तत्व या विरचन (Preparation) होता है जो अपने रासायनिक या भौतिक रासायनिक गुणों के कारण, या रख-रखाव के कारण मानव, अन्य जीवित जीवों, पौधों, सूक्ष्म जीवों, सम्पत्ति या पर्यावरण को क्षति पहुँचा सकता है।

यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत पर लागू होगा। पर्यावरण की सुरक्षा सरकार का प्रथम दायित्व है। पर्यावरण सुरक्षा हेतु केन्द्रीय सरकार को शक्तियाँ प्राप्त हैं। केन्द्रीय सरकार को पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार एवं प्रदूषण से बचाव, नियंत्रण एवं कमी करने हेतु आवश्यक उपाय करने का अधिकार है।

पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 1986 निम्नलिखित हैं-

A. इस अधिनियम के अधीन केन्द्र सरकार के सामान्य अधिकार निम्नलिखित है-

(I) राज्य सरकारों, अधिकारियों एवं अन्य प्राधिकरणों के कार्यों का समन्वय

(II) पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण एवं निवारण हेतु राष्ट्रव्यापी कार्यक्रमों का नियोजन एवं उनका क्रियान्वयन।

(III) पर्यावरण की गुणवत्ता के मानकों का निर्धारण

(IV) विभिन्न स्रोतों से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन (emission) एवं विसर्जन (discharge) के मानकों का निर्धारण

(V) विशिष्ट क्षेत्रों में उद्योगों एव अन्य क्रियाओं को रोकना या प्रतिबन्धित करना,

(VI) विशिष्ट क्षेत्रों में हानिकारक तत्वों के रख-रखाव को रोकना या प्रतिबन्धित करना।

(VII) ऐसी दुर्घटनाओं के लिए जो पर्यावरण प्रदूषण उत्पन्न करते हैं, की रोकथाम तथा ऐसी दुर्घटनाओं के निवारण के उपायों के लिए कार्य प्रणाली निर्धारित करना,

(VIII) ऐसे क्षेत्रों का निर्धारण करना, जिनमें किसी भी उद्योग की स्थापना न करनी हो या किसी भी प्रकार के उद्योगों का प्रचालन (operation) नहीं होने देना हो।

(IX) पर्यावरण प्रदूषण करने वाले पदार्थों, तत्वों, तथा उत्पादक प्रक्रियाओं का परीक्षण करना,

(X) पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण एवं निवारण हेतु प्रतिष्ठानों, उपकरणों, मशीनरी, या अन्य कार्यक्रमों, पदार्थों या तत्वों की जाँच करना तथा प्राधिकरणों, अधिकारियों या आवश्यकतानुसार, अन्य व्यक्तियों को इस कार्य हेतु आदेश देना।

(XI) पर्यावरण प्रदूषण से सम्बन्धित शोध करना या जांच प्रायोजित कराना,

(XII) इस अधिनियम के अधीन पर्यावरण प्रयोगशालाओं एवं संस्थानों की स्थापना करना।

(XIII) किसी भी प्रतिष्ठान का निरीक्षण करना तथा उनके रिकार्ड, रजिस्टर एवं अन्य दस्तावेजों की जाँच करके यह आश्वस्त होना कि अधिनियम के सभी नियमों का प्रभावी क्रियान्वयन हो रहा है।

(XIV) पर्यावरण प्रदूषण से सम्बन्धित सूचनाओं का संग्रहण एवं प्रसारण।

(XV) पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण एवं निवारण से सम्बन्धित मैनुअल, कोड, तथा निर्देश-पुस्तिका तैयार करना।

(B) केन्द्र सरकार को किसी भी उद्योग, प्रक्रियाओं को बन्द करने अथवा निषेधित (prohibited) करने का अधिकार।

(C) किसी भी प्रतिष्ठान द्वारा प्राप्त सभी तरह से पूर्ण आवेदन के 4 माह के अन्दर प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (PCB) को अपनी सहमति देनी होगी।

(D) एक निर्धारित समय के अन्दर PCB द्वारा अनुदान, सहमति की वापसी या

इन्कार से सम्बन्धित आदेश के खिलाफ परिवेदनाओं के संदर्भ में प्रतिष्ठान अपीलीय प्राधिकरण (appellate authority) से अपील कर सकता है।

(E) खतरनाक एवं प्रदूषण पदार्थों के सीवर भूमि में फैलने या फैलाने की सम्भावना होने पर उद्योग या प्रतिष्ठान PCB या दूसरा निर्धारित एजेन्सियों को सूचना प्रदान करेगा।

(F) PCB को यह अधिकार होगा कि वह ऐसे उद्योगों, जिससे जहरीले पदार्थों का उत्सर्जन हो रहा है, को बन्द करने का आदेश पारित कर सकता है।

(G) प्रदूषित पदार्थों को जल अथवा भूमि पर प्रवाहित करने से होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए PCB को न्यायालय में आवेदन करने का अधिकार होगा।

(H) अपीलीय प्राधिकरण के क्षेत्र में किसी भी विवाद के संदर्भ में सुनवाई जिला न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में होगा।

(I) संविधान के अन्तर्गत सरकार या बोर्ड द्वारा किसी भी कार्यवाही के विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा या कानूनी कार्यवाही पर प्रतिबन्ध होगा।

(J) प्रदूषण निकासी की अनुमति देने के संदर्भ में PCB निर्धारित तरीके के अर्न्तगत पूछताछ (enquiry) करेगी।

(K) एक निर्धारित तरीके से किसी भी उद्योग की बिजली पानी अथवा किसी भी सेवा की पूर्ति को रोकने का अधिकार होगा।

(L) उद्योग को PCB द्वारा निर्धारित निर्देशों का एक निश्चित समय के अन्दर पालन करना पड़ेगा।

(M) PCB को एक अनुमति रजिस्टर बनाये रखना होगा जिसमें निर्गत किये गये सहमति का ब्यौरा होगा और उसे उद्योग को दिखाने के लिए उपलब्ध कराना होगा।

अन्य सामान्य पर्यावरण कानून

1.3.2 खतरनाक अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं रख-रखाव) नियम, 1989 (The Hazadous Waste (Management and Handling) Rules, 1989)

खतरनाक अपशिष्टों के जनन, संग्रहण, शोधन, आयात, भण्डारण एवं रख-रखाव के नियंत्रण के लिए यह नियम बनाया गया है। इस नियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं-

(a) दखलदार (Occupier) पर स्वयं या खतरनाक अपशिष्ट, प्रबन्धन की सेवा प्रदान करने वाले परिचालक (Operator) द्वारा खतरनाक अपशिष्ट के उचित परिचालन का उत्तरदायित्व।

(b) प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (PCB) के पूर्व अनुमोदन के बगैर खतरनाक अपशिष्टों के संचालन पर रोक।

(c) दखलदार को सुनने का अवसर देने के पश्चात् PCB को अनुमोदन न प्रदान करने का अधिकार।

(d) खतरनाक अपशिष्टों का पैकेजिंग, लेबलिंग एवं परिवहन पूर्व निर्धारित तरीके से किया जायेगा।

(e) राज्य सरकार को राज्य के भीतर खरतनाक अपशिष्टों के निस्तारण के लिए स्थान चिन्हित करना होगा।

(f) खतरनाक अपशिष्ट पैदा करने वाले दखलदार या सुविधा प्रदान करने वाले संचालक को निश्चित फार्म पर वार्षिक विवरण (annual return) जमा करना होगा।

(g) खतरनाक अपशिष्ट के स्थान पर या परिवहन के दौरान दुर्घटना होने पर दखलदार या सुविधा प्रदान करने वाले संचालक द्वारा एक निर्धारित फार्म के माध्यम से PCB को सूचना देना होगा।

(h) कच्चे पदार्थ की प्रक्रिया या पुनर्प्रयोग हेतु खतरनाक अपशिष्ट के आयात के लिए निर्धारित प्रक्रिया को अपनाना होगा।

(i) नियंत्रण करने वाली एजेन्सियों द्वारा जाँच करने हेतु खतरनाक अपशिष्ट आयात करने वाले व्यक्ति को एक निर्धारित फार्म पर आयात का लेखा-जोखा करना होगा।

(j) PCB द्वारा किसी अनुमोदन (authorisation), निलम्बन, निरस्त्रीकरण या अस्वीकृत होने पर उत्पन्न परिवेदनाओं के लिए दखलदार एव निर्धारित समय के अन्दर अपील प्राधिकरण में अपील कर सकता है।

1.3.3 खतरनाक रसायनों का निर्माण, भण्डारण एवं आयात नियम 1989 (Manufacture, Storage and Import of Hazadous chamical) Rules, 1989)

यह नियम खतरनाक रसायनों से सम्बन्धित औद्योगिक कार्य तथा भण्डारण

सुविधाओं को वर्ष में एक बार जाँच के लिए नियम तथा शर्तें निर्धारित करने तथा प्राधिकरण बनाने से सम्बन्धित है। इस कानून में निम्नलिखित प्रावधान हैं :-

(a) खतरनाक रसायनों से सम्बन्धित औद्योगिक क्रियाओं पर रोक जब तक

उसे इसकी स्वीकृति न मिली हो, दखलदार एक निर्धारित फार्म पर ''नोटिफिकेशन ऑफ साइट्स'' से सम्बन्धित सूचना सम्बन्धित अधिकारी को कार्य शुरू करने के तीन माह पूर्व न दिया हो।

दखलदार को कार्य शुरू करने के तीन माह पूर्व एक निर्धारित फार्म पर सुरक्षा रिपोर्ट सम्बन्धित अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करना होगा। वर्तमान में हो रही औद्योगिक क्रियाओं के सम्बन्ध में दखलदार एक सुरक्षा रिपोर्ट बनाकर प्रस्तुत करेगा।

(b) खतरनाक रसायनों का निर्माण, भण्डारण एवं आयात कानून, १९९४ के पश्चात् नयी एवं वर्तमान औद्योगिक क्रियाओं के दखलदार एवं स्वतन्त्र सुरक्षा अंकेक्षण तैयार कर तीन दिन के अन्दर सम्बन्धित अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करेगा तथा दखलदार - वर्ष में एक बार सुरक्षा अंकेक्षण रिपोर्ट को आधुनिक (up-date) करेगा,

(c) सुरक्षा रिपार्ट एवं सुरक्षा अंकेक्षण रिपार्ट के संदर्भ में सम्बन्धित अधिकारियों की इच्छा पर ९० दिन के अन्दर अतिरिक्त सूचनायें भेजनी होगी।

(d) दखलदार को औद्योगिक क्रियायें प्रारम्भ करने के पूर्व दुर्घटना से सम्बन्धित आपातकालीन योजनायें बनानी होगी और उसे आधुनिक रखना होगा।

(e) दखलदार को सुरक्षा एवं डेटाशीट के रूप में सूचनाओं को विकसित करना होगा।

(f) दखलदार को जहरीले रसायन के प्रत्येक पात्र पर विशेष सूचनायें लिखनी होगी,

(g) सम्बन्धित अधिकारी द्वारा कार्य सुधार हेतु, आवश्यकता पड़ने पर दखलदार को सुधार सूचना जारी करना होगा।

1.3.4 खतरनाक सूक्ष्म जीवों/जेनेटिकली इंजीनियर्ड जीव या सेल (Cell) के निर्माण उपयोग, आयात, निर्यात तथा भण्डारण नियम 1989 (Rules of Manufacture, Use, Import, Export and Storage of Hazadous Micro-Organism, Genetically Engineered Organisms or Cell Rules 1989)

यह नियम जीन प्रौद्योगिकी एवं सूक्ष्म जीवों के अनुप्रयोग के सम्बन्ध में पर्यावरण, प्रकृति एवं मानव स्वास्थ्य की रक्षा के लिए बनाया गया है।

1.3.5 सार्वजनिक दायित्व बीमा अधिनियम तथा नियम 1991 (Public Liability Insurance Act, 1991, including Rules 1991)

यह नियम खतरनाक तत्वों के संचालन (Handling) के समय दुर्घटना से प्रभावित व्यक्तियों को तत्काल राहत देने के उद्देश्य से सार्वजनिक दायित्व बीमा प्रदान करने के लिए बनाया गया है। इस नियम की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं-

(a) विशिष्ट खतरनाक तत्वों के संचालन के दौरान दुर्घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु (कर्मचारी के अलावा) अथवा सम्पत्ति की क्षति होने पर स्वामी द्वारा राहत (Relief) प्रदान किया जायेगा।

(b) विशिष्ट खतरनाक तत्वों के परिचालन को शुरू करने के पूर्व स्वामी द्वारा उपक्रम के प्रदत्त पूँजी (Paid-up capital) से अधिक (लेकिन 50 करोड़ रुपये से कम) राशि का बीमा कराना होगा।

(c) स्वामी द्वारा बीमादार को एक निश्चित राशि, जो प्रीमियम राशि से अधिक नहीं होगी, देना होगा जो पर्यावरणीय राहत कोष (Environmental) के खाते में जमा होगा।

(d) राहत का सत्यापन, दुर्घटना का प्रकाशन और राहत पुरस्कार (Relief Award) जिला कलेक्टर द्वारा किया जायेगा।

(e) केन्द्र सरकार को अधिनियम की आवश्यकता से सम्बन्धित कोई भी सूचना स्वामी से माँगने का अधिकार है,

(f) केन्द्र सरकार को विशिष्ट खतरनाक तत्वों के संचालन से सम्बन्धित उद्योगों के परिसर में प्रवेश करने एवं छानबीन करने का अधिकार है,

(g) यदि केन्द्र सरकार को लगता है कि खतरनाक तत्वों का संचालन अधिनियम के अनुरूप नहीं हो रहा है तो वह उसे जब्त (Seize) कर सकता है,

(h) केन्द्र सरकार को निम्न परिस्थितियों में निर्देश देने का अधिकार है-

- ♦ किसी भी खतरनाक तत्वों के संचालन को रोकने या नियमित करने के लिए,
- ♦ बिजली, पानी या किसी अन्य सेवा को रोकने या नियमित करने के लिए,

(i) केन्द्र सरकार को खतरनाक तत्वों के संचालन से सम्बन्धित औद्योगिक इकाई के स्वामी के विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा दाखिल करने का अधिकार है, यदि सरकार को लगता है कि अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन हो रहा है,

(j) अधिनियम के अन्तर्गत सरकार या सम्बन्धित अधिकारी द्वारा अधिनियम के लागू करने से सम्बन्धित किसी भी कार्यवाही के विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा करने या कानूनी कार्यवाही पर प्रतिबन्ध होगा।

(k) केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति के बगैर यदि जंगल की कटाई या जंगल की भूमि का उपयोग गैर-जंगल (non-forest) कार्यों के उद्देश्य से किया जा रहा है तो उस पर रोक होगी चाहे वह व्यक्तिगत सम्पत्ति हो।

1.3.6 राष्ट्रीय पर्यावरणीय ट्रिबनल अधिनियम, 1995 (National Environmental Tribunal Act, 1995)

यह अधिनियम खतरनाक तत्वों से सम्बन्धित किसी कार्य को सम्पादित करते समय किसी व्यक्ति, सम्पत्ति तथा पर्यावरण को होने वाली क्षति के लिए क्षतिपूर्ति (Compensation) घोषित करने के लिए बनाया गया है।

1.3.7 राष्ट्रीय एपीलेट प्राधिकरण अधिनियम, 1997 (National Appelate Authority Act, 1997)

यह अधिनियम किसी क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना पर रोक या पर्यावरण रक्षा अधिनियम, 1986 में विहित किसी विषय के खिलाफ अपील की सुनवाई के लिए बनाया गया है।

1.3.8 बायोमेडिकल अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं रख-रखाव) अधिनियम, 1998 (Bio-medical Waste (Management & Handling) Act, 1998)

यह अधिनियम स्वास्थ्य से सम्बन्धित संस्थाओं के लिए अस्पतालों से निकले अपशिष्टों के समुचित संचालन की प्रक्रिया, यथा अपशिष्टों का अलगाव संग्रह, निस्तारण एवं शोधन, को चुस्त-दुरूस्त रखने के लिए बाध्यकारी है।

1.3.9 पर्यावरण (औद्योगिक योजनाओं के लिए स्थान निर्धारण) अधिनियम, 1999 (Environment (Location for Industrial Schemes) Act, 1999)

यह अधिनियम उद्योगों की अवस्थिति के लिए वर्जित क्षेत्रों तथा उद्योगों की

अवस्थितियों के निर्धारण के लिए सतर्कता उपायों के सम्बन्ध में विस्तृत प्रावधानों की व्यवस्था करता है।

1.3.10 नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं संचालन) अधिनियम 2000 (Nagar Palika Solid Waste (Management & Handling) Act,2000)

यह कानून नगरपालिकाओं को ठोस अपशिष्टों के समुचित संग्रह, छटनी, भण्डारण, परिवहन, प्रक्रिया, शोधन तथा निस्तारण के लिए जिम्मेदार बनाता है।

1.3.11 ओजोन डिप्लीटिंग सब्स्टेन्सेज (रेगुलेशन एवं कंट्रोल) अधिनियम 2000

यह अधिनियम ओजोन का क्षरण करने वाले तत्वों के उत्पादन एवं उपयोग को नियंत्रित करने हेतु बनाया गया है।

1.3.12 ध्वनि प्रदूषण (नियमन एवं नियन्त्रण-संशोधन) अधिनियम 2002 (Noice Pollution (Regulation and control-Amendment) Act, 2002)

यह अधिनियम ध्वनि प्रदूषण को कम करने के लिए आवश्यक दशायें तथा शर्ते तय करता है, तथा विभिन्न समयों में एवं अवसरों पर लाउडस्पीकरों के प्रयोग हेतु अनुमति प्रदान करने के नियमों एवं शर्तों का प्रावधान करता है।

1.3.13 जैव-विविधता अधिनियम-2002 (Bio-Diversity Act, 2002)

यह अधिनियम जैव-विविधता के संरक्षण, जैव-विविधता के पोषणीय (Sustainable) उपयोग, तथा जैविक संसाधनों एवं जैव-विविधता से सम्बन्धित ज्ञान के उपयोग से मिलने वाले लाभों के सही एवं समान हिस्सेदारी के लिए प्रावधान करता है।

1.3.14 जल प्रदूषण कानून (केन्द्रीय कानून) (Water Pollution Laws (Central Laws))

जल प्रदूषण कानून के अन्तर्गत निम्न अधिनियम पारित किये गये जिसमें जल प्रदूषण एवं निवारण अधिनियम, 1974 की चर्चा विस्तार से किया जायेगा।

i. नदी बोर्ड अधिनियम, 1956

ii. मर्चेन्ट शिपिंग (एमेण्डमेन्ट) अधिनियम, 1970

iii. जल (प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण) नियम, 1974

iv. जल (प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण) नियम, 1975

v. वाटर (प्रवेन्शन एवं कंट्रोल ऑव पालूशन) (प्रोसीजर फार ट्रान्जेक्शन आफ बिसनेज), नियम 1975

vi. जल (प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1977

vii. जल (प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974 का तथा 1978 एवं 1988 में संशोधित रूप।

viii. जल (प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण) उपकर नियम, 1987

ix. केन्द्रीय जल प्रयोगशाला अधिसूचना, 1988, 1991 जल (प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण) उपकर अधिनियम, 1977 का संशोधित रूप, 1991

x. कोस्टल रेगुलेशन जोन अधिसूचना, 1991

1.3.15 जल (प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण) नियम 1974 (Water Prevention and Control of Pollution) Rules, 1974)

इस नियम का मुख्य उद्देश्य जल प्रदूषण का निवारण एवं नियंत्रण करना है। इस कानून के मुख्य बातें निम्नलिखित हैं-

A. यह भूमिगत तथा सतही जल स्रोतों की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए हर तरह का प्रावधान करता है।

B. इस नियम के तहत केन्द्रीय एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्थापना की गयी है तथा उनके कार्य एवं शक्तियाँ निर्धारित किये गये हैं।

C. नियम का उल्लंघन करके प्रदूषण करने वालों के लिए उसमें जुर्माना एवं सजा निर्धारित किये गये हैं। इस कानून की धारा 24 के अन्तर्गत कोई भी व्यक्ति या उद्योग या संस्थान किसी भी जल स्रोत में किसी भी प्रकार का जहरीला तत्व या प्रदूषण विसर्जित नहीं कर सकती है जिससे कि जल के गुणों में किसी प्रकार का नुकसानदायक परिवर्तन हो अथवा होने की आशंका हो।

इस कानून के अन्तर्गत केन्द्रीय एवं राज्य प्रदूषण बोर्डों के कार्यों का उल्लेख किया गया है-

केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड – इस बोर्ड के प्रमुख कार्य अग्रलिखित हैं-

I. यह जल प्रदूषण के निवारण व रोकथाम के विषय में केन्द्र को सलाह देता है।

II. देश भर से जल-प्रदूषण सम्बन्धी सूचना व रिपोर्ट इत्यादि को इकट्ठा करता है। व प्रदूषित जल से शुद्ध करने के तरीके बताता है।

III. यह राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों को सलाह देता है व मार्ग दर्शन करता है।

IV. प्रदूषण के निवारण व नियंत्रण के लिए प्रशिक्षण कैम्प लगाता है तथा जनसंचार के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है।

V. देश भर में औद्योगिक कचरे की जाँच के लिए कुछ प्रयोगशालाओं को मान्यता प्रदान करता है।

राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड – इस बोर्ड के प्रमुख कार्य अग्रलिखित हैं-

I. यह बोर्ड राज्य में स्थापित होने वाले किसी उद्योग से यदि किसी जल स्रोत को हानि पहुँचने की आशंका हो तो राज्य सरकार को इसकी जानकारी देता है।

II. यह जल का मानक स्थापित करता है जिसे इस राज्य के सभी उद्योगों को मानना होता है।

III. इस बोर्ड को यह अधिकार होता है कि किसी उद्योग के जल के नमूने एकत्र करे, उसकी जाँच करवाये तथा उसके मानकों पर खरा न उतरने की स्थिति में उद्योग को सूचना देकर उसकी अनुमति से इन्कार कर दे।

IV. बोर्ड का यह कर्त्तव्य भी है कि वह उद्योगों को सही जानकारी दे ताकि वे प्रदूषण की रोकथाम सही ढंग से कर सकें।

1.3.16 वायु प्रदूषण कानून (केन्द्रीय कानून)

वायु प्रदूषण से सम्बन्धित निम्नलिखित केन्द्रीय कानून पारित किये गये हैं -

I. इण्डियन ब्वायलर्स अधिनियम, 1923

II. कारखाना अधिनियम, 1948

III. उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951

IV. खदान एवं खनिज (नियमन एवं विकास) अधिनियम, 1947

V. वायु (प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981

VI. वायु (प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण) नियम, 1982

VII. वायु (प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण) (केन्द्रशासित राज्य), नियम, 1983

VIII. वायु (प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 का 1987 में संशोधित रूप

IX. वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्रों की अधिसूचना तथा घोषणा, 1981, 1987, 1988, 1989

X. विभिन्न उद्योगों से प्रदूषणों के उत्सर्जन मानकों की अधिसूचना, 1986

1.3.17 वायु (प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 तथा 1982 एवं 1983 के नियम (The Air (Prevention and Control of Pollution) Act, 1981; Including Rules 1982 and 1983)

उद्योग एवं व्यवसाय से सम्बन्धित प्रावधान-

A. राज्य सरकार के अधिकार-

i. राज्य के किसी भी क्षेत्र 'प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र' घोषित करना,

ii. किसी भी प्रकार के ईंधन या ऐसी वस्तुयें जिनके जलाने से प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र में वायु प्रदूषण हो, को रोकना,

B. बिना प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (PCB) के पूर्व सहमति के यदि प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र में कोई प्रतिष्ठान स्थापित की जा रही है जो वातावरण में वायु प्रदूषण उत्सर्जित करती हो तो उसे स्थापित करने से रोकना,

C. निर्धारित तरीके से सहमति प्राप्त करने के लिए PCB द्वारा पूछताछ करना,

D. किसी भी प्रतिष्ठान द्वारा प्राप्त सभी तरह से पूर्ण आवेदन पत्र के 4 माह के भीतर PCB को अपनी सहमति देनी होगी,

E. PCB द्वारा निर्धारित वायु प्रदूषकों की एक निश्चित सीमा से अधिक उत्सर्जन पर रोक लगाना,

F. PCB को यह अधिकार होगा कि प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र के अन्तर्गत स्थापित प्रतिष्ठान द्वारा निर्धारित मात्रा से अधिक प्रदूषकों के उत्सर्जन पर न्यायालय में मुकदमा दर्ज करें,

G. निर्धारित मात्रा से अधिक वायु प्रदूषकों के उत्सर्जन जिसके कारण वायु प्रदूषण हो रहा है, के संदर्भ में उद्योग को PCB या अन्य निर्धारित एजेन्सी को सूचना प्रदान करना होगा।

H. प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (PCB) के अधिकार-

i. किसी भी औद्योगिक प्रतिष्ठान के रिकार्ड, रजिस्टर एवं अन्य दस्तावेजों की जाँच करना,

ii. अधिनियम के प्रावधानों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित किसी भी सूचना को प्राप्त करना,

iii. वायु एवं उत्सर्जन के विश्लेषण के लिए नमूने एकत्र करना,

I. उद्योग एक निर्धारित समय के अन्दर PCB द्वारा दिये गये आदेश के विरुद्ध अपील प्राधिकरण में अपील कर सकता है,

J. PCB के निर्देश देने का अधिकार :-

i. किसी भी उद्योग, परिचालन या प्रक्रिया को रोकना,

ii. किसी भी उद्योग की बिजली, पानी या अन्य सेवाओं पर रोक लगाना,

K. उद्योग को PCB के सभी निर्देशों का अनुपालन करना (Company),

L. अपील प्राधिकरण के क्षेत्र के किसी विवाद के मामले में सुनवाई जिला न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में होगा,

M. निर्धारित मात्रा से अधिक प्रदूषकों के उत्सर्जन पर रोक,

N. उद्योग को निर्धारित मात्रा से अधिक प्रदूषकों के उत्सर्जन जिसके कारण वायु प्रदूषण हो रहा है, के संदर्भ में निर्धारित एजेन्सियों को सूचना देना,

O. केन्द्र सरकार को विश्लेषण के उद्देश्य से किसी भी औद्योगिक प्रतिष्ठान से वायु जल एवं मृदा के नमूने एकत्र करने का अधिकार,

P. संविधान के अनुपालन हेतु सरकार या अधिकारियों द्वारा उठाये गये सुधारात्मक कदम के विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा या कानूनी कार्यवाही प्रतिबन्धित होगा।

1.3.18 विकिरण कानून (Radiation Laws)

उद्योग एवं व्यवसाय से सम्बन्धित प्रावधान-

1.3.18.1 परमाणु ऊर्जा अधिनियम, 1962

1.3.18.2 विकिरण रक्षा कानून, 1971

1.3.19 कीटनाशी रसायन कानून (Pesticides Laws)

1.3.19.1 विष अधिनियम, 1919

1.3.19.2 कारखाना अधिनियम, 1948

1.3.19.3 कीटनाशी अधिनियम, 1968

1.3.19.4 पर्यावरण प्रयोगशाला एवं विश्लेषण अधिसूचना, 1987

1.3.20 अन्य अधिनियम, नियम तथा अधिसूचनायें (Other Acts, Rules and Notification)

1.3.20.1 भारतीय मत्स्य अधिनियम, 1897

1.3.20.2 भारतीय वन अधिनियम, 1927

1.3.20.3 खाद्य पदार्थ मिलावट रोकथाम अधिनियम, 1954

1.3.20.4 प्राचीन स्मारक एवं पुरातत्व के स्थानों एवं अवशेषों का अधिनियम, 1958

1.3.20.5 वन्य जीव रक्षा अधिनियम, 1972

1.3.20.6 नगरीय भूमि (सीलिंग एवं रेगुलेशन) अधिनियम, 1976

1.3.20.7 वन संरक्षण अधिनियम, 1980

1.3.20.8 पर्यावरण (रक्षा) कानून की अधिसूचना, 1986

1.3.20.9 पब्लिक देनदारी बीमा अधिनियम, 1991, 1992 में संशोधित

1.3.20.10 पब्लिक देनदारी बीमा नियम, 1991

1.3.20.11 पर्यावरण अधिप्रभाव आकलन अधिसूचना, 1991 तथा 1994 में संशोधित

1.3.20.12 जैव विविधता अधिनियम, 2000

उपर्युक्त अधिनियमों एवं नियमों में से कुछ की विस्तार में चर्चा की जा रही है।

1.3.20.5 वन्य जीव रक्षा अधिनियम, 1972 (Wild Life Protection Act, 1972)

इस अधिनियम के अन्तर्गत वन्य जीव संरक्षण को राज्य सूची से संघ सूची में परिवर्तित करके केन्द्रीय सरकार को कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया है। इसके

प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं-

A. किसी वन्य जीव, उसके किसी अंग, या उससे बने किसी सामान को रखना अवैध है।

B. इसके अन्तर्गत पहली बार संकटग्रस्त तथा समाप्त होने वाले वन्य जीवों की सूची बनायी गयी व ऐसे जीवों के शिकार पर रोक लगायी गयी।

C. अभयारण्य क्षेत्रों में मत्स्याखेट पर पूर्ण प्रतिबन्ध है।

D. राष्ट्रीय उद्यानों व अभयारण्यों की व्यवस्था की गयी।

E. यह वन्य जीवन सम्बन्धी परिभाषायें निश्चित करता है।

F. यह वन्य जीवन सलाहकार वार्डेन, समिति तथा उसके कर्तव्यों व शक्तियों को तय करता है।

G. कुछ वन्यजीवन प्रजातियों की व्यावसायिकी के लिए लाइसेन्स आदि की स्थापना की गयी।

H. इसके अन्तर्गत संकटग्रस्त प्रजातियों की गिनती बढ़ाने के लिए कई तरह की योजनायें बनायी गयी।

I. इसके अन्तर्गत केन्द्रीय चिड़ियाघर प्रशासन की स्थापना की गयी।

J. अधिनियम की अवहेलना करने पर सजा एवं जुर्माने का प्रावधान किया गया है।

K. कुछ विशेष वन्य जीव के लिए विशिष्ट परियोजनायें बनायी गयी, जैसे-बाघ (1973), सिंह (1972), भूरे सींग वाला हिरण (1981), घड़ियाल (1974) से सम्बन्धित परियोजनायें।

1.3.20.2 भारतीय वन अधिनियम, 1927 (Indian Forest Act, 1927)

इस अधिनियम के माध्य से वनोपज का नियमन किया गया। इस अधिनियम की धारा 2(4) में वनोपज को दो वर्गों में बाँटा गया है-

धारा 2(4) (क) में इमारती लकड़ी, कोयला, कत्था, महुआ आदि, एवं

धारा 2(4) (ख) में पेड़ों के हिस्सों से बनी चीजें एवं वन्यजीव आदि शामिल हैं।

इस प्रकार आरक्षित वनों में इन पर पूर्ण प्रतिबन्ध लग जाता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत वनोपज ले जाने के अधिकार पर नियमन होता है। संरक्षित वनों में किसी

विशिष्ट वनोपज के संग्रहण या उससे कुछ और बनाने आदि पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए शासन को तत्सम्बन्धी अधिसूचना जारी करनी होती है।

इस अधिनियम के माध्यम से सरकार किसी भी भूमि को वन घोषित करके वहाँ के वनों के संरक्षण की व्यवस्था कर सकता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत यह भी प्रावधान है कि शासन सार्वजनिक स्वास्थ्य, जल प्रदाय सुरक्षा, भूमि सुधार, पर्यावरण संरक्षण, पेड़-पौधों का संरक्षण जैसे जनहित के उद्देश्य से किसी भी भूमि को वन भूमि घोषित कर सकता है, साथ ही, निजी स्वामित्व की जमीन पर लगे वृक्षों के संरक्षण हेतु कोई भू-स्वामी भी शासन से उसके संरक्षण के लिए अनुरोध कर सकता है।

1.3.20.7 वन संरक्षण अधिनियम, 1980 (Forest Conservation Act, 1980)

वन भूमि की अन्धाधुन्ध अनारक्षण और उपयोग को रोकने के लिए सन् 1980 में वन संरक्षण अधिनियम का निर्माण किया गया। यह अधिनियम जम्मू-काश्मीर के अलावा देश के सभी हिस्सों में मान्य है। इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी आरक्षित वन को अनारक्षित घोषित करने या वन भूमि को गैर-वन प्रयोजन के लिए उपयोग में लाने के लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति आवश्यक कर दी गयी है। वन भूमि के गैर-वन भूमि के कार्य हेतु आवंटन के साथ ही यह प्रतिबन्ध भी है कि उतनी अथवा उसके समतुल्य क्षेत्र में वन (पेड़) लगाने होंगे।

1992 में वन अधिनियम में कुछ संशोधन किये गये जिसमें निम्नलिखित उपबन्ध शामिल किये गये हैं -

A. वन के भीतर बिजली की लाइन बिछाना, भूकम्प का सर्वेक्षण करना तथा बाँध परियोजना प्रारम्भ करने जैसी कुछ गैर-वानिकी कार्यों के लिए केन्द्रीय सरकार से पूर्व अनुमति लेकर कार्य किया जा सकता है।

B. यदि फल वाले वृक्ष, तेल देने वाले या औषधि प्रदान करने वाले वृक्ष भी लगाने हों तो वहाँ के पुराने पेड़ों को काटकर ऐसा करने का प्रावधान नहीं है। इसके लिए केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेनी पड़ती है।

C. चाय, काफी, मसाले, रबड़, तिलहन पौधों, ताड़ आदि को अवानिकी कार्यों में गिना जाता है।

D. जो कोई भी अधिनियम की धारा 2 के उपबन्धों का उल्लंघन करेगा या उल्लंघन

की प्रेरणा देगा उसको 15 दिन तक की सामान्य कैद का दण्ड दिया जायेगा। इसमें वे सरकारी कर्मचारी भी शामिल होंगे जो अपराध घटित होते समय प्रत्यक्ष प्रभारी होंगे।

E. वन के अन्दर खनन को गैर-वानिकी माना गया है।

1.3.20.13 वन्य जीव (संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2006 (Wild LIfe (Protection) Amendment Act, 2006)

वन्यजीव (संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2006 में प्रभावी हो गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत 'बाघ संरक्षण प्राधिकरण' (Tiger Protection Authority-TPA) तथा बाघ एवं अन्य संकटापन्न प्रजाति अपराध नियंत्रण ब्यूरो (वन्य जीवन नियंत्रण ब्यूरो) बनाने का प्रावधान निम्नलिखित उद्देश्यों के लिए किया गया है-

A. वन्य जीव अपराधों के लिए दोषियों को दण्डित करने के लिए राज्य को सहयोग देना,

B. वन्य जीव अपराध से सम्बन्धित गुप्त सूचनाओं का सम्पादन करना,

C. वन्य जीव अपराधों की वैज्ञानिक खोजबीन करने हेतु क्षमता निर्माण विकसित करना,

D. राज्य सरकारों के साथ सहयोग सुनिश्चित करना आदि।

इस अधिनियम के अन्तर्गत वन्य जीव अपराधियों के लिए कम से कम 3 वर्ष कैद की सजा होगी जिसे 7 वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है। साथ ही कम से कम 50,000 और अधिकतम 200,000 रुपये का जुर्माना हो सकता है।

1.4 सारांश

स्वतंत्रता के पश्चात् औद्योगिक विकास, कृषि विकास, परिवहन विकास, शहरीकरण, जनसंख्या में वृद्धि के कारण जब पर्यावरण का तेजी से विनाश होने लगा तो भारतीय संविधान के अन्तर्गत इसे संरक्षित करने के अनेक कदम उठाये गये जो आज भी जारी हैं। पर्यावरण के विविध पक्षों को कानून की परिधि में लेने तथा उनका अतिक्रमण करने वालों के विरुद्ध जुर्माने के प्रावधान का वास्तविक स्वरूप भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् ही सामने आया।

भारत में पर्यावरण की सुरक्षा से सम्बन्धित अधिनियमों, नियमों एवं अधिसूचनाओं

को शामिल किया जाता है। हमारे देश में पर्यावरण सम्बन्धी कई अधिनियन पारित हुए जैसे-वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम, 1972, जल (प्रदूषण एवं निवारण) अधिनियम, 1974, वन संरक्षण अधिनियम, 1980, वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981, पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 1986, खतरनाक अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं रख-रखाव) नियम, 1989, खतरनाक रसायनों का निर्माण, भण्डारण एवं आयात नियम, 1989, ध्वनि प्रदूषण (नियमन एवं नियंत्रण-संशोधन) नियम, 2002, जैव-विविधता अधिनियम, 2002, आदि।

पर्यावरण सुरक्षा की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कदम 1976 में संशोधन के 42वें संशोधन द्वारा उठाया गया। इसके द्वारा धारा 48ए के अनुसार पर्यावरण का संरक्षण, संवर्द्धन तथा देश के वन एवं वन्य जीवों की सुरक्षा करना राज्य सरकारों का उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य है। इसके साथ ही संविधान की धारा 51ए(जी) के अनुसार, भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण जिसके अन्तर्गत वन, झीलें, नदियाँ और वन्य जीव सम्मिलित हैं की रक्षा तथा सुधार करेगा तथा हर तरह के जीव के प्रति संवेदनशील होगा।

पर्यावरण सम्बन्धी विभिन्न कानूनी प्रावधानों के फलस्वरूप पर्यावरण सम्बन्धी कई प्रकरण न्यायालय में जाने लगे हैं। जैसे-जैसे नागरिकों में पर्यावरण के प्रति चेतना आ रही है, पर्यावरण संरक्षण हेतु नियम व्यापक होते जा रहे हैं।

1.5 संदर्भित ग्रन्थ :

- मेघा सिन्हा, पर्यावरण प्रदूषण, वन्दना पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, 2007
- एन0एम0अवस्थी, पर्यावरणीय अध्ययन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2005-06
- सविन्द्र सिंह, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2008
- सत्यनारायण दूबे,पर्यावरणीय शिक्षा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :

1. पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 2006 की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) नियम, 1974 के अन्तर्गत केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के कार्यों का वर्णन कीजिए।
3. खतरनाक अपशिष्ट (प्रबन्धन एवं रख-रखाव) नियम, 1987 की मुख्य बातें

क्या हैं?

4. जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) नियम, 1974 का उल्लेख करते हुए केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के कार्यों का वर्णन कीजिए।
5. वायु (प्रदूषण रोकथाम एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 तथा 1982 एवं 1983 के नियमों की मुख्य बातें बताइए।

इकाई 2 : प्रदूषण नियंत्रण (Environmental Control)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 प्रदूषण का अर्थ
2.3 प्रदूषण की परिभाषायें
2.4 प्रदूषण का अर्थ
2.5 प्रदूषण के प्रकार
2.5.1 वायु प्रदूषण
2.5.1.1 वायु प्रदूषण के कुप्रभाव
2.5.1.2 वायु प्रदूषण के स्रोत
2.5.1.3 वायु प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय
2.5.2 जल प्रदूषण
2.5.2.1 जल प्रदूषण के कुप्रभाव
2.5.2.2 जल प्रदूषण के स्रोत
2.5.2.3 जल प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय
2.5.3 मृदा प्रदूषण
2.5.3.1 मृदा प्रदूषण के कुप्रभाव
2.5.3.2 मृदा प्रदूषण के स्रोत
2.5.3.3 मृदा प्रदूषण के नियत्रण के उपाय
2.5.4 ध्वनि प्रदूषण
2.5.4.1 ध्वनि प्रदूषण के कुप्रभाव
2.5.4.2 ध्वनि प्रदूषण के स्रोत
2.5.4.3 ध्वनि प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय
2.5.5 ताप प्रदूषण

2.5.5.1 ताप प्रदूषण के कुप्रभाव

2.5.5.2 ताप प्रदूषण के नियंत्रण के उपाय

2.6 सारांश

2.7 संदर्भित ग्रन्थ

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप -

- प्रदूषण की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे,
- प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों से अवगत हो सकेंगे,
- विभिन्न प्रकार के प्रदूषण के कुप्रभावों की जानकारी पा सकेंगे,
- प्रदूषण फैलाने वाले विभिन्न स्रोतों के बारे में जान सकेंगे,तथा
- प्रदूषण के नियंत्रण हेतु उठाये जाने वाले उपायों से परिचित हो सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

शहरीकरण, औद्योगीकरण, कीटनाशियों तथा परमाणु उर्जा के उपयोग ने पर्यावरण (जल, भूमि, वायु) के विभिन्न घटकों को पूरी तरह से प्रभावित कर के इसकी संरचना में परिवर्तित कर दिया है जिसका परिणाम सामने है। वायु, भूमि, झीलों, नदियों तथा समुद्रों में प्रदूषण हो रहा है। मानव-शरीर में मनोवैज्ञानिक विक्षोंभ उत्पन्न हो रहे हैं, शान्ति नहीं है, हिंसा बढ़ रही है। शोरगुल का माहौल सड़क पर चल रहे या घर बैठे शहरी लोगों को परेशान कर देता है। थकान उत्पन्न करता है और बहरेपन जैसी बीमारी का खतरा बढ़ा देता है। पृथ्वी पर मानव, पादप एवं वन्य जीवधारियों का जीवन संकट में है। इन खतरों से निपटने के लिए शिक्षा एवं जनचेतना की नितान्त आवश्यकता है।

2.2 प्रदूषण का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Pollution)

विश्व तीन प्रमुख समस्याओं, जिन्हें 3-P (Population- जनसंख्या, Poverty- गरीबी एवं Pollution- प्रदूषण कहते हैं, से जूझ रहा हैं, इनमें से प्रदूषण अत्यन्त

गंभीर समस्या है जिसने मानव अस्तित्व को खतरे में डाल दिया है। मानवीय क्रिया-कलापों द्वारा पर्यावरणीय दशाओं में किये गये बदलावों से उत्पन्न प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभावों के फलस्वरूप पर्यावरण (जल,भूमि, वायु) में आये आवांछित एवं प्रतिकूल परिवर्तनों को पर्यावरण प्रदूषण करते हैं।

2.3 परिभाषायें

पर्यावरण प्रदूषण की कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं -

1. **प्रो0 सविन्द्र सिंह** के शब्दों में, ''पर्यावरण प्रदूषण उसे कहते हैं जो मनुष्य के इच्छित या अनिच्छित कार्यों द्वारा प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि वह उसकी (परिस्थितिकी तंत्र) की सहन शक्ति से अधिक हो जाता है, परिणामस्वरूप पर्यावरण की गुणवत्ता में आवश्यकता से अधिक ह्रास होने से मानव समाज पर दूरगामी हानिकारक प्रभाव पड़ने लगते हैं।''
2. **ई0 पी0 ओडम के अनुसार,** हवा, जल और मृदा के भौतिक, रासायनिक, जैविक गुणों के ऐसे अवांछनीय परिणामों से जिससे मनुष्य स्वयं को तथा सम्पूर्ण परिवेश प्राकृतिक, जैविक और सांस्कृतिक तत्वों को हानि पहुँचाता है, प्रदूषण करते हैं।''
3. **लार्ड केनेट का राय में,** ''पर्यावरण में उन तत्वों या उर्जा की स्थिति का प्रदूषण कहते हैं जो मनुष्य द्वारा अनचाहे उत्पादित किये गये हों, जिनके उत्पादन का उद्देश्य अब समाप्त हो गया हो, जो अचानक बच निकले हों, या जिनका मानव के स्वास्थ्य पर अकथनीय हानिकारक प्रभाव पड़ता हो।''
4. **प्रो0 जगदीश सिंह** के मत में ''पर्यावरण के किसी भी तत्व के भौतिक, रासायनिक अथवा जैविक विशेषताओं में कोई ऐसा परिवर्तन जो मानव या अन्य प्राणियों के लिए हानिकारक हो, प्रदूषण कहलाता है।''
5. **राष्ट्रीय पर्यावरण शोध परिषद् के अनुसार,** ''मनुष्य के क्रिया-कलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों एवं ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण करते हैं।''
6. **अमरीकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी** के शब्दों में, ''प्रदूषण जल, वायु या भूमि के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाला कोई भी अवांछनीय परिवर्तन है जिससे मनुष्य या अन्य जीवों, औद्योगिक प्रक्रियाओं या सांस्कृतिक

तत्वों तथा प्राकृतिक संसाधनों को कोई हानि हो या होने की आशंक हो।''

7. **आर. ई. दासमान के शब्दों में,** ''उस दशा या स्थिति को प्रदूषण कहते हैं जब मानव द्वारा पर्यावरण में विभिन्न तत्वों एवं ऊर्जा का इतनी अधिक मात्रा में संग्रह हो जाता है कि वे पारिस्थितिक तंत्र द्वारा आत्मसात् करने की क्षमता से अधिक हो जाते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से यह पता लगता है कि प्रदूषण की परिभाषा के निम्नलिखित तीन आधार हैं:-

(1) मानव क्रियाओं द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ तथा उनका निस्तारण

(2) प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपशिष्ट पदार्थों के निस्तारण से उत्पन्न क्षति एवं हानि, एवं

(3) इस क्षति एवं हानि का लोगों पर प्रभाव।

2.4 प्रदूषक का अर्थ

मानव द्वारा उपयोग में लाये गये पदार्थों के अवशेष या बनाये गये पदार्थ जो वातावरण के स्वाभाविक संतुलन को बदल कर प्रदूषण उत्पन्न करते हैं, प्रदूषक कहलाते हैं। जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ प्रदूषकों की मात्रा, संख्या एवं प्रकार में लगातार वृद्धि हो रही है।

2.5 प्रदूषण के प्रकार

पर्यावरण और उनको प्रदूषित करने वाले प्रदूषकों की प्रकृति के अनुसार प्रदूषण निम्न प्रकार के होते हैं :-

2.5.1 वायु प्रदूषण

2.5.2 जल प्रदूषण

2.5.3 मृदा प्रदूषण

2.5.4 ध्वनि प्रदूषण

2.5.5 ताप प्रदूषण

2.5.1 वायु प्रदूषण (Air Pollution)

वायु प्रदूषण से आशय वायु में प्रदूषक द्रव, गैस एवं ठोस रूप में इस सीमा तक

मिल जायें जो मनुष्य, जीव-जन्तु, क्षमता पर विपरीत प्रभाव छोडे, उसे वायु प्रदूषण के अन्तर्गत माना जाता है। दूसरे शब्दों में, वायु के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई भी ऋणात्मक परिवर्तन या ह्रास जिसके द्वारा स्वयं मनुष्य तथा अन्य जीव-जन्तुओं के जीवन, परिस्थितियों, औद्योगिक उपक्रमों तथा सांस्कृतिक सम्पत्ति को हानि पहुँचे, वायु प्रदूषण कहलाता है, वायु प्रदूषण की कतिपय परिभाषायें निम्नलिखित हैः

डा0 सविन्द्र सिंह के शब्दों में, ''सामान्य अर्थों में प्राकृतिक तथा मानवजनित स्रोतों से उत्पन्न बाहरी तत्वों के वायु में मिश्रण के कारण वायु की असंतुलित दशा को वायु प्रदूषण कहते हैं। इस तरह असंतुलित वायु की गुणवत्ता में ह्रास हो जाता है तथा वह जीवीय समुदाय के लिए सामान्य रूप से तथा मानव समुदाय के लिए विशेष रूप से हानिकारक हो जाती है।''

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, ''जब वायु मण्डल में दूषित पदार्थों का सान्द्रण मानव तथा पर्यावरण को हानि पहुँचाने की सीमा तक बढ़ जाता है तो उसे वायु प्रदूषण कहा जाता है।''

एच0 पर्किन्स के मत में, ''बाह्य वातावरण में एक या एक से अधिक प्रदूषक यथा : धूल, धूम्र, गैस, कुहासा, रंग, कालिख या वाष्प की मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि मनुष्य, पौधों या जन्तुओं के जीवन के लिए हानिकारक हो जाती है या जिससे मानव जीवन के आनन्द एवं उसकी सम्पत्ति में व्यवधान होने लगता है तो उसे वायु प्रदूषण कहते हैं।''

हैसकेप के शब्दों में, ''वायु में ऐसे बाह्य तत्व (चाहे गैस या कणीय पदार्थ या दोनों संयोग में) की उपस्थिति जो मानव के स्वास्थ्य अथवा, तथा कल्याण हेतु हानिकारक हो, वायु प्रदूषण कहते हैं।''

वायु प्रदूषण मुख्यतया ठोस, तरल एवं गैसीय कणों वाले प्रदूषकों द्वारा होता है। प्रमुख वायु प्रदूषक हैं-फ्लूरोकार्बन, कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, हाइड्रोकार्बन, सल्फर डाई आक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, नाइट्रोजन आक्साइड, अपशिष्ट ऊष्मा, जल वाष्प, अमोनिया, मिथेन, मेथिल, ब्रोमाइड, क्रिप्टान-85, एयरोसाल आदि। उल्लेखनीय है कि प्राकृतिक स्रोतों से उत्पन्न प्रदूषकों (जैसे - ज्वालामुखी धूलि तथा राख, पौधों की पत्तियों से उत्सर्जित वाष्प, वायु तथा उड़ाई गई धूलि, वस्तुओं के सड़ने-गलने से उत्पन्न होने वाली दुर्गन्ध एवं गैस आदि) द्वारा वायु का प्रदूषण उतना हानिकारक नहीं होता।

2.5.1.1 वायु प्रदूषण कुप्रभाव

वायु मण्डल से हमारा स्वास्थ्य, हमारे आस-पास के पेड़-पौधे, जीव-जन्तु तथा जलवायु इत्यादि सभी पारिस्थितिक घटक प्रभावित होते हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार है-

a. **मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव :-** वायु में उपस्थित सूक्ष्म धूल कण, गैसें तथा धात्विक कण विभिन्न बीमारियों के जनक हैं। वायु प्रदूषण से मानव जीवन के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा है। श्वांस सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं, जैसे, खांसी, फेफड़े का कैंसर, अस्थमा रोग, कैटमियम श्वसन विष का कार्य करता है। रक्तचाप बढ़ने से हृदय सम्बन्धी बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं। नाइट्रोजन आक्साइड से फेफड़े, हृदय और आँखों के रोग होते हैं। ओजोन गैस आँख का रोग, सीने का दर्द और खांसी उत्पन्न करती है। प्रदूषित वायु से मानव में चर्म रोग, मुंहासे आदि उत्पन्न होते हैं।

b. **पेड़-पौधों पर प्रभाव :-** वायु प्रदूषण का पेड़-पौधों पर कई रूपों से दुष्प्रभाव पड़ता है। जैसे पौधों का गुण बदलने लगता है, उनका विकास रूक जाता है तथा उत्पादकता कम हो जाती है। सल्फर एवं सल्फर के आक्साइड का प्रभाव अंगूर, कपास, सेब के पौधों पर स्पष्ट देखा जा सकता है। जहाँ इन पौधों का विकास रूक जाता है, उत्पादकता में कमी आ जाती हैं। इसी प्रकार नाइट्रोजन के आक्साइड, पेड़-पौधों में वृद्धि रोक देते हैं। ओजोन से पत्तियों के ऊतक जल जाते हैं जिससे सब्जियां, फल फूल, तता वन वृक्ष भी क्षतिग्रस्त होते हैं। वायु प्रदूषण के कारण सूर्य के प्रकाश की मात्रा में कमी आती है, जिससे पौधों की प्रकाश संश्लेषण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

c. **कीट एवं अन्य जीवों पर प्रभाव :-** वायु प्रदूषण के कारण कीट एवं अन्य जीवों के श्वसन तंत्र एवं केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र प्रभावित होते हैं। धूयें के कारण प्रकाश की अल्ट्रावायलेट किरणों की मात्रा में कमी आ जाती है, जिसका जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

d. **मौसम पर प्रभाव :-** वायुमंडल में कार्बनडाईआक्साइड के सान्द्रण में वृद्धि होने से वायुमंडल में हरितगृह प्रभाव (Green house effect) में वृद्धि हो रही है जिस कारण धरातलीय सतह के तापमान में वृद्धि होने से ग्लेशियर पिघल रही हैं।

2.5.1.2 वायु प्रदूषण के स्रोत

वायु प्रदूषण मुख्यतः मनुष्य की गतिविधियों और प्राकृतिक कारणों से होता है। मानव द्वारा वायुमण्डल में छोड़ी गयी विभिन्न प्रकार की गैसें, ओजोन, अमोनिया, कार्बन डाई आक्साईड मोनो आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड आदि तथा रेडियोधर्मी पदार्थ, कार्बन के कण, धुँआ, धूल तथा खनिज कण आदि प्रमुख हैं। यह रासायनिक तत्व, स्वच्छ वायु में जब अनुपात से अधिक हो जाते हैं तो वायु प्रदूषित हो जाती है। औद्योगिक कारणों से सबसे अधिक वायु प्रदूषण होता है। स्कूटर, कार, रेलगाड़ी, जेट विमान, पेट्रोल, डीजल से चलित मशीनें तथा लकड़ी, कोयला एवं तेल आदि के जलने से निकलने वाली धुयें और कार्बन कणों से वायु प्रदूषित होती है। प्रकृति भी कभी-कभी वायु प्रदूषण का कारण बन जाती है, जैसे-ज्वालामुखी विस्फोट से निकली गैसें व राख, वनों में लगने वाली आग से उत्पन्न धुँआ, कोहरा आंधी-तूफान के समय उड़ती धूल से वायुमण्डल प्रदूषित होता है।

2.5.1.3 वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

वायु प्रदूषण की समस्या विश्व स्तर पर दिखायी पड़ रही है। वायु प्रदूषण को व्यावहारिक रूप से पूर्णतः नियंत्रित करना कठिन है क्योंकि आधुनिक जीवन के कई क्रिया-कलापों से वायु प्रदूषण होता है, जैसे बिना प्रदूषण उत्पन्न किये वाहनों, उद्योगों एवं सौन्दर्य प्रसाधन आदि का प्रयोग न करना सम्भव हीं है। औद्योगिक इकाइयों, व बड़े-बड़े नगरों में वायु प्रदूषण विकराल रूप धारण करती जा रही है। लेकिन यदि आर्थिक विकास की गति को नियमित रूप से चलाना है तो उपाय करने के बावजूद प्रदूषण की थोड़ी बहुत मात्रा अवश्य बनी रहेगी।

वायु प्रदूषण को रोकने के लिए दो प्रकार से प्रयत्न किये जाने चाहिए :

1. हो चुके वायु प्रदूषण को कम करने के लिए।
2. वायु प्रदूषण पर रोक लगाने के लिए।

वायु प्रदूषण को रोकने के लिए विभिन्न तकनीकी साधनों का प्रयोग किया जा रहा है, परन्तु इसके साथ-साथ जन जागरण की भी आवश्यकता है।

वायु प्रदूषण नियंत्रण हेतु निम्न उपाय सुझाये जा सकते हैं :-

1. वायु प्रदूषण रोकने के लिए कटिबन्ध बनाया जाना चाहिए। नगरों की कटिबन्ध योजना से बसे नगर जैसे चण्डीगढ़, भोपाल तथा भिलाई जैसे नगरों में उद्योगों

को उस भाग में जिस दिशा से वायु नगर में न आती हो, उस दिशा में खुल स्थान पर जहाँ परिवहन की, जल शक्ति के साधन की सुविधा सुलभ हो, स्थापित किया गया है जिससे औद्योगिक प्रदूषण से नगरवासियों को बचाया जा सके।

2. वायु प्रदूषण नियंत्रण हेतु कारखानों में चिमनियों को अधिक ऊंचा बनाकर निकटवर्ती बसे लोगों को कुप्रभाव से बचाया जा सकता है। विशेषज्ञों की राय में चिमनियों की ऊंचाई निर्मित इमारतों से ढाई गुनी ऊंची होनी चाहिये। साथ ही निकलने वाली गैसें, धूआँ की गति 20 मीटर प्रति सेकेण्ड से अधिक नहीं होना चाहिए एवं हल्के एवं उड़नशील होने चाहिए।

3. प्रदूषण स्रोत पर नियंत्रण का प्रयास किया जाना चाहिए। स्रोत पर ही नियंत्रण हेतु निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं :-

- बहुत से ऐसे उद्योग जो निर्माण प्रक्रिया में प्रदूषण तत्व हवा में छोड़ते हैं उनकी उस प्रक्रिया में नवीन तकनीक का प्रयोग कर प्रदूषण रहित करने का प्रयास करना चाहिए। यदि कच्चे माल का विकल्प न हो तो ऐसे उद्योग को आबादी से दूर लगाना चाहिए।
- यदि किसी किसी उद्योग का कच्चा माल ही प्रदूषण कारक है तो कच्चे माल का विकल्प प्रयोग किया जाना चाहिए। यदि कच्चे माल का विकल्प न हो तो ऐसे उद्योग को आबादी से दूर लगाना चाहिए।
- तकनीक में परिवर्तन किया जाना चाहिए। पेट्रोल के स्थान पर सौर्य ऊर्जा एवं सी.एन.जी. गैस का प्रयोग होने से वायु प्रदूषण बिल्कुल नहीं होता है।
- सरकार द्वारा प्रदूषण नियंत्रण हेतु कठोर नियम बनाकर उसका क्रियान्वयन करना चाहिए। कठोर नियंत्रण से ही प्रदूषण निवारक मँहगे उपकरणों का उपयोग उद्योग में हो सकेगा। भारत सरकार ने वायु प्रदूषण रोकने के लिए एयर पलूशन प्रवेन्शन एक्ट एवं कंट्रोल बिल (1981) का प्रावधान किया है। दिल्ली प्रशासन ने इग्जास्ट एनलाइजर की व्यवस्था की थी।

4. वर्तमान वायु प्रदूषण के स्तरों की जाँच के लिए व्यापक सर्वेक्षण एवं अध्ययन किया जाना चाहिए। इस तरह से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर वायु प्रदूषण

के भावी स्तर एवं उससे उत्पन्न होने वाले कुप्रभावों की समय से पूर्व भविष्यवाणी कर आम जनता को वायु प्रदूषण के भयावह खतरों से आगाह किया जाना चाहिए।

5. यह प्रमाणित सत्य है कि पेड़ पौधे प्रदूषण को रोकते हैं एवं हजम करते हैं। प्रकृति के इस संसाधन का अधिकतम उपयोग करना चाहिए। इसलिए औद्योगिक क्षेत्रों, सघन परिवहन केन्द्रों तथा अत्यधिक भीड़-भाड़ वाले क्षेत्रों में वृक्षों को लगाना चाहिए।

6. भोजन पकाने के लिए कोयला-लकड़ी का प्रयोग कम करना चाहिए। इसके स्थान पर धुआँ रहित ईधन, जैसे कुकिंग गैस, विद्युत हीटर आदि का प्रयोग करना चाहिए।

7. वायु प्रदूषण नियंत्रण के लिए वनों को कटने से रोकना चाहिए तथा वन-महोत्सव कार्यक्रम के प्रति सामाजिक चेतना जागृत करना चाहिए।

8. वाहनों के सम्बन्ध में निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिए :

- वाहन का इंजन भली-भाँति ट्यून हो।
- वाहन से उत्पन्न धुयें पर छलनी लहाई जाना चाहिए।
- वाहनों से कम से कम प्रदूषक पदार्थ निकलने चाहिए।
- डीजल में संजोयी पदार्थ मिलाकर तथा पेट्रोल में लेड एवं सल्फर को मिलाकर प्रदूषण कम किया जा सकता है।

9. कोयला - पानी से चलने वाले रेल इंजनों के स्थान पर विद्युत इंजन का प्रयोग किया जाना चाहिए।

10. वनों मे लगने वाली आग तथा अन्य काण्डों पर तुरन्त नियंत्रण की व्यवस्था होनी चाहिए।

11. वायु प्रदूषण से मानव शरीरों पर पड़ने वाले घातक प्रभावों से जनता को परिचित कराया जाना चाहिए।

12. प्राणघातक प्रदूषण करने वाली सामग्रियों तथा तत्वों के उत्पादन एवं उपभोग में तुरन्त रोक लगानी चाहिए यथा : ओजोन क्षय करने वाली क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC-फ्रियान ।। तथा प्रियान 12) के उत्पादन एवं उपभोग में भारी कटौती होनी चाहिए।

13. प्रमुख नगरों में मेट्रो रेल चलाना चाहिए।

14. नगरों में दो सड़कें समानान्तर होनी चाहिए ताकि मोटर वाहनों को बार-बार रूकना व चलना न पड़े - बल्कि एक रफ्तार में चलते रहें क्योंकि बार-बार रूकने व चलने से वायु प्रदूषण बढ़ता है।

15. विश्व के अधिकांश देश परमाणु परीक्षण कर रहे हैं जिससे वायु प्रदूषण की संभावना बढ़ती जा रही है। इसलिए परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए।

16. नगर के भीतर मलमूत्र हटाने की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए एवं सार्वजनिक सुलभ शौचालयों का निर्माण वृहत पैमाने पर होना चाहिए।

17. वायु प्रदूषकों को ऊपरी वायुमंडल में विसरित एवं प्रकीर्ण करने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है ताकि धरातलीय सतह पर इन प्रदूषकों का सान्द्रण कम हो जाये।

2.5.2 जल प्रदूषण (Water Pollution)

वर्तमान में जल की कमी और जल प्रदूषण की समस्या प्रमुख है। देश की सभी बड़ी नदियाँ प्रदूषण की समस्या से ग्रस्त हैं। बहुत सी बीमारियों का कारण प्रदूषित जल होता है। जल में बहुत से खनिज तत्व, कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थ गैसें घुली होती हैं। जल में घुले ये पदार्थ जब आवश्यकता से अधिक मिल जाते हैं तो जल प्रदूषित हो जाता है। जल में किसी ऐसे बाह्य पदार्थ अथवा लक्षण की उपस्थिति को जल-प्रदूषण कहते हैं जो उसके गुणों को इस प्रकार प्रभावित कर दे जल स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाये अथवा उसकी उपयोगिता कम हो जाये।

जल में स्वतः शुद्धिकरण की प्रक्रिया चलती रहती है परन्तु जब मानव-जनित स्रोतों से उत्पन्न प्रदूषकों का जल में इतना अधिक जमाव हो जाता है कि वह जल की सहनशक्ति तथा स्वयं शुद्धिकरण की क्षमता से अधिक हो जाता है तो जल प्रदूषित हो जाता है।

परिभाषायें :

1. पी0 वाइनर के अनुसार, ''प्राकृतिक या मानव-जनित कारणों से जल की गुणवत्ता में ऐसे परिवर्तनों को प्रदूषण कहा जाता है जो आहार, मानव एवं पशुओं के स्वास्थ्य, कृषि, मत्स्यन या आमोद-प्रमोद के लिए अनुपयुक्त या खतरनाक होते हैं।''

2. प्रो0 जगदीश सिंह की राय में, ''जल में किसी कार्बनिक या अकार्बनिक पदार्थ का योग जो जल के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में इतना परिवर्तन कर दे जिससे वह मानव या प्राणी के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाय अथवा औद्योगिक या सिंचाई कार्यों के लिए उपयोगी न रह जाय, जल प्रदूषण है।''

3. सी0एम0 साउथविक के शब्दों में, ''मानव क्रिया-कलापों या प्राकृतिक (जलीय) प्रक्रियाओं द्वारा जल के रासायनिक, भौतिक तथा जैविक गुणों में परिवर्तन को जल प्रदूषण कहते हैं।''

4. प्रो0 सविन्द्र सिंह ने प्रदूषण की विस्तृत एवं व्यापक परिभाषा देते हुए कहा ''विभिन्न स्रोतों एवं भण्डारों के जल (यथाः सरिता का जल, झील, का जल, तालाब का जल, भूमिगत जल आदि) के भौतिक (यथा रंग, गंध, स्वाद, तापमान आदि), रासायनिक (यथा : अम्लता, क्षारीयता, लवणता आदि) तथा जीवीय (यथा : बैक्टीरिया, शैवाल आदि) विशेषताओं में प्राकृतिक (यथा : ज्वालामुखी राख का नीचे गिरना, भूमिस्खलन अवसाद की आपूर्ति में वृद्धि आदि तथा मानव-जनित (यथा औद्योगिक, नगरीय, घरेलू, कृषि, रेडियोऐक्टिव, खनन आदि स्रोतों से) प्रक्रियाओं एवं कारकों से उस सीमा तक अवनयन को जल प्रदूषण कहते हैं जो मानव तथा अन्य जीवीय समुदाय के लिए अनुपयुक्त हो जाता है।''

2.5.2.1 जल प्रदूषण के कुप्रभाव : जल प्रदूषण का प्रभाव मानव, जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों पर पड़ रहा है। जल प्रदूषण के कुप्रभावों का विवरण निम्नवत् है-

a. **मानव पर प्रभाव :-** मानव स्वास्थ्य पर प्रदूषित जल के सेवन का स्पर्श का बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रदूषित जल के सेवन से वह विभिन्न प्रकार के रोगों, जैसे : टाइफाइड, हैजा, पीलिया, पेचिश, पक्षाघात, पोलियो आदि से ग्रसित हो जाता है। विषैले धातुयुक्त जल के सेवन से हृदय, गुर्दे, फेफड़े, मस्तिष्क आदि को रोग हो जाते हैं। रेडियो धर्मी पदार्थों से कैंसर, अपंग संतानें उत्पन्न हो जाती हैं। गंदे जल में मच्छर व अनेकों प्रकार के कीड़े जन्म लेते हैं जो मलेरिया, फाइलेरिया आदि रोगों का कारण बनते हैं। जल में लोहा, आर्सेनिक, मैंगनीज, क्रोनियम, पारा, सीसा, फ्लाराइड, डी0डी0टी0 हेप्टाक्लीन आदि हानिकारक तत्व की अधिक मात्रा पहुँचने से चर्म रोग, हैजा, अस्थि, गुर्दे यकृतीय एवं स्नायुतंत्रीय सम्बन्धी बीमारियाँ प्रमुख रूप से पायी जा रही है।

b. जीव जन्तुओं पर कुप्रभाव :- प्रदूषित जल में आक्सीजन की कमी हो जाती है जिसके फलस्वरूप उसमें पलने वाली मछलियाँ एवं अन्य जीव-जन्तुओं पर घातक प्रभाव पड़ता है एवं उनकी मृत्यु भी हो सकती है। नदी, तालाब आदि के जल में निलम्बित पदार्थ के तली में बैठ जाने के कारण शैवाल तथा जड़ वाले पौधे नष्ट होने लगते हैं। जिससे इन पर निर्भर रहने वाले जन्तुओं पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

c. पेड़-पौधों पर कुप्रभाव :- पेड़-पौधों पर जल प्रदूषण का अनेक रूपों में कुप्रभाव पड़ता है। यदि खेतों की सिंचाई प्रदूषित जल से की जाय तो पौधे रोगग्रस्त हो जाते हैं और उनके विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मनुष्य एवं जीव-जन्तुओं द्वारा इन प्रदूषित पौधों या इनके फलों को लेने से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

d. पारिस्थितिक तन्त्र पर कुप्रभाव :- प्रदूषित जल के सेवन से मनुष्य, जीव-जन्तु एवं पेड़-पौधे सभी प्रभावित होते हैं इसलिए पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ जाता है। इससे पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जैसे अधिक गर्मी व सर्दी का होना, समय से वर्षा न होना।

2.5.2.2 जल प्रदूषण के स्रोत

जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं-

- जल प्रदूषण का प्रमुख स्रोत घरेलू मल-मूत्र औद्योगिक बहिस्राव, उर्वरक एवं कीटनाशक पदार्थ हैं। कारखानों से निकले गन्दे अवशिष्ट तथा कीटनाशक पदार्थ जैसे सल्फर, कार्बनिक फास्फेट, डी0डी0टी, कार्बन व क्लोरीन युक्त पदार्थ, घरेलू कूड़ा, सीवेज पाइप से निकले हानिकारक पदार्थों का जल में विलय होने से जल प्रदूषित हो जाता है।
- रेडियोधर्मी अपशिष्टों का अवपात होने से जल-प्रदूषण होता है। नाभिकीय विस्फोटों से गिरते रहते हैं और विभिन्न माध्यमों से अन्ततः जल में तथा तालाबों एवं नदियों में मिल जाते हैं। ये रेडियोधर्मी अपशिष्ट लम्बे समय तक नुकसान पहुँचाते हैं।
- तेल एवं तेलीय पदार्थों के मिलने से जल हानिकारक हो जाता है। इस प्रकार से प्रदूषण की समस्या नदियों की अपेक्षा समुद्र में अधिक होती है।
- विकसित कृषि प्रणाली जल प्रदूषण का प्रमुख स्रोत है। कृषि के क्षेत्र में

रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशी, रोगनाशी, इत्यादि दवाओं का प्रयोग किया जा रहा है। ये रसायन वर्षा जल के साथ फुटकर नदियों, जलाशयों, समुद्रों आदि में पहुँचकर जल को प्रदूषित करते हैं।

- मृत जीवों की लाशें जलाशयों एवं नदियों में प्रवाहित करने से जल प्रदूषित हो जाता है।

2.5.2.3 जल प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

जल प्रदूषण आज एक विश्व व्यापी समस्या बन चुकी है जिसके नियंत्रण हेतु अनेक तकनीकें विकसित की जा रही है तथा कुछ कानून भी बनाये गये हैं। जल प्रदूषण नियंत्रण हेतु कई निवारक उपायों की आवश्यकता होती है जिसके कार्यान्वयन के लिए जनसाधारण की आवश्यकता है।

- आम जनता को जल प्रदूषण एवं उससे उत्पन्न कुप्रभावों के विषय में शिक्षित एवं अवगत कराना होगा। रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र-पत्रिकाओं एवं विभिन्न विज्ञापन माध्यमों द्वारा जल प्रदूषित होने के कारण और उनके कुप्रभावों को विज्ञापित करते रहना चाहिए। प्राथमिक पाठशालाओं, विद्यालयों, महाविद्यालयों में प्रदर्शनी, संगोष्ठी, शोध परिचर्चा आदि के माध्यम से जागरूकता उत्पन्न करनी चाहिए।
- कस्बो, नगरों तथा महानगरों में सुलभ शौचालयों की स्थापना की जाय जिससे कि मल-मूत्र के लिए नदियों के किनारे, घाट, सार्वजनिक स्थान व अन्य खुले स्थानों का प्रयोग न हो।
- आम व्यक्तियों को घरों से निकले कचरों को निर्धारित स्थानों पर फेकने के लिए प्रेरित किया जाय।
- औद्योगिक प्रतिष्ठानों को इस बात के लिए मजबूर किया जाना चाहिए कि वे कारखानों से निकले अपशिष्टों एवं मलजल को बिना शोधित किये नदियों, झीलों या जलाशयों में न विसर्जित करें।
- जलाशयों के आस-पास गन्दगी करने, नहाने, कपड़े धोने इत्यादि को रोका जाना चाहिए, जिससे गन्दगी, साबुन तथा अन्य प्रक्षालक पदार्थ जल में न मिलने पाएँ।
- कृषि कार्यों में आवश्यकता से अधिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के प्रयोग को हतोत्साहित किया जाना चाहिए।

- नदियों के जल ग्रहण क्षेत्रों में वृहत वृक्षारोपण किया जाना चाहिए जिससे कि नदियों में बढ़ी हुई गंदगी को कम किया जा सके।
- समय - समय पर प्रदूषित जलाशयों में उपस्थित अनावश्यक जलीय पौधों तथा जल में एकत्रित गन्दगी को निकालकर जल को स्वच्छ बनाये रखने के प्रयास किये जाने चाहिए।
- पेय जल स्त्रोतों के निकट चारों ओर दीवार बनाकर विभिन्न प्रकार की गन्दगी के प्रवेश पर रोक लगाना चाहिए।
- कुछ जाति विशेष की मछलियाँ, मच्छरों के अंडे, लावा तथा खरपतवार का भक्षण करती हैं, जलाशयों में इन मछलियों को पालने से ल की स्वच्छता बनाये रखने में सहायता मिलती है।
- मृत पशुओं के नदियों में विसर्जन पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।
- नगरपालिकाओं को सीवर शोधन संयंत्रों की व्यवस्था करनी चाहिए तथा सम्बन्धित सरकार को प्रदूषण नियंत्रण की योजनाओं के सफलतापूर्वक कार्यान्वियन के लिए आवश्यक धन तथा अन्य संसाधन प्रदान किया जाना चाहिए।

भारत सरकार ने जल प्रदूषण नियंत्रण के लिए सन् 1974 में जल प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम पारित कर जल प्रदूषण की रोकथाम के लिए पहल की है।

भारत में जल की गुणवत्ता बनाये रखने तथा जल प्रदूषण नियंत्रण हेतु समय-समय पर निम्न अधिनियमों तथा कानूनों को पारित किया गया हैः

केन्द्रीय जल नियंत्रण अधिनियम के अन्तर्गत निम्न कानून बनाये गये हैं :

- द नार्थ इण्डिया कैनाल एण्ड ड्रेनेज ऐक्ट, 1873
- द आन्सट्रक्शन ऑव फेयरवेज ऐक्ट, 1881
- द इण्डियन फिशरीज ऐक्ट, 1897
- द दामोदर वैली कारपोरेशन (प्रवेन्शन ऑफ पल्यूशन ऑव वाटर) रेग्युलेशन एक्स, 1948
- द रीवर बोड्स ऐक्ट, 1956
- द मर्चेन्ट शिपिंग (एमेन्टमेन्ट) ऐक्ट, 1974
- द वाटर (प्रवेन्शन एण्ड कंट्रोल ऑव पल्यूशन) सेस ऐक्ट, 1977
- द वाटर (प्रवेन्शन एण्ड कंट्रोल ऑव पल्यूशन) सेस ऐक्ट, 1987

- कोस्टल रेगुलेशन जोन नोटिफिकेशन (CRZ), 1991

भारत सरकार गंगा एवं यमुनी नदी में प्रदूषण को समाप्त करने के लिए क्रमशः गंगा एक्शन प्लान (GAP) एवं यमुना एक्शन प्लान (YAP) चला रही है।

2.5.3 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

मिट्टी में विभिन्न प्रकार के लवण, खनिज तत्व, कार्बनिक पदार्थ, गैसें एवं जल एक निश्चित मात्रा तथा अनुपात में होते हैं। मिट्टी में इन पदार्थों की मात्रा एवं अनुपात में उत्पन्न परिवर्तन प्रदूषण कहलाता है। दूसरे शब्दों में, मृदा के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में कोई भी अवांछनीय परिवर्तन जिसका प्रभाव मनुष्य या अन्य जीवों पर पड़े या जिससे भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता तथा उपयोगिता नष्ट हो, मृदा प्रदूषण (भू-प्रदूषण) कहलाता है।

2.5.3.1 मृदा प्रदूषण के स्त्रोत - मृदा प्रदूषण प्रकृति एवं विशेषकर मानव जन्म स्त्रोतों से हो रहा है जिसका विवरण निम्नलिखित है-

a. **घरेलू अपशिष्ट :-** मृदा प्रदूषण का एक बड़ा कारण घरेलू अपशिष्ट होता है। घरेलू अपशिष्ट में सूखा कचरा, रसोई का जूठन, रद्दी कागज, लकड़ी, कपड़ा, प्लास्टिक धातु के टुकड़े आदि होते हैं। इसके अलावा दूसरे पदार्थ भी घरेलू अपशिष्ट में आते हैं जो घरों की सफाई के बाद एक निश्चित स्थान पर डाल दिये जाते हैं।

b. **नगरपालिका अपशिष्ट :-** नगरपालिका अपशिष्ट के अन्तर्गत सार्वजनिक रूप से होने वाली गन्दगी, जिसमें घरेलू अपशिष्ट के साथ-साथ सार्वजनिक कचरा, सड़े-गले सब्जी आदि का कचरा, बाग-बगीचों का वानस्पतिक कचरा, मृत जानवरों के अवशेष, मकानों आदि के तोलने के निकले पदार्थ, चारा मिश्रित गोबर, लीद, गटरों से निकला कचरा तथा कीचड़ इत्यादि सभी प्रकार के अपशिष्टों को शामिल किया जाता है।

c. **औद्योगिक अपशिष्ट :-** औद्योगिक संस्थानों से बड़ी मात्रा में कूड़ा-करकट व अपशिष्ट पदार्थ निकलता है। यह प्रायः सभी उद्योगों से निकलता है जिसमें विभिन्न रासायनिक तत्व, राख एवं अन्य विषैले अम्लीय पदार्थ निकलते हैं जो भूमि को अनुपयोगी कर देते हैं।

d. **कृषि अपशिष्ट :-** खेतों में फसलों की कटाई के बाद बचे पत्ती, भूसा, डंठल, घास-फूस, बीज इत्यादि कृषि व्यर्थ कहे जाते हैं, जिसपर पानी पड़ने पर यह सड़ने लगता है तथा प्रदूषण उत्पन्न करता है। इनसे गम्भीर प्रदूषण नहीं होता

क्योंकि ये जैविक क्रियाओं द्वारा स्वतःअपघटित हो जाती हैं।

2.5.3.2 मृदा प्रदूषण के कुप्रभाव :- मृदा प्रदूषण के कुप्रभाव निम्न हैं-

- मृदा पर एकत्रित अपशिष्टों के कारण विभिन्न जीवाणुओं का जन्म होता है जिनके कारण हैजा, पेचिश, मलेरिया, पोलियो, टाइफाइड इत्यादि बीमारियाँ फैलती हैं।
- भूमि पर कूड़ा-करकट, अपशिष्ट सड़ी-गली वस्तुयें, मरे जानवर आदि खुला फेक देने से विभिन्न प्रकार की गैसें एवं दुर्गन्ध निकलती हैं जो चारों ओर के वातावरण को प्रदूषित कर देती है।
- कीटनाशक शाकनाशक, कवकनाशक विषैले दवाओं का फसल पर छिड़काव करने से धीरे-धीरे भूमि की उर्वरा शक्ति कम होने लगती हैं तथा फसलों की वृद्धि रूक जाती हैं।
- कीटनाशक पदार्थ पौधों के अन्दर पहुँचकर खाद्य श्रृंखला का एक अंग बन जाते हैं तथा मानव व जीव जन्तुओं के शरीर में पहुँचकर अनेकों रोग उत्पन्न करते हैं।
- विभिन्न अपशिष्टों में अनअपघटित कचड़ा होता है जो कभी समाप्त नहीं होता, जिससे मृदा की गुणवत्ता नष्ट होती है।
- मानव-मल का खुले भू-भागों पर निष्कासन एवं निक्षेपण होने से पर्यावरण दूषित होता है तथा अनेक प्रकार के रोगों का प्रसार होता है। आंत्रशोध, पेचिस, हैजा, टाइफायड, पोलियो आदि बीमारियाँ प्रायः खुले स्थानों पर मल त्यागने से हो जाती है।
- घरों से निकलने वाले व्यर्थ जल की समुचित व्यवस्था न होने से यह जल घरों के बाहर सड़कों एवं गलियों में यों ही बहा दिया जाता है। इससे कीचड़ तथा दलदल बन जाते हैं, जिससे मक्खी, मच्छर तथा कीड़े-मकोड़े पनपते हैं।
- भू-क्षरण से मृदा प्रदूषण की स्थिति बनती हैं। भू-क्षरण के फलस्वरूप मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत जल, हवा आदि के द्वारा बह जाती है। इससे जहाँ एक ओर भूमि बंजर एवं कृषि के अयोग्य हो जाती है वहीं दूसरी ओर मिट्टी का कटाव होने से कृषि भूमि ऊँची-नीची हो जाती है जिससे कृषि करना मुश्किल हो जाता है। भू-क्षरण से खाद्यान्नों का उत्पादन कम हो जाता है।
- सल्फर-डाई-आक्साइड या सल्फर के यौगिक जल से क्रिया करके अम्ल बनाते हैं और मृदा को अति अम्लीय बना देते हैं जो वनस्पति के लिए हानिकारक होता

है।

- मृदा में उपस्थिति अनेक प्रकार के अपशिष्ट पानी के साथ बहकर जल-स्रोतों में पहुँचकर जल को प्रदूषित करते हैं।

2.5.3.3 मृदा प्रदूषण नियंत्रण के उपाय :- मृदा प्रदूषण सबसे अधिक ठोस अपशिष्ट व कूड़ा-करकट से होता है। अतः मृदा प्रदूषण को समाप्त करने के लिए ठोस अपशिष्ट का निस्तारण करना आवश्यकता है। मृदा प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए निम्न उपायों का सुझाव दिया जा सकता है।

- रासायनिक उर्वरकों तथा जैवनाशी कृत्रिम रसायनों का नियंत्रित एवं विवेकपूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए।
- औद्योगिक कचड़े, कूड़ा-करकट तथा मृत जन्तुओं को आबादी से दूर ले जाकर जमीन के अन्दर दबा देना चाहिए।
- ऐसे कीटनाशक रसायनों का विकास किया जाना चाहिए जो मानव वर्ग के लिए हानिकारक न हो।
- डी0डी0टी0 के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।
- कम्पोस्ट एक प्रकार का उर्वरक है जिसका निर्माण नगरीय गंदगी से साधारण प्रक्रिया के माध्यम से किया जा सकता है। इसमें विभिन्न प्रकार के जैविक व कार्बनिक अपशिष्टों को जमीन में दबाकर, सड़ाकर तथा अन्य विधियों से खाद बनाकर इस्तेमाल में लिया जाता है।
- विभिन्न रासायनिक प्रक्रिया के माध्यम से भी कूड़ा-करकट नष्ट किया जा सकता है।
- भूमि-क्षरण को रोकने के लिए उपाय करना चाहिए। इसके लिए कृषि योग्य भूमि के आस-पास पेड़ लगाना, सीढ़ीनुमा खेत बनाना तथा ढाल के विपरीत जुताई करना जैसे उपाय अपनाना चाहिए।
- भू-खनन से होने वाले मृदा ह्रास को कम करने के लिए उपायों पर विचार करना चाहिए।
- नगरीय एवं कारखानों के मल-जल का फसलों की सिचाई के लिए प्रयोग उसके शोधन के बाद ही किया जाना चाहिए।
- नगरपालिका संस्थाओं को कम्पोस्टिंग हेतु संयंत्रों की जगह-जगह स्थापनाओं को

प्रोत्साहन देना चाहिए।

- कृषि फार्मों में चक्रानुसार विभिन्न फसलों की खेती करनी चाहिए।

2.5.4 ध्वनि प्रदूषण

जब किसी वस्तु से सामान्य आवाज उत्पन्न होती है तो उसे ध्वनि कहते हैं। जब ध्वनि कर्ण प्रिय न होकर अप्रिय लगने लगे तो उसे शोर कहते हैं। दूसरे शब्दों में ध्वनि की तीव्रता जब अवांछित व अप्रिय हो जाती है तब यह शोर कहलाता है। यही शोर ध्वनि प्रदूषण है। अतः हम कह सकते हैं कि जब ध्वनि कान की सह्य सीमा को पार कर जाती है तथा उसका प्रभाव मानव के स्वास्थ्य, कुशलता व मानस पर पड़ने लगता है तो उसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं।

परिभाषायें :

1. डा0 बी0 राय के शब्दों में, ''अनिच्छापूर्ण ध्वनि जो मानवीय सुविधा, स्वास्थ्य तथा गतिशीलता में हस्तक्षेप करती है, ध्वनि प्रदूषण है।''

2. साइमन्स के राय में, ''बिना मूल्य की अथवा अनुपयोगी ध्वनि, ध्वनि प्रदूषण है।''

कोई अनावश्यक ध्वनि जो अप्रसन्नता अथवा झुझलाहट उत्पन्न करती है तथा जो मानव के वार्तालाप (संसार), स्वास्थ्य तथा विश्राम में व्यवधान उत्पन्न करती है उसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। सामान्यतया 65 डेसीबल से अधिक तीव्रता वाली ध्वनि, ध्वनि प्रदूषण के अन्तर्गत मानी जाती है।

2.5.4.1 ध्वनि प्रदूषण के स्रोत :- ध्वनि प्रदूषण के स्रोतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है- प्राकृतिक स्रोत एवं कृत्रिम या मानवीय स्रोत -

a. **प्राकृतिक स्रोत :-** इसके अन्तर्गत बादलों की गड़गड़ाहट, विद्युत की कड़क, तूफानी हवायें, ज्वालामुखी विस्फोट, मूसलाधार वृष्टि, लहरों का टकराना, जल प्रपात तथा वन्य जीवों की आवाजें सम्मिलित की जाती हैं। इनमें से कुछ अल्पकालीन व कुछ दीर्घकालीन होते हैं। लेकिन ये स्थायी नहीं होते हैं। अतः इनका प्रभाव उतना हानिकारक नहीं होता जितना कृत्रिम स्रोतों का।

b. **कृत्रिम या मानवीय स्रोत :-** स्वचलित वाहन जैसे मोटर साइकिल, ट्रैक्टर, स्कूटर, रेलगाड़ियां, वायुयान, राकेट, तोप, गोलाबारी, कारखानों की मशीनें पम्पिंग सेट, ध्वनि विस्तारक यंत्र, त्योहार व शादी विवाह में बजने वाले यंत्र,

पड़ोसी का गृहकलह, मृत्यु शोक, धार्मिक अनुष्ठान, शक्ति चालित मशीनें, डायनामाइट से चट्टानों के विस्फोट, चुनाव प्रचार सेना द्वारा युद्धाभ्यास इत्यादि इसके अन्तर्गत आते हैं जिनसे उत्पन्न आवाज ध्वनि प्रदूषण पैदा करती है।

2.5.4.2 ध्वनि प्रदूषण के कुप्रभाव - ध्वनि प्रदूषण मानव को विविध रूपों से प्रभावित करता है। शोर जहाँ एक ओर स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालता है, वहाँ दूसरी ओर उसकी कार्यक्षमता भी घटाता है।

a. तीव्र ध्वनि से श्रवण शक्ति कम ही नहीं समाप्त भी हो जाती है। 80 डेसीबल से ज्यादा का शोर श्रवण शक्ति पर बुरा असर डालता है। 120 डेसीबल का शोर कानों की संवेदनशीलता को नष्ट कर देता है। 150 डेसीबल की ध्वनि त्वचा को भी छेद सकती है एवं 180 डेसीबल से मृत्यु भी हो सकती है।

b. पहले यह समझा जाता था कि शोर केवल कानों को ही हानि पहुँचाता है,परन्तु अब यह सिद्ध हो गया है कि शोर कानों के अतिरिक्त हृदय, तंत्रिका तथा पाचन तंत्र पर भी प्रभाव डालता है। तीव्र आकस्मिक ध्वनि से शरीर तंत्र लगभग अनियंत्रित सा हो जाता है। आँख की पुतलियों का प्रसार, आँखों का बन्द हो जाना, इसके कुछ बाहर से दिखाई देने वाला कुप्रभाव हैं।

c. अनावश्यक शोर का दुष्परिणाम मस्तिष्क की क्षमता कम करता है और स्मरण शक्ति का ह्रास होता है।

d. शोर की अधिकता मानसिक तनाव को जन्म देती है।

e. विविध परिवहन के साधनों का शोर, ध्वनि विस्तारक यंत्रों का प्रयोग, मशीनों की कर्कश ध्वनि आदि से निद्रा में बाधा उत्पन्न होती है। फलस्वरूप अनिनिशा रोग, रक्तचाप, हृदय धड़कन, पागलपन जैसी बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

f. धर्माचार्यों, शोधकर्ताओं, छात्रों, लेखकों, चिन्तकों इत्यादि की एकाग्रता तेज ध्वनि के कारण भंग हो जाती है।

g. वैज्ञानिक परीक्षणों के अनुसार अत्यधिक शोर नवजात शिशुओं और छोटे बच्चों के सामान्य विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

h. शोर से अनावश्यक थकान होती है जिससे शरीर में शिथिलता बढ़ती है और शिथिलता के कारण चर्बी की मात्रा बढ़ जाती है और व्यक्ति मोटे तथा बेडौल हो जाते हैं।

i. शोर केवल जीवित प्राणियों को ही नहीं बल्कि अजैविक पदार्थों को भी प्रभावित करती है। तेज ध्वनि के धमाकों और विस्फोट से पुरानी इमारतों, पुलों, ऐतिहासिक भू-दृश्य को नुकसान होता है। रेलवे लाइन के किनारे स्थित इमारतों में जल्दी दरारें पड़ जाती हैं उसका कारण रेलवे से हुआ शोर प्रदूषण है।

j. सड़कों को पार करते समय तेज ध्वनि के कारण वाहनों के हार्न नहीं सुनाई पड़ते जिससे दुर्घटनायें हो जाती है।

2.5.4.3 ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के उपाय- शोर का निश्चित निवारण एक अत्यन्त जटिल समस्या है, क्योंकि इसके निवारण में हमें आधुनिक प्रगति के फलस्वरूप प्राप्त सुख-सुविधाओं का त्याग व उनकी संख्या में कमी करनी पड़ सकती है। फिर भी ध्वनि प्रदूषण नियंत्रित करने के कुछ निम्नलिखित उपाय हैं :-

a. विवाह, समारोह, उत्सव, रामायण पाठ, मूर्तियों के जुलूस, रैलियाँ आदि शोर की मात्रा बहुत बढ़ा देती है। उससे बचाव हेतु लोगों को शोर प्रदूषण के घातक परिणाम का ज्ञान कराना चाहिए। टी0वी0 रेडियो, पोस्टरों, समाचार-पत्रों में यह विज्ञापन कर जनचेतना जागृत की जानी चाहिए।

a. सभी प्रकार के परिवहन वाहनों में साइलेन्स लगाये जायें ताकि उनसे तेज ध्वनि न निकल सके। साथ ही ऐसे टायर बनाये जायें तो कम से कम आवाज करें।

b. सभी प्रकार के परिवहन बाहनों में साइलेन्सर लगाये जायें ताकि उनसे तेज ध्वनि न निकल सके। साथ ही ऐसे टायर बनाये जायें जो कम से कम आवाज करें।

c. औद्योगिक प्रतिष्ठान आबादी से दूर होना चाहिए।

d. औद्योगिक शोर को कम करने के लिए तकनीकी उपाय अमल में लाना चाहिए। जैसे कारखानों में ध्वनि शोषक दीवारें बनाना। मशीनों के चारों ओर मफलर का कवच लगाकर शोर का स्तर 90 डेसीबल तक कम किया जा सकता है।

e. हवाई अड्डों के शोर को नियंत्रित करने के लिए वैज्ञानिक और तकनीकी प्रयास करने चाहिए।

f. जेट इंजनों के शोर को काबू में रखने के लिए उनके टर्बोजेट इंजनों पर शोर अवशोषक लगाना चाहिए।

g. कल-कारखानों, हवाई अड्डों में कार्य करने वाले लोगों को कानों की सुरक्षा के

लिए उचित उपकरण देना चाहिए।

h. मशीनों के सही रख-रखाव से शोर की मात्रा कम की जा सकती है।

i. पुराने एवं जीर्ण-शीर्ण वाहन जो बहुत ज्यादा शोर करते हैं उनको सड़कों पर नहीं चलने देना चाहिए।

j. आम, इमली, नारियल, ताड़ी, नीम आदि का वृक्षारोपण किया जाय क्योंकि इन वृक्षों को लगाने से 10 से 15 डेसिबल शोर कम किया जा सकता है।

2.5.5 ताप प्रदूषण (Thermal Pollution)

ताप प्रदूषण से आशय ताप की अधिकता या न्यूनता से है जो मानवीय स्वास्थ्य, कार्यक्षमता, अथवा पर्यावरणीय संसाधनों को प्रभावित करने लगती है। भूगोलवेत्ता एलबर्स हंटिंगन ने अपनी पुस्तक Principles of Human Geography में लिखा है कि मानवीय, शारीरिक एवं मानसिक क्षमता के लिए 180 से 240 सेल्सियस का तापमान श्रेष्ठतम रहता है। इससे अधिक अथवा कम तापमान पर जीवों की कार्यक्षमता घट जाती है।

ताप प्रदूषण दो प्रकार का होता है-

a. वायु मण्डलीय ताप प्रदूषण

b. जल ताप प्रदूषण

a. **वायु मण्डलीय ताप प्रदूषण के कारण -** विभिन्न उद्योगों, वाहनों इत्यादि से उत्सर्जित कार्बन-डाई आक्साइड, नाइट्रस आक्साइड आदि गैसों ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण वायु मण्डल के तापमान में वृद्धि कर देते हैं।

b. **जल ताप प्रदूषण के कारण -** जल में बाहरी तत्वों के प्रवेश के कारण जल का तापमान बढ़ना जलताप प्रदूषण कहलाता है। उद्योगों से निकले जल को जल स्रोतों में डालने, विभिन्न रियक्टरों के अतितापन निवारक के लिए प्रयुक्त जल को स्रोतों छोड़ने से जल के तापमान में वृद्धि हो जाती है।

2.5.5.1 ताप प्रदूषण के कुप्रभाव - ताप प्रदूषण के कुप्रभाव निम्नलिखित हैं :

- तापमान अधिक होने से संवेदनशील वनस्पतियाँ समाप्त हो जाती हैं।
- तापमान बढ़ने से मानव की कार्यक्षमता में कमी आ जाती है।
- तापमान में वृद्धि होने से घातक रसायनों तथा कीटनाशकों की मारक क्षमता वृद्धि

हो जाती है।

- जल में विलयित आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है, जिससे जलीय पौधों एवं जीव जन्तुओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

2.5.5.2 ताप प्रदूषण नियंत्रण के उपाय - ताप प्रदूषण के कुप्रभाव निम्नलिखित हैं :

- उद्योगों में अपशिष्ट जल को विभिन्न तकनीकों से ठंडा करने के बाद ही जल स्रोतों में मिलान चाहिए।
- अधिक से अधिक वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।
- तापीय प्रदूषण को कलम करने के लिए लोगों में चेतना जागृत करना चाहिए।

2.6 सारांश

मानवीय क्रियाकलापों द्वारा पर्यावरणीय दशाओं में किये गये बदलावों से उत्पन्न प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभावों के फलस्वरूप पर्यावरण (जल,भूमि, वायु) में आये अवांछित एवं प्रतिकूल परिवर्तनों को पर्यावरण प्रदूषण कहते हैं। पर्यावरण प्रदूषण के मुख्य प्रकार हैं- वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण एवं ताप प्रदूषण।

वायु के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में ऐसा कोई भी ऋणात्मक परिवर्तन या ह्रास जिसके द्वारा स्वयं मनुष्य तथा अन्य जीव-जन्तुओं के जीवन, परिस्थितियों औद्योगिक उपक्रमों तथा सांस्कृतिक सम्पत्ति को हानि पहुँचे, वायु प्रदूषण कहलाता है। वायु प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं- वायु मण्डल में छोड़ी गयी विभिन्न प्रकार की गैसें (ओजोन, अमोनिया, कार्बन-डाई-आक्साइड, कार्बन मोनो-आक्साइड) कार्बन के कण, धुआँ, धूप, तथा खनिज कण । वायु प्रदूषण को रोकने के लिए दो प्रकार से प्रयत्न किये जाने चाहिए। पहला, हो चुके वायु प्रदूषण को कम करने के लिए एवं दूसरा, वायु प्रदूषण पर रोक लगाने के लिए।

विभिन्न स्रोतों एवं भण्डारों के जल के भौतिक, रासायनिक तथा जीवीय विशेषताओं में प्राकृतिक तथा मानव-जनित प्रक्रियाओं एवं कारकों से उस सीमा तक अवनयम को जल प्रदूषण कहते हैं। जो मानव तथा अन्य जीवीय समुदाय के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। जल प्रदूषण के प्रमुख स्रोत है-घरेलू मल-मूत्र, औद्योगिक बहिस्राव, उर्वरक एवं कीटनाशक पदार्थ, रेडियोधर्मी अपशिष्ट, मृत जीवों की लाशें आदि। भारत में जल गुणवत्ता बनाये रखने तथा जल प्रदूषण नियंत्रण हेतु समय-समय

कई अधिनियम पारित किये गये हैं।

मृदा के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में कोई भी अवांछनीय परिवर्तन, जिसका प्रभाव मनुष्य या अन्य जीवों पर पड़े या जिससे भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता एव उपयोगिता नष्ट हो, मृदा प्रदूषण कहलाता है। मृदा प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं - घरेलू अपशिष्ट, नगरपालिका अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट, कृषि अपशिष्ट आदि। मृदा प्रदूषण के कारण विभिन्न बीमारियाँ फैलती है।

जब ध्वनि कान की सह्य सीमा को पार कर जाती है तथा उसका प्रभाव मानव के स्वास्थ्य, कुशलता व मानस पर पड़ने लगता है तो उसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। ध्वनि प्रदूषण के स्रोतों को प्राकृतिक एवं कृत्रिम या मानवीय स्रोत में वर्गीकृत किया जा सकता है। ध्वनि प्रदूषण के कारण श्रवण शक्ति पर बुरा असर पड़ता है, स्मरण शक्ति का ह्रास होता है, मानसिक तनाव का जन्म होता है, एकाग्रता भंग होती है आदि।

ताप प्रदूषण से आशय ताप की अधिकता एवं न्यूनता से है जो मानवीय, स्वास्थ्य, कार्यक्षमता अथवा पर्यावरणीय संसाधनों को प्रभावित करती है। ताप प्रदूषण दो प्रकार के होते हैं - वायु मंडलीय ताप प्रदूषण एवं जलताप प्रदूषण। ताप प्रदूषण के कारण संवेदनशील वनस्पतियां समाप्त हो जाती हैं एवं कार्यक्षमता में कमी आती है।

2.7 संदर्भित ग्रन्थ

योगेश कुमार सिंह, पर्यावरणीय शिक्षा, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, 2007

एन0 एन0 अवस्थी, पर्यावरणीय अध्ययन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, 2005-06

मेघा सिन्हा, पर्यावरण अध्ययन (प्रकृति एवं महत्व), वन्दना पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, 2006

सत्य नारायण दूबे, पर्यावरणीय शिक्षा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007

सविन्द्र सिंह, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2008

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वायु प्रदूषण का अर्थ बताते हुए उसके प्रमुख कारणों की भारत के संदर्भ में विवेचना कीजिए।
2. वायु प्रदूषण के कुप्रभावों को दूर करने के लिए उठाये जाने वाले कदमों की

व्याख्या कीजिए।

3. वायु प्रदूषण के कुप्रभावों की विवेचना कीजिए।

4. जल प्रदूषण की परिभाषा एवं कुप्रभावों का वर्णन कीजिए।

5. जल प्रदूषण निवारण के उपायों की विवेचना कीजिए।

6. मृदा प्रदूषण से आप क्या आशय समझते हैं? इसके विभिन्न स्रोतों की चर्चा कीजिए।

7. मृदा प्रदूषण के रोकथाम के लिए क्या-क्या उपाय हैं?

8. ध्वनि प्रदूषण से आशय एवं कारणों की विवेचना कीजिए।

9. ध्वनि प्रदूषण के कुप्रभावों का वर्णन कीजिए।

10. ताप प्रदूषण के स्रोतों एवं कुप्रभावों का वर्णन कीजिए।

इकाई 3 : ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन

इकाई रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 अर्थ

3.3 ठोस अपशिष्ट पदार्थों के स्रोत

3.3.1 घरेलू या आवासीय क्षेत्र

3.3.2 औद्योगिक क्षेत्र

3.3.3 व्यापारिक क्षेत्र

3.4 ठोस अपशिष्ट पदार्थों के प्रकार

3.4.1 कृषि अपशिष्ट

3.4.2 पशु अपशिष्ट

3.4.3 खनन अपशिष्ट

3.4.4 औद्योगिक अपशिष्ट

3.4.5 नगरपालिका अपशिष्ट

3.4.6 चिकित्सीय अपशिष्ट

3.4.7 पैकिंग अपशिष्ट

3.4.8 मानव अपशिष्ट

3.4.9 रेडियोएक्टिव अपशिष्ट

3.5 ठोस अपशिष्ट के कुप्रभाव

3.6 ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन

3.6.1 अपशिष्टों का संग्रह

3.6.2 अपशिष्टों का वर्गीकरण

3.6.3 अपशिष्टों का निस्तारण

3.6.3.1 भू-निक्षेपण

3.6.3.2 कम्पोस्ट खाद निर्माण

3.6.3.3 अपशिष्टों का दहन

3.6.3.4 विद्युत उत्पादन

3.6.3.5 पुनर्चक्रण

3.5.3.6 नवीन तकनीकी अनुसंधान/अविष्कार

3.7 सारांश

3.8 संदर्भित ग्रन्थ

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप -

- ठोस अपशिष्ट की अवधारणा समझ सकेंगे,
- ठोस अपशिष्ट के विभिन्न स्रोतों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- ठोस अपशिष्ट के विभिन्न प्रकारों के बारे में जान सकेंगे,
- ठोस अपशिष्ट के कुप्रभावों से अवगत हो सकेंगे,
- ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन की प्रक्रिया से परिचित हो सकेंगे

3.1 प्रस्तावना

आज जो देश जितना विकसित, जो व्यक्ति जितना सभ्य और समृद्ध कहला रहा है वह उतना ही अधिक ठोस अपशिष्ट पर्यावरण में छोड़ रहा है। ब्रिटेन में एक औसत व्यक्ति प्रतिदिन लगभग 700ग्राम कचरा फेंकता है। कनाडा में 2 किलोग्राम व्यर्थ कागज और अन्य पदार्थ प्रतिदिन प्रति व्यक्ति द्वारा फेंका जाता है। इन ठोस अपशिष्ट पदार्थों की समुचित डम्पिंग तथा निस्तारण के लिये पर्याप्त स्थान की आवश्यकता होती है। विश्व में ठोस अपशिष्ट पदार्थों द्वारा उत्पन्न पर्यावरण प्रदूषण की समस्या विकाराल रूप धारण करती जा रही है। ठोस अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में लगातार वृद्धि के कारण उनके निस्तारण की समस्या न केवल विकसित देशों के लिए ही बल्कि विकासशील देशों के लिए भी सिरदर्द हो गयी है। उदाहरण के लिए, अकेले न्यूयार्क नगर प्रतिदिन 2500 ट्रक भार के बराबर ठोस अपशिष्ट पदार्थों, जैसे दूध एवं अन्य प्रकार की बोतलें, बीयर एवं अन्य पेय पदार्थों के डिब्बे, पालीथीन के पैकेट एवं आवासीय कचरा का उत्पादन

करता है। इस प्रकार न्यूयार्क में प्रतिदिन 25,000 टन ठोस अवशिष्ट पदार्थ निकलता है। एक अनुमान के अनुसार मुम्बई 3000 टन, दिल्ली 2100 टन, चेन्नई 1200 टन, बंगलौर 1000 टन, कानपुर 650 टन, लखनऊ 700 टन ठोस अपशिष्ट प्रतिदिन निकालते हैं।

3.2 अर्थ

जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताओं में वृद्धि हुई है। आर्वश्यकताओं की पूर्ति के लिए औद्योगीकरण में विस्तार हुआ। सुख-सुविधा, आवास, भोजन, कपड़ों आदि में परिवर्तन हुआ। इस प्रकार उपयोग के पश्चात् नष्ट करने योग्य वस्तुयें बढ़ती गयी, तथा इकट्ठा होने लगीं। यह बेकार वस्तुयें अब अपशिष्ट के नाम से जानी जाती हैं।

ठोस अपशिष्ट पदार्थ उन वस्तुओं को कहते हैं जो उपयोग के बाद निरर्थक एवं बेकार हो जाते हैं, जैसे-विभिन्न प्रकार के डिब्बे, कनस्टर, प्लास्टिक के डिब्बे, पालीथीन के थैले, समाचार पत्र, बोतल, कांच के टूटे सामान, लकड़ियों के सामान के टूटन, राख आदि। उपयोग के बाद बेकार इन ठोस पदार्थों को कचरा (garbage), उच्छिष्ट (refuse), ठोस अपशिष्ट (Solid Waste) आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है।

ठोस अपशिष्ट के बारे में वी0 रामप्रसाद ने कहा था कि ठोस एवं अनिवार्य रूप से हटाया गया वह पदार्थ है जो लोगों के सामान्य कार्यों के कारण उत्पन्न होता है तथा इसके अन्तर्गत कचरा, मल-मूत्र, गली का कूड़ा-कचरा, राख व अन्य औद्योगिक अपशिष्ट आदि शामिल होते हैं।

3.3 ठोस अपशिष्ट पदार्थों के स्रोत

ठोस अपशिष्ट पदार्थों के स्रोतों को मुख्यतः निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है-

3.3.1 घरेलू या आवासीय क्षेत्र

3.3.2 औद्योगिक क्षेत्र

3.3.3 व्यापारिक क्षेत्र

3.3.1 घरेलू या आवासीय क्षेत्र

उपभोक्ताओं की संख्या व उनकी आदतों पर घरेलू अपशिष्ट की मात्रा निर्भर करती है। उल्लेखनीय है कि व्यक्तियों एवं समाज की सम्पन्नता तथा उनके द्वारा उत्पन्न

अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में सीधा सम्बन्ध (धनात्मक सम्बन्ध) पाया जाता है अर्थात् यदि उपभोक्ता सम्पन्न है और उसकी संख्या अधिक है तो वे अधिक घरेलू अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं। वास्तव में आर्थिक स्तर पर सम्पन्न एवं औद्योगिक स्तर पर अत्यधिक विकसित पश्चिमी देशों की ''प्रयोग करो और फेंको'' संस्कृति के कारण ठोस अपशिष्ट की विकट समस्या पैदा हो गयी है क्योंकि इस समाज में इस्तेमाल के तुरन्त बाद बचे समस्त ठोस अपशिष्टों को फेक दिया जाता है। इसके विपरीत निर्धन व कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में कम घरेलू अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न होते हैं क्योंकि इन गरीब समाजों द्वारा वस्तुओं का कई बार प्रयोग किया जाता है जैसे मृदुपेय (Soft Drink) की बोतलों का प्रयोग पानी रखने के लिए, अखबारों का प्रयोग पैकेट बनाने में आदि में किया जाता है। अब विकासशील देशों के शहरों में भी 'प्रयोग करो और फेकों' की संस्कृति पनप रही है।

3.3.2 औद्योगिक क्षेत्र

आधुनिक औद्योगिक काल में उद्योगों की लगातार बढ़ती संख्या के परिणामस्वरूप औद्योगिक अपशिष्टों की मात्रा बढ़ती जा रही है। इस क्षेत्र से प्राप्त ठोस अपशिष्टों का नगरपालिकाओं तथा सार्वजनिक निम्न भूमि में एकत्रित करके निस्तारण किया जाता है। औद्योगिक क्षेत्र के अपशिष्टों के मुख्य स्रोत हैं-

- भारी उद्योगों से उत्पन्न कचरा
- ताप शक्ति गृहों से उत्पन्न कचरा
- नाभिकीय संयत्रों से उत्पन्न कचरा

औद्योगिक क्षेत्र के अपशिष्टों की मात्रा उद्योगों के उत्पादन व उद्योगों के प्रकार पर निर्भर करती है।

3.3.3 व्यापारिक क्षेत्र

व्यापार में लगातार होने वाली वृद्धि एवं उसके रूप में परिवर्तन के कारण सड़कों पर अपशिष्टों के अम्बार दिखायी देते हैं। व्यापारिक क्षेत्र के अपशिष्टों के मुख्य स्रोत हैं-

- सड़कों व गलियों में पड़ा कचरा
- स्थायी बाजारों से उत्पन्न कचरा
- मेले, प्रदर्शनी तथा अस्थाई बाजार से उत्पन्न कचरा।

3.4 ठोस अपशिष्ट पदार्थों के प्रकार

ठोस अपशिष्ट पदार्थों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

3.4.1 कृषि अपशिष्ट

3.4.2 पशु अपशिष्ट

3.4.3 खनन अपशिष्ट

3.4.4 औद्योगिक अपशिष्ट

3.4.5 नगरपालिका अपशिष्ट

3.4.6 चिकित्सीय अपशिष्ट

34.7 पैकिंग अपशिष्ट

3.4.8 मानव अपशिष्ट

3.4.9 रेडियोएक्टिव अपशिष्ट

3.4.1 कृषि अपशिष्ट

कृषि अपशिष्ट के अन्तर्गत कृषि उपजों के डंठल, भूसे, जड़ें, चारे, गोबर आदि को शामिल किया जाता है। वास्तव में विकासशील एवं अविकसित देशों में कृषि से उत्पन्न अपशिष्टों की कोई खास समस्या नहीं है, क्योंकि इन अपशिष्ट सामग्रियों का दूसरे रूपों में प्रयोग कर लिया जाता है, जैसे - गोबर का उपला बनाकर जलाने के लिए भूंसे को चारे के रूप में, जानवरों का गोबर कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए उपयोग किया जाता है। इसके विपरीत विकसित देशों में कृषि अपशिष्ट का कोई प्रयोग न होने के कारण उनके निस्तारण की समस्या सिर दर्द बन गयी है।

3.4.2 पशु अपशिष्ट

पशुओं के मल-मूत्र तथा उनके मृत होने पर शरीर से और भी जो चीजें प्राप्त होती हैं उन्हें पशु अपशिष्ट कहते हैं। ये हैं खालें, हड्डियाँ, बाल, सींग, चरबी, अतड़ियां, रक्त तथा न खा सकने वाला मांस आदि। भारत में जानवरों के गोबर से उपले बनाये जाते हैं जिसे घरों में ईधन के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा मृत जानवरों की हड्डियों का उपयोग खाद बनाने के लिए किया जाता है।

3.4.3 खनन अपशिष्ट

जिन क्षेत्रों में खनन का कार्य होता है वहाँ इस प्रकार के अपशिष्ट पाये जाते हैं।

खनन से निकले व्यर्थ पदार्थ, पत्थरों तथा धातुओं के खनन से निकले पदार्थ अपशिष्ट की समस्या को जन्म देते हैं। इस प्रकार जहाँ कहीं भी खनिज व धातु पदार्थ निकाले जाते हैं वहाँ मिट्टी व खनिज का विशाल ढेर लग जाता है जिसे निपटाना एक बड़ी समस्या है।

3.4.4 औद्योगिक अपशिष्ट

आधुनिक औद्योगिक काल में निरन्तर बढ़ती उद्योगों की संख्या के परिणास्वरूप औद्योगिक अपशिष्ट का ढेर लग रहा है। औद्योगिक अपशिष्ट के अन्तर्गत भारी मात्रा में परिव्यिक्त पदार्थों को सम्मिलित किया जाता है। जैसे चीनी उद्योग से उत्पन्न खोई, तेल शोधन शालाओं के अपशिष्ट, तांबा गलाने एवं एल्यूमिनियम के कारखानों से खतरनाक अपशिष्ट निकलते हैं। ये अपशिष्ट मृदा प्रदूषण पैदा करते हैं। चीनी मिलों के पास खोई का ऊंची टीला बन जाता है जो बरसात के दिनों में सड़कर दुर्गन्ध पैदा करता है।

3.4.5 नगरपालिका अपशिष्ट

महानगरों में तीव्र नगरीकरण के परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ ठोस अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा बढ़ती जा रही है जिसका निस्तारण करना नगरपालिकाओं के लिए सिर दर्द हो गया है। नगरपालिकाओं के अपशिष्ट के अन्तर्गत रद्दी कागज, प्लास्टिक के सामान, बोतलें, टूटे शीशे, कनस्टर, एल्यूमिनियम की पट्टियाँ एवं चादरें स्वचलित वाहनों के पहिये व लोहा-लक्कड़, साग सब्जी के छिलके, कचरा, कूड़ा-करकट तथा आवासीय क्षेत्रों से निकलने वाले कूड़ा-करकट एवं कचरों को सम्मिलित किया जाता है। अविकसित देशों में अखबारों के अपशिष्टों की कोई समस्या नहीं है क्योंकि इनका विभिन्न रूपों में उपयोग किया जाता है। लेकिन विकसित देशों में इस अपशिष्ट के निस्तारण की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गयी है।

1991 के आकड़ों के अनुसार भारत के 3,00,000 से अधिक जनसंख्या वाले 45 बड़े नगर प्रतिदिन 3,00,000 टन से अधिक अपशिष्ट उत्पन्न करते हैं परन्तु ये अब भी विकसित देशों के अपशिष्टों से बहुत कम है।

नगर पालिकाओं के अपशिष्टों को निम्नलिखित वर्गों में भी बाँटा जा सकता है-

- अज्वलनशील अपशिष्ट,
- अत्यधिक ज्वलनशील अपशिष्ट
- ज्वलनशील अपशिष्ट, तथा

- जानवरों से त्यजित एवं सब्जियों के अपशिष्ट

3.4.6 चिकित्सीय अपशिष्ट

स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य - रक्षा के दिनों-दिन बढ़ते चरणों के साथ अस्पताल, नर्सिंग होम्स की संख्या बड़ी तेजी के साथ बढ़ रही है। चिकित्सालयों में रूई, पट्टियाँ, सिरेन्जेस, ग्लूकोज की बोतलें, रबड़ प्लास्टिक के दस्ताने, रबर ट्यूब्स आदि ठोस अपशिष्ट भारी मात्रा में उत्पन्न हो रहे हैं जिनको नष्ट करना अनिवार्य है। आपरेशन के बाद शरीर के कटे अंग, माँस के टुकड़े, खून से सनी चादरें, बिस्तरों आदि का सुरक्षा पूर्वक निस्तारण हो सके, इनका उपाय करना चाहिए।

3.4.7 पैकिंग अपशिष्ट

पैकिंग अपशिष्टों के अन्तर्गत वे पदार्थ शामिल किये जाते हैं जिन्हें वस्तुओं को पैक करने में इस्तेमाल किया जाता है, जैसे-कागज, दफ्ती, पॉलीथीन, प्लास्टिक जूट आदि। विकसित देशों में एक बार प्रयोग के बाद पैकिंग मैटेरियल को फेंक दिया जाता है, परिणामस्वरूप उनके निस्तारण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसके विपरीत अविकसित एवं विकासशील देशों में इन पैकिंग मैटेरियल्स का कई बार उपयोग किया जाता है इसलिए यहाँ पैकिंग अपशिष्टों के निस्तारण की समस्या गंभीर नहीं है।

3.4.8 मानव अपशिष्ट

मानव अपशिष्टों के अन्तर्गत नगरों एवं कस्बों से निकले विष्टा को शामिल किया जाता है। इसे भूमिगत गड्ढों,झीलों, तालाबों, नदियों तथा सागरों में डम्प कर दिया जाता है। सामान्यतया विकासशील देशों के ग्रामीण क्षेत्रों के लोग बाहर खुले स्थानों पर शौच करते हैं जिसे वर्षा का जल बहाकर निकटवर्ती तालाबों, झीलों आदि में पहुँचा देता है जिससे जल प्रदूषित हो जाता है। इस प्रदूषित जल का प्रयोग किसानों द्वारा सिचाई के लिए भी किया जाता है जिससे उत्पादित वस्तु की गुणवत्ता पर विपरीत असर पड़ता है।

3.4.9 रेडियोएक्टिव अपशिष्ट

रेडियोऐक्टिव अपशिष्ट आणविक क्षेत्र में वैज्ञानिकों द्वारा शक्ति (ऊर्जा) उत्पादन के क्षेत्र में किये गये शोधों का परिणाम है। अमेरिका द्वारा जापान के हिरोशिमा पर फेंके गये बम्ब से उत्पन्न रेडियोएक्टिव अपशिष्टों का दुष्परिणाम दीर्घकाल तक बना हुआ था।

कुछ विद्वानों के अनुसार ठोस अपशिष्टों को निम्न दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-

- जैविक अपघटित ठोस अपशिष्ट (Bio-Degradable Waste)
- अपतनशील ठोस अपशिष्ट (Non-Degradable Waste)

a. **जैविक अपघटित ठोस अपशिष्ट -** इसके अन्तर्गत ऐसे कार्बनिक अपशिष्ट आते हैं जिसे बैक्टीरिया और अन्य जीवाणु अपना पोषक बनाते हैं और धीरे-धीरे ये अपशिष्ट अपघटित हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में यद्यपि दुगन्धयुक्त गैसें निकलकर वायु को प्रदूषित करती है किन्तु पुनः चक्रीकरण प्रक्रिया में आ जाते हैं। सड़े-गले फल, सब्जियाँ, माँस, कपड़ों के टुकड़े, जूठन, मानव मल, गोबर, लीद, मृत पशु आदि इस अपशिष्ट के उदाहरण हैं। अपघटन की प्रक्रिया में बड़ी दुर्गन्ध फैलती है। मच्छर, मक्खी, कीड़े-मकोड़ों की संख्या बढ़ती है जिसके कारण विभिन्न रोग फैलते हैं। मानव मल-मूत्र का समुचित निष्कासन होने के कारण टाइफाइड, पेचिस, आदि बीमारियां पैदा होती है। आजकल प्रदूषित जल से सिंचाई कर किसान विभिन्न सब्जियाँ एवं फल का उत्पादन कर रहे हैं जो विभिन्न रोगों को जन्म दे रहे हैं।

b. **अपतनशील ठोस अपशिष्ट -**अपतनशील ठोस अपशिष्ट ऐसे अकार्बनिक पदार्थ अथवा अपशिष्ट पदार्थ, लवण, धातुयें आदि हैं जो दीर्घकाल तक यथावत् बनी रहती हैं अथवा जिनके गलने में बहुत अधिक समय लगता है। जैसे कांच की बोतल जमीन में गाड़ देने पर यह 10 लाख वर्ष तक रह सकती है। संश्लेषित प्लास्टिक, प्लास्टिक की थैलियाँ, प्लास्टिक कचरा, काँच, क्राकरी के टुकड़े, रबड़ धातुओं के टुकड़े आदि इस अपशिष्ट के उदाहरण हैं। इस अपशिष्टों के पुनः चक्रीकरण में न होने के कारण कचरे के पहाड़ प्रतिवर्ष बढ़ते जा रहे हैं जो आने वाले वर्षों में विकट समस्या का रूप ले लेंगे। कचरे में विविध वस्तुयें होती हैं, अतः कचरा प्राकृतिक संसाधन ऊर्जा उत्पादक बन सकता है। अतः इस संसाधन के उपयोग हेतु आज के विकसित देश कूड़ा-कचरा एकत्र कर उनको यंत्रों से अलग-अलग वर्गीकृत कर उनका ईंधन बनाने, विद्युत उत्पन्न करने तथा धातुओं को पिघलाकर पुनः चक्रीकरण कर उपयोग कर रहे हैं। भारत में भी इस दिशा में प्रयास हो रहा है।

3.5 ठोस अपशिष्ट के कुप्रभाव

विभिन्न रूपों में उत्पन्न ठोस अपशिष्ट प्रदूषण की गम्भीर समस्या उत्पन्न कर रहे हैं। ठोस अपशिष्ट मानव स्वास्थ्य को सीधे नहीं प्रभावित करते हैं लेकिन जब वे सड़ने

लगते हैं तो उनसे कई जीवाणु मच्छर आदि उत्पन्न होते हैं जो मानव स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं। ठोस अपशिष्ट के कुप्रभाव निम्न हैं-

- मृदा संसाधन में ह्रास लाता है।
- वायु प्रदूषण व जल प्रदूषण को बढ़ाता है।
- कृषि योग्य भूमि को घटाता है।
- भूमि के मूल्य में गिरावट लाता है।
- नगरीय भावी विकास को अवरुद्ध करता है।
- दुर्गन्धयुक्त अस्वास्थ्यजनक पर्यावरण उत्पन्न करता है।
- नगरीय पर्यावरण ह्रास का कारण बनता है।
- निकटवर्ती भूमि जो दूध, फूल-फल, सब्जी आदि उत्पादित कर सकती थी, बर्बाद हो जाती है।
- नगरीय प्रसार में बाधा उत्पन्न करती है।
- पशु-पक्षी एवं जलीय जन्तुओं की संख्या में कमी लाती है।
- आजकल पॉलीथीन अपशिष्ट के कारण गंभीर समस्या उत्पन्न हो रही है अतः पॉलीथीन अपशिष्ट के कुप्रभाव की चर्चा अलग से की जा रही है। प्लास्टिक पदार्थ में पॉलीथीन सबसे ज्यादा लोकप्रिय एवं बहु-उपयोगी प्लास्टिक है। यह हमारे जीवन का पर्याय सा हो गयी है। वस्तु निर्माता एवं विक्रेता खाने के सामान से लेकर पानी तक पॉलीथीन पैक में दे रहे हैं। ये पालीथीन हमारे लिए खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं। पालीथीन के बढ़ते प्रयोग, हमारे द्वारा जहाँ-जहाँ फेंक देने एवं सरकार की चुप्पी से निम्न समस्या एवं खतरे बढ़ते जा रहे हैं :-
- प्रायः लोगों द्वारा इन पॉलीथीन थैलियों से जहाँ-तहाँ फेंक देने या वर्षा के माध्यम से बहकर ये नालियों एवं गटरों में पहुँच कर पानी के सहज बहाव को रोक देती है। पूरा ड्रेनेज सिस्टम बन्द हो जाता है और कभी-कभी अवरुद्ध भी हो जाता है।
- प्रायः लोग बचे भोज्य पदार्थों को इन थैलियों में भरकर फेंक देते हैं जिसे पशु भोज्य पदार्थ को पॉलीथीन के साथ खा जाते हैं। इनके पेट में पहुँचकर ये थैलियाँ जमा हो जाती हैं जिसके फलस्वरूप इनकी मृत्यु हो जाती है।
- खेतों में बिखर कर वायु और जल के प्रवेश को मिट्टी में जाने से रोकती है।

- विभिन्न कचरे के साथ पॉलीथीन को जलाने पर घातक एवं विषैली गैसें उत्पन्न होती हैं जो वायुमण्डल को प्रदूषित करती हैं।
- थैलियों को रंगीन बनाने के लिए जिन पदार्थों को मिलाया जाता है, उससे कैडमियम और शीशे के प्रभाव का डर रहता है।
- प्रायः इनके अन्दर पड़ा भोज्य पदार्थ, पानी या कचरा पड़े-पड़े सड़ता रहता है जो कि मक्खी, मच्छरों को बढ़ाने में सहायक होता है और फिर ये हमारे स्वास्थ्य के लिए खतरनाक हो जाते हैं।
- थैलियाँ अनेक वर्ष (100 वर्ष से अधिक) तक नष्ट नहीं होती इसलिए इनका घातक दुष्परिणाम पीढ़ी दर पीढ़ी भोगना पड़ता है।
- हल्की होने के कारण यह उड़ जाती है तथा घर, सड़क सभी स्थानों पर बिखरी रहती है। इनका एकत्रीकरण कठिन होता है।

3.6 ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन

ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन के अन्तर्गत निम्नलिखित चरणों को सम्मिलित किया जाता है-

3.6.1 अपशिष्टों का संग्रह

3.6.2 अपशिष्टों का वर्गीकरण

3.6.3 अपशिष्टों का निस्तारण

3.6.1 अपशिष्टों का संग्रह

ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन के अन्तर्गत अपशिष्टों को समुचित रूप में संग्रह करना, पहला महत्वपूर्ण कदम है, नगरों में निवासी अपने घरों से निकलने वाले अपशिष्टों को सीधे सड़क पर, मकानों के कोनों में, नगरपालिकाओं द्वारा रखे गये कूड़ेदानों में, चहारदिवारी के पीछे आदि स्थानों पर फेकते हैं। भारत के नगरों में तो अपशिष्टों को संग्रह करने की थोड़ी-बहुत व्यवस्था है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में कोई व्यवस्था नहीं है, परिणास्वरूप गाँवों में तथा इनके आस-पास के क्षेत्रों में आवासीय कूड़ा-करकट फैला रहता है। नगरों में नगरपालिकाओं के अपशिष्टों को मवेशी, सूअर, कबाड़ी तथा गरीब लोग बिखेरते रहते हैं जिसके फलस्वरूप कचरे दूर-दूर तक फैल जाते हैं। नगरपालिकाओं के कर्मचारी इन अपशिष्टों को इकट्ठा कर ट्रक तथा लॉरियों, ट्रॉलियों में भरकर डम्पिंग स्थलों पर डम्प कर देते हैं। नगरों में ठोस अपशिष्टों को नियमित रूप से जमा करना

चाहिए। व्यावसायिक क्षेत्रों से दो बार एवं आवासीय क्षेत्रों से एक बार इनको नियमित तौर पर इकट्ठा किया जाय तो अच्छा रहेगा। इन एकत्रित पदार्थों को ढोने के लिए उपयुक्त वाहनों का होना चाहिए। कस्बों तथा लघु शहरों में भी अपशिष्टों के संग्रह की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

3.6.2 अपशिष्टों का वर्गीकरण

ठोस अपशिष्टों के संग्रह के उपरान्त पदार्थों की विधिवत् छंटाई तथा उनका वर्गीकरण किया जाना चाहिए। इन अपशिष्टों की छटाई कर निम्न श्रेणियों में वर्गीकरण किया जाता है।

- कम्पोस्ट खाद लायक जैविक पदार्थ
- अज्वलनशील ठोस अपशिष्ट, जैसे - लोहा, टिन, शीशे आदि
- अत्यधिक ज्वलनशील ठोस अपशिष्ट जैसे-कागज, प्लास्टिक, रबर आदि
- ज्वलनशील ठोस अपशिष्ट, जैसे - दफ्ती के डिब्बे, लकड़ी, कूड़ा-करकट आदि।
- सब्जियों व मवेशियों के अपशिष्ट
- पुनः उपयोग में आने वाले अपशिष्ट

3.6.3 अपशिष्टों का निस्तारण

ठोस अपशिष्टों के निस्तारण के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जा सकता है-

3.6.3.1 भू-निक्षेपण (Land Diposal) - अज्वलनशील ठोस अपशिष्टों जैसे लोहा, टिन शीशे आदि को इसके निस्तारण के लिए बने गड्ढों में भर दिया जाता है। जब वह समतल होने लगती है तब उसके ऊपर मिट्टी डालकर बुलडोजर से पूर्ण समतल बना लिया जाता है। इस क्रिया के लगातार होने से प्रदूषण की समस्या नहीं उत्पन्न होती है। ऐसी भूमि-भराव स्थलों पर भवनों व पार्क का निर्माण किया जा सकता है।

3.6.3.2 कम्पोस्ट खाद निर्माण - कम्पोस्ट खाद लायक जैविक पदार्थ यथा सड़ी-गली सब्जियाँ, पौधों की पत्तियाँ, डंठल, छिलके, मानव व मवेशियों के मलमूत्र आदि को कम्पोस्ट के गड्ढों में जमा करके कम्पोस्ट खाद बनाकर भी अपशिष्टों का उचित उपयोग किया जा सकता है। इससे एक ओर अपशिष्टों का सही तौर पर निस्तारण हो जाता है

और दूसरी तरफ खेतों को खाद मिल जाती है। एक अनुमान के अनुसार भारत के एक लाख जनसंख्या वाला नगर प्रतिवर्ष 20 हजार टन कचरा तथा आठ हजार टन विष्टा का उत्पादन करता है। जिससे प्रतिवर्ष 18 हजार टन कम्पोस्ट खाद तैयार की जाती है।

3.6.3.3 अपशिष्टों का दहन - भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में कूड़ा-कचरा में आग लगाकर जला देना प्राचीन परम्परागत उपाय है। यह उपाय महानगरों में भी नगरीय अपशिष्ट प्रबन्धन में प्रयोग किया जा रहा है किन्तु इस तरीके से वायु प्रदूषण बढ़ जाता है और अपशिष्टों का कोई उपयोग नहीं होता बल्कि जलाये जाने वाली जमीन भी मृत हो जाती हैं साथ ही काँच एवं धातुओं के टुकड़े यथावत् रह जाते हैं।

3.6.3.4 विद्युत उत्पादन - कूड़ा-करकट को जलाकर ऊष्मा ऊर्जा प्राप्त करने की तकनीक का प्रयोग विश्व के विकसित देशों में किया जा रहा है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत पहले धातु के टुकड़े अलग एकत्र कर लिये जाते हैं, तत्पश्चात् अपशिष्ट को वर्गीकृत करके अलग कर लिया जाता है फिर इसे ज्वलनशील बनाने हेतु छोटे-छोटे टुकड़ों में काट दिया जाता है। अब इन्हें जलाकर विद्युत उत्पादन किया जाता है और धुँआ चिमनियों से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

3.6.3.5 पुनर्चक्रण - पुनर्चक्रण द्वारा रद्दी कागज, लोहे, टीन के टुकड़े, पीतल, शीशे चिथड़े-कपड़े, मलमूत्र आदि अपशिष्ट पदाथों को उपयोग लायक बनाया जाता है जैसे रद्दी कागज से लुगदी बनाकर कागज तैयार करना, लोहे की कतरन से इस्पात तैयार करना। अहमदाबाद में प्रतिदिन 150 टन कचरे से 75 टन जैव खाद तैयार की जाती है।

3.6.3.6 नवीन तकनीकी अनुसंधान/अविष्कार - वैज्ञानिकों ने पूरी तरह से जैवक्षय होने वाले प्लास्टिक का विकास किया है जिसे स्टार्च व कम घनत्व वाले पोली-इश्वीलीन को मिलाकर बनाया गया है। यह प्लास्टिक मजबूत है तथा जमीन में गाड़ने के दो माह के अन्दर पूरी तरह से जैवक्षय हो जाता है। यदि यह प्रयोग सफल रहा तो पर्यावरण को प्लास्टिक से होने वाले भारी नुकसान से बचाया जा सकेगा।

ड्यूरेबल प्लास्टिक के और भी नये-नये रूप विकसित किये जा रहे हैं। उदाहरण के लिए विद्युत सुचालक प्लास्टिक भी बना लिया गया है। वैज्ञानिकों ने फिलहाल सूर्य की रोशनी से विघटित होने वाला (फोटोडिग्रेडेबिल) प्लास्टिक भी बना लिया है। इस प्रकार के पर्यावरण अनुकूल प्लास्टिक बनाने का वृहत् प्रयास संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित किया जा रहा है।

पेड़-पौधों के हिस्सों से भी प्लास्टिक बनाने पर शोध हो रहा है ऐसा प्लास्टिक स्वतः ही बायोडिग्रेडेबल होगा।

इग्लैण्ड की एक कम्पनी 'सिम्फनी एनवायरनमेंटल' ने पूरी तरह से जैव विघटनशील पालीथीन की थैलियाँ बनायी हैं। इसके निर्माण में एक नयी तरह के एडिटिव (योगज) का प्रयोग किया गया है जिससे प्लास्टिक कुछ ही हफ्तों में कार्बन-डाई-आक्साईड और पानी में बदल जाता है।

3.7 सारांश

ठोस अपशिष्ट का तात्पर्य उन ठोस एवं अनिवार्य रूप से हटाये गये पदार्थ से है जो लोगों के सामान्य कार्यों के कारण उत्पन्न होता है तथा इसके अन्तर्गत कचरा, मल-मूत्र, गली का कूड़ा-कचरा राख व अन्य औद्योगिक अपशिष्ट शामिल होते हैं।

ठोस अपशिष्ट पदार्थों के स्रोतों को मुख्यतः तीन श्रेणियों में बॉटा जा सकता है- घरेलू या आवासीय क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र एवं व्यापारिक क्षेत्र। इन विभिन्न स्रोतों से निकलने वाले ठोस अपशिष्ट पदार्थों को कृषि अपशिष्ट, पशु अपशिष्ट, खनन अपशिष्ट, औद्योगिक अपशिष्ट, नगरपालिका अपशिष्ट, चिकित्सीय अपशिष्ट, पैकिंग अपशिष्ट, मानव अपशिष्ट, रेडियोएक्टिव अपशिष्ट में वर्गीकृत किया जा सकता है। इन ठोस अपशिष्टों के कारण प्रदूषण की गंभीर समस्या उत्पन्न हो रही है। ठोस अपशिष्ट मानव स्वास्थ्य को सीधे नहीं प्रभावित करते हैं लेकिन जब वे सड़ने लगते हैं तो उनसे कई जीवाणु, मच्छर आदि उत्पन्न होते हैं जो मानव स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं।

ठोस अपशिष्ट का प्रबन्धन अत्यन्त आवश्यक है जिसके लिए तीन चरणों को सम्मिलित किया जाता है- अपशिष्टों का संग्रह, अपशिष्टों का वर्गीकरण एवं अपशिष्टों का निस्तारण। संग्रहित अपशिष्टों की छंटाई कर उसको कई श्रेणियों में बाँटा जा सकता है, जैसे - कम्पोस्ट खाद लायक जैविक पदार्थ, अज्वलनशील ठोस अपशिष्ट, अत्यधिक ज्वलनशील ठोस अपशिष्ट, ज्वलनशील ठोस अपशिष्ट, सब्जियों व मवेशियों के अपशिष्ट, पुनः उपयोग में आने वाले अपशिष्ट आदि। अपशिष्टों के वर्गीकरण के उपरान्त उनके निस्तारण के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें प्रमुख हैं-भू-निक्षेपण, कम्पोस्ट खाद निर्माण, अपशिष्टों का दहन, विद्युत उत्पादन, पुनर्चक्रण, नवीन तकनीकी अनुसन्धान/अविष्कार।

आजकल पॉलीथीन अपशिष्ट के कारण गंभीर समस्या उत्पन्न हो रही जिससे निजात पाने के लिए इग्लैण्ड की एक कम्पनी 'सिम्फनी एनवायरनमेन्टल' ने पूरी तरह

से जैव विघटनशील पॉलीथीन की थैलियाँ बनायी हैं।

3.8 संदर्भित ग्रन्थ

सविन्द्र सिंह, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2008

एन0एम0 अवस्थी, पर्यावरणीय अध्ययन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2005-06

योगेश कुमार सिंह, पर्यावरणीय शिक्षा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007

मेघा सिन्हा, पर्यावरण अध्ययन (प्रकृति एवं महत्व), वन्दना पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, 2006

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ठोस अपशिष्ट से आप क्या समझते हैं? इसके प्रबन्धन के विभिन्न चरणों के उल्लेख कीजिए।
2. ठोस अपशिष्ट के दुष्प्रभावों की व्याख्या कीजिए।
3. ठोस अपशिष्ट के विभिन्न स्रोतों का उल्लेख कीजिए।
4. ठोस अपशिष्ट के प्रबन्धन एवं नियंत्रण हेतु उपायों की व्याख्या करें।

इकाई 4 : जैव-विविधता प्रबन्धन

इकाई रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अर्थ

4.3 परिभाषायें

4.4 जैव-विविधता के प्रकार

4.4.1 अनुवंशिक विविधता

4.4.2 प्रजाति विविधता

4.4.3 पारिस्थितिक तन्त्र विविधता

4.5 जैव-विविधता में ह्रास के कारण

4.5.1 प्राकृतिक कारण

4.5.2 मानव जनित कारण

4.6 जैव - विविधता का संरक्षण या प्रबन्धन

4.6.1 जैव विविधता संरक्षण की विधियाँ

4.6.4.1 प्राकृतिक आवासों में संरक्षण

4.6.4.2 प्राकृतिक आवासों के बाहर संरक्षण

4.7 जैव-विविधता संरक्षण के संवैधानिक प्रयास

4.7.1 वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972

4.7.2 राष्ट्रीय वन नीति, 1988

4.7.3 जैव विविधता अधिनियम, 2000

4.8 जैव-विविधता का महत्व अथवा मूल्य

4.8.1 उपभोग मूल्य

4.8.2 उत्पादन मूल्य

4.8.3 सामाजिक मूल्य

4.8.4 नैतिक मूल्य

4.8.5 सौन्दर्य मूल्य

4.8.6 पारिस्थितिकीय सेवायें

4.8.7 राजनैतिक मूल्य

4.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.10 संदर्भित ग्रन्थ

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप -

- जैव-विविधता का तात्पर्य समझ सकेंगे,
- जैव-विविधता के विभिन्न प्रकारों से अवगत हों सकेंगे,
- जैव-विविधता के ह्रास के कारणों से परिचित हो सकेंगे,
- जैव-विविधता की संरक्षण प्रक्रिया को जान सकेंगे,तथा
- जैव-विविधता के संदर्भ में पारित विभिन्न नीतियों एवं अधिनियमों से अवगत हो सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

'जैव-विविधता' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वाल्टर जी रोजेन (Walter G. Rosen) द्वारा सन 1986 में किया गया जिन्होंने जैव विविधता को निम्नलिखित शब्दों में समझाया- ''पादपों (Plants) जन्तुओं (Animals) एवं सूक्ष्म जीवों (Micro-organisms) के विविध प्रकार और विभिन्नता ही जैव विविधता है।''

हम सभी यह जानते हैं कि जीव मंडल में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ, सूक्ष्मजीव और जीव-जन्तु पाये जाते हैं जिनके कारण संतुलित पारिस्थितिक तंत्र होते रहते हैं। पर्यावरण में विद्यमान विभिन्न प्राणियों एवं वनस्पतियों में एक तरह की अन्योन्यश्रिता पायी जाती है। समस्त प्राणी और वनस्पतियाँ एक-दूसरे से सम्बन्धित और परस्पर निर्भर होते हैं। इस प्रकार पर्यावरण की कोई भी इकाई एकदम स्वतंत्र और आत्म निर्भर नहीं है।

जैव विविधता का सामान्य अर्थ होता है किसी भी विस्तृत क्षेत्र की पर्यावरणीय

दशाओं में पौधों एवं जन्तुओं के समुदायों के जीवों की प्रजातियों (Spacies of Organism) की विविधता (Variety) उदाहरणार्थ, मानसूनी प्रदेश पारिस्थितिक तन्त्र, उष्णकटिबन्धी वर्षा, वन पारिस्थितिक तंत्र की जैव विविधता।

4.2 अर्थ

जैव विविधता एवं समूहवाची शब्द है जिसमें पृथ्वी के सभी तरह के सजीव पौधे, प्राणी, सूक्ष्म जीव-जन्तु समाहित हैं, वस्तुः इसमें प्रजातियों के अन्दर, प्रजातियों के मध्य तथा पारितंत्र की विविधतायें शामिल हैं।

हकीकत में समुद्री, स्थलीय एवं अन्य जलीय परिस्थितिक तंत्रों और इनसे सम्बन्धित सभी स्रोतों के जीवधारियों एवं इसके पारिस्थितिक संकुलों में मिलने वाली विभिन्नता जैव-विविधता है।

4.3 परिभाषाएँ

जैव-विविधता को कई रूपों में निरूपित एवं परिभाषित किया गया है परन्तु जीन (genes) विविधता के तत्व, प्रजातियाँ एवं पारिस्थितिक तंत्र (भौतिक पर्यावरणीय दशायें) जैव-विविधता की सभी परिभाषाओं में परिलक्षित होते हैं। जैव-विविधता की कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं-

डी0 केस्ट्री - के शब्दों में, ''किसी निश्चित समय में किसी निश्चित स्थान के जीन, प्रजातियों एवं परिस्थितिकीय विविधता के समुदाय एवं उनकी पारस्परिक क्रिया के सम्मिलित रूप को जैव-विविधता कहते हैं।''

सी0जे0बैरो की राय में, ''किसी निश्चित क्षेत्र (पारिस्थितिक तन्त्र) की प्रत्येक प्रजाति (species) में जननिक विषमता (variation) के साथ-साथ विभिन्न प्रजातियों की विविधता को जैव-विविधता कहते हैं।''

पृथ्वी शिखर सम्मेलन (1992) - धरातलीय, महासागरीय एवं अल्प जलीय परिस्थितिक तंत्रों में उपस्थित अथवा उससे सम्बन्धित तंत्रों में पाये जाने वाले जीवों के बीच विभिन्नता जैव-विविधता है।

4. **संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम -** ''जैव-विविधता किसी भी प्रदेश में जीन, प्रजातियों तथा परिस्थितिकीय तंत्रों का समग्र रूप है।''

5. **वाई0 अंजानेयुलू** के मत में ''जैव-विविधता को जीवन की विविधता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके अन्तर्गत जीवों में विभिन्नता एवं

विविधता के समग्र रूप, तथा इन पारिस्थितिकीय संकुलों (ecological complexes) जिनके अन्तर्गत विभिन्न जीव रहते हैं, तथा जिनमें पारिस्थितिक तन्त्र या समुदाय की विविधता, प्रजाति विविधता एवं जेनेटिक विविधता होती है, को सम्मिलित किया जाता है।''

6. **सविन्द्र सिंह** के शब्दों में, ''किसी भी निश्चित क्षेत्र या प्रदेश या पारिस्थितिक तन्त्र में जीन, प्रजाति एवं आवास (परिस्थितिक तन्त्र) की विविधता एवं समय में संवर्ग में जीवित जीवों के प्रकार, उनकी विभिन्नता एवं परिवर्तनशीलता को जैव-विविधता कहते हैं। जैव-विविधता में स्थानिक (Spatial) एवं कालिक (temporal) परिवर्तन होते रहते हैं।

4.4 जैव - विविधता के प्रकार -

जैव-विविधता के निम्न प्रकारों में बाँटा जा सकता है-

4.4.1 अनुवांशिक विविधता

4.4.2 प्रजाति विविधता

4.4.4 परिस्थितिक तन्त्र विविधता

4.4.1 अनुवांशिकी विविधता

अनुवांशिकी स्तर पर एक जाति के सदस्यों में पायी जाने वाली विविधता अनुवांशिक विविधता कहलाती है। यह जैव-विविधता का मुख्य स्रोत है। जीवों में पायी जाने वाली 'जीन' विभिन्न प्रकार के मिलकर जीवों में विविधता लाने के लिए जिम्मेदार है। 'जीन' एवं पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक विभिन्न लक्षणों को ले जाने वाली मूल इकाई है। जब एक ही प्रजाति के जीन विभिन्न प्रकार से मिलकर जीवों में अन्तर पैदा कर दें तो इसे अनुवांशिक विविधता कहते हैं जैसे चावल की सभी किस्में एक ही प्रजाति 'ओराइजा सटाइवा' से बनी है परन्तु अनुवांशिक विविधता के कारण इनका आकार, खुशबू, रंग, पोषक तत्व विभिन्न प्रकार के हैं। वास्तव में, जीन की विभिन्नता प्रजातियों में विभिन्नता को तथा प्रजातियों की विभिन्नता की मात्रा जैव विविधता को निर्धारित करती है। डी० आर० बाटिश के अनुसार, ''किसी प्रजाति में आर्थिक अनुवांशिक विविधता होने पर उस प्रजाति के एकांकी जीवों में पर्यावरण दशाओं के साथ अनुकूलन की क्षमता अधिक होती है, तथा जीवों में विभिन्नता भी अधिक होती है। न्यून अनुवांशिक विविधता होने पर प्रजातियों में समरूपता होती है, परिणामस्वरूप प्रजातियों

के जीवों में पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के प्रति दुर्बलता अधिक हो जाती है।'' अर्थात् यदि प्रजातियों में विविधता के बजाय एकरूपता अधिक होती है तो जीव पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के साथ अपने को अनुकूलित तथा समायोजित नहीं कर पाते हैं, इसीलिए विनष्ट हो जाते हैं।

4.4.2 प्रजाति विविधता

पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी प्रकार के जीवों (बैक्टीरिया से लेकर पौधों एवं जन्तुओं तक) की जातियों की विविधता, प्रजाति विविधता कहलाती है। सामान्य अर्थ में प्रजाति विविधता का तात्पर्य किसी निश्चित पारिस्थितिक तंत्र के जीवीय समुदायों (पौधों तथा जन्तुओं के समुदायों) की प्रजातियों के प्रकार तथा उनकी परिवर्तनशीलता से है। सामान्य रूप में प्रजाति विविधता को जैव-विविधता के समानार्थी के रूप में लिया जाता है क्योंकि किसी परिस्थितिक तंत्र में जीवों (पौधों एवं जन्तुओ) के विभिन्न प्रकारों की संख्या एवं प्रकार को ही प्रजाति विविधता कहते हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि प्रजाति विविधता का आकार ही किसी पारिस्थितिक तंत्र की आहार शृंखला को दीर्घ या लघु बनाता है। प्रजाति विविधता जितनी अधिक होगी, आधार शृंखला उतनी ही दीर्घ होगी फलस्वरूप जैव-विविधता भी उतनी ही समृद्धि होगी।

- प्रजाति विविधता का महत्व अग्रलिखित है -
- स्थानीय लोगों के उपयोग के लिए।
- शिक्षा एवं विकास के लिए।
- वन्य जीव पर्यटन के लिए।
- अभिजनन द्वारा वन्य पौधों से फसलों की उन्नत किस्में तथा वन्य जन्तुओं से उन्नत नस्ल के पालतू - जानवर विकसित करने के लिए।
- शोध / अनुसन्धान के बेहतर अवसर प्रदान करने के लिए।

4.4.3 पारिस्थितिक तन्त्र विविधता

बड़े स्तर-पर जैव-विविधता के अन्तर्गत परिस्थितिक तन्त्र के जैविक समुदायों में पायी जाने वाली विविधता पारिस्थितिक-तन्त्र विविधता कहलाती है। पारिस्थितिक-तन्त्र भौतिक घटकों जैसे तापमान, ऊंचाई, आद्रता, वर्षा आदि के साथ-साथ आवास, खाद्य स्तर, खाद्य-जल आदि के साथ विभिन्नता दर्शाता है। इसीलिए एक पारिस्थितिक एक विशेष प्रकार के जीव-जन्तुओं के प्रारूप को बनाता है। अतः पारिस्थितिक तंत्र की

विविधता भी जैव -विविधता को जन्म देती है। इसीलिए जैव-विविधता का पारिस्थितिक तन्त्र के स्तर पर भी अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए विषुवतरेखीय वर्षा वन पारिस्थितिक तन्त्र की जैव विविधता, प्रवाल भित्ति पारिस्थितिक तंत्र की जैव-विविधता, घास प्रदेश पारिस्थितिक तन्त्र की जैव विविधता आदि। यह विविधता करोड़ों वर्षों में विकसित हुई है और इसका संरक्षण अति आवश्यक है। जैव विविधता को नुकसान पहुँचाने का अर्थ है- पर्यावरणीय संतुलन को बिगाड़ना। हम जैव-विविधता को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित भी नहीं कर सकते। प्रकृति के हर क्षेत्र की जैव-विविधता वर्षों के प्राकृतिक-चयन द्वारा विकसित हुई है।

पारिस्थितिक तन्त्र विविधता का महत्व अग्रलिखित है-

- उत्पादक उपभोग - टिम्बर, वनोपद इत्यादि के लिए
- उपभोग्य उपयोग मूल्य- भोजन, टिम्बर, चारा, ईंधन आदि के लिए
- पर्यावरणीय सेवायें - स्थानीय, क्षेत्रीय व भूमण्डलीय
- प्रजाति विविधता का महत्व अग्रलिखित हैं -अस्तित्व मूल्य - ज्ञान एवं बोध या मूल्यांकन के लिए
- नैतिक एवं चारित्रिक - सभी प्रकार के जीवों को महत्व देना।

4.5 जैव - विविधता में ह्रास के कारण

जैव-विविधता पर्यावरण संतुलन तथा जैव जीवन के लिए अनिवार्य जरूरत है किन्तु तीव्र औद्योगीकरण, नगरीकरण, कृषि क्षेत्र में विस्तार तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार आदि के कारण जैव-विविधता खतरे में पड़ गयी है। वैज्ञानिक शोध के अनुसार मानवीय क्रियाओं द्वारा पृथ्वी की 4 करोड़ प्रजातियों में से लगभग 10 हजार प्रजातियाँ प्रतिवर्ष समाप्त हो रही है। जैव-विकास में ह्रास से उत्पन्न होने वाले पर्यावरण असंतुलन एवं भयानक संकटों के प्रति दो-तीन दशकों में विश्व समुदाय में जागरूकता आयी है।

जैसा कि हम जानते हैं कि जीवीय प्रजातियों का विलोम एवं नयी प्रजातियों का प्रादुर्भाव प्राकृतिक प्रक्रिया है। प्रकृति द्वारा प्रजातियों के विलोपन की स्थानापूर्ति एवं संतुलन नयी प्रजातियों के प्रादुर्भाव से हो जाता है। लेकिन मानव जन्य कारणों से होने वाली प्रजातियों के विलोपन के कारण जैव विविधता का सामूहिक विनाश हो जाता है क्योंकि नयी प्रजातियों के उद्भवन के लिए वांछित समय नहीं मिल पाता है।

जैव विविधता के ह्रास के कारणों को निम्नलिखित दो प्रमुख वर्गों में रखा जा

सकता है-

प्राकृतिक कारण एवं मानवजनित कारण

4.5.1 प्राकृतिक कारण

जैव-विविधता ह्रास के प्राकृतिक कारणों में विश्वस्तरीय जलवायु परिवर्तन, पृथ्वी का उल्फाओं से टकराव, ज्वालामुखी का उद्‌भेदन, दीर्घस्थायी सूखा, बाढ़, अकाल आदि प्रमुख हैं। फसलों की कुछ प्रजातियाँ ऐसी होती हैं जो सूखे को सह नहीं पाती। जो प्रजातियाँ सूखा नहीं सह पाती, वे विलुप्त हो जा रही हैं। पर्यावरण प्रदूषण के कारण वर्षा में अनिश्चितता आ गयी है। कुछ प्रजातियाँ बाढ़ नहीं सह पाती। बाढ़ के कारण अनेक प्रजातियाँ नष्ट हो रही है। वन, झील, तालाब घास के मैदान आदि प्राकृतिक आवासों के नष्ट हो जाने पर वहाँ उगने वाली वाली वनस्पतियाँ नष्ट हो जाती हैं एवं वहाँ रहने वाले पशु-पक्षियों की कुछ प्रजातियाँ खत्म हो जाती हैं। पृथ्वी की उल्काओं से टक्कर के कारण अपार धूलराशि का जनन होता है। जिसके फलस्वपरूप जलवायु में अचानक भारी परिर्वतन होता है। जीव जलवायु में हुए उस व्यापक परिवर्तन को सहन नहीं कर पाते हैं, अतः मरने लगते हैं। ज्वालामुखी के उद्‌गार के समय निकलने वाले लावा के विस्तृत धरातलीय सतह पर फैलने के कारण उस समय के पौधों एवं जन्तुओं की प्रजातियाँ समाप्त हो जाती हैं। हिमकाल के आगमन पर पृथ्वी के विस्तृत धरातलीय सतह पर बर्फ की मोटी चादरों का आवरण बिछ जाता है, जिस कारण आगे बढ़ती हिम चादरों के जीवीय समुदायों की प्रजातियों का सामूहिक विलोपन हो जाता है।

4.5.2 मानव जनित कारण

मानव प्रकृति का अनुयायी बनने के बजाय स्वामी बनना चाहता है, वह स्वार्थ के लिए प्रकृति को नुकसान पहुँचाता है। आधुनिक काल में जैव-विविधता में उस ह्रास हेतु मुख्यतः मानव जनित क्रियायें ही उत्तरदायी हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है -

a. **वन्य जीवन का अनाधिकृत शिकार -** विभिन्न प्रकार के पशुओं तथा जन्तुओं का शिकार मानव द्वारा किया जाता है। विकास के साथ शिकार के तरीके में तकनीकी में वृद्धि हुई है। इन विधियों से वन्य जीवों का शिकार कम समय में अधिक हो गया है। वर्तमान काल में आर्थिक मानव ने अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए कई तरह के वन्य प्राणियों, जल-जीवों, पक्षियों आदि का अंधाधुन्ध आखेट करके उनके अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है। वन

विनाश के साथ-साथ गलत रूप से वन्य पशुओं के शिकार किये जाने से बाघ, काले हिरन, शेर, हाथी आदि कई पशुओं की संख्या घटती जा रही है। अनाधिकृत शिकार से जाति पूर्णता विलुप्त तो नहीं होती परन्तु उनकी संख्या में इतनी कमी हो जाती है जिसका पुनः भरण (Recharge) सम्भव नहीं हो पाता और जाति संकटापन्न हो जाती है। अत्यधिक आखेट के कारण विविध सागरीय भागों में कुछ विशिष्ट मत्स्य प्रजातियाँ लुप्तप्राय हो चुकी हैं और कुछ लुप्त होने के कगार पर हैं।

b. **आवासों का विनाश -** जैव-विविधता का मानव द्वारा सीधा नुकसान शोषण और शिकार से उतना नहीं हुआ जितना उनके आवास नष्ट होने से हुआ है। वन विनाश समृद्ध जैव-विविधता वाले प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों के आर-पार सड़क एवं रेलमार्गों के निर्माण, बाँधों का निर्माण, उत्खनन कार्य, उद्योगों की अविस्थिति, पहाड़ी एवं घने वातावरण वाले क्षेत्रों से होकर प्रवाहित होने वाली नदियों एवं बाँधों एवं जल भण्डारों के निर्माण आदि के कारण सूक्ष्म जीवों, पौधों एवं जन्तुओं को आवासों का विखण्डन (Fregmentation) प्रजातियों के आवासों विनाश का प्रमुख कारण है और आवासों के विनाश के कारण जैव विविधता में अत्यधिक ह्रास होता है। विखण्डन के कारण बड़ा क्षेत्र छोटे-छोटे क्षेत्रों में बँट जाता है और ये छोटे-छोटे क्षेत्र एक-दूसरे से पृथक हो जाते हैं। इस प्रकार आवासों का विखण्डन किसी प्रजाति के सदस्यों को छोटे-छोटे विलग (Isolated) समूहों में बाँट देता है। इस स्थिति के कारण पुनर्जनन (Reproduction) तथा प्रजाति उद्भवन (Speciation) की प्रक्रियायें मंद पड़ जाती हैं, परिणामस्वरूप विलग प्रजातियाँ रोगों, सूखा, सुनामी आदि का शिकार हो जाती हैं तथा अन्ततः समाप्त हो जाती हैं। विखण्डन के कारण आवासों में जलवायु के परिवर्तन के साथ प्रकाश, ताप और हवा में भी परिवर्तन आ जाता है। ये प्रतिक्रियायें प्रभावी समुदाय को तो नहीं प्रभावित करती परन्तु न्यून मात्रा में पायी जाने वाली प्रजातियाँ कुप्रभावित हो जाती हैं।

c. **निर्वनीकरण -** तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के खाद्यान्न की आवश्यकता को पूरी करने के लिए वृहत पैमाने पर वनों को साफ करके कृषि क्षेत्र में विस्तार किया जाता रहा है। औद्योगिक विकास और नगरीकरण के कारण भी वनों का विनाश होता रहा है। वनों के विनाश से विविध प्रकार के पादपों तथा वनों में रहने वाले पशुओं, पक्षियों तथा सूक्ष्म जीवों की कई प्रजातियाँ हमेशा के लिए

समाप्त हो जाती हैं और पारिस्थतिक असंतुलन की स्थिति पैदा होती है।

d. **पर्यावरण प्रदूषण -** प्राकृतिक या मानवजन्य कारणों से उत्पन्न जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, भूमि एवं मृदा प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण आदि के कारण विभिन्न पारिस्थितिक तन्त्रों की जैव-विविधता को भारी नुकसान पहुँचता है। आधुनिक काल में कृषि उत्पादन हेतु कीटनाशकों एवं रासायनिक उर्वरकों के उपयोग आदि से होने वाले मृदा प्रदूषण एवं अपरदन के कारण उत्पादकता की दृष्टि से भूमि की गुणवत्ता में अवनयन होता है। परिणामस्वरूप वनस्पतियों में वृद्धि नहीं हो पाती, जिस कारण चरने वाले जन्तुओं के आहार की कमी हो जाती है, परिणामस्वरूप कुछ जन्तु या तो भूख से मर जाते हैं या अन्य स्थानों पर पलायन कर जाते हैं। अत्यधिक औद्योगिकरण एवं नगरों के तीव्र विकास, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, उपयोग करो एवं फेको की संस्कृति आदि के कारण भूमि, वायु, जल आदि का बड़े पैमाने पर प्रदूषण हुआ है। इस पर्यावरण प्रदूषण के कारण उन जीवीय प्रजातियों की संख्या में कमी आयी जो प्रदूषण के स्तर को सहन नहीं कर पाये। प्रदूषण के इस कारण केवल प्रजातियों की संख्या में ही कमी नहीं आयी बल्कि जैव-विविधता में भी कमी आयी है। तटवर्ती सागरीय जल में आयल टैंकरों से खनिज तेल के रिसाव या तेल वाहक जलपोतों के दुर्घटनाग्रस्त होने पर यदा-कदा तटीय सागरों के जल की सतह पर खनिज तेल बड़ी शीघ्रता से फैल जाता है और सागरीय जल विषाक्त हो जाता है जिससे मछलियों सहित कई सागरीय जीव मर जाते हैं।

e. **विदेशी प्रजातियों का प्रवेश -** उत्पादन में वृद्धि के लिए नवीन विदेशी प्रजातियों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है जो जैव-विविधता ह्रास का महत्वपूर्ण कारण है। विभिन्न आवासों में लाये गये विदेशी पौधों ने देशज पौधों की पोषनीयता सीमा (Sustainable limit) से परे इतनी क्षति पहुँचायी है कि कई पुरानी प्रजातियां विलुप्त होती जा रही हैं। नये आवासों से लाये गये विदेशी पौधे बड़ी तेजी से उगते बढ़ते और फैलते हैं, नये पर्यावरण के साथ ये शीघ्रता से अनुकूलन कर लेते हैं, मिट्टी की कमी तथा उसके पोषक तत्वों का दक्षतापूर्वक उपयोग कर लेते हैं। जिससे देशी पौधों की प्रतिरोधिता कम हो जाती है। भारत में बाड़ (Hedqe) बनाने के लिए विदेशी प्रजाति लैण्टाना कमारा को लाया गया था परन्तु अब यह देशी पौधों के लिए खतरा बन गया है। इसी प्रकार, एक तरह की घास (पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस) जो 'गाजर घास' नाम से प्रचलित है,

के अनिच्छित प्रवेश ने कई देशी पौधों को समाप्त कर दिया।

f. **भूमण्डलीय ऊष्मन (Global Warming) -** आजकल भूमण्डलीय ऊष्मन को भी जैव-विविधता ह्रास का एक कारण माना जा रहा है। तापमान में वृद्धि के कारण बहुत सी प्रजातियाँ समाप्त होती जा रही है। वैश्विक तापमान में वृद्धि होने के कारण हिमचादरों के पिघलने से प्राप्त हिमद्रवित जल के कारण सागर तल में वृद्धि होने से छोटे-छोटे द्वीप जलमग्न हो जायेंगे, जिसके फलस्वरूप इन द्वीपों में रहने वाले जीव-जन्तु एवं पौधे विलुप्त हो जायेंगे।

सागरीय जल के तापमान में वृद्धि होने से बहुत से जीवीय समुदाय सदा के लिए विनिष्ट हो रहे हैं।

अन्य कारण : जैव विविधता ह्रास के अन्य कारण हैं-

- कतिपय जीवों का जननिक घाल-मेल
- रोग एवं व्याधियाँ
- जन्तु पालन के लिए वन्य प्रजातियों, जैसे - पक्षियाँ, बन्दर, कुत्ते, मछलियाँ आदि का व्यापार।

क्रिस थामस के नेतृत्व में किये गये एक अध्ययन में यह पाया गया कि अगर पर्यावरण में इसी तरह का बदलाव बना रहता है, तो अगले 50 वर्षों में दुनिया से 10लाख प्रजातियों का नामोनिशान मिट जायेगा। इस अध्ययन में दुनिया के 10 विशेषज्ञ शामिल थे। कंजरवेशन इन्टरनेशनल, वाशिंगटन के डा0 ली हानाह का कहना है कि तापमान के बढ़ने, घटने या निवास की समस्या के कारण जीव-जन्तु ज्यादा सुरक्षित और अनुकूल वातावरण वाले स्थानों की तरफ पलायन करते हैं, लेकिन कृषि और नयी बस्तियों के बसने के कारण प्राणियों के निवास की जगह लगातार कम होती जा रही है। जीवीय समुदाय के लिए निवास की समस्या और बदलाव के कारण अगले 50 वर्षों में इनके अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा खतरा बन जायेगा।

4.6 जैव - विविधता का प्रबन्धन या संरक्षण

औद्योगिक क्रांति के बाद आर्थिक मानव के कृत्यों द्वारा वन्य जीवों के प्राकृतिक आवासों के विनाश, प्रदूषण, आखेट के कारण उत्पन्न जैव-विविधता के ह्रास एवं क्षय की समस्या अब क्रांतिक सीमा (critical limit) को पार कर गयी है। बीसवीं शताब्दी के अन्त तक इसने इतना विकराल रूप धारण कर लिया जिससे पारिस्थितिक असंतुलन

की समस्या हो गयी। प्राकृतिक आवासों एवं वन्य जीवों के संरक्षण की माँग ने विश्व समुदाय का ध्यान आकर्षित किया है। 1970 के पश्चात् जैव-विविधता के संरक्षण के प्रति अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय चिन्तित हो उठा है। जैव-विविधता के संरक्षण के लिए विश्वस्तरीय कई सम्मेलनों, संगोष्ठियों एवं परिचर्चाओं का आयोजन किया जा चुका है एवं वैश्विक स्तर पर कुछ संधियाँ भी हो चुकी हैं।

वन्य जीवों की संख्या तथा जैव-विविधता के संरक्षण का प्रथम विश्वस्तरीय प्रयास सन् 1992 में प्रथम पृथ्वी सम्मेलन के समय किया गया। 3 से 14 जून तक चलने वाले इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में ब्राजील के रियोडिजेनेरियो नगर में किया गया था। इसे 'पृथ्वी बचाओ सम्मेलन' और रियो सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है। इस सम्मेलन में विकसित तथा विकासशील देशों के 178 देशों के प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया था। इस सम्मेलन में पर्यावरणीय विषयों के अतिरिक्त जैव विविधता को समृद्ध बनाने के लिए विचार किया गया। इस सम्मेलन के तीन प्रमुख लक्ष्य थे :-

- पृथ्वी एवं उसके पर्यावरण की रक्षा
- पारिस्थितिकीय संतुलन का अनुरक्षण (maintenance) तथा,
- जैव-विविधता को समृद्ध बनाना।

प्राकृतिक वनों की जैव-विविधता अति समृद्धि होती है इसीलिए वनों की इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए उक्त सम्मेलन में प्राकृतिक एवं मौलिक वनों की रक्षा के लिए प्रस्ताव रखा गया परन्तु इस प्रस्ताव पर कोई ठोस सहमति नहीं हो पायी।

प्रथम पृथ्वी सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों ने जैव-विविधता के तेजी से हो रहे ह्रास पर गंभीर चिन्ता दिखायी। जैव-विविधता को बचाने के लिए जैव संरक्षण के लिए रियो सम्मेलन में एक प्रस्ताव रखा गया जिस पर 178 प्रतिनिधि देशों में से 150 देशों ने मुहर लगा दी। जैव-विविधता को समृद्ध बनाने के लिए तीन प्रमुख बिन्दुओं पर विचार करने के उपरान्त सहमति बनी जो इस प्रकार है :

- जैव-विविधता के संरक्षण को सुनिश्चित करना
- जैव सम्पदा का पोषणीय (sustainable) उपयोग, तथा
- जननिक संसाधनों का उपयोग करने से होने वाले लाभों की न्यायोचित एवं समान हिस्सेदारी सुनिश्चित करना।

प्रथम पृथ्वी सम्मेलन के पाँच वर्ष बाद 1997 में 23 जून से 27 जून तक

न्यूयार्क में द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन किया गया था। जिसमें 170 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य प्रथम पृथ्वी सम्मेलन में पारित प्रस्तावों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन एवं प्रगति का मूल्यांकन करना था। विकसित एवं विकासशील देशों के दृष्टिकोण में मतभेद के कारण इस सम्मेलन में कोई ठोस प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया।

द्वितीय पृथ्वी सम्मेलन के पाँच वर्ष बाद 2002 में 26 अगस्त से 4 सितम्बर तक दक्षिण अफ्रीका के जोहांसबर्ग में तृतीय पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन को ''पोषणीय विकास पर विश्व सम्मेलन'' के नाम से भी जाना जाता है। इस सम्मेलन में दुर्लभ तथा संकटापन्न जीवीयों की विभिन्न प्रजातियों के विलोपन में 2010 तक अत्यधिक कमी लाने पर सहमति बनी। इस सम्मेलन में जल एवं स्वच्छता, गरीबी उन्मूलन, गैर-परम्परागत ऊर्जा, विश्व व्यापार, मत्स्य संसाधन आदि विषयों के साथ ही जैव-विविधता पर भी विचार-विमर्श किया गया।

4.6.1 जैव-विविधता संरक्षण की विधियाँ

संरक्षण के दृष्टिकोण से उसे दो भागों में बाँटा जा सकता है-

4.6.1.1 प्राकृतिक आवासों में संरक्षण (In-site conservation) एवं

4.6.1.2 प्राकृतिक आवासों के बाहर संरक्षण (Ex-site Conservation)

4.6.1.1 प्राकृतिक आवासों में संरक्षण - प्राकृतिक आवासों में संरक्षण का तात्पर्य पौधों एवं जीव-जन्तुओं की प्रजातियों का उनके मौलिक प्राकृतिक आवासों (वन्य क्षेत्रो) में संरक्षण से है। जैव-विविधता संरक्षण की इस विधि के अन्तर्गत पौधों एवं जीव जन्तुओं की प्रजातियों की, विशेष प्रकार से निर्धारित प्राकृतिक आवासों जैसे-अभयारण्य (Sanctuaries), राष्ट्रीय उद्यान (National Park), जीव मण्डल आगार (Bisophere reservoir), राष्ट्रीय आगार (National reservoir), पक्षी विहार (Bird Sanctuaries) आदि में रक्षा की जाती है। इस प्रकार के संरक्षित प्राकृतिक आवासों के जैविक तथा अजैविक संसाधनों के विदोहन पर पूर्ण प्रतिबन्ध होता है।

राष्ट्रीय उद्यान प्राकृतिक सौन्दर्य, वन्य जीवन, लोगों के मनोरंजन तथा ऐतिहासिक महत्व के कारण आरक्षित किया जाने वाला एक विशेष क्षेत्र है जहाँ किसी विशेष जानवर जैसे शेर, चीता, हिरन आदि उनके आवासों में सुरक्षित किये जाते हैं। इनकी सीमा

कानून द्वारा निर्धारित होती है। वर्तमान में 95 राष्ट्रीय उद्यान है।

अभयारण्य विशेष जाति से सम्बन्धित होते हैं और पिचर प्लान्ट, सिट्रस सामान्यतया विशेष अनुवांशिक पदार्थों और लक्षणों (Specific, Genetic Material and Characters) वाले पौधों को सुरक्षित रखा जाता है। अतः किसी एक संकटापन्न जाति या जातियों के समूह के लिए अभयारण्यों का निर्माण सबसे अच्छा होता है। भारत में 500 वन्य जीव अभयारण्य स्थापित किये जा चुके हैं।

जीव मण्डल आगार (Bisphere Reserve) वे प्राकृतिक क्षेत्र होते हैं जो किसी भी प्रकार के शोरगुल से पूर्णतः मुक्त होते हैं और ये पारिस्थितक तन्त्र से सम्बन्धित होते हैं। जीव मण्डल आगार की स्थापना किसी भी पारिस्थितिक तन्त्र के प्राकृतिक आवासों के अजैविक संघटकों (जल, वायु, भूमि एवं मृदा) तथा जैव-विविधता के संरक्षण का प्रभावी प्रयास है। जीवमण्डल आगार के अन्तर्गत स्थलीय एवं सागरीय परिस्थितिक तंत्रों को सम्मिलित किया जाता है। जहाँ पर अजैविक एवं जैविक संसाधनो (पौधों एवं जन्तुओं) का समुचित तरह से प्रबन्धन एवं संरक्षण किया जाता है। इस प्रकार जीवमण्डल आगार जीवित प्रयोगशाला होते हैं, जहाँ पर जन्तुओं एवं सूक्ष्मजीवों पौधों, भूमि तथा जल का समन्वित प्रबन्धन किया जाता है। जीवमण्डल आगार की तीन प्रमुख भूमिकायें होती हैं-

संरक्षण भूमिका - जननिक संसाधनों तथा प्राकृतिक परिस्थितिक तंत्रों का संरक्षण एवं जैव विविधता का संरक्षण एवं अनुरक्षण (maintenance)

विकास संबंधी भूमिका - पर्यावरण संरक्षण भूमि संसाधन, तथा विकास कार्यक्रम (मानव एवं आर्थिक विकास) के मध्य इस तरह का सम्बन्ध एवं तालमेल बैठाना कि पोषण पर्यावरण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

शोध सम्बन्धी भूमिका - शोध एवं अध्ययन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सुनिर्धारित एवं सुनिश्चित शोध क्षेत्रों की स्थापना करना, विभिन्न शोध केन्द्रों के मध्य विभिन्न प्रकार की सूचनाओं का आदान-प्रदान करना, विभिन्न कार्यक्रमों को मानीटर करना एवं संरक्षण से सम्बन्धित प्रशिक्षण प्रदान करना।

1985 में विश्व के 65 देशों में 203 जीव मण्डल आगार बनाने का लक्ष्य था जिसमें से 90 स्थापित हो चुके हैं। भारत में 13 जीवनमण्डल आगार है। भारत में सबसे पहला जीवमण्डल आगार 1986 में नीलगिरी जीवनमण्डल आगार स्थापित किया गया है जो कर्नाटक, केरल व तमिलनाडु में फैला है। भारत के निम्नलिखित चार जीवन मण्डल आगार को अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क में शामिल किया गया है। जिन्हें संयुक्त राष्ट्रसंघ

के मैन एण्ड बायोस्फीयर प्रोग्राम (MBA) द्वारा मान्यता प्राप्त है :-

- नीलगिरी जीवमण्डल आगार (सन् 2000 में मान्यता प्राप्त)
- मन्नार की खाड़ी जीवमण्डल आगार (सन् 2001 में मान्यता प्राप्त)
- सुन्दरवन जीवमण्डल आगार (सन् 2001 में मान्यता प्राप्त)
- नन्दादेवी जीवमण्डल आगार (सन् 2004 से मान्यता प्राप्त)

1.6.1.2 प्राकृतिक आवासों से बाहर संरक्षण - जब इन-सीटू (In-situ) संरक्षण में किसी जाति के पौधों एवं जन्तुओं के बने रहने की सम्भावना कम हो जाती है और उसके विलुप्त होने की आशंका होती है तो ऐसी स्थिति में उसके संरक्षण की विधि एक्स-सीटू (Ex-situ) होती है अर्थात् मूल आवास से दूर ले जाकर करते हैं। इस प्रकार उस विधि के अन्तर्गत पौधों एवं जन्तुओं की उनके मौलिक एवं प्राकृतिक आवासों से बाहर अन्य स्थानों पर रक्षा एवं उनका संरक्षण किया जाता है। जिन पौधों एवं जन्तुओं को विलोपन का खतरा उत्पन्न हो जाता है उन्हें उनके मौलिक स्थानों से हटाकर अन्यत्र अनुकूल स्थानों पर लाया जाता है तथा मनुष्य द्वारा उनका भरण-पोषण एवं अनुरक्षण किया जाता है। ऐसे क्षेत्रों में चिड़ियाघर, बोटेनिकल गार्डेन, जीन बैंक, सीड बैंक, इनविट्रो तथा इन-वीवो में संरक्षण, ऊतक सम्बन्धी जननिक बैंकों की स्थापना, जननिक वर्धन केन्द्रों की स्थापना आदि को सम्मिलित किया जाता है। पौधों एवं जन्तुओं की जननिक विविधता के पुर्ननवीकरण (restoration), दुर्लभ एवं संकटस्थ प्रजातियों के बीजों (पौधों के संदर्भ में) तथा जननद्रव्यों (germplasms) को बीज बैंकों (Seed Banks) तथा जननद्रव्य बैंकों (germplasm banks) में रखा जाता है, ताकि ऐसी प्रजातियों के 'जीन' को संरक्षित किया जा सके। ऐसे भण्डारण केन्द्रों को 'जीन बैंक' कहा जाता है।

4.7 जैव - विविधता के सेवैधानिक प्रयास

1970 के बाद जैव विविधता संरक्षण से सम्बन्धित नीतियों एवं कानूनों को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से कई स्वयंसेवी संगठनों एवं प्रबुद्ध भारतीय नागरिकों द्वारा आवाज उठायी गयी। देश में जैव विविधता संरक्षण के लिए भारतीय संविधान के खण्ड चार में राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों का वर्णन है। इसके अनुच्छेद 48 का में कहा गया है कि ''राज्य का यह प्रयत्न होगा कि वह पर्यावरण की रक्षा तथा सुधार करे एवं वनों एवं वन्य जीवों को संरक्षण प्रदान करें। इसी तरह नागरिकों के मौलिक

कर्तव्यों के तहत अनुच्छेद 51-क में कहा गया है कि ''सभी नागरिक को वनों, झीलों, नदियों, तथा वन्य जीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण तथा सुधार करना चाहिए एवं प्रत्येक जीव के प्रति दया भाव रखना चाहिए। इन संवैधानिक प्रावधानों के अलावा जैव विविधता एवं पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित कई अधिनियम, अधिसूचनायें एवं मार्गदर्शिकायें निश्चित की गयी है।

भारतीय संविधान द्वारा 42वें संशोधन अधिनियम 1976 के अन्तर्गत, वनों को संविधान की समवर्ती सूची में डाल दिया गया जिससे केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें मिलकर वनों के संरक्षण एवं संवर्द्धन का कार्य कर सकेंगी।

जैव विविधता के संरक्षण हेतु पारित की गयी प्रमुख नीतियाँ एवं अधिनियम निम्नलिखित हैं-

4.7.1 वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972

इस अधिनियम के अन्तर्गत वन्य जीव संरक्षण को राज्य सूची से संघ सूची में परिवर्तित करके केन्द्रीय सरकार को कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया है। इसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं-

- किसी वन्य जीव, उसके किसी अंग या उससे बने किसी सामान को रखना अवैध है।
- इसके अन्तर्गत पहली बार संकटग्रस्त तथा समाप्त होने वाले वन्य जीवों की सूची बनायी गयी व ऐसे जीवों के शिकार पर रोक लगायी गयी।
- अभयारण्य क्षेत्रों में मत्स्यखेट पर पूर्ण प्रतिबन्ध है।
- राष्ट्रीय उद्यानों व अभयारण्यों की व्यवस्था की गयी।
- यह वन्य जीवन सम्बन्धी परिभाषायें निश्चित करता है।
- यह वन्य जीवन सलाहकार वार्डन, समिति तथा उनके कर्त्तव्यों व शक्तियों को तय करता है।
- कुछ वन्य जीवन प्रजातियों की व्यावसायिकी के लिए लाइसेन्स आदि की स्थापना की गयी।
- इसके अंतर्गत संकटग्रस्त प्रजातियों की गिनती बढ़ाने के लिए कई तरह की योजनायें बनायी गयी।
- इसके अन्तर्गत केन्द्रीय चिड़ियाघर प्रशासन की स्थापना की गयी।

- अधिनियम की अवहेलना करने पर सजा जुर्माने का प्रावधान किया गया।
- कुछ विशेष वन्य जीव के लिए विशिष्ट परियोजनायें बनायी गयी, जैसे बाघ (1973), सिंह (1972), भूरे सींग वाला हिरण, (1981), घड़ियाल (1974) से सम्बन्धित परियोजनायें।

4.7.2 राष्ट्रीय वन नीति 1988

वनों के लगातार नष्ट होने के कारण वन संरक्षण हेतु केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय वन नीति 1988 बनायी जिसके मुख्य प्रावधान निम्नलिखित हैं-

- वनों के संरक्षण एवं प्रबन्धन में स्थानीय जनता को भागीदार बनाते हुए उनका सहयोग प्राप्त करना।
- राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनोत्पादों का संवर्द्धन करना।
- वनों की कटाई को नियंत्रित करने के उद्देश्य से लकड़ी के विकल्पों की खोज करना।
- नदियों तथा झीलों के प्रवाह क्षेत्रों में मृदा अपरदन को रोकना तथा वहाँ की वनस्पतियों की सुरक्षा करना।
- प्राकृतिक सम्पदा को संरक्षण प्रदान करना।
- पारिस्थितिक संतुलन और पर्यावरण को स्थायित्व प्रदान करना।

4.7.3 जैव-विविधता अधिनियम 2000

इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं-

- देश के किसी भी जैव संसाधन या जैनेटिक पदार्थ को किसी भी अन्य देश को सरकार की अनुमति के बिना नहीं हस्तान्तरित किया जा सकता।
- जैविक सम्पदा के आन्तरिक उपयोग को नियंत्रित करने का अधिकार भारत सरकार के पास होगा।
- प्रशासकीय विधान अथवा समुचित विधान द्वारा जैव संसाधनों के विषय में स्वदेशी ज्ञान को संरक्षण प्रदान किया जायेगा। इसके लिए स्थानीय, प्रांतीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर पंजीयन की व्यवस्था होगी।
- किसी जेनेटिक पदार्थ या जैव संसाधन का पेटेन्ट अथवा बौद्धिक सम्पदा

अधिकार को सरकार की अग्रिम अनुमति के पश्चात् ही प्राप्त किया जा सकता है।

- जीवीय विधि से परिवर्तित किये गये जीवों से उत्पन्न होने वाले खतरों से बचाव के लिए समूचित माध्यमों का प्रयोग किया जायेगा।
- पादप एवं प्राणी प्रजातियों के स्थान तथा प्रजातियों को संरक्षण प्रदान किया जायेगा।
- किसी भी योजना को स्वीकृति प्रदान करने के पूर्व जैव-विविधता के संरक्षण पर विचार किया जायेगा।

4.8 जैव - विविधता का महत्व अथवा मूल्य

जैव विविधता के महत्व का आकलन पौधों, जन्तुओं, सूक्ष्म जीवों के जीवीय समुदायों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मिलने वाले लाभों के संदर्भ में किया जाता है। वर्तमान समय में पर्यावरणीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत पारिस्थितिक अर्थशास्त्र विषय का जन्म हुआ है जिसके अन्तर्गत पारिस्थितिक संसाधनों से मिलने वाली आर्थिक, सामाजिक नैतिक तथा पर्यावरणीय सेवाओं लाभों का अध्ययन किया जाता है। वाणिज्यिक उपयोग, परिस्थितिकीय सेवाओं, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से जैव विविधता का विशेष महत्व है। जैव-विविधता के महत्व का वर्गीकरण निम्नलिखित है-

4.8.1 उपयोग मूल्य :

उपयोग से सम्बन्धित मूल्य वे है जहाँ जैव-विविधता के उत्पादन को बाजार में ले जाये बिना सीधे ही स्थानीय लोगों द्वारा उपभोग किया जाता है, जैसे- जलाऊ लकड़ी, चारा, फल-फूल सब्जी आदि। लेकिन इनका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में कोई आंकड़ा नहीं होता है। जीवीय समुदायों से प्रत्यक्ष रूप से मिलने वाले ऐसे लाभों को 'आर्थिक लाभ' या 'वास्तविक लाभ' भी कहा जाता है।

4.8.2 उत्पादन मूल्य :

इसमें ऐसे उत्पादों को रखा गया है जिन्हें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बेचा जाता है। इनमें वैज्ञानिकों की खोज हेतु 'जीन' का व्यापार, जानवरों की खाल, चमड़ा हाँथी-दाँत, रेशम, ऊन आदि शामिल किये जाते हैं। कई उद्योग जैसे कपड़ा, रेशम, चमड़ा, कागज, आदि के उद्योग जंगली-जीवों एवं वनस्पतियों पर आश्रित हैं।

4.8.3 सामाजिक मूल्य :

मानव समाज में जैव विविधता का सामाजिक, धार्मिक व मानसिक मूल्यों से सम्बन्धित महत्व है। पीपल, बरगद, तुलसी, आम, आदि वृक्षों की पूजा की जाती है तथा इन पेड़ों के पत्ते तथा फल का प्रयोग पूजा के दौरान किया जाता है। गाय, साँप, मोर आदि पशुओं को हमारे समाज में पवित्र माना जाता है।

4.8.4 नैतिक मूल्य :

प्रत्येक जाति का अस्तित्व होना चाहिए और उसका जीवित रहना उसका नैतिक अधिकार है। एक जाति की कमी के फलस्वरूप समुदाय के अन्य सदस्यों के ह्रास का खतरा बना रहता है। हर प्रकार के जीवन का संरक्षण आवश्यक है। इसलिए इनका संरक्षण हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

4.8.5 सौंदर्य मूल्य :

प्रकृति में विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, फूल-पत्ती पाये जाते हैं, जो नैसर्गिक सौंदर्य का अपना अलग महत्व रखते हैं। जैव-विविधता से अपार सौन्दर्य जुड़ा हुआ है। कदाचित् इसीलिए राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों को बड़ी संख्या में देशी और विदेशी पर्यटक देखने जाते हैं। दृश्यावलोकन, पक्षियों का अवलोकन, जन्तुओं का अवलोकन आदि को सम्मिलित रूप से पारिस्थितिक पर्यटन (eco-Tourism) कहते हैं।

4.8.6 परिस्थितिकीय सेवायें :

जैव-विविधता के पारिस्थितिकीय महत्व के अन्तर्गत पारिस्थितिकी से सम्बन्धित महत्वपूर्ण उदाहरण हैं- मृदा - अपरदन की रोकथाम, वायु का शुद्धीकरण, बाढ़ों की रोकथाम, उर्वरकता बनाये रखने में सहायता, जल का संरक्षण एवं सुरक्षा, नाइट्रोजन का प्रायोगीकरण, पोषक तत्वों का चक्रण, पारिस्थितिक तन्त्र की स्थिरता का अनुरक्षण, जल का चक्रण, भूमण्डलीय तापमान वृद्धि की रोकथाम आदि

4.8.7 राजनीतिक मूल्य :

जैव-विविधता का राजनैतिक महत्व या मूल्य भी होता है क्योंकि विभिन्न राष्ट्रों की राजनैतिक स्थिरता अस्थिरता, कूटनीतिक सम्बन्ध, धार्मिक आस्था आदि उनके जैविक संसाधनों एवं जैव विविधता से सम्बन्धित होती है।

4.9 सारांश

पृथ्वी के समस्त प्राणी और वनस्पतियाँ एक दूसरे से सम्बन्धित और परस्पर निर्भर होते हैं। पर्यावरण की कोई भी इकाई पूर्ण रूप से स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर नहीं है। सामान्य अर्थ में, किसी विस्तृत क्षेत्र की पर्यावरणीय दशाओं में पौधों एवं जन्तुओं के समुदायों के जीवों की विविधता को ही जैव-विविधता कहते हैं। जैव-विविधता के विभिन्न प्रकार हैं- अनुवांशित विविधता, प्रजाति विविधता एवं पारिस्थितिक तंत्र विविधता।

जैव-विविधता पर्यावरण संतुलन एवं जैव जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है लेकिन प्राकृतिक एवं मानवजनित कारणों से जैव विविधता का ह्रास तेजी से हो रहा है। जैव विविधता का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है जिसके लिए सबसे पहला प्रयास सन् 1992 में प्रथम पृथ्वी सम्मेलन के समय किया गया। इस सम्मेलन में जैव-विविधता को समृद्ध बनाने हेतु तीन प्रमुख बिन्दुओं पर विचार किया गया- जैव-विविधता के संरक्षण को सुनिश्चित करना, जैव सम्पदा का पोषणीय उपयोग तथा जननिक संसाधनों का उपयोग करने से होने वाले लाभों की न्यायोचित एवं समान हिस्सेदारी सुनिश्चित करना।

जैव-विविधता संरक्षण हेतु मुख्यतः दो तरीके अपनाये जाते हैं, पहला, प्राकृतिक आवासों में संरक्षण तथा दूसरा प्राकृतिक आवासों के बाहर संरक्षण। प्राकृतिक आवासों के माध्यम से संरक्षण देने हेतु अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यान, जीव मण्डल आगार, राष्ट्रीय आगार, पक्षी विहार आदि विकसित किये जाते हैं। प्राकृतिक आवासों से बाहर संरक्षण प्रदान करने के लिए पौधों एवं जन्तुओं का उनके मौलिक एवं प्राकृतिक आवासों से बाहर अन्य स्थानों पर रक्षा एवं उनका संरक्षण किया जाता है। ऐसे में चिड़ियाघर, बोटैनिकल गार्डेन आदि की स्थापना की जाती है।

जैव-विविधता संरक्षण हेतु संवैधानिक प्रयास भी किये गये हैं जिसके अन्तर्गत वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972, राष्ट्रीय वन नीति 1988, जैव-विविधता अधिनियम 2000 आदि पारित किये गये हैं। पर्यावरणीय अर्थशास्त्र के अन्तर्गत जैव-विविधता के महत्व अथवा मूल्य का अध्ययन एक नया विषय बन गया है। जैव-विविधता के महत्व को उपभोग मूल्य, उत्पादन मूल्य, सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्य आदि में वर्गीकृत किया जाता है।

4.10 संदर्भित ग्रन्थ

मेघा सिन्हा, पर्यावरण अध्ययन (प्रकृति एवं महत्व), वन्दना पब्लिकेशन, नयी दिल्ली,

संस्करण 2006

सविन्द्र सिंह, पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2008

एन0एम0 अवस्थी, पर्यावरणीय अध्ययन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, उ.प्र., 2005-06

सत्य नारायण दूबे, पर्यावरणीय शिक्षा, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2007

योगेश कुमार सिंह, पर्यावरणीय शिक्षा, यूनीवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जैव-विविधता का क्या महत्व है? इसका संरक्षण कैसे करेंगे ?
2. जैव-विविधता को नुकसान पहुँचाने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
3. जैव-विविधता से क्या तात्पर्य है? भारत की जैव-विविधता पर एक निबन्ध लिखिए।
4. जैव-विविधता का संरक्षण कैसे किया जा सकता है? उल्लेख कीजिए।

इकाई - 5 औद्योगिक पारिस्थितिकी

इकाई की रूपरेखा-

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 औद्योगिक पारिस्थितिकी की अवधारणा

5.2.1 पोषणीयता

5.2.2 पोषणीय विकास

5.2.3 पर्यावरण संवेदी विकास

5.2.4 पोषणीय पर्यावरण

5.3 औद्योगिक पारिस्थितिकी - पारिस्थितिकी के क्षेत्र के रूप में

5.4 औद्योगिक पारिस्थितिकी के लक्ष्य

5.4.1 संसाधनों का पोषणीय प्रयोग

5.5 पारिस्थितिकीय एवं मानव स्वास्थ्य

5.6 औद्योगिक पारिस्थितिकी की मूल संकल्पनायें

5.6.1 तंत्र विश्लेषण

5.6.2 पदार्थ तथा ऊर्जा प्रवाह एवं रूपान्तरण

5.7 औद्योगिक पारिस्थितिकी - एक बहु-विषयी दृष्टिकोण

5.8 विवृत्त (या खुला) एवं चक्रीय (या बन्द) तंत्र

5.9 औद्योगिक पारिस्थितिकी के सहयोग हेतु तंत्र तकनीकियाँ

5.9.1 जीवन चक्र मूल्यांकन

5.9.1.1 जीवन चक्र मूल्यांकन के प्रमुख तत्व

5.9.1.2 जीवन चक्र मूल्यांकन की प्रणाली विज्ञान

5.10 औद्योगिक पारिस्थितिकी के विकास के लिए किये जाने वाले प्रयास

5.11 सारांश

5.12 संदर्भित ग्रन्थ

5.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 : उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान सकेंगे -

- औद्योगिक पारिस्थितिकी का अर्थ,
- पोषणीयता से सम्बन्धित विभिन्न संकल्पनाओं का अर्थ,
- औद्योगिक पारिस्थितिकी के लक्ष्य,
- औद्योगिक पारिस्थितिकी की मूल संकल्पनायें, तथा
- जीवन चक्र मूल्यांकन का अर्थ, उसके प्रमुख तत्व एवं प्रणाली विज्ञान ।

5.1 : प्रस्तावना

मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति के उपादानों का यथाशक्ति उपयोग करता है। इस प्रक्रिया में इसे भविष्य का भी ध्यान रखना चाहिए। उन्नीसवीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति इतनी प्रचण्ड हुई कि सारे आधारी पक्ष गौण होते गये और जीवन मूल्य अर्थ प्रधान होता गया। फलतः व्यावसायिक स्तर पर अप्रत्याशित प्रयोग होने लगे जिसका सर्वाधिक आकर्षक रूप औद्योगीकरण नगरीकरण, वाहन विस्तार, व्यापार विस्तार, ऊर्जा उपयोग, संसाधन दोहन आदि के रूप में देखने को मिला। प्राचीनता की तुलना में नवीनता का प्रवेश क्रान्ति कहलाया जिसने आज मानवता को दानवता के चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया है।

पर्यावरण के विविध पक्षों और पारिस्थितिकी की कार्यप्रणाली के अध्ययन से स्पष्ट है कि अनेकानेक कारणों से पर्यावरण के अवनयन से पारिस्थितिकी में आये बदलाव, जैव-जगत की नैसर्गिक व्यवस्था में प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न कर रहे हैं। आधुनिक समाज द्वारा आर्थिक सामाजिक विकास के नाम पर लिए गये कुछ निर्णय आत्मघाती प्रमाणित हो रहे हैं, क्योंकि इससे पर्यावरण की गुणवत्ता का ह्रास हो रहा है, जो संकट का मुख्य कारण है। मानवीय अनुक्रियाओं, विशेषकर संसाधन दोहन, अनुपयुक्त तकनीक का प्रयोग, ऊर्जा का अविवेकपूर्ण उपयोग आदि का बढ़ता दबाव प्रकृति के अंगों को पंगु बना रहे हैं जिससे मानव सहित जैव जगत के लिए संकट बढ़ता जा रहा है। वायु, मृदा और जल जैसे जीवनदायी तत्वों का प्रदूषण, ओजोन गैस का क्षरण, कार्बन डाई आक्साइड की दिनोंदिन वायुमण्डल में बढ़ोत्तरी से पृथ्वी का बढ़ता तापमान सम्पूर्ण जैवमण्डल के अस्तित्व के लिए खतरनाक है।अब तक अनेक ऐसे कार्य हुए हैं जो पर्यावरण संतुलन के दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं है, और ऐसी दशा में विकल्पों का चुनाव और ह्रासमान पर्यावरण

के लिए उत्तरदायी कारकों का प्रबन्धन, विशेषकर उपयुक्त तकनीक का विकास, ऊर्जा प्रबन्धन और औद्योगिक पारिस्थितिकी का विकास प्राथमिकता के पक्ष हैं।

5.2 औद्योगिक पारिस्थितिकी की अवधारणा

औद्योगिक पारिस्थितिकी वैज्ञानिकों एवं नीति-निर्धारकों के लिए एक नया एवं चुनौतीपूर्ण विषय है। औद्योगिक पारिस्थितिकी, जिसे पोषणीयता का विज्ञान (Science of Sustainability) भी कहते हैं, का उद्भव राबर्ट फ्रोश (Robert Frosch) एवं गैलोपाउलस (Gallopoulos) के लेख Strategies for Manufacturing (निर्माण के लिए रणनीतियाँ) से हुआ।

औद्योगिक पारिस्थितिकी की अभी तक कोई ऐसी परिभाषा नहीं है जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया जा सके। फिर भी अधिकतर परिभाषायें कुछ समान विशेषताओं पर जोर देती हैं। इन विशेषताओं में निम्नलिखित शामिल हैं -

- औद्योगिक पारिस्थितिकी, औद्योगिक प्रणाली और पारिस्थितिकी के बीच पारस्परिक क्रिया (अन्योन्यक्रिया)।
- सामग्री और ऊर्जा प्रवाह और परिवर्तनों (Transformation) का अध्ययन।
- एक बहुविषयी (Multidisciplinary) दृष्टिकोण।
- भविष्य की ओर एक अभिन्यास (Orientation)
- रेखिक (खुले) प्रक्रियाओं से चक्रीय (बंद) प्रक्रियाओं में परिवर्तन ताकि एक उद्योग का अपशिष्ट दूसरे उद्योग द्वारा आगत (Input) के रूप में प्रयुक्त हो सके।
- औद्योगिक तंत्रों के पर्यावरणीय प्रभाव का पारिस्थितिकी तंत्रों पर पड़ने वाले प्रभावों को कम करने का एक प्रयास।
- औद्योगिक गतिविधियों का पारिस्थितिकी तंत्रों के साथ सुव्यवस्थित एकीकरण पर जोर।
- औद्योगिक तंत्रों का प्राकृतिक तंत्रों के साथ कुशल एवं टिकाऊ एकीकरण पर जोर।
- औद्योगिक एवं प्राकृतिक तंत्रों की पहचान और तुलना करना जो संभावित अध्ययन और कार्यवाही के क्षेत्रों का संकेत देते हों। (टेबिल 1 देखें)

टेबिल-1 संगठनीय अनक्रम

राजनीतिक अस्तित्व (Political Entities)	सामाजिक संगठन (Social Organisations)	औद्योगिक संगठन (Industrial Organisations)	औद्योगिक तंत्र (प्रणालियां) (Industrial Systems)	पारिस्थितिकीय तंत्र (Ecological Systems)
यू.एन.ई.पी., यू.एस. (ईपीए, डीओई) स्टेट आफ मिचीगेन (मिचीगेन डीईक्यू) वासेना काउण्टी, सिटी ऑफ ऐन आरबर व्यक्तिगत मतदाता	विश्व जनसंख्या संस्कृति, समुदाय उत्पाद तंत्र, कुटुम्ब व्यक्तिगत/उपभोक्ता	आई.एस.ओ. व्यापार-संस्थायें, निगम विभाग उत्पाद विकास टीम व्यक्तिगत	वैश्विक मानव पदार्थ एवं ऊर्जा प्रवाह क्षेत्र (उदाहरणार्थ-परिवहन एव स्वास्थ्य देख रेख) निगम/संस्थायें उत्पाद तंत्र जीवन चक्र अवस्थायें/व्यक्तिगत चरण	पारिस्थितिक मंडल जीव मण्डल, जैव भौगोलिक क्षेत्र, जीवोम परिदृश्य पारिस्थितिक तंत्र, जीव

Source: Keoleian et al, life cycle Design Framework and Demonstration Projects (Cineinnati US EPA Risk Reduction Engineering Lab, 1995).

औद्योगिक पारिस्थितिकी एक ऐसा शस्त्र है जिसके द्वारा मनुष्य आर्थिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी विकास के साथ-साथ पोषणता को बनाये रख सकता है। औद्योगिक पारिस्थितिकी के द्वारा उद्योग पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धों को समझकर भूत में हुई गलतियों को सुधारा जा सकता है। इस सम्बन्ध के माध्यम से पर्यावरण पर पड़ने वाले औद्योगिक प्रक्रियाओं के दुष्प्रभावों को कम या समाप्त करने में मदद मिल सकती है।

औद्योगिक पारिस्थितिकी वस्तुओं एवं सेवाओं के पर्यावरणीय संघात को कम कर सकती है। औद्योगिक पारिस्थितिकी के अन्तर्गत उत्पाद एवं सेवाओं का पूरा जीवन चक्र, तंत्र विश्लेषण पदार्थ प्रवाह विश्लेषण, प्रदूषक पर रोक, पर्यावरण के लिए डिजाइन, ऊर्जा तकनीकी मूल्यांकन एवं पारिस्थितिकी औद्योगिक पार्क आदि को शामिल किया जाता है।

विज्ञान की राष्ट्रीय अकादमी की रिपोर्ट के अनुसार औद्योगिक पारिस्थितिकी का क्षेत्र पर्यावरण विज्ञान के 8 बड़े चुनौतियों में से एक है।

औद्योगिक क्रिया के पुराने रूप में जिसमें एक निर्माणी प्रक्रिया कच्चे पदार्थ का

प्रयोग करके निर्मित पदार्थ के उत्पादन तथा उसे बाजार में बेचने तथा अपशिष्ट को निस्तारित (Disposal) करने से था, उसे नये रूप में लाना चाहिए। इस नये प्रणाली में ऊर्जा एवं पदार्थों का उपभोग अनुकूलतम किया जाता है, अपशिष्ट की उत्पत्ति कम की जाती है, और एक प्रक्रिया के उत्सर्जक (चाहे वे पेट्रोलियम में प्रयुक्त उत्प्रेरक हो, विद्युत शक्ति उत्पादक प्रक्रिया में उत्पन्न राख हो या उपभोक्ता पदार्थों के प्रयोग के बाद फेंका गया प्लास्टिक हो) का दूसरी प्रक्रिया के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है। औद्योगिक पारिस्थितिकी नवीनता (Innovation) पर जोर देती है।

जैसा कि शुरू में कहा गया है कि औद्योगिक पारिस्थितिकी को पोषणीयता का विज्ञान भी कहा जाता है। अतः यहाँ पर पोषणीयता एवं उससे सम्बन्धित अवधारणाओं पर विचार करना आवश्यक है।

5.2.1 पोषणीयता (Sustainability)

विकास प्रबन्धन का पारिस्थितिकी केन्द्रित उपागम (Ecocentric Approach) पारिस्थितिकीय संतुलन एवं मनुष्य की भौतिक (आर्थिक) वृद्धि पर बल देता है। यह ध्यान रहे कि पारिस्थितिकीय तंत्र और मानवीय संस्थायें, दोनों ही चिरस्थायी नहीं है। वास्तव में मानवीय संस्थाओं (Human institutions) का आयुकाल पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता पर निर्भर करता है और पारिस्थितिकीय स्थिरता मनुष्य के पारिस्थितिकीय संतुलन के अनुरक्षण की इच्छा एवं क्षमता पर निर्भर करती है। इस संकल्पना के परिप्रेक्ष्य में पोषणीयता की परिभाषा निम्न प्रकार से दी जा सकती है :-

''पोषणीयता एक संकल्पना हैं जो पारिस्थितिकीय कार्यों एवं पारिस्थितिकीय संसाधनों की स्थिर माँग को दर्शाती है ताकि एक तरफ तो विकास प्रबन्धन के लिए पारिस्थितिकीय संसाधनों की सतत आपूर्ति होती रहे, तो दूसरी तरफ पारिस्थितिकीय संतुलन बना रहे।''

5.2.2 पोषणीय विकास (Sustainable Development)

पोषणीय विकास का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा गया कि यह पारिस्थितिकीय संसाधनों की लगातार बढ़ती माँग के साथ मनुष्य की भौतिक (आर्थिक) वृद्धि तथा जीवन शैली में सुधार, तथा पर्यावरण की गुणवत्ता एवं पारिस्थितिकीय सन्तुलन के अनुरक्षण (Maintenance) का परिचायक होता है।

डब्लू पी. कान्निंघम तथा ए. कान्निंघम (2000) के शब्दों में, ''पोषणीय विकास मानव कल्याण में प्रगति को दर्शाता है। जिसे हम मात्र कुछ वर्षों के बजाय दीर्घकाल तक कायम रख सकें। पोषणीय विकास का फल सम्पूर्ण मानव समाज को मिलना चाहिए न कि किसी खास वर्ग के लोगों को।''

जी.एच. हार्लेम (1987) के अनुसार,

''पोषणीय विकास एक उपागम है। जो भविष्य में लोगों की माँग की पूर्ति करने की पर्यावरण की क्षमता के साथ बिना किसी तरह का समझौता किये वर्तमान समाज की इच्छाओं एवं माँगों (आवश्यकताओं) की पूर्ति करने का द्योतक है।''

पोषणीय विकास की संकल्पना का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है, जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट है :-

(1) पोषणीय विकास निम्न की प्राप्ति का एक लक्ष्य है :-

- आर्थिक वृद्धि
- पर्यावरण का संरक्षण
- मानव स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता

(2) पोषणीय विकास एक सिद्धान्त या पैराडाइम है जो निम्न को जोड़ता है -

- सामाजिक आर्थिक वृद्धि
- पर्यावरण प्रबन्धन

(3) पोषणीय विकास कार्यप्रणाली है जिसका प्रमुख उद्देश्य निम्न की प्राप्ति है -

- प्रभावी पोषणीय विकास की रणनीतियाँ
- सुशासन (Good governance)
- मानव की आर्थिक वृद्धि एवं जीवन की गुणवत्ता में संतुलन तथा पर्यावरण की गुणवत्ता को सुरक्षित रखना

5.2.3 पर्यावरण संवेदी विकास (Environmentally Sensitive Development- ESD)

ESD उसे कहते हैं जिसके अन्तर्गत दीर्घकालिक संदर्भ में प्राकृतिक संसाधनों का इस तरह विवेकपूर्ण विदोहन तथा अनुकूलतम उपयोग किया जाता है पारिस्थितिकीय स्थिरता तथा समाज की समृद्धि के साथ बिना समझौता किये अनिश्चितकाल तक संसाधनों की लगातार आपूर्ति होती रहे, ताकि मानव कल्याण में अधिकतम वृद्धि एवं पर्यावरण की न्यूनतम क्षति हो सके।

5.2.4 पोषणीय पर्यावरण (Sustainable Environment)

पोषणीय पर्यावरण का तात्पर्य उस पर्यावरण से है जिसके भौतिक एवं जैविक संघटक

दीर्घकालिक संदर्भ में प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन एवं उपयोग के बावजूद स्वस्थ दशा में रहते है। ऐसे पर्यावरण, जिसमें भावी पीढ़ियों को प्राकृतिक संसाधनों की लगातार आपूर्ति होती रहे, या अनुरक्षण तभी किया जा सकता है जबकि मानव समाज, प्रबन्धक, प्रशासक, राजनीतिज्ञ तथा नियोजनकर्ता पारिस्थितिकीय नियमों एवं परिकल्पना का अनुसरण करें।

5.3 : औद्योगिक पारिस्थितिकीय, पारिस्थितिकी के क्षेत्र के रूप में (Industrial Ecology as a field of Ecology)

औद्योगिक पारिस्थितिकी, पारिस्थितिकी के क्षेत्र से सम्बन्ध रखती है अतः औद्योगिक पारिस्थितिकी को समझने एवं प्रवर्तन (Promotion) करने के लिए पारिस्थितिकी का आधारभूत ज्ञान आवश्यक है।

पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत समस्त जीवों एवं भौतिक पर्यावरण के मध्य अन्तर्सम्बन्धों एवं विभिन्न जीवों के मध्य पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

वर्तमान समय में पारिस्थितिकी की संकल्पना को अत्यधिक विस्तृत कर दिया गया है। टुसोव के शब्दों में ''पारिस्थितिकी के अन्तर्गत न केवल पौधों एवं जन्तुओं तथा उनके पर्यावरण के बीच अन्तर्सम्बन्धों का ही अध्ययन किया जाता है बल्कि मानव समाज तथा उसके भौतिक पर्यावरण के बीच अन्तर्क्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

ई.पी. ओडम के अनुसार, ''पारिस्थितिकी पारिस्थितिक तन्त्र की संरचना तथा कार्य का अध्ययन है ''या पारिस्थितिकी प्रकृति की संरचना तथा कार्य का अध्ययन है।''

प्रो. सविन्द्र सिंह ने पारिस्थितिकी को निम्न रूप में परिभाषित किया -

''पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जिसके अन्तर्गत एक तरफ प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र के जैविक एवं अजैविक संघटकों के मध्य तथा दूसरी तरफ विभिन्न जीवों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

औद्योगिक पारिस्थितिकी के अन्तर्गत विभिन्न फर्मों, उनके उत्पादों एवं प्रक्रियाओं के अर्न्तसम्बन्धों का अध्ययन स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, और वैश्विक स्तर पर किया जाता है (सारणी-1 का अवलोकन करें)।

औद्योगिक पारिस्थितिकी, सामाजिक पारिस्थितिकी एवं व्यावसायिक पारिस्थितिकी से गहरा सम्बन्ध रखती है। Journal of Applied Ecology के अनुसार,

"Applied ecology is the application of ecological ideas, theories

and methods to use of biological resources in the widest sense. It is concerned with the ecological principles underlying the management, control and development of biological resources for agriculture, forestry, aquaculture, nature conservation, wildlife and game management, and the ecological effects of biotechnology."

व्यावहारिक पारिस्थितिकी के अन्तर्गत पारिस्थितिक विचारों का प्रयोग जैविक संसाधनों को प्रयोग करने के सिद्धान्त एवं तरीके शामिल किये जाते हैं।

The Institute of Social Ecology ने सामाजिक पारिस्थितिकी को निम्न रूप में परिभाषित किया -

"Social ecology integrates the study of human and natural ecosystems through understanding the inter-relationships of culture and nature. It advances a critical, holistic world view and sugest that creative humaj enterprise can construct an alternative future, reharmonizing people's relationship to the natural world by reharmonizing their relationship with each other."

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि औद्योगिक पारिस्थितिकी औद्योगिक एवं पारिस्थितिकीय तंत्रों के अर्न्तसम्बन्धों का अध्ययन है, फलस्वरूप यह पारिस्थितिक मण्डल के जैविक संघटकों पर पर्यावरणीय प्रभाव के बारे में अवगत कराना है।

5.4 : औद्योगिक पारिस्थितिकी के लक्ष्य (Goals of Industrial Ecology)

औद्योगिक पारिस्थितिकी का प्रमुख उद्देश्य वैश्विक, क्षेत्रीय और स्थानीय स्तरों पर पोषणीय विकास को प्रोन्नत करना है। United Nations world Commission on Environment and Development ने पोषणीय विकास को इस प्रकार से परिभाषित किया ''भविष्य की पीढ़ी की आवश्यकताओं के परित्याग बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करना।'' पोषणीय विकास का प्रमुख सिद्धान्त है - पारिस्थितिकी एवं मानव स्वास्थ्य को संरक्षित करते हुए संसाधनों का पोषणीय प्रयोग (उदाहरण - पारिस्थितिक तंत्रों की संरचना और कार्य को सुरक्षित रखना) और पर्यावरणीय समता को प्रोन्नत करना (अन्तर्पीढ़ीय एवं अन्तर्सामाजिक)।

5.4.1 संसाधनों का पोषणीय प्रयोग (Sustainable Use of Resources)

औद्योगिक पारिस्थितिकी को नव्य संसाधनों (renewable resources) के

पोषणीय उपयोग और अनव्य (non-renewable) संसाधनों के न्यूनतम उपयोग को प्रोन्नत करना चाहिए। औद्योगिक प्रक्रिया संसाधनों के नियमित पूर्ति पर निर्भर करती है इसलिए उन्हें (प्रसाधनों) जहाँ तक सम्भव हो सके कुशलतापूर्वक संचालन करना चाहिए। यद्यपि भूतकाल में मानव जाति को घटते हुए कच्चे पदार्थों का स्थानान्तरण मिल जाता था लेकिन जरूरी नहीं है कि भविष्य में भी ऐसा ही होगा। सौर ऊर्जा के अलावा सभी संसाधनों की पूर्ति सीमित है। इसलिए अनव्य की क्षीणता (depletion) और नव्य के अपकर्ष (degredation) को कम किया जाना चाहिए ताकि औद्योगिक प्रक्रिया की पोषणीयता दीर्घकाल तक बनी रहे।

5.5 : पारिस्थितिकीय एवं मानव स्वास्थ्य (Ecological and Human Health)

मानव जीव पारिस्थितिकीय अन्योन्य क्रिया (interaction) के जटिल जाल का केवल एक घटक है, इसकी क्रियाओं को सम्पूर्ण प्रणाली से अलग नहीं किया जा सकता है। चूँकि मानव स्वास्थ्य पारिस्थितिक तन्त्र के अन्य घटकों के स्वास्थ्य पर निर्भर होता है, इसलिए पारिस्थितिक तन्त्र ढांचा और कार्य को औद्योगिक पारिस्थितिकी का केन्द्र बिन्दु होना चाहिए। यह महत्वपूर्ण है कि औद्योगिक क्रियायें पारिस्थितिक तन्त्र के भयंकर विघटन का कारण नहीं बनती लेकिन धीरे-धीरे उसके ढांचे और कार्य को कमजोर बनाती है जिससे विश्व की जीवन-मरण व्यवस्था (Life support system)जोखिम में पड़ जायेगी।

5.6 : औद्योगिक पारिस्थितिकी की मूल संकल्पनायें (Key Concept of Industrial Ecology)

5.6.1 तंत्र विश्लेषण (System Analysis)

औद्योगिक पारिस्थितिकी के अन्तर्गत मानव क्रियाओं और पर्यावरणीय समस्याओं के बीच सम्बन्धों का तंत्र दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाता है। जैसा कि चर्चा किया जा चुका है कि औद्योगिक एवं पारिस्थितिकीय प्रणालियों के अन्तर्क्रियाओं के निर्माण में औद्योगिक पारिस्थितिकी उच्च क्रम तन्त्र दृष्टिकोण है। अध्ययन केन्द्र को चुनने के लिए बहुत से तंत्र स्तर हैं (टेबिल-1 का अवलोकन करें)। उदाहरणार्थ, उत्पाद तंत्र स्तर पर केन्द्रित होने पर उच्च स्तरीय संगठन के साथ सम्बन्धों का अध्ययन या संस्था तंत्र एवं साथ में निम्न स्तर पर अध्ययन आवश्यक है, जैसे - व्यक्तिगत उत्पाद जीवन चक्र अवस्थायें। यह भी अध्ययन का विषय हो सकता है कि उत्पाद तंत्र किस प्रकार विभिन्न पारिस्थितिकीय तंत्रों (सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्र से लेकर व्यक्तिगत जीन तक) को प्रभावित करता है। एक तंत्र दृष्टिकोण उत्पादक को इस योग्य बनाता है कि वह पोषणीय रिवाज (fashion) में उत्पाद विकास करे।

5.6.2 पदार्थ एवं ऊर्जा प्रवाह तथा रूपान्तरण (Material and Energy Flows and Transformations) - पूरे औद्योगिक तंत्र में पदार्थ एवं ऊर्जा प्रवाह और उनका उत्पाद, सह उत्पाद एवं अपशिष्ट में रूपान्तरण का अध्ययन करना औद्योगिक पारिस्थितिकी की प्राथमिक संकल्पना (Concept) है। संसाधनों के उपभोग के पश्चात पदार्थों के निर्माण के साथ साथ वायु, जल एवं मृदा में सह उत्पाद एवं अपशिष्ट का विकास किया जाता है। (प्रवाह रेखाचित्र -1) पदार्थ प्रवाह चित्र को प्रदर्शित करता है।

औद्योगिक पारिस्थितिकी की एक रणनीति यह भी होती है कि अपशिष्ट पदार्थ की मात्रा जो उत्पादन प्रक्रिया में उत्पन्न होती है और पारिस्थितिकी तन्त्र पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, को कम करना है। उदाहरण के लिए प्रवाह रेखाचित्र 2 में विभिन्न उत्पादों द्वारा प्लेटिनम के प्रवाह को दिखाया गया है।

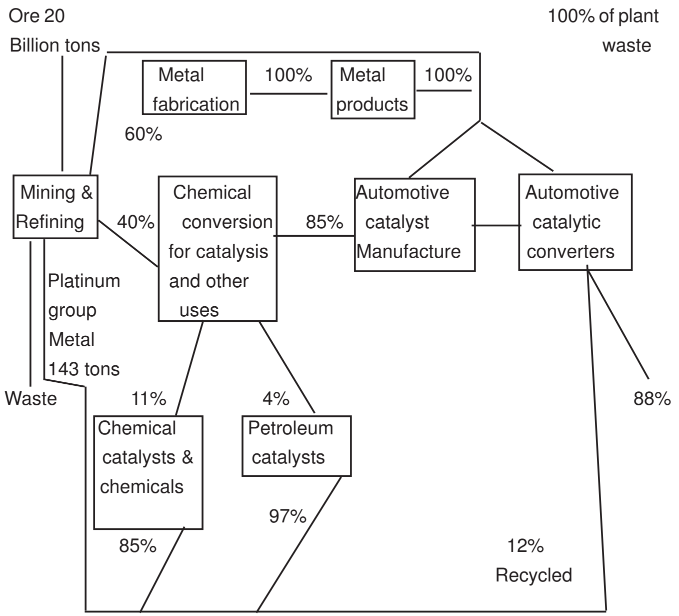

Fig. 1 Flow of platinum through various product systems

(विभिन्न उत्पाद तंत्रों द्वारा प्लेटिनम का प्रवाह)

स्वचलित उत्प्रेरक परिवर्तक (converter) में प्रयुक्त पदार्थ का 88 प्रतिशत भाग अपशिष्ट के रूप में निकलता है । पुनचर्क्रण (recycling) प्रयासों द्वारा इस अपशिष्ट को कम किया जा सकता है। इस अपशिष्ट का प्रयोग किसी अन्य औद्योगिक तंत्र में आगत (Input) के रूप में प्रयुक्त कर औद्योगिक तंत्र की कुशलता को बढ़ाया जा सकता है और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सकता है। औद्योगिक पारिस्थितिकी के सामने यह चुनौती है कि वह औद्योगिक तंत्रों से उत्पन्न पर्यावरणीय कुप्रभावों को कम करे।

5.7 : औद्योगिक पारिस्थितिकी- एक बहुविषयी दृष्टिकोण (Industrial Ecology- A Multidisciplinary Approach)

चूँकि औद्योगिक पारिस्थितिकी एक समग्रतावादी (Holistic) एवं तंत्र विचारधारा पर आधारित है इसलिए इसके अध्ययन में विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। अधिकतर पर्यावरणीय जटिलताओं को सुलझाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों जैसे - विधि, अर्थशास्त्र, व्यवसाय, प्राकृतिक संसाधन, पारिस्थितिकी, अभियंत्रिकी आदि विशेषज्ञों की आवश्यकता हैं जो औद्योगिक पारिस्थितिकी के विकास में अपना योगदान दे सकें और उद्योगों द्वारा जनित पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान कर सकें।

5.8 : विवृत (या खुला या रेखीय) एवं चक्रीय (या बंद) तंत्र (Linear or open and closed or cyclical system)

वस्तुओं के एक समूह को तन्त्र कहा जाता है जिसके अन्तर्गत एक वस्तु का दूसरे वस्तु से सम्बन्ध एवं उनके (वस्तुओं के) वैयक्तिक (Individual) गुणों का अध्ययन किया जाता है।

विकृत या खुला तंत्र उसे कहते हैं जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थ दोनों का सतत् निवेश एवं बहिर्गमन होता रहता है। इस प्रकार विकृत तंत्र इस प्रकार से कार्य करते है कि ऊर्जा तथा पदार्थ के निवेश तथा बहिर्गमन में संतुलन बना रहता है। तथा तंत्र हम सदैव स्थिर दशा (Steady state) की ओर उन्मुख होता है।

चक्रिय या बन्द तंत्र वह तंत्र होता है जिसकी सीमायें निश्चित होती हैं तथा पदार्थ तंत्र की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सकते। अर्थात तन्त्र में पदार्थ के प्रारम्भिक निवेश (Input) के बाद पुनः नये पदार्थों का निवेश नहीं हो सकता परन्तु ऊर्जा के निवेश एवं बहिर्गमन (output) पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होता अर्थात तन्त्र में अर्थ का निवेश तथा तन्त्र से ऊर्जा का बहिर्गमन बार-बार हो सकता है।

खुला तंत्र, जहाँ संसाधनों का उपभोग करने के पश्चात हानिकारक अपशिष्ट को वातावरण में छोड़ दिया जाता है, से औद्योगिक तन्त्र का उद्भव जिसमें बन्द तन्त्र व्यवस्था को अपनाया जाता है, केन्द्रीय संकल्पना है औद्योगिक पारिस्थितिकी की।

ब्राडेन एलेनबी (Bradlen Allenby) ने तंत्र की तीन अवस्थाओं (अवस्था 1, 2 व 3) की व्याख्या की जिसे **चित्र 2** में दिखाया गया है।

पहले प्रकार के तंत्र (चित्र 2(i)) रेखीय या खुला तंत्र, में पदार्थ एवं ऊर्जा एक भाग से प्रवेश करता है और उत्पाद या सह-उत्पाद/अवशिष्ट के साथ अलग होता है।

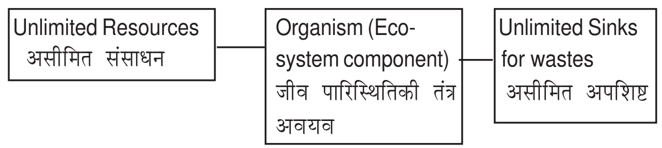

चित्र 2(i) तंत्र का पहला प्रकार

चूँकि अपशिष्ट या सह-उत्पाद का पुनर्चक्रण या पुर्नप्रयोग नहीं होता है इसलिए यह तंत्र कच्चे पदार्थों के असीमित एवं लगातार आपूर्ति पर आश्रित रहता है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक तंत्र के लिए इस अपशिष्ट को पचा लेने की क्षमता सीमित होती है।

तंत्र के दूसरे प्रकार में (चित्र 2(ii)), जिसमें आज के औद्योगिक तन्त्र की अधिकांश विशेषतायें परिलक्षित होती हैं, कुछ अपशिष्ट का तंत्र में ही पुनर्चक्रण या पुनर्प्रयोग कर लिया जाता है और शेष को वातावरण में छोड़ दिया जाता है।

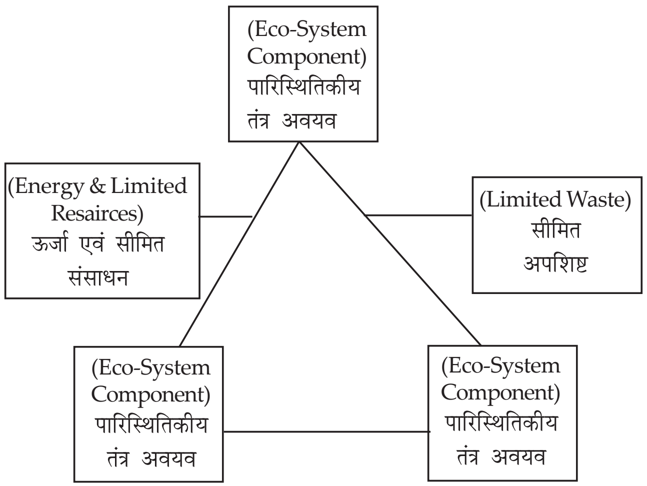

चित्र 2(II) तंत्र का दूसरा प्रकार्

तंत्र का तीसरा प्रकार पारिस्थितिकीय तंत्र के गतिशील साम्य को प्रदर्शित करता है जिसमें ऊर्जा एवं अपशिष्ट का तंत्र के दूसरे इकाइयों या प्रक्रियाओं द्वारा पुनर्चक्रण एवं पुनर्प्रयोग होता रहता है। तंत्र का यह प्रकार अत्यन्त एकीकृत चक्रीय तंत्र होता है।

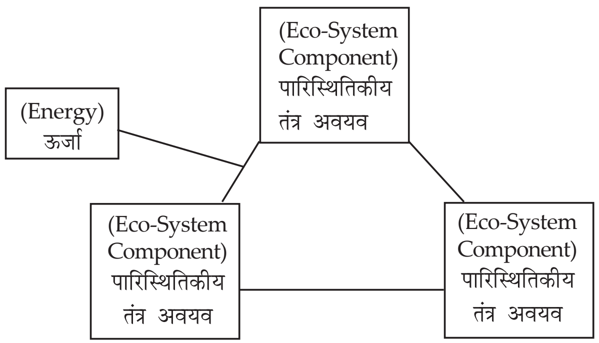

चित्र 2(III) तंत्र का तीसरा प्रकार

सम्पूर्ण चक्रीय तन्त्र में केवल सौर ऊर्जा बाहर से ली जाती है जबकि सभी सह-उत्पादकों का तंत्र में ही पुनचर्क्रण या पुनर्प्रयोग होता रहता है। तंत्र का यह तीसरा प्रकार एक पोषणीय स्थिति को प्रदर्शित करता है जो औद्योगिक पारिस्थितिकी का एक आदर्श लक्ष्य है।

5.9 औद्योगिक पारिस्थितिकी के सहयोग हेतु तंत्र तकनीकियाँ (System Tools to Support Industrial Ecology)

औद्योगिक परिस्थितिकी तंत्र अभिमुखी, (System oriented) तकनीकों, जैसे पदार्थ प्रवाह विश्लेषण (Material Flow Analysis-MFA) और जीवन चक्र मूल्यांकन (Life Cycle Assessment-LCA) के प्रयोग से प्रतिष्ठित पर्यावरणीय नीति की पूरक बनकर प्रदूषण को कम करने में सहायक हो सकती है।

5.9.1 जीवन चक्र मूल्यांकन (Life Cycle Assessment-LCA) :

यह सम्भव नहीं है कि प्रत्येक व्यक्तिगत फर्म या उद्योग को औद्योगिक पारिस्थितिक तन्त्र के दूसरे और तीसरे प्रकार में बदला जा सके। यह ज्यादा यर्थाथवादी होगा कि विभिन्न कम्पनियों या उद्योग को इस प्रकार जोड़ा जाय कि एक कम्पनी जो अपशिष्ट पैदा करती है उसे दूसरी कम्पनियों द्वारा आगत (Input) के रूप में प्रयोग कर लिया जाय। उदाहरणार्थ एक कम्पनी जो जल के धात्विक तत्व को अपशिष्ट के रूप में पैदा करती है उसे उस दूसरी कम्पनी को आपूर्ति कर दी जाय जो इस अपशिष्ट को अपने उत्पाद प्रक्रिया में आगत के रूप में प्रयोग करती हो। फर्मों एवं उद्योगों के मध्य सर्वाधिक अनुकूलतम जुड़ाव स्थापित करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि वास्तव में कौन सा पदार्थ प्रयोग हो रहा है और प्रत्येक प्रक्रिया के उपरान्त कौन-कौन से पदार्थ बाहर निकल रहे हैं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक पदार्थ का **''पालने से कब्र तक''** का विश्लेषण किया जाना चाहिए अर्थात् प्रत्येक पदार्थ के शुरूआती प्रयोग से लेकर प्रत्येक अवस्था में क्या-क्या पदार्थ (गुण एवं मात्रा में) निकलता है इसका समुचित विश्लेषण होना चाहिए। इस विश्लेषण हेतु प्रयुक्त किया जाने वाला हथियार है उत्पाद जीवन चक्र मूल्यांकन (Product life cycle Assessment PLCA)।

The Society for Environmental Toxicology and chemistry SETAC के अनुसार "LCA एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें उत्पाद, प्रक्रिया या क्रिया से जुड़े पर्यावरणीय बोझ का अध्ययन अथवा मूल्यांकन किया जाता है (a process used to evaluate the environmental burdens associated with a product, process,

or activity)।

रिचर्डस एवं सहयोगियों के अनुसार उत्पाद जीवन चक्र (Product life cycle) के अन्तर्गत उत्पाद, प्रक्रिया, तकनीक के सम्पूर्ण जीवन का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है। इसका उद्देश्य पदार्थ, उत्पाद, प्रक्रिया का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को कम करना है।

प्रथम उत्पाद जीवन चक्र विश्लेषण 1960 में **Coca Cola** कम्पनी द्वारा किया गया था।

5.9.1.1 जीवन चक्र मूल्यांकन के प्रमुख तत्व (Components of LCA)

SETAC और **USEPA** के अनुसार को निम्नलिखित तीन प्रमुख घटक या अवयव हैं-

पदार्थ विश्लेषण (Inventory Analysis) इसके अन्तर्गत प्रयुक्त ऊर्जा एवं संसाधनों की पहचान (identification) एवं परिमाणन (quantification) तथा पर्यावरण (वायु, जल एवं भूमि) में छोड़े गये अपशिष्टों का विश्लेषण किया जाता है।

संघात विश्लेषण (Impact Analysis) इसके अन्तर्गत तकनीकी गुणात्मक एवं परिमाणात्मक विशेषताओं का लक्षण वर्णन (Characterisation) और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन किया जाता है।

सुधार विश्लेषण (Improvement Analysis) इस विश्लेषण के अन्तर्गत पर्यावरण बोझ को कम करने हेतु अवसरों का मूल्यांकन एवं क्रियान्वयन किया जाता है।

LCA के उपर्युक्त तीनों तत्वों को चित्र-3 में दिखाया गया है।

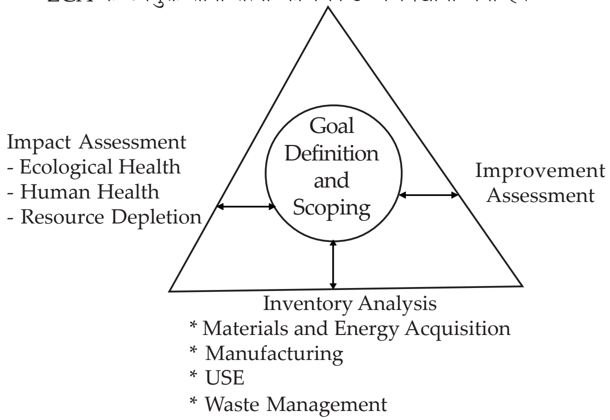

Fig-3 Technical Framework for Life Cycle Assessment

(जीवन चक्र मूल्यांकन का तकनीकी ढाँचा)